THE

# MAHĀBHĀRATA

**(Southern Recension)**

For the first time critically edited by

VIDYASAGARA VIDYAVACHASPATI

**P P S SASTRI, B. A. (OXON), M.A.,**

*Professor of Sanskrit, Presidency College, Madras,*
*& Editor, Descriptive Catalogues of Sanskrit and*
*Telugu Mss. in the Tanjore Palace Library*

---

## Vol. X—DRONA PARVAN.—Part II.

PUBLISHED BY

V RAMASWAMY SASTRULU & SONS

292, ESPLANADE, MADRAS.

---

PRINTED BY V VENKATESWARA SASTRULU
OF V RAMASWAMY SASTRULU & SONS
AT THE 'VAVILLA' PRESS, MADRAS—1935

॥ श्रीरस्तु ॥

# ॥ श्रीमन्महाभारतम् ॥

तत्र

# द्रोणपर्वणि

## द्वितीयो भागः

मद्रपुरराजकीयकलाशालासंस्कृताध्यापकैः

बि. ए. ( आक्सन् ), एम् ए. ( मद्रास् )

इत्यादिबिरुदाङ्कितैः

**विद्यासागर विद्यावाचस्पति· पि· पि· सुब्रह्मण्यशास्त्रिभिः**

दाक्षिणात्यशाखानुसारेण सविमर्शं संशोधितः

एकमेव हि लोकेऽस्मि- न्नात्मतो गुणवत्तरम् ।
इच्छन्ति पुत्रं पुरुषा लोके नान्यं कथञ्चन ॥
आचार्याणां भवन्त्येव रहस्यानि महात्मनाम् ।
तानि पुत्राय वा दद्युश् शिष्यायानुगताय वा ॥

द्रोण-१६२—५-६.

चेन्नपुर्यां

वाविळ्ळ रामस्वामिशास्त्रुलु अण्ड् सन्स्

इत्येतैः सम्मुद्य प्रकाशितम्

चेन्नपुर्यां
वाविळ्ळ मुद्रणालये
मुद्रितम्
१९२५.

# INTRODUCTION

## I

In the preparation of the second part of the Drona Parvan for the Press, the Manuscripts, designated अ, क, ख, घ and ङ, which were utilised for the first part, have been utilised The Manuscript designated ग belonging to the Tanjore Palace Library has not been utilised as it indicated distinct learnings towards the Northern Recension.

## II

From the Anukramanikādhyāya of the Ādi Parvan, it will be observed that, according to both the Southern and Northern Recensions, the Drona Parvan should consist of 170 chapters. The majority of the Manuscripts utilised by us divide the Drona Parvan into 198 chapters whereas the printed editions of the Northern Recension divide it into 202 chapters. But the printed edition in Grantha script issued from Sarabhojirājapuram about 1896 A. D. divides the text exactly into 170 chapters. We have adopted the division followed in the Grantha printed Text for the scheme of chapters in our Principal Text of the Southern Recension. We have also indicated in appropriate places in the body of the Text the deviations of the several Manuscripts, wherever they occur.

# III

# CONCORDANCE

## DRONA PARVAN PART II.

| (1931) Poona Edition with Bhavadipa Chapter | (1907) Kumbakonam Edition Chapter | Manuscripts of the Southern Recension Chapter | (1935) Southern Recension Chapter |
|---|---|---|---|
| 115 | 115 | 113 | 101 |
| 116 | 116 | 114 | 102 |
| 117 | 117 | 115 | 103 (1-37) |
| 118 | 118 | 116 | ,, (38-55) |
| 119 | 119 | 117 | 104 |
| 120 | 120 | 118 | 105 |
| 121 | 121 | 119 | 106 |
| 122 | 122 | 120 | 107 (1-64½) |
| 123 | 123 | 121 | ,, (65½-94½) |
| 124 | 124 | 122 | 108 |
| 125 | 125 | 123 | 109 |
| 126 | 126 | 124 | 110 (1-53½) |
| 127 | 127 | ,, | ,, (54½-119) |
| 128 | 128 | 125 | 111 |
| 129 | 129 | 126 | 112 |
| 130 | 130 | 127 | 113 |
| 131 | 131 | 128 | 114 |
| 132 | 132 | 129 | 115 |
| 133 | 133 | 130 | 116 (1-43) |
| 134 | 134 | 131 | ,, (44-77) |
| 135 | 135 | 132 | 117 (1-40) |
| 136 | 136 | 133 | ,, (41-77) |
| 137 | 137 | 134 | 118 |
| 138 | 138 | 135 | 119 |
| 139 | 139 | 136 | 120 |
| 140 | 140 | 137 | 121 (1-28½) |
| 141 | 141 | 138 | ,, 29½-68½) |
| 142 | 142 | 139 | ,,(68½-152¼) |
| 143 | 143 | 140 | 122 |
| 144 | 144 | 141 | 123 |
| 145 (1-10) } | 145 | 142 | 124 |
| 147 (29-92) } | ,, | ,, | ,, |

| Poona Edition with Bhavadipa Chapter | Kumbakonam Edition Chapter | Manuscripts of the Southern Recension Chapter | Southern Recension Chapter |
|---|---|---|---|
| 148 (1–24) | 146 | 143 | 125 (1–110) |
| 145 (11–98) | | | |
| 146 (1–4) | 147 (1–5) | „ | „ (111–113) |
| 146 (5–41) | „ (6–41) | omitted | omitted |
| „ (42–60) | „ (42–81) | „ | „ (114–155) |
| „ (61–144) | 148 | 144 | 126 |
| 147 (1–27) | 149 (1–27) | 145 | 127 (1–29½) |
| 148 (29–36) | „ (28–41) | „ | „ (30–41½) |
| „ (37–58) | „ (42–66) | 146 | „ (42½–54½) |
| 149 | 150 | „ | „ (55½–90½) |
| 150 | 151 | 147 | 128 (1–34) |
| 151 | 152 | 148 | „ (35–75½) |
| 152 | 153 | 149 | 129 (1–33½) |
| 153 | 154 | 150 | „ (34½–79½) |
| 154 | 155 | 151 | 130 (1–35½) |
| 155 | 156 | 152 | „ (36½–82) |
| 156 (1–30) | 157 (1–30) | 153 | 131 (1–26) |
| (31–55) | (31–55) | omitted | „ omitted |
| (56–136) | 56–136 | „ | „ (27–101½) |
| 137–151 | 137–151 | omitted | omitted |
| (152–190) | 152–189 | „ | „ (102½–140) |
| 157 | 158 | 154 | 132 |
| 158 | 159 | „ | „ |
| 159 | 160 | 155 | 133 |
| 160 | 161 | 156 | 134 |
| 161 | 162 | 157 | 135 |
| 162 | 163 | 158 | „ |
| 163 | 164 | 159 | 136 |
| 164 | 165 | 160 | „ |
| 165 | 166 | 161 | 137 |
| 166 | 167 | 162 | 138 |
| 167 | 168 | 163 | 139 |
| 168 | 169 | 164 | 140 |

ख—कोशे नाताध्यायसमाप्तिः

| Poona Edition with Bhavadipa Chapter | Kumbakonam Edition Chapter | Manuscripts of the Southern Recension Chapter | Southern Recension Chapter |
|---|---|---|---|
| 169 | 170 | 165* | ,, |
| 170 | 171 | 166 | 141 |
| 171 | 172 | 167 | 142 (1–53) |
| 172 | 173 | ,, | ,, (54–93½) |
| 173 (1-23) | 174 (1–23) | ,, † | ,, (94½–113½) |
| 173 (24–69) | 173 (24–68) | 168 | 143 (1–45) |
| 174 | 175 | 169 ** | ,, (46–85½) |
| 175 | 176 | 170 | 144 |
| 176 | 177 | 171 | 145 |
| 177 | 178 | 172 | ,, |
| 178 | 179 | 173 | 146 |
| 179 | 180 | 174 | 147 |
| 180 | 181 | 175 | 148 |
| 181 | 182 | 176 | 149 |
| 182 (1–10) | 183 (1–10) | 177 | 150 (1–10) |
| ,, (11–47) | ,, (11–47) | 178 | ,, (11–44) |
| 183 (1–18) | 184 (1–18) | ,, *** | ,, (45–62) |
| ,, (19— | ,, (19–67) | 179 | 151 |
| 184 | 185 | 180 | 152 |
| 185 | 186 | 181 | 153 |
| 186 | 187 | 182 | 154 |
| 187 | 188 | 183 | 155 |
| 188 | 189 | 184 | 156 |
| 189 | 190 | 185 | 157 |
| 190 | 191 | ,, †† | 158 |
| 191 | 192 | 186 | 159 |
| 192 | 193 (1–22) | omitted | omitted |
| ,, | 193 (23–87) | 187 | 160 |

* ख—कोशे नाताध्यायसमाप्तिः

† ख-ङ—कोशयोः नाताध्यायसमाप्तिः

** ख—कोशे नाताध्यायसमाप्तिः

*** अ-क-ङ—कोशेषु नाताध्यायसमाप्तिः

†† ङ—कोशमात्र एवाताध्यायसमाप्तिः

| Poona Edition with Bhavadipa Chapter | Kumbakonam Edition Chapter | Manuscripts of the Southern Recension Chapter | Southern Recension Chapter |
|---|---|---|---|
| 193 | 194 | 188 | 161 |
| 194 | 195 | 189 | 162 |
| 195 | 196 | 190 | ,, |
| 196 | 197 | 191 | 163 |
| 197 | 198 | 192 | 164 |
| 198 | 199 | 193 | 165 |
| 199 | 200 | 194 | 166 |
| 200 | 201 | 195 | 167 |
| 201 (1-46) | 202 (1-45) | 196 | 168 |
| ,, (47-100) | ,, (46-105) | 197 | 169 |
| 202 | 203 | 198 | 170 |

The Presidency College,
Madras
20—4—1935

P. P S SASTRI,
*Editor.*

## IV

The number of stanzas in the Drona Parvan is 8909 according to the Northern Recension and 10909 according to the majority of the Manuscripts of the Southern Recension. The actual number of stanzas according to the Principal Text edited comes to 9555 stanzas

## V

With regard to the Drona Parvan, it is possible to mark a Text clearly as Southern or Northern according as it has or omits particular chapters and incidents, characteristic of each Recension. A few of the more important distinctive features of the Southern Recension of the Drona Parvan are noticed below

i. The Southern Recension omits the details regarding the fight of Arjuna with Jayadratha described in stanzas 5–41 of chapter 146 of the Northern Recension

ii. The Southern Recension omits the details regarding the fight of Drona with the Pāṇḍavas described in stanzas 31–55 of chapter 156 and the fight of As'vatthāma with Ghaṭotkaca described in stanzas 137–151 of chapter 156 of the Northern Recension.

iii The Southern Recension omits the details regarding the fight between Drona and Dhṛṣṭadyumna described in stanzas 1-22 of chapter 192 of the Northern Recension.

The Presidency College, Madras 20—4—1935

P P. S. SASTRI, *Editor.*

*Note*—The standard Edition of the Northern Recension is the Poona Edition with Bhavadipa (1930)

॥ श्रीरस्तु ॥

# महाभारतस्य द्रोणपर्वणि द्वितीयभागः

तत्र

## ॥ विषयानुक्रमणिका ॥

### जयद्रथवधपर्व

## घटोत्कचवधपर्व

## द्रोणवधपर्व

# द्रोणपर्वविषयानुक्रमणिका

## नारायणास्त्रमोक्षपर्व

॥ श्रीः ॥

# ॥ महाभारतम् ॥

## ॥ ७ ॥ द्रोणपर्वणि ॥ ७ ॥

॥ द्वितीयसम्पुटम् ॥

## ॥ द्रोणपर्वणि द्वितीयसम्पुटम् ॥

## ॥ एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥

(जयद्रथवधपर्व)

सात्यकिना जलसन्धस्य वधः ॥

सञ्जयः—

शृणुष्वैकमना राजन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
द्राव्यमाणे बले तस्मिन् हार्दिक्येन महात्मना ॥ १

लज्जयाऽवनते चापि परिहृष्टे च तावके ।
द्वीपो य आसीत् पाण्डूनाम् अगाधे गाधमिच्छताम् ॥ २

श्रुत्वा तु निनदं घोरं तावकानां महाहवे ।
शैनेयस्त्वरितो राजन् कृतवर्माणमभ्ययात् ॥ ३

कृतवर्मा तु हार्दिक्यश् शैनेयं निशितैश्शरैः ।
[1]अवाकिरत् सुसङ्क्रुद्धस् ततोऽक्रुद्ध्यत सात्यकिः ॥ ४

अथास्य निशितं भल्लं शैनेयः कृतवर्मणः ।
प्रेषयामास [2]सङ्क्रुद्धश् शरांश्च चतुरोऽपरान् ॥ ५

ते तस्य न्यहनन् वाहान् भल्लैश्चास्याच्छिनद्धनुः ।
पृष्ठरक्षौ रथस्यास्य ह्यविध्यन्निशितैश्शरैः ॥ ६

1. ख—अर्धपञ्चकं नास्ति 2 क-घ—ङ—समरे

ततस्तं विरथं कृत्वा सात्यकिस्सत्यविक्रमः ।
[1]सेनां तामर्दयामास शरैस्सन्नतपर्वभिः ॥ ७

प्राभज्यत ततस्सेना शैनेयशरपीडिता ।
पलायनकृतोत्साहा भ्रमन्ती तत्र तत्र ह ॥ ८

ततः प्रायाद्वै त्वरितस् सात्यकिस्सत्यविक्रमः ॥ ८॥

शृणु राजन् यदकरोत् तव सैन्येषु वीर्यवान् ॥ ९
अतीत्य सहसा राजन् द्रोणानीकमहार्णवम् ।

पराजित्य च संहृष्टः कृतवर्माणमाहवे ॥ १०
यन्तारमब्रवीच्छूरश् शनैर्याहीत्यसम्भ्रमम् ॥ १०॥

दृष्ट्वा तु तव तत् सैन्यं रथाश्वद्विपसङ्कुलम् ।
पदातिजनसम्पूर्णं पुनर्यन्तारमब्रवीत् ॥ ११॥

सात्यकिः—

यदेतन्मेघसङ्काशं द्रोणानीकस्य सव्यतः ।
सुमहत् कुञ्जरानीकं यस्य रुक्मरथो मुखम् ॥ १२॥

एते च बहवस्सूत दुर्निवार्याश्च संयुगे ।
दुर्योधनसमादिष्टास् तदर्थे त्यक्तजीविताः ॥ १३॥

राजपुत्रा महेष्वासास् सर्वे विक्रान्तयोधिनः ।
न चाजित्वा रणे ह्येताञ् शक्यः प्राप्तुं जयद्रथः ॥ १४॥

---

1. क-ख-घ—सेनामस्या

नापि पार्थो मया सूत शक्यः प्राप्तुं कथञ्चन ॥　　१५

एते तिष्ठन्ति सहितास् सर्वविद्यासु निष्ठिताः ।
त्रिगर्तानां रथोदारास् सुवर्णविकृतध्वजाः ॥　　१६
मामेवाभिमुखा वीरा योत्स्यमाना व्यवस्थिताः ॥　　१६॥

तत्र मां प्रापय क्षिप्रम् अश्वांश्चोदय सारथे ।
त्रिगर्तैस्सह योत्स्येऽहं भारद्वाजस्य पश्यतः ॥　　१७॥

सञ्जयः—

ततः प्रायाच्छनैस्सूतस् सत्यकस्य मते स्थितः ।
रथेनादित्यवर्णेन भास्वरेण पताकिना ॥　　१८॥

तमूहुस्सारथेर्धृत्या वल्गमाना हयोत्तमाः ।
वायुवेगसमास्सङ्ख्ये कुन्देन्दुरजतप्रभाः ॥　　१९॥

आपतन्तं रथं तं तु शङ्खवर्णैर्हयोत्तमैः ।
परिवव्रुस्ततश्शूरा गजानीकेन सर्वतः ॥　　२०॥

किरन्तो विविधांस्तीक्ष्णान् सायकाँल्लघुयोधिनः ॥　　२१

सात्वतोऽपि शितैर्बाणैर् गजानीकमपोथयत् ।
पर्वतानिव वर्षेण तपान्ते जलदो महान् ॥　　२२

वज्राशनिसमस्पर्शैर् वध्यमानाश्शरैर्गजाः ।
[1]प्राद्रवन् रणमुत्सृज्य शिनिपुङ्गवपीडिताः ॥　　२३

---

1. अ-ङ—नास्तीदमर्धम्

शीर्णदन्तास्सरुधिरा भिन्नमस्तकपिण्डकाः ।
निर्भिन्नकर्णास्यकरा विनियन्तृपताकिनः ॥ २४

सम्भिन्नवर्मघण्टाश्च संनिकृत्तमहाध्वजाः ।
हतारोहा दिशो राजन् भेजिरे भ्रष्टकम्बलाः ॥ २५

रुवन्तो विविधान् नादाञ् जलदोपमनिस्स्वनाः ।
नाराचैर्वत्सदन्तैश्च सात्त्वतेन विदारिताः ॥ २६

तस्मिन् द्रुते गजानीके जलसन्धो महाबलः ।
यत्तस्सम्प्रापयन्नागं रजताश्वरथं प्रति ॥ २७

रुक्मवर्णधरश्शूरस् तपनीयाङ्गदश्शुचिः ।
कुण्डली मकुटी शङ्खी रक्तचन्दनरूषितः ॥ २८

शिरसा धारयन् दीप्तां तपनीयमयीं स्रजम् ।
उरसा धारयन्निष्कं कर्णत्राणं च भास्वरम् ॥ २९

चापं च रुक्मविकृतं विधून्वन् गजमूर्धनि ।
अशोभत महाराज सविद्युदिव तोयदः ॥ ३०

तमापतन्तं सहसा मागधस्य गजोत्तमम् ।
सात्यकिर्वारयामास वेलेवोद्वृत्तमर्णवम् ॥ ३१

नागं निवारितं दृष्ट्वा शैनेयस्य शरोत्तमैः ।
अक्रुध्यत रणे राजञ् जलसन्धो महाबलः ॥ ३२

ततः क्रुद्धो महेष्वासो मार्गणैर्भारसाधनैः ।
अविध्यत शिनेः पौत्रं जलसन्धो महोरसि ॥ ३३

ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च ।
अस्यतो वृष्णिवीरस्य निचकर्त शरासनम् ॥ ३४

सात्यकिं छिन्नधन्वानं प्रहसन्निव भारत ।
अविध्यद्विवरे वीरः पञ्चाशद्भिश्शितैश्शरैः ॥ ३५

स विद्धो बहुभिर्बाणैर् जलसन्धेन वीर्यवान् ।
नाकम्पत तदा राजंस् तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३६

अचिन्तयित्वा स शरान् अत्यर्थं सम्भ्रमे बली ।
धनुरन्यत् समादाय तिष्ठ तिष्ठेत्युवाच ह ॥ ३७

एवमुक्त्वा तु शैनेयो जलसन्धं महोरसि ।
विव्याध षष्ट्या सुभृशं शराणां प्रहसन्निव ॥ ३८

क्षुरप्रेण च पीतेन मुष्टिदेशे महद्धनुः ।
जलसन्धस्य चिच्छेद तं विव्याध त्रिभिश्शरैः ॥ ३९

जलसन्धस्तु तत् त्यक्त्वा सशरं वै शरासनम् ।
तोमरं व्यसृजत् तूर्णं सात्यकिं प्रति मारिष ॥ ४०

स निर्भिद्य भुजं सव्यं माधवस्य महारणे ।
अभ्यगाद्धरणीं भित्त्वा श्वसन्निव महोरगः ॥ ४१

निर्भिन्नस्तु भुजे सव्ये सात्यकिस्सत्यविक्रमः ।

त्रिंशता निशितैर्बाणैर् जलसन्धमताडयत् ॥　४२

प्रगृह्य तु ततः खड्गं जलसन्धो महारथः ।
आर्षभं चर्म च महच् छतचन्द्रसमाकुलम् ॥　४३

[1]तत आविध्य तं खड्गं सात्वतायोत्ससर्ज ह ॥　४३॥

शैनेयस्य धनुश्छित्त्वा स खड्गो न्यपतन्महीम् ।
अलातचक्रवच्चैव व्यरोचत महीं गतः ॥　४४॥

अथान्यद्धनुरादाय सर्वकायावदारणम् ।
जलसन्धमभिप्रेक्ष्य उत्स्मयित्वा च माधवः ॥　४५॥

सालस्कन्धप्रतीकाशम् इन्द्राशनिसमप्रभम् ।
विष्फार्य सन्दधे क्रुद्धो जलसन्धवधे शरान् ॥　४६॥

ततस्साभरणौ बाहू क्षुराभ्यां माधवोत्तमः ।
[2]साङ्गदौ जलसन्धस्य चिच्छेद प्रहसन्निव ॥　४७॥

तौ बाहू परिघप्रख्यौ पेततुर्गजसत्तमात् ।
वसुन्धराधराद्भ्रष्टौ पञ्चशीर्षाविवोरगौ ॥　४८॥

ततस्सुदंष्ट्रं सुहनु चारुकुण्डलमुन्नसम् ।
क्षुरेणास्य तृतीयेन शिरश्चिच्छेद सात्यकिः ॥　४९॥

तत् पातितशिरोबाहु कबन्धं भीमदर्शनम् ।
द्विरदं जलसन्धस्य रुधिरेणाभ्यषिञ्चत ॥　५०॥

---

1. ङ—अर्धचतुष्टयं नास्ति　　2 ङ—अर्धचतुष्टयं नास्ति

जलसन्धं निहत्याजौ त्वरमाणस्तु सात्वतः ।
कबन्धं द्विरदश्चैव शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ५१॥

रुधिरेणावसिक्ताङ्गो जलसन्धस्य कुञ्जरः ।
विलम्बमानमवहत् कबन्धं श्लिष्टमासने ॥ ५२॥

शरार्दितस्सात्वतेन मर्दमानस्स्ववाहिनीम् ।
घोरमार्तस्वरं कृत्वा विदुद्राव महागजः ॥ ५३॥

हाहाकारो महानासीत् तव सैन्यस्य मारिष ।
जलसन्धं हतं दृष्ट्वा वृष्णीनामृषभेण तु ॥ ५४॥

विमुखा विद्रुताश्चैव तव योधास्समन्ततः ।
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥ ५५॥

एतस्मिन्नन्तरे राजन् द्रोणश्शस्त्रभृतां वरः ।
[1]संन्यस्य भारं सुमहत् कृतवर्मणि भारत ॥ ५६॥

अभ्ययाज्जवनैरश्वैर् युयुधानं महारथम् ॥ ५७
[2]स हि पार्थान् रणे यत्तान् दधारैको महाबलः ॥ ५७॥

तमुदीर्णं तथा दृष्ट्वा शैनेयं कुरुपुङ्गवाः ।
द्रोणेनैव सह क्रुद्धास् सात्यकिं समुपाद्रवन् ॥ ५८॥

---

1 ख—इदमर्धं नास्ति 2. ख—इदमर्धं नास्ति

ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां सात्वतस्य च ।
द्रोणस्य च रणे राजन् घोरं देवासुरोपमम् ॥ ५९॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥
[अस्मिन्नध्याये ५९॥ श्लोकाः]

---

## ॥ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

---

सात्यकिना दुर्योधनकृतवर्मणोः पराजय ॥

---

सञ्जयः—

सात्वतस्य रणे कर्म योद्धुं दृष्ट्वा महारथाः ।
अमृष्यमाणास्संयत्ताश् शैनेयं समुपाद्रवन् ॥ १

ते किरन्तश्शरव्रातान् सर्वे यत्ताः प्रहारिणः ।
त्वरमाणा महाराज युयुधानमयोधयन् ॥ २

तं द्रोणस्सप्तसप्तत्या जघान निशितैश्शरैः ।
दुर्मर्षणो द्वादशभिर् दुष्षहो दशभिश्शरैः ॥ ३

विकर्णश्चापि निशितैस् त्रिशद्भिः कङ्कपत्रिभिः ।
विव्याध मार्गणैस्तूर्णं वामपार्श्वे स्तनान्तरे ॥ ४

दुर्मुखो दशभिर्बाणैस् तथा दुश्शासनोऽष्टभिः ।

चित्रसेनश्च शैनेयं द्वाभ्यां विव्याध मारिष ॥　　५

दुर्योधनश्च महता शरवर्षेण माधवम् ।
अपीडयन्रणे राजञ् शूराश्चान्ये महारथाः ॥　　६

सर्वतः प्रतिविद्धस्तु तव पुत्रैर्महारथैः ॥　　६॥

स तुद्यमानस्तु तदा सात्त्वतः कुरुपुङ्गवैः ।
तान् प्रत्यविध्यच्छैनेयः [1]पृथक् पृथगजिह्मगैः ॥　　७॥

[2]सात्यकिः पुण्डरीकाक्षो ह्यस्त्रेषु परिनिष्ठितः ।
[3]भारद्वाजं त्रिभिर्बाणैर् दुष्षहं दशभिश्शरैः ॥　　८॥

विकर्णं पञ्चविंशत्या चित्रसेनं च सप्तभिः ।
दुर्मर्षणं द्वादशभिर् अष्टाभिश्च विविंशतिम् ॥　　९॥

सत्यव्रतं च दशभिर् विजयं दशभिश्शरैः ।
दुर्योधनं त्रिभिर्विद्ध्वा सुपुङ्खैस्तिग्मतेजनैः ॥　　१०॥

ततो रुक्माङ्गदं चापं विधून्वानो महारथः ।
अभ्ययात् सात्यकिस्तूर्णं पुत्रं तव महारथम् ॥　　११॥

राजानं सर्वलोकस्य सर्वलोकमहारथः ।
शरैरभ्यहनद्गाढं ततो युद्धमभूत् तयोः ॥　　१२॥

विमुञ्चन्तौ शरांस्तीक्ष्णान् सन्दधानौ च सायकान् ।

---

1. ख-ङ—त्रिभिस्त्रिभिर　　2. ख—अर्धषट्कं नास्ति
3 ङ—आर्ष्यश्शृङ्गि त्रिभिर्बाणै दुस्सहं दशभिश्शरैः । [अधिकः पाठः]

अदृश्यं समरेऽन्योन्यं चक्रतुस्तौ महारथौ ॥ १३॥

सात्यकिः कुरुराजेन निर्विद्धो बह्वशोभत ।
अस्रवद्रुधिरं भूरि स्वरसं चन्दनो यथा ॥ १४॥

सात्वतस्य च बाणौघैर् निर्विद्धस्तनयस्तव ।
शातकुम्भमयापीडो बभौ यूप इवोच्छ्रितः ॥ १५॥

माधवस्तु रणे राजन् कुरुराजस्य धन्विनः ।
धनुश्चिच्छेद सहसा क्षुरप्रेण हसन्निव ॥ १६॥

अथैनं छिन्नधन्वानं शरैर्बहुभिराचिनोत् ॥ १७

निर्भिन्नस्तु शरैस्तेन द्विषता क्षिप्रकारिणा ।
नामृष्यत रणे राजा शत्रोर्विजयलक्षणम् ॥ १८

अथान्यद्धनुरादाय हेमपृष्ठं [1]दुरासदम् ।
विव्याध सात्यकिं तूर्णं सायकानां शतेन वै ॥ १९

सोऽतिविद्धो बलवता तव पुत्रेण धन्विना ।
अमर्षवशमापन्नस् तव पुत्रमपीडयत् ॥ २०

पीडितं नृपतिं दृष्ट्वा तव पुत्रा महारथाः ।
सात्वतं शरवर्षेण छादयामासुरञ्जसा ॥ २१

स च्छाद्यमानो बहुभिस् तव पुत्रैर्महारथैः ।
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ २२

1 क-ख-घ—दुरानमम्

दुर्योधनं च त्वरितो विव्याधाष्टभिराशुगैः ।
प्रहसंश्चास्य चिच्छेद कार्मुकं रिपुभीषणम् ॥ २२

नागं मणिमयं चैव शरैर्ध्वजमपातयत् ॥ २३॥

हत्वा च चतुरो वाहांश् चतुर्भिर्निशितैश्शरैः ।
सारथिं पातयामास क्षुरप्रेण महायशाः ॥ २४॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरः कुरुराजं महाबलम् ।
अवाकिरच्छरैर्हृष्टो बहुभिर्मर्मभेदिभिः ॥ २५॥

स वध्यमानस्समरे शैनेयस्य शरोत्तमैः ।
प्राद्रवत् सहसा राजन् पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ २६॥

आप्लुतश्च ततो यानं चित्रसेनस्य धन्विनः ।
हाहाभूतं जगत् सर्वं दृष्ट्वा राजानमाहवे ॥ २७॥

ग्रस्यमानं सात्त्वतेन राहुणेव निशाकरम् ॥ २८

तं तु शब्दं ततश्श्रुत्वा कृतवर्मा महारथः ।
आपतत् सहसा तत्र यत्रस्थो माधवः प्रभुः ॥ २९

विधून्वानो धनुश्श्रेष्ठं चोदयानश्च वाजिनः ।
भर्त्सयन् सारथिं चोग्रं याहि याहीति सत्वरः ॥ ३०

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य व्यादितास्यमिवान्तकम् ।
युयुधानो महाराज यन्तारमिदमब्रवीत् ॥ ३१

सात्यकिः—

कृतवर्मा रथेनैष द्रुतमायाति मां वशी ।
प्रत्युद्याहि रथेनैनं प्रवरं सर्वधन्विनाम् ॥ ३२

प्रयाहि सत्वरं सूत रथेन रथसत्तमम् ।
निहनिष्यामि तं सङ्ख्ये वृष्णिवीरमरिन्दमम् ॥ ३३

सञ्जयः—

ततः प्रजवनाश्वेन रथेन रथिनां वरः ।
आससाद रणे राजन् प्रतिमानं धनुष्मताम् ॥ ३४

ततो गभस्तिमत्प्रख्यौ ज्वलिताविव पावकौ ।
समेयातां नरव्याघ्रौ व्याघ्राविव तरस्विनौ ॥ ३५

कृतवर्मा तु शैनेयं षड्विंशत्या समर्पयत् ।
निशितैस्सायकैस्तीक्ष्णैर् यन्तारं चास्य सप्तभिः ॥ ३६

चतुरश्च हयोदारांश् चतुर्भिस्सायकोत्तमैः ।
अविध्यत् साधु दान्तान् वै सैन्धवान् सात्वतस्य च ॥ ३७

रुक्मध्वजो रुक्मपृष्ठं महद्विष्फार्य कार्मुकम् ।
रुक्माङ्गदी रुक्मवर्मा रुक्मपुङ्खैरवाकिरत् ॥ ३८

ततोऽशीत्या शिनेः पौत्रः प्राहरत् कृतवर्मणे ।
त्वरितस्त्वरया युक्तो द्रष्टुकामो धनञ्जयम् ॥ ३९

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुतापनः ।

समकम्पत दुर्धर्षः क्षितिकम्पे यथाऽचलः ॥ ४०

त्रिषष्ट्या चतुरोऽस्याश्वान् सप्तभिस्सारथिं शरैः ।
विव्याध निशितैर्बाणैस् सात्यकिः कृतवर्मणः ॥ ४१

हताश्वसूते तु रथे स्थिताय शिनिपुङ्गवः ।
सुवर्णपुङ्खं विशिखं समादाय व्यपासृजत् ॥ ४२

स भूयश्च महाघोरं सङ्क्रुद्धमिव पन्नगम् ।
प्रैपयत् सात्यको बाणं हार्दिक्याय नरर्षभः ॥ ४३

सोऽविशत् कृतवर्माणं यमदण्डोपमश्शरः ॥ ४३॥

जाम्बूनदविचित्रं स वर्म निर्भिद्य भानुमत् ।
अगात् स दारयन् भूमिं रुधिरेण समुक्षितः ॥ ४४॥

सञ्जातरुधिरोत्पीडस् सात्वतेनाभिपीडितः ।
[1]प्रचलं धनुरुत्सृज्य न्यपतत स्यन्दनोत्तमे ॥ ४५॥

स सिंहदंष्ट्रो जानुभ्यां संसन्नोऽमितविक्रमः ।
शरार्दितस्सात्यकिना रथोपस्थे नरर्षभ ॥ ४६॥

सहस्रबाहोस्सदृशम् अक्षोभ्यमिव सागरम् ।
निवार्य कृतवर्माणं सात्यकिः प्रययौ बहिः ॥ ४७॥

[2]दिदृक्षुस्स हि वेगेन प्रायाद्यत्र धनञ्जयः ॥ ४८

---

1. ख—अचलं  ङ—हार्दिक्यो
2. ख—नहि तस्य शरोऽपार्थः कथञ्चिदपि पार्थिव· ।  [अधिकः पाठः]

स. शक्त्या क्षत्रियैस्तत्र निरुद्धो बलवत्तरः ।
युयुधे सात्वतो राजन् दिदृक्षुः पाण्डुनन्दनम् ॥ ४९

शङ्खशक्तिधनुःकीर्णा हताश्वरथकुञ्जराम् ।
प्रवृत्तरुधिरस्रोतां शतशः क्षत्रियर्षभैः ॥ ५०

पश्यतां सर्वसैन्यानां [1]शैनेयश्शत्रुकर्शनः ।
अत्यगाद्वाहिनीं भित्वा वृत्रहेवासुरीं चमूम् ॥ ५१

समाश्वास्य हि हार्दिक्यो गृहीत्वाऽन्यन्महद्धनुः ।
तस्थौ तत्रैव समरे वारयानस्स पाण्डवान् ॥ ५२

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि द्व्यधिकशततमोऽध्याय' ॥ १०२ ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि षड्विंशोऽध्यायः ॥ ५२ ॥
[अस्मिन्नध्याये ५२ श्लोकाः]

## ॥ त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

सात्यकिपराक्रमवर्णनम् ॥ १ ॥ सात्यकिना सुदर्शननाम्नो राज्ञो वधः ॥

सञ्जयः—

वध्यमानेषु सैन्येषु शैनेयेन ततस्ततः ।
भारद्वाजश्शरव्रातैर् मर्मभिद्भिरवाकिरत् ॥ १

स सम्प्रहारस्तुमुलो द्रोणसात्वतयोरभूत् ।

1. ख—मध्येन शिनिपुङ्गव.

पश्यतां सर्वसैन्यानां बलिवासवयोरिव ॥　　२

प्रावर्तत महारौद्रस् सङ्ग्रामो रोमहर्षणः ।
शैनेयस्य च राजेन्द्र भारद्वाजस्य चोभयोः ॥　　३

ततो द्रोणश्शिनेः पौत्रं सर्वपारशवैश्शरैः ।
त्रिभिराशीविषाकारैर् ललाटे समविध्यत ॥　　४

तैर्ललाटार्पितैर्बाणैर् युयुधानो विशां पते ।
व्यरोचत महाराज त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ॥　　५

ततोऽस्य बाणानपरान् इन्द्राशनिसमप्रभान् ।
अन्तरे चान्तरप्रेक्षी द्रोणश्चिक्षेप संयुगे ॥　　६

विमुक्तान् द्रोणचापाच्च दाशार्हो द्रवतश्शरान् ।
द्वाभ्यां द्वाभ्यां सुपुङ्खाभ्यां चिच्छेद परमास्त्रवित् ॥　　७

तामस्य लघुतां द्रोणस् समवेक्ष्य विशां पते ।
प्रहस्य सहसाऽविध्यद् विंशत्या शिनिपुङ्गवम् ॥　　८

पुनः पञ्चाशता षष्ट्या सहस्रेण शतेन च ।
लघुतां युयुधानस्य लाघवेन व्यशोषयत् ॥　　९

समुत्पतन्ति वल्मीकाद् यथा क्रुद्धा महोरगाः ।
तथा द्रोणरथाद्राजन्नुत्पतन्ति तनुच्छिदः ॥　　१०

तथैव युयुधानेन सृष्टाश्शतसहस्रशः ।
अवाकिरन्त द्रोणस्य रथं रुधिरभोजनाः ॥　　११

लाघवाद्द्विजमुख्यस्य सात्वतस्य च मारिष ।
विशेषं नाध्यगच्छाम समावास्तां नरर्षभौ ॥ १२

सात्त्वतस्तु ततो द्रोणं नवभिः कङ्कपत्रिभिः ।
आजघान भृशं क्रुद्धो ध्वजं च निशितैस्त्रिभिः ॥ १३
सारथिं च शतेनैव भारद्वाजस्य पश्यतः ॥ १३॥
लाघवं युयुधानस्य दृष्ट्वा द्रोणो महारथः ।
सप्तत्या सात्यकिं विद्ध्वा तुरङ्गांश्च त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १४॥
ध्वजमेकेन विव्याध माधवस्य रथे स्थितम् ॥ १५
अथापरेण भल्लेन हेमपुङ्खेन पत्रिणा ।
धनुश्चिच्छेद समरे माधवस्य महात्मनः ॥ १६
सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो धनुस्त्यक्त्वा महारथः ।
गदां जग्राह महतीं भारद्वाजस्य चाक्षिपत् ॥ १७
तामापतन्तीं सहसा पट्टनद्धामयस्मयीम् ।
न्यवारयच्छरैर्द्रोणो बहुभिर्बहुरूपिभिः ॥ १८
अथान्यद्धनुरादाय सात्यकिस्सत्यविक्रमः ।
[1]विव्याध विवरे राजन् भारद्वाजं शिलीमुखैः ॥ १९
विध्वा विध्वा रणे द्रोणं सिंहनादं विमुञ्चति ।
तं वै न ममृषे द्रोणस् सिंहनादं महात्मनः ॥ २०

1. ङ—अर्धद्वयं नास्ति

ततश्शक्तिं रणे द्रोणो रुक्मदण्डामयस्मयीम् ।
तरसा प्रेषयामास माधवस्य रथं प्रति ॥ २१

अनासाद्य तु शैनेयं सा शक्तिः कालचोदिता ।
भित्त्वा रथं जगामोग्रा धरणीं दारुणस्वना ॥ २२

ततो द्रोणं शिनेः पौत्रो राजन् विव्याध पत्रिणा ।
दक्षिणं भुजमासाद्य पीडयन् भरतर्षभ ॥ २३

द्रोणोऽपि समरे राजन् माधवस्य महद्धनुः ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद रथशक्त्या च सारथिम् ॥ २४

मुमोह सारथिस्तस्य रथशक्त्या समाहतः ।
स रथोपस्थमा[1]स्थाय मुहूर्तं समलीयत ॥ २५

चकार सात्यकी राजंस् तत्र कर्मातिमानुषम् ।
अयोधयच्च यद्द्रोणं रश्मीञ् जग्राह च स्वयम् ॥ २६

ततश्शरशतेनैव युयुधानो महारथः ।
अविध्यद्ब्राह्मणं सङ्ख्ये हृष्टरूपो विशां पते ॥ २७

तस्य द्रोणश्शरान् पञ्च प्रेषयामास भारत ।
ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुश्शोणितमाहवे ॥ २८

निर्विद्धस्स शरैर्घोरैर् युयुधानश्चुकोप ह ।

1. ख-ग-घ—साद्य

सायकान् व्यजहाच्चापि वीरो रुक्मरथं प्रति ॥ २९

ततो द्रोणस्य यन्तारं निपात्यैकेषुणा भुवि ।
अश्वानद्रावयद्बाणैर् हतसूतान् महात्मनः ॥ ३०

स रथो व्यचरत् सङ्ख्ये मण्डलानि सहस्रशः ।
शुशुभे राजतो राजन् भ्राजमान इवांशुमान् ॥ ३१

अभिद्रवत गृह्णीत हयान् द्रोणस्य धावतः ।
इति स्म चुक्रुशुस्सर्वे राजपुत्रास्सराजकाः ॥ ३२

ते सात्यकिमपास्याशु राजन् युधि महारथाः ।
यतो द्रोणस्ततस्सर्वे सहसा समुपाद्रवन् ॥ ३३

तान् दृष्ट्वा प्राद्रुतान् सर्वान् सात्वतेन शरार्दितान् ।
प्रभग्नं पुनरेवासीत् तव सैन्यं समाकुलम् ॥ ३४

व्यूहस्याथ पुनर्द्वारं गत्वा द्रोणो व्यवस्थितः ।
वातायमानैस्तैरश्वैर् हृतो वार्ष्णेयपीडितैः ॥ ३५

पाण्डुपाञ्चालसम्भग्नं व्यूहं दृष्ट्वाऽथ वीर्यवान् ।
शैनेये नाकरोद्यत्नं व्यूहमेव ररक्ष सः ॥ ३६

निवार्य पाण्डुपाञ्चालान् द्रोणाग्निः प्रदहन्निव ।
तस्थौ क्रोधाग्निसन्दीप्तः कालसूर्य इवोदितः ॥* ३७

---

* सर्वेषु कोशेषु अत्रैवाध्यायसमाप्तिर्दृश्यते

द्रोणं तु जित्वा पुरुषप्रवीरस्
　　तथैव हार्दिक्यमुखांस्त्वदीयान् ।
प्रहस्य सूतं वचनं बभाषे
　　शिनिप्रवीरः कुरुपुङ्गवाग्र्य ॥　　३८

सात्यकिः—

निमित्तमात्रं वयमत्र सूत
　　दग्धारयः केशवफल्गुनाभ्याम् ।
हतान् निहन्तास्मि किरीटमालिना
　　ह्यहं सभीमस्सह पार्षतेन ॥　　३९

सञ्जयः—

तमेवमुक्त्वा शिनिपुङ्गवस्तदा
　　महामृधे सोऽग्र्यधनुर्धरोऽरिहा ।
किरन् समन्तात् सशरान् बलीयसस्
　　समापतच्छ्येन इवामिषाशया ॥　　४०

तं यान्तमश्वैश्शशिशङ्खवर्णैर्
　　विगाहमानं पुरुषप्रवीरम् ।
नाशक्नुवन् धारयितुं [1]समन्ताद्
　　आदित्यरश्मिप्रतिमं नराग्र्यम् ॥　　४१

---

1 क-ख-घ—तपन्तम्

असह्यविक्रान्तमशक्नुवस्ते
सर्वे गणा भारत सत्त्ववन्तम् ।
सहस्रनेत्रप्रतिमप्रभावं
दिवीव सूर्यं प्रतिवीक्षितुं तम् ॥ ४२

अमर्षपूर्णस्त्वतिचित्रयोधी
शरासनी काञ्चनवर्मधारी ।
सुदर्शनस्सात्यकिमापतन्तं
न्यवारयद्राजवरः प्रसह्य ॥ ४३

तयोस्तदा भारत सम्प्रहारं
प्रैक्षन्त सर्वेऽनिमिषैस्तु नेत्रैः ।
योधास्त्वदीयाश्च हि सोमकाश्च
शक्रस्य वृत्रेण यथैव पूर्वम् ॥ ४४

[1]शरैस्सुतीक्ष्णैश्शतशोऽन्वविध्यत्
सुदर्शनस्सात्वतमुग्रमाजौ ।
अनागतानेव च तान् पृषत्कांश्
चिच्छेद बाणैश्शिनिपुङ्गवोऽपि ॥ ४५

तथैव शक्रप्रतिमोऽपि सात्यकिस्
सुदर्शनाय क्षिपति स्म सायकान् ।

1. ख—अर्धचतुष्टयं नास्ति

द्विधा त्रिधा तानकरोत् सुदर्शनश्
शरोत्तमैस्स्यन्दनवर्यविष्ठितः ॥ ४६

सम्प्रेक्ष्य बाणान् निहतांस्तदानीं
[1]सुदर्शनस्सात्यकिबाणवेगैः ।
क्रोधाद्दिधक्षन्निव तिग्मतेजाश्
शरानमुञ्चत् तपनीयपुङ्खान ॥ ४७

पुनस्स बाणैस्त्रिभिरग्निकल्पैर्
आकर्णपूर्णैर्निशितैस्सुपुङ्खैः ।
विव्याध देहावरणं विदार्य
ते सात्यकेराविविशुश्शरीरम् ॥ ४८

पुनश्च तस्यावनिपालपुत्रस्
सन्धाय बाणैरपरैर्ज्वलद्भिः ।
[2]आजघ्निवांस्तान् रजतप्रकाशांश्
चतुर्भिरश्वांश्चतुरः प्रसह्य ॥ ४९

तथा तु तेनाभिहतस्तरस्वी
नप्ता शिनेरिन्द्रसमानवीर्यः ।
सुदर्शनस्येषुभिराशुकारी
हयान् निहत्याशु ननाद नादान् ॥ ५०

---

1. अ—नव पादा न सन्ति		2 ङ—अर्धपञ्चकं नास्ति

अथास्य सूतस्य शिरो निकृत्य
भल्लेन वज्राशनिसन्निभेन ।
सुदर्शनस्यास्य शितेन वीरः
क्षुरेण चिच्छेद शिरः प्रसह्य ॥ ५१

सकुण्डलं पूर्णशशिप्रकाशं
भ्राजिष्णु वक्त्रं निपपात देहात् ।
यथा पुरा वज्रधरेण कृत्तं
बलस्य शीर्षं महदुग्ररूपम् ॥ ५२

निहत्य तं पार्थिवमुग्ररूपं
सङ्ख्ये मधूनामृषभस्तरस्वी ।
मुदा महत्याऽभियुतो महात्मा
महाहवे शक्र इवामरेशः ॥ ५३

ततः प्रयातोऽर्जुनमेव वीरो
निवार्य सैन्यं तव मार्गणौघैः ।
सदश्वयुक्तेन रथेन नृत्यँ
ल्लोकान् विसिष्मापयिषुर्नृवीरः ॥ ५४

तत् तस्य ते विस्मयनीयमग्र्यम्
अपूजयन् योधवरास्त्वदीयाः ।

यान् वर्तमानानिषुगोचरेऽरीन्
दुदाह बाणैर्हुतभुग्यथैव ॥ ५५

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि त्र्यधिकशततमोऽध्याय. ॥ १०३ ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ५५ श्लोकाः ]

## ॥ चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥

सात्यकिपराक्रमवर्णनम् ॥

सञ्जयः—

निर्जित्य कृतवर्माणं भारद्वाजं च संयुगे ।
[1]स सात्यकिस्सत्यधृतिर् महात्मा शिनिपुङ्गवः ॥ १

दुर्योधनं च निर्जित्य शूरं चैव सुदर्शनम् ।
जलसन्धं निहत्याजौ शूरसेनं च पार्थिवम् ॥ २

म्लेच्छांश्च बहुधा राजन् काश्यपुत्रं च संयुगे ।
निषादांस्तङ्कणांश्चैव कलिङ्गान् मगधानपि ॥ ३

केकयाञ् छूरसेनांश्च तथा पर्वतवासिनः ।
काम्भोजान् यवनांश्चैव [2]वसातींश्च शिबीनपि ॥ ४

1. ख—अर्धचतुष्टयं नास्ति
2 ख—अयं पादः अनन्तरश्च न स्त

कोसलान् मगधांश्चैव यातुधानान् सतित्तिरान् ।
एतांश्चान्यान् रणे हत्वाऽगच्छद्युद्धे स सात्यकिः ॥ ५

रुधिरौघनदीं घोरां केशशैवालशाद्वलाम् ।
शक्तिग्राहसमाकीर्णां छत्रहंसोपशोभिताम् ॥ ६

दुस्तरां भीरुभिर्नित्यं शूरलोकप्रवाहिनीम् ।
प्रवर्त्य हृषितो राजन् पुनर्यन्तारमब्रवीत् ॥ ७

सात्यकिः—

रथनागाश्वकलिलं शर[1]शक्त्यृष्टिमालिनम् ।
खड्गमत्स्यं गदाग्राहं शूरायुधमहास्वनम् ॥ ८

प्राणापहारिणं घोरं वादित्रोद्घुष्टनादितम् ।
शूराणां सुखसंस्पर्शम् अस्पृश्यमथ भीरुणाम् ॥ ९

तीर्णास्स्म दुस्तरं तात द्रोणानीकमहार्णवम् ॥ ९॥

शौर्यसत्त्वबलोपेतं शूरवाणिजसेवितम् ।
अतोऽन्यत् पृतनाशेषं मन्ये कुनदिकामिव ॥ १०॥

तर्तव्यां स्वल्पसलिलां चोदयाश्वानसम्भ्रमम् ।
हस्तप्राप्तमहं मन्ये साम्प्रतं सव्यसाचिनम् ॥ ११॥

निर्जित्य दुर्जयं द्रोणं सपदानुगमाहवे ।
हार्दिक्यमपि योद्धारं मन्ये प्राप्तं धनञ्जयम् ॥ १२॥

---

1 क-ख-घ—शक्त्यूर्मि

न हि मे जायते त्रासो दृष्ट्वा सैन्यमशेषतः ।
वह्नेरिव प्रदीप्तस्य वने शुष्कं तृणोलपम् ॥ १३॥

पश्य पाण्डवमुख्येन यातां भूमि किरीटिना ।
पत्त्यश्वरथनागौघैः पतितैर्विषमीकृताम् ॥ १४॥

अभ्याशस्थमहं मन्ये श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् ॥ १५

श्रूयते ह्येष निर्घोषो जलदस्येव गर्जतः ।
विष्फार्यमाणस्य रणे गाण्डीवस्यामितौजसः ॥ १६

अभ्याशस्थमहं मन्ये सैन्धवस्य किरीटिनम् ।
तादृशश्श्रूयते शब्दस् सैन्यानां सागरोपमः ॥ १७

यादृशानि निमित्तानि मम प्रादुर्भवन्ति च ।
अनस्तमित आदित्ये सैन्धवं निहनिष्यति ॥ १८

शनैर्विश्रामयन्नश्वान् याहि यत्रारिवाहिनी ॥ १८॥

यत्रैते सतनुत्राणास् सुयोधनपुरोगमाः ।
दंशिता क्रूरकर्माणः काम्भोजा युद्धदुर्मदाः ॥ १९॥

शरबाणासनधरा यवनाश्च प्रहारिणः ।
शकाः किराता दरदा बर्बरास्ताम्रलिप्तकाः ॥ २०॥

अन्ये च विविधा म्लेच्छा विविधायुधपाणयः ।
मामेवाभिमुखास्सर्वे तिष्ठन्ति कलहार्थिनः ॥ २१॥

एतान् सरथनागाश्वान् निहत्याजौ ससैनिकान् ।
इदं दुर्गं महाघोरं तीर्णमेवावधारय ॥ २२॥

सूतः—

न सम्भ्रमो मे वार्ष्णेय विद्यते सत्यविक्रम ।
यद्यपि स्यात् सुसङ्क्रुद्धो जामदग्न्योऽग्रतस्स्थितः ॥ २३॥

द्रोणोऽपि रथिनां श्रेष्ठः कृपश्शारद्वतोऽपि वा ।
तथाऽपि सम्भ्रमो नास्ति त्वामाश्रित्य महाभुज ॥ २४॥

त्वया सुबहवो युद्धे निर्जिताश्शत्रुसूदन ।
न हि मे सम्भ्रमः कश्चिद् भूतपूर्वः कदाचन ॥ २५॥

किमुतैतत् समासाद्य वीर संयुगगोष्पदम् ।
आयुष्मन् प्रापयामि त्वां कतरेण पथाऽर्जुनम् ॥ २६॥

केभ्यः क्रुद्धोऽसि वार्ष्णेय कांश्च मृत्युरुपस्थितः ।
केषां सङ्गमनीकस्य हन्तुमुत्सहते मनः ॥ २७॥

के त्वां युधि पराक्रान्तं कालान्तकयमोपमम् ।
दृष्ट्वा विक्रमसम्पन्नं विद्रविष्यन्ति संयुगे ॥ २८॥
केषां वैवस्वतो राजा स्मरत्यद्य महाभुज ॥ २९

सात्यकिः—

मुण्डानेतान् हनिष्यामि दानवानिव वासवः ।
प्रतिज्ञां पालयिष्यामि काम्भोजान् जेतुमाहवे ॥ ३०

अन्येषां कदनं कृत्वा क्षिप्रं यास्यामि पाण्डवम् ॥ ३०॥

अद्य द्रक्ष्यन्ति मे वीर्यं कौरवास्ससुयोधनाः ।
मुण्डानीके हते सूत सर्वसैन्येषु वासकृत् ॥ ३१॥

अद्य कौरवसैन्यस्य कीर्यमाणस्य संयुगे ।
श्रुत्वा विरावं बहुधा तप्स्यते स सुयोधनः ॥ ३२॥

अद्य पाण्डवमुख्यस्य श्वेताश्वस्य महात्मनः ।
आचार्यककृतं मार्गं दर्शयिष्यामि संयुगे ॥ ३३॥

अद्य मे युध्यमानस्य फल्गुनस्येव सायकान् ।
पतितान् रथनागेषु दृष्ट्वा शोचन्तु शत्रवः ॥ ३४॥

अद्य मद्बाणनिहतान् योधमुख्यान् सहस्रशः ।
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा पश्चात्तापं गमिष्यति ॥ ३५॥

अद्य मे क्षिप्रहस्तस्य क्षिपतस्सायकोत्तमान् ।
अलातचक्रप्रतिमं धनुर्द्रक्ष्यन्ति कौरवाः ॥ ३६॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गान् मद्बाणशकलीकृतान् ।
दृष्ट्वा नागवरान् सङ्ख्ये [1]विपत्स्यति सुयोधनः ॥ ३७॥

अद्य मे क्रुद्धरूपस्य निघ्नतश्च वरान् वरान् ।
द्विफल्गुनमिमं लोकं मंस्यते स सुयोधनः ॥ ३८॥

---

1. अ—गमिष्यति ग—विपच्यति ङ—विधत्स्यति

अद्य राजसहस्राणि निहतानि मया रणे ।
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा भविष्यति सुदुर्मनाः ॥ ३९॥

अद्य स्नेहं च भक्तिं च पाण्डवेषु महात्मसु ।
[1]हत्वा राजसहस्राणि दर्शयिष्यामि राजसु ॥ ४०॥

सञ्जयः—

एवमुक्तस्ततस्सूतश्शिक्षितान् साधुवाहिनः ।
शशाङ्कसन्निकाशान् वै वाजिनोऽचूचुदद्भृशम् ॥ ४१॥
[2]सैन्धवाश्चोदिता यन्त्रा ऊहुस्ते सात्यकं रणे ।
ते पिबन्त इवाकाशं युयुधानं हयोत्तमाः ॥ ४२॥
प्रापयन् यवनाञ् शीघ्रं मनःपवनरंहसः ॥ ४३

सात्यकिं ते समासाद्य यवनास्त्वनिवर्तिनः ।
बहवो लघुहस्ताश्च शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ४४

तेषामिषूंस्तथाऽस्त्राणि वेगवान् नतपर्वभिः ।
अच्छिनत् सात्यकी राजन् न ते तं प्राप्नुवञ् शराः ॥ ४५

रुक्मपुङ्खैस्सुनिशितैर् गृध्रपत्रैरजिह्मगैः ।
उच्चकर्त शिरांस्युग्रो यवनानां भुजानपि ॥ ४६

शैक्यायसानि वर्माणि कांस्यानि च महान्ति च ।
भित्त्वा देहांस्तथा तेषां शरा जग्मुर्महीतलम् ॥ ४७

---

1. ङ—नास्तीदमर्धम् 2. ख-ङ—इदमर्धं नास्ति

ते हन्यमाना वीरेण म्लेच्छास्सात्यकिना रणे ।'
शतशो निपतन्ति स्म व्यसवो धरणीतले ॥ ४८

सुपूर्णायतमुक्तैस्तैर् अव्यवच्छिन्नपिण्डितैः ।
पञ्च षट् सप्त चाष्टौ च बिभेद यवनाञ् शरैः ॥ ४९

काम्भोजानां सहस्रैश्च शकानां च विशां पते ।
[1]शबराणां किरातानां बर्बराणां तथैव च ॥ ५०

अगम्यरूपां पृथिवीं मांसशोणितकर्दमाम् ।
कृतवांस्तत्र शैनेयः कम्पयंस्तावकं बलम् ॥ ५१

दस्यूनां सशिरस्त्राणैश् शिरोभिर्मुक्तमूर्धजैः ।
बभौ तत्र मही कीर्णा विबर्हैरण्डजैरिव ॥ ५२

रुधिरोक्षित [2]सर्वाङ्गैस् तैस्तदायोधनं महत् ।
कबन्धैस्संवृतमभूत् ताम्राभ्रैः खमिवावृतम् ॥ ५३

वज्राशनिसमस्पर्शैर् अपर्वभिरजिह्मगैः ।
[3]ते साश्वनागा निहतास् समावव्रुर्वसुन्धराम् ॥ ५४

तेषामस्त्राणि बाणांश्च शैनेयो नतपर्वभिः ।
निचकर्त महाराज यवनानां शिरोधराः ॥ ५५

ते शरा नतपर्वाणो युयुधानेन प्रेरिताः ।

---

1. ङ—अर्धचतुष्टयं नास्ति　　2 क-ख-घ—सन्नाहै
3. ख—ते साश्वा निहता वीरा.　　ङ—समावव्रुश्च

भित्वा देहांस्तथा तेषां पतन्ति स्म महीतले ॥ ५६

ते हन्यमाना वीरास्तु वृष्णिवीरेण संयुगे ।
शस्त्राहताः पतन्त्युर्व्यां काम्भोजास्सपदानुगाः ॥ ५७

काम्भोजानां भुजैश्छिन्नैर् यवनानां च भारत ।
तत्र तत्र मही भाति पञ्चास्यैरिव पन्नगैः ॥ ५८

अल्पावशिष्टास्सम्भग्नाः कृच्छ्रप्राणा विचेतसः ।
जितास्सङ्ख्ये महाराज युयुधानेन पोथिताः ॥ ५९

पार्ष्णिभिश्च कशाभिश्च ताडयन्तस्तुरङ्गमान् ।
जवमुत्तममास्थाय सर्वतः प्राद्रवन् भयात् ॥ ६०

काम्भोजसैन्यं विद्राव्य दुर्जयं भुवि भारत ।
यवनानां च तत् सैन्यं शकानां च महद्बलम् ॥ ६१

ततस्स पुरुषव्याघ्रस् सात्यकिस्सत्यविक्रमः ।
प्रहृष्टस्तावकाञ्जित्वा सूतं याहीत्यचोदयत् ॥ ६२

तं यान्तं पृष्ठगोप्तारम् अर्जुनस्य महामृधे ।
चारणाः प्रेक्ष्य संहृष्टास् त्वदीयाश्चाभ्यपूजयन् ॥ ६३

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ६३ श्लोकाः ]

## ॥ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥

सात्यकियुद्धवर्णनम् ॥

सञ्जयः—

जित्वा यवनकाम्भोजान् युयुधानस्ततोऽर्जुनम् ।
जगाम तव सैन्यस्य मध्येन रथिनां वरः ॥ १

शरदंष्ट्रो नरव्याघ्रो विचित्रकवचच्छविः ।
मृगं व्याघ्र इवाजिघ्रंस् तव भीषयते बलम् ॥ २

स रथेन चरन् मार्गान् धनुरुद्भ्रामयच्छुभम् ।
रुक्मपृष्ठं महावेगं रुक्मचित्रलतावृतम् ॥ ३

रुक्माङ्गदशिरस्त्राणो रुक्माभरणसंवृतः ।
रुक्मध्वजवरश्शूरो मेरुश्शृङ्ग इवाबभौ ॥ ४

सधनुर्मण्डलस्सङ्ख्ये तेजोभासुररश्मिवान् ।
शरदीवोदितस्सूर्यो नरसूर्यो रराज ह ॥ ५

ऋषभस्कन्धविक्रान्तो ऋषभाक्षो नरर्षभः ।
[1]तावकानां बभौ मध्ये गवां मध्ये यथा वृषः ॥ ६

मत्तद्विरदविक्रान्तं मत्तमातङ्गगामिनम् ।
प्रभिन्नमिव मातङ्गं यूथमध्ये व्यवस्थितम् ॥ ७

1 ङ—अर्धचतुष्टयं नास्ति

व्याधा इव जिघांसन्तो द्विषन्तस्तज्जयैषिणः ।
सात्यकिं समरे राजन् परिवव्रुस्तवात्मजाः ॥ ८

द्रोणानीकमतिक्रान्तं भोजानीकं च दुस्तरम् ।
जलसन्धार्णवं तीर्त्वा काम्भोजानां च वाहिनीम् ॥ ९

हार्दिक्यमकरोन्मुक्तं तीर्त्वा वै सैन्यसागरम् ।
परिवव्रुस्सुसङ्क्रुद्धास् त्वदीयास्सात्यकिं रथाः ॥ १०

दुर्योधनश्चित्रसेनो दुश्शासनविविंशती ।
शकुनिर्दुष्षहश्चैव युवा दुर्मर्षणः क्रथः ॥ ११

अन्ये च बहवश्शूराश् शस्त्रवन्तो धनुर्धराः ।
पृष्ठतस्सात्यकिं यान्तम् अन्वधावन्नमर्षिताः ॥ १२

अथ शब्दो महानासीत् तव सैन्यस्य मारिष ।
मारुतोद्धूतवेगस्य सागरस्य यथा ध्वनिः ॥ १३

तानभिद्रवतस्सर्वान् समीक्ष्य शिनिपुङ्गवः ।
शनैर्याहीति यन्तारम् अब्रवीत् प्रहसन्निव ॥ १४

सात्यकिः—

इदमेति समुद्धूतं धार्तराष्ट्रबलं महत् ।
मामेवाभिमुखं तूर्णं गजाश्वरथपत्तिमत् ॥ १५

नादयन् वै दिशस्सर्वा रथघोषेण सारथे ।
पृथिवीं चान्तरिक्षं च कम्पयन् सागरानपि ॥ १६

शरैर्बलार्णवं तात तारयिष्ये महाहवे ।
पौर्णमास्यामिवोद्धूतं वेलेव सलिलार्णवम् ॥　१७

पश्य मे सूत विक्रान्तम् इन्द्रस्येव महारणे ।
एष सैन्यानि शत्रूणां विधमामि शितैश्शरैः ॥　१८

[1]निहतानाहवे पश्य पदात्यश्वरथद्विपान् ।
मच्छरैरग्निसङ्काशैर् विदेहासून् सहस्रशः ॥　१९

सञ्जयः—

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य सात्यकेरमितौजसः ।
समीपं तानि सैन्यानि शीघ्रमीयुर्युयुत्सया ॥　२०

जह्याद्रवस्व तिष्ठेति पश्य पश्येति वादिनः ॥　२०॥

तानेवं ब्रुवतो वीरान् सात्यकिर्निशितैश्शरैः ।
प्राहिणोत् त्रिशतानश्वान् कुञ्जरांश्च चतुश्शतान् ॥　२१॥

लघ्वस्त्रश्चित्रयोधी च प्रहसञ् शिनिपुङ्गवः ॥　२२

स सम्प्रहारस्तुमुलस् तस्य तेषां च धन्विनाम् ।
देवासुररणप्रख्यः प्रावर्तत जनक्षयः ॥　२३

मेघजालनिभं सैन्यं तव पुत्रस्य मारिष ।
प्रत्यगृह्णाच्छिनेः पौत्रश् शरैराशीविषोपमैः ॥　२४

प्रच्छाद्यमानस्समरे शरजालैश्च वीर्यवान् ।

---

1. ङ—षड्विंशतिरर्धानि न सन्ति

असम्भ्रान्तो महाराज तावकानवधीद्बहून् ॥ २५

आश्चर्यं तत्र राजेन्द्र सुमहद्दृष्टवानहम् ।
न मोघस्सायकः कश्चित् सात्यकेरभवत् प्रभो ॥ २६

रथाश्वनागकलिलः पदात्यूर्मिसमाकुलः ।
शैनेयवेलामासाद्य स्थितस्तव बलार्णवः ॥ २७

सम्भ्रान्तनरनागाश्वम् आवर्तत मुहुर्मुहुः ।
तत् सैन्यमिषुभिस्तेन ताड्यमानं समन्ततः ॥ २८

तत्र तत्रैव बभ्राम गावस्सिहार्दिता इव ॥ २८॥

रथं नागं पदातिं वा तुरगं सादिनं तथा ।
अपश्यं तत्र नाविद्धं युयुधानेन सायकैः ॥ २९॥

न तादृक्कदनं राजन् कृतवांस्तत्र फल्गुनः ।
यादृक्क्षयमनीकानाम् अकरोत् सात्यकिर्नृप ॥ ३०॥

अत्यर्जुनं शिनेः पौत्रो युध्यते स्म महाबलः ॥ ३१

ततो दुर्योधनो राजा सात्वतस्य शितैश्शरैः ।
विव्याध सूतं निशितैश् चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ ३२

सात्यकिं च त्रिभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सोऽष्टभिः ।
दुश्शासनष्षोडशभिर् विव्याध शिनिपुङ्गवम् ॥ ३३

शकुनिः पञ्चविंशत्या चित्रसेनश्च सप्तभिः ।
दुष्षहः पञ्चदशभिर् विव्याधोरसि सात्यकेः ॥ ३४

उत्स्मयन् वृष्णिशार्दूलस् तथा बाणैस्समर्पितः ।
तानविध्यन्महाराज सर्वानेव त्रिभिस्त्रिभिः ॥　　३५

शरविद्धानरीन् कृत्वा मर्मगैरतितेजनैः ।
शैनेयश्श्येनवत् सङ्ख्ये व्यचरल्लघुविक्रमः ॥　　३६

सौबलस्य धनुश्छित्त्वा हस्तावापं निकृत्य च ।
दुर्योधनं त्रिभिर्बाणैर् अभ्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥　　३७

चित्रसेनं च दशभिर् दशभिर्दुष्षहं तथा ।
दुश्शासनं च विंशत्या विव्याध शिनिपुङ्गवः ॥　　३८

अथान्यद्धनुरादाय स्यालस्तव विशां पते ।
अष्टभिस्सात्यकिं विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥　　३९

चित्रसेनस्त्रिभिश्चैव दुष्षहश्च त्रिभिश्शरैः ।
दुश्शासनश्च दशभी राजन् विव्याध सात्यकिम् ॥　　४०

दुर्योधनस्त्रिसप्तत्या विद्ध्वा भारत माधवम् ।
ततोऽस्य निशितैर्बाणैस् त्रिभिर्विव्याध सारथिम् ॥　　४१

तान् सर्वान् सहितान् शूरान् यतमानान् महारथान् ।
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैर् भृशं विव्याध सात्यकिः ॥　　४२

ततस्स रथिनां श्रेष्ठस् तव पुत्रस्य सारथिम् ।
आजघानाथ भल्लेन स हतो न्यपतद्भुवि ॥　　४३

पातिते सारथौ राजंस् तव पुत्ररथात् प्रभो ।

व्रातायमानैस्तैरश्वैर् अपानीयत सङ्गरात् ॥ ४४

ततस्तव सुताश्चैव तव सैन्यं च मारिष ।
राज्ञो रथमभिप्रेक्ष्य व्यद्रवंस्ते समन्ततः ॥ ४५

विद्रुतं तु ततस्सैन्यं दृष्ट्वा भारत सात्यकिः ।
अवाकिरच्छरैस्तूर्णं रुक्मपुङ्खैश्शिलाशितैः ॥ ४६

विद्राव्य सर्वसैन्यानि तावकानि समन्ततः ।
प्रययौ सात्यकी राजन् येन यातो धनञ्जयः ॥ ४७

तं प्रयान्तं महाबाहुं तावकाः प्रेक्ष्य मारिष ।
दृष्टं चादृष्टवत्कृत्वा क्रियामन्यां प्रयोजयन् ॥ ४८

तं शरानाददानं च रक्षन्तं चैव सारथिम् ।
आत्मानं मोचयन्तं च तावकास्समपूजयन् ॥ ४९

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ४९ श्लोकाः ]

---

## ॥ षडधिकशततमोऽध्यायः ॥

सात्यकियुद्धवर्णनम् ॥

धृतराष्ट्रः—

सम्प्रमथ्य महत् सैन्यं यान्तं शैनेयमर्जुनम् ।
[1]निर्ह्रीका मम ते पुत्राः किमकुर्वत सञ्जय ॥　　१

कथं तेषां तदा युद्धे धृतिरासीत् तु सञ्जय ।
शैनेयचरितं दृष्ट्वा सङ्ग्रामे परमाद्भुतम् ॥　　२

कि नु वक्ष्यन्ति ते तत्र सैन्यमध्ये पराजिताः ॥　　२॥

कथं च सात्यकिर्युद्धे व्यतिक्रान्तो महारथः ।
कथं च मम पुत्राणां जीवितं तत्र सञ्जय ॥　　३॥

शैनेयो हि ययौ जित्वा सर्वसैन्यानि संयुगे ॥　　४

अत्यद्भुतमिदं तात त्वत्समीपाच्छृणोम्यहम् ।
एकस्य बहुभिर्युद्धं शत्रुमध्ये महारथैः ॥　　५

---

1. ङ—इत आरभ्य ४३ तमपर्यन्तश्लोकस्थाने एवं पाठो दृश्यते
के वीरा· प्रत्यषेधन्त तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ।
सञ्जयः—
तथा तेषु प्रयातेषु तव पुत्रेषु भारत ।
सात्यकिं फल्गुनं यान्तं तावकाः पर्यवारयन् ॥
युयुधानस्तु तान् दृष्ट्वा शरवर्षैरवाकिरत् ।
निपतन्ति हताश्शस्त्रैस् तत्र तत्र गतासवः ॥
ते हन्यमानास्समरे इत्यादि यथामूलं वर्तते

विपरीतमहं मन्ये अल्पभाग्यान् सुतान् प्रति ।
तत्रावध्यन्त समरे सात्यकेन महात्मना ॥ ६

एकस्य हि न पर्याप्तं तत् सैन्यं तस्य सञ्जय ।
क्रुद्धस्य युयुधानस्य सर्वे तिष्ठन्तु पाण्डवाः ॥ ७

निर्जित्य समरे द्रोणं कृतिनं युद्धदुर्मदम् ।
यथा पशुगणान् सिंहस् तद्वद्धन्ता सुतान् मम ॥ ८

कृतवर्मादिभिश्शूरैर् यत्तैर्बहुभिराहवे ।
न शक्यस्समरे जेतुं निहनिष्यति मे सुतान् ॥ ९

नैतदीदृशकं युद्धं कृतवांस्तत्र फल्गुनः ।
चकार तादृशं युद्धं शिनेर्नप्ता महायशाः ॥ १०

सञ्जय.—

तव दुर्मन्त्रिते राजन् दुर्योधनकृतेन च ।
शृणुष्वावहितो भूत्वा यत् ते वक्ष्यामि भारत ॥ ११

ते पुनस्संन्यवर्तन्त कृत्वा संशपथं मिथः ।
परां युद्धे मतिं कृत्वा तव पुत्रस्य शासनात् ॥ १२

त्रीणि वाजिसहस्राणि दुर्योधनपुरोगमाः ।
शका यवनकाम्भोजा दरदा बाह्लिकास्तथा ॥ १३

कुलिन्दास्तङ्कणाम्बष्ठाः पैशाचाश्च समन्दराः ।
अभ्यद्रवन्त शैनेयं शलभाः पावकं यथा ॥ १४

युक्ताश्च पार्वतीयानां रथाः पाषाणयोधिनाम् ।'
शूराः पञ्चशतं राजञ् शैनेयं समुपाद्रवन् ॥ १५

ततो रथसहस्रेण [1]द्विसाहस्रैश्च वाजिभिः ।
नियुतैश्च पदात्योघैर् विविधायुधपाणिभिः ॥ १६

शरवर्षाणि वर्षन्तो विविधानि महारथाः ।
अभ्यद्रवन्त शैनेयम् असङ्ख्येयाश्च पत्तयः ॥ १७

तांश्च सञ्चोदयन् सर्वान् घ्नतैनमिति भारत ।
दुश्शासनो महाराज सात्यकिं पर्यवारयत् ॥ १८

तत्राद्भुतमपश्याम शैनेयचरितं महत् ।
यदेको बहुभिस्सार्धम् असम्भ्रान्तमयुध्यत ॥ १९

अवधीच्च रथानीकं द्विरदानां च तद्बलम् ।
सादिनश्चैव तान् सर्वान् दस्यूनपि च सर्वशः ॥ २०

तत्र चक्रैर्विमथितैर् भग्नैश्च बहुधा रथैः ।
अक्षैश्च बहुधा च्छिन्नैर् ईषादण्डकबन्धुरैः ॥ २१

[2]कुञ्जरैर्मथितैश्चैव ध्वजैश्चापि निपातितैः ।
वर्मभिश्चापरैश्चैव व्यवकीर्णा वसुन्धरा ॥ २२

स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैर् अनुकर्षैश्च मारिष ।

1. ख—महारथशतेन च । द्विरदानां सहस्रेण [अधिकः पाठ.]
2. क-ख-घ—कूबरै

सञ्छन्ना वसुधा तत्र द्यौर्ग्रहैरिव भारत ॥ २३

गिरिरूपधरैश्चापि पतितैश्च महागजैः ।
म्लेच्छास्थितैर्महाराज भिन्नाञ्जनचयोपमैः ॥ २४

मृगैर्मन्द्रैश्च भद्रैश्च मृगमन्द्रैस्तथाऽपरैः ।
भद्रैर्मन्द्र [1]मृगैश्चैव मृगभद्रैस्तथैव च ॥ २५

मन्दैर्मन्दमदैश्चैव तथा मन्दमृगैरपि ।
तत्र तत्र धरा कीर्णा शयानैः पर्वतोपमैः ॥ २६

अञ्जनस्य कुले जाता वामनस्य च भारत ।
सुप्रतीककुले जाता महापद्मकुले तथा ॥ २७

ऐरावतकुले जातास् तथाऽन्येषु कुलेषु च ।
जाता दन्तिवरा राजञ् शेरते बहवो हताः ॥ २८

वनायुजान् पार्वतीयान् काम्भोजारट्टबाह्लिकान् ।
तथा हयवरान् राजन् निजघ्ने तत्र सात्यकिः ॥ २९

नानादेशसमुत्थांश्च पत्तिसङ्घान् सुजन्मनः ।
निजघ्ने सात्यकिस्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३०

तेषु प्रकाल्यमानेषु दस्यून् दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ३०॥

दुर्योधनः—

निवर्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं द्रुतेन वः ॥ ३१

---

1 क-ग-घ—मनोभिश्च

सञ्जयः—

ततस्तान् समरे योधान् पुत्रो [1]दुश्शासनस्तव ।
पाषाणयोधिनश्शूरान् पार्वतीयानचोदयत् ॥ ३२

दुश्शासनः—

अश्मयुद्धेष्वकुशलो नैतज्जानाति सात्त्वतः ।
अश्मयुद्धमजानन्तं हतैनं युद्धकामुकम् ॥ ३३

तथैव कुरवस्सर्वे नाश्मयुद्धविशारदाः ।
अभिद्रवत मा भैष्ट न वः प्राप्स्यति सात्त्वतः ॥ ३४

सञ्जयः—

शैनेयमभ्यधावंस्ते ग्रावभिर्दृढहस्तवत् ।
म्लेच्छाः पिपासवः प्राज्ञा राजानमिव मन्त्रिणः ॥ ३५

ततो गजशिशुप्रख्यैर् उपलैश्शैलवासिनः ।
उद्यतैर्युयुधानस्य स्थिता मरणकाङ्क्षिणः ॥ ३६

क्षेपणीभिस्तथाऽप्यन्ये सात्वतस्य वधैषिणः ।
चोदितास्तव पुत्रेण रुरुधुस्सर्वतोदिशम् ॥ ३७

तेषामापततामेव शिलायुद्धं चिकीर्षताम् ।
सात्यकिः प्रतिसन्धाय त्रिशतान् प्राहिणोच्छरान् ॥ ३८

पाषाणयोधिनश्शूरान् यतमानान् व्यवस्थितान् ।
तेऽभ्यघ्नञ् शतसाहस्रांस् तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३९

1. ख—दुर्योधनस्तव

तामश्मवृष्टिं तुमुलां पार्वतीयैस्समीरिताम् ।
बिभेदोरगसङ्काशैर् नाराचैश्शिनिपुङ्गवः ॥ ४०

तैरश्मचूर्णैर्दीप्यद्भिः खद्योतानामिव व्रजैः ।
प्रायस्सैन्यान्यविध्यन्त हाहाभूतानि मारिष ॥ ४१

ततः पञ्चशतं शूरास् समुद्यतमहाशिलाः ।
निकृत्तबाहवो राजन् निपेतुर्धरणीतले ॥ ४२

सात्वतस्य च भल्लेन निष्पिष्टैस्तैस्तथाऽद्रिभिः ।
न्यपतन् निहता म्लेच्छास् तत्र तत्र गतासवः ॥ ४३

ते हन्यमानास्समरे सात्वतेन महात्मना ।
अश्मवृष्टिं महाघोरां पातयन्ति स्म सात्वते ॥ ४४

पाषाणयोधिनश्शूरान् यतमानान् व्यवस्थितान् ।
अवधीद्बहुसाहस्रास् तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४५

[1]ततः पुनर्बस्तमुखैर् अश्मवृष्टीस्समन्ततः ।
अधोबस्तैस् स्थूलबस्तैर् दरदैः खषतङ्कणैः ॥ ४६

लम्बकैश्च कुणिन्दैश्च क्षिप्ताः क्षिप्ताश्च सात्यकिः ।
नाराचैः प्रतिविव्याध प्रेक्षमाणस्समन्ततः ॥ ४७

---

1 ख—अश्मनां भिद्यमानानां सायकैः श्रूयते ध्वनिः ।
पद्मपत्रेषु धाराणां पतन्तीनामिव ध्वनिः ॥
तलश्शब्दस्समभवत्तव सैन्यस्य मारिष ॥ [अधिकः पाठः]

अद्रीणां भिद्यमानानाम् अन्तरिक्षे शितैश्शरैः ।
शब्देन प्राद्रवन् राजन् रथाश्वगजपत्तयः ॥　　४८

अश्मचूर्णैरथाकीर्णा मनुष्याश्च वयांसि च ।
नाशक्नुवन्नवस्थातुं भ्रमरैरिव दंशकैः ॥　　४९

हतशिष्टास्सरुधिरा भिन्नमस्तकपिण्डिकाः ।
विभिन्नशिरसो राजन् दन्तैश्छिन्नैश्च दन्तिनः ॥　　५०
निर्धूतैश्च करैर्नागा व्यङ्गाश्च शतशः कृताः ॥　　५०॥

हत्वा पञ्चशतान् योधांस् तत्क्षणेनैव मारिष ।
[1]व्यचरत् पृतनामध्ये शैनेयः कृतहस्तवत् ॥　　५१॥

[2]कुञ्जरास्संन्यवर्तन्त युयुधानेन मोहिताः ॥　　५२

अश्मनां भिद्यमानानां सायकैश्श्रूयते ध्वनिः ।
पद्मपत्रेषु धाराणां पतन्तीनामिव ध्वनिः ॥　　५३

ततश्शब्दस्समभवत् तव सैन्यस्य मारिष ।
माधवेनार्द्यमानस्य सागरस्येव दारुणः ॥　　५४

तं शब्दं तुमुलं श्रुत्वा द्रोणो यन्तारमब्रवीत् ॥　　५४॥

द्रोणः—

एष सूत रणे क्रुद्धस् सात्वतानां महारथः ।
दारयन् बहुधा सैन्यं रणे चरति कालवत् ॥　　५५॥

---

1 ङ—अर्धचतुष्टयं नास्ति　　2. ख—अर्धचतुष्टयं नास्ति

यत्रैष शब्दस्तुमुलस् तत्र सूत रथं नय ॥ ५६

पाषाणयोधिभिर्नूनं युयुधानस्समागतः ।
तथा हि रथिनस्सर्वे ह्रियन्ते विद्रुतैर्हयैः ॥ ५७

विशस्त्रकवचा रुग्णास् तत्र तत्र पतन्ति च ।
न शक्नुवन्ति यन्तारस् संयन्तुं तुमुले हयान् ॥ ५८

सञ्जयः—

इत्येवं ब्रुवतो राजन् भारद्वाजस्य धीमतः ।
प्रत्युवाच ततो यन्ता द्रोणं शस्त्रभृतां वरम् ॥ ५९

द्रोणसारथिः—

आयुष्मन् द्रवते सैन्यं कौरवेयं समन्ततः ।
पश्य योधान् रणे भग्नान् धावमानांस्ततस्ततः ॥ ६०

इमे तु सहितारशूराः पाञ्चालाः पाण्डवैस्सह ।
त्वामेव हि जिघांसन्त आद्रवन्ते समन्ततः ॥ ६१

अत्र कार्यं समाधत्स्व प्राप्तकालमरिन्दम ।
स्थाने वा गमने वाऽपि दूरं यातश्च सात्यकिः ॥ ६२

सञ्जयः—

तथा तेनोच्यमानस्य भारद्वाजस्य मारिष ।
प्रत्यदृश्यत शैनेयो निघ्नन् बहुविधान् रथान् ॥ ६३

ते वध्यमानास्समरे युयुधानेन तावकाः ।

युयुधानरथं त्यक्त्वा द्रोणानीकाय दुद्रुवुः ॥ ६४

तैस्तु दुश्शासनस्सार्धं रथं पूर्वं न्यवर्तयत् ।
ते भीतास्समकीर्यन्त सर्वे द्रोणरथं प्रति ॥ ६५

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥
[ अस्मिन्नध्याये ६५ श्लोकाः ]

---

## ॥ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥

सात्यकिभयात् पलायमानस्य दुश्शासनस्य द्रोणेनोपालम्भः ॥ १ ॥
द्रोणधृष्टद्युम्नयोर्युद्धम् ॥ २ ॥ सात्यकिना दुश्शासनपराजयः ॥ ३ ॥

---

सञ्जयः—

दुश्शासनरथं दृष्ट्वा समीपे पर्यवस्थितम् ।
भारद्वाजस्ततो राजन् दुश्शासनमथाब्रवीत् ॥ १

द्रोणः—

दुश्शासन रथास्सर्वे कस्मादेते प्रविद्रुताः ।
कच्चित् क्षेमं नु नृपतेः कच्चिज्जीवति सैन्धवः ॥ २

राजपुत्रो भवानत्र राजभ्राता महारथः ।
किमर्थं द्रवसे युद्धे यौवराज्यमवाप्य च ॥ ३

पुरा वैरं महत् कृत्वा पाण्डवैस्सह बन्धुभिः ।

एकं सात्यकिमासाद्य कथं भीतोऽसि संयुगे ॥ ४

न जानासि पुरा त्वं तु गृह्णन्नक्षान् दुरोदरे ।
शरा ह्येते भविष्यन्ति दारुणाग्निशिखोपमाः ॥ ५

[1]अप्रियाणां हि वचनं पाण्डवेषु विशेषतः ।
द्रौपद्याश्च परिक्लेशस् त्वन्मूलो ह्यभवत् पुरा ॥ ६

क्व ते मानश्च दर्पश्च क्व नु तद्वीर गर्जितम् ।
आशीविषसमान् पार्थान् कोपयित्वा क्व यास्यसि ॥ ७

शोच्येयं भारती सेना राजा चैव सुयोधनः ।
यस्य त्वं कर्कशो भ्राता पलायनपरायणः ॥ ८

ननु नाम त्वया वीर दार्यमाणा भयार्दिता ।
स्वबाहुबलमास्थाय रक्षितव्या ह्यनीकिनी ॥ ९

स त्वमद्य रणं त्यक्त्वा भीतो भीषयसेऽपरान् ॥ ९॥

विद्रुते त्वयि सैन्यस्य नायके शत्रुसूदने ।
कोऽद्य स्थास्यति सङ्ग्रामे भीतो भीते व्यपाश्रये ॥ १०॥

एकेन सात्वतेनाद्य युध्यमानस्य ते युधि ।
पलायने तव मतिस् सङ्ग्रामाद्धि प्रवर्तते ॥ ११॥

यदा गाण्डीवधन्वानं भीमसेनं च कौरव ।
यमौ च द्रक्ष्यसि रणे तदा वै किं करिष्यसि ॥ १२॥

---

1 क-ख—अप्रियं यच्च घ—अप्रियं

एते फल्गुनबाणानां सूर्याग्निसमवर्चसाम् ।
न तुल्यास्सात्यकिशरा येभ्यो भीतः पलायसे ॥ १३॥

यदि तावत् कृता बुद्धिः पलायनपरायणा ।
पृथिवी धर्मराजाय शर्मेनैव प्रदीयताम् ॥ १४॥

यावत् फल्गुनबाणास्ते निर्मुक्तोरगसन्निभाः ।
नाविशन्ति शरीरं ते तावत् संशाम्य पाण्डवैः ॥ १५॥

[1]पूर्वमुक्तश्च ते भ्राता भीष्मेण स सुयोधनः ।
अजेयाः पाण्डवास्सङ्ख्ये सौम्य संशाम्य पाण्डवैः ॥ १६॥

यावत् ते पृथिवीं पार्था हत्वा भ्रातृशतं रणे ।
नाक्षिपन्ति महात्मानस् तावन् संशाम्य पाण्डवैः ॥ १७॥

[2]यावन्न क्रुध्यते राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
कृष्णश्च समरश्लाघी तावत् संशाम्य पाण्डवैः ॥ १८॥

यावद्भीमो महाबाहुर् विगाह्य महतीं चमूम् ।
सोदरांस्ते न मृद्नाति तावत् संशाम्य पाण्डवैः ॥ १९॥

मया शमवता चोक्तो रक्ष शेषं सुयोधन ।
संशाम्य वीर पार्थैस्त्वं रक्ष सर्वान् महीक्षितः ॥ २०॥

न च तत् कृतवान् मन्दस् तव भ्राता सुयोधनः ॥ २१

---

1 ङ—अर्धद्वयं नास्ति

2 क-ब—पूर्वमुक्तश्च ते भ्राता भीष्मेण स सुयोधनः ।    [पुनरुक्तिः]

सुयुद्धे धृतिमास्थाय यत्तो युध्यस्व भारत ।
गच्छ तूर्णं रथेनैव यत्र तिष्ठति सात्यकिः ॥ २२

त्वया हीनं बलं ह्येतद् विद्रविष्यति भारत ।
[1]आत्मानं योजय रणे सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ २३

सञ्जयः—

एवमुक्तस्तव सुतो नावोचत् किञ्चिदप्यसौ ।
श्रुतं चाश्रुतवत् कृत्वा प्रायाद्येन स सात्यकिः ॥ २४

सैन्येन महता युक्तो म्लेच्छानामनिवर्तिनाम् ।
आसाद्य च रणे यत्तो युयुधानमयोधयत् ॥ २५

द्रोणोऽपि रथिनां श्रेष्ठः पाञ्चालान् पाण्डवांस्तथा ।
अभ्यद्रवत सङ्क्रुद्धो जवमास्थाय मध्यमम् ॥ २६

प्रविश्य च तदा द्रोणः पाञ्चालानां वरूथिनीम् ।
व्यद्रावयद्रणे योधाञ् शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २७

[2]ततो द्रोणो महाराज नाम विश्राव्य संयुगे ।
पाण्डुपाञ्चालमत्स्यानां प्रचक्रे कदनं महत् ॥ २८

तर्जयन्तमनीकानि भारद्वाजं समन्ततः ।
पाञ्चालपुत्रो बलवान् वीरकेतुस्समभ्ययात् ॥ २९

स द्रोणं पञ्चभिर्विद्ध्वा शरैस्सन्नतपर्वभिः ।

---

1 ङ-ख—आत्मार्थं योधय 2 ङ—इतस्त्रयस्त्रिंशदर्धानि न सन्ति

ध्वजमेकेन विव्याध सारथिं चास्य सप्तभिः ॥　३०

तत्राद्भुतं महाराज दृष्टवानस्मि संयुगे ।
यद्द्रोणो रभसो युद्धे पाञ्चाल्यं नात्यवर्तत ॥　३१

यन्निरुद्धं रणे द्रोणं पाञ्चालाः प्रेक्ष्य मारिष ।
आवव्रुस्सर्वतो राजन् [1]धर्मपुत्रहितैषिणः ॥　३२

ते शरैरग्निसङ्काशैस् तोमरैश्च महामुखैः ।
शस्त्रैश्च विविधै राजन् द्रोणमेकमवाकिरन् ॥　३३

निवार्य तान् बाणगणान् द्रोणो राजन् समन्ततः ।
महाजलधरान् व्योम्नि मातरिश्वा जवादिव ॥　३४

ततश्शरं महावेगं सूर्यपावकसन्निभम् ।
सन्दधे परवीरघ्नो वीरकेतुरथं प्रति ॥　३५

स भित्त्वा तु शरो राजन् पाञ्चालकुलनन्दनम् ।
अभ्यगाद्धरणीं तूर्णं लोहितार्द्रकृतच्छविः ॥　३६

ततोऽपतद्रथात् तूर्णं पाञ्चालकुलनन्दनः ।
पर्वताग्रादिव महांश् चम्पको वायुपीडितः ॥　३७

तस्मिन् हते महेष्वासे राजपुत्रे महारथे ।
पाञ्चालास्त्वरिता द्रोणं समन्तात् पर्यवारयन् ॥　३८

चित्रकेतुस्सुधन्वा च चित्रवर्मा च भारत ।

---

1. क-ख—राजपुत्र

तथा चित्ररथश्चैव भ्रातृव्यसनकर्शिताः ॥ ३९

अभ्यद्रवन्त सहिता भारद्वाजं युयुत्सवः ।
मुञ्चन्तश्शरवर्षाणि तपान्ते जलदा यथा ॥ ४०
अदृश्यं समरे चक्रुर् भारद्वाजं सुधन्विनः ॥ ४०॥

स वध्यमानो बहुधा राजपुत्रैर्महारथैः ।
व्यश्वसूतरथांश्चक्रे कुमारान् कुपितो रणे ॥ ४१॥

अथापरैस्सुनिशितैर् भल्लैस्तेषां महायशाः ।
पुष्पाणीव [1]महान वायुर् उत्तमाङ्गान्यपातयत् ॥ ४२॥

ते रथेभ्यो हताः पेतुः क्षितौ राजन् सहस्रशः ।
देवासुरे यथा युद्धे पुरा दैतेयदानवाः ॥ ४३॥

तान् निहत्य रणे राजन् भारद्वाजः प्रतापवान् ।
कार्मुकं भ्रामयामास हेमपृष्ठं दुरासदम् ॥ ४४॥
तदस्य भ्राजते राजन् मेघमध्ये तडिद्यथा ॥ ४५

पाञ्चालान् निहतान् दृष्ट्वा देवकल्पान् [2]महारथान् ।
धृष्टद्युम्नो भृशं क्रुद्धो नेत्राभ्यामश्रुमुञ्चत ॥ ४६
अभ्यवर्तत सङ्ग्रामे क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति ॥ ४६॥

ततो हाहेति सहसा नादस्समभवन्नृप ।
पाञ्चाल्येन रणे दृष्ट्वा द्रोणमावारितं शरैः ॥ ४७॥

---

1. क-ख-घ—विवान् 2. ङ—दुरासदान्

स च्छाद्यमानो बहुधा पार्षतेन महात्मना ।
न स्म विव्यथते द्रोणो हसन्नेवान्वयुध्यत ॥ ४८॥

ततो द्रोणं महाराज पाञ्चाल्यः क्रोधमूर्च्छितः ।
आजघानोरसि क्रुद्धो नवत्या [1]सायकोत्तमैः ॥ ४९॥

स गाढविद्धो बलिना भारद्वाजो महायशाः ।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं च जगाम ह ॥ ५०॥

तं वै तथागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नः पराक्रमी ।
समुत्सृज्य धनुस्तूर्णम् असिं जग्राह वीर्यवान् ॥ ५१॥

अवप्लुत्य रथाच्चापि त्वरितः खड्गचर्मधृक् ।
आरुरोह रथं तूर्णं भारद्वाजस्य मारिष ॥ ५२॥

हर्तुमिच्छञ् शिरः कायात् क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ५३

प्रत्याश्वस्य रथे द्रोणो धनुर्गृह्य महाबलः ।
[2]आसन्नमागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नं जिघांसया ॥ ५४

शरैर्वैतस्तिकै राजन् नित्यमासन्नवेधिभिः ।
योधयामास समरे धृष्टद्युम्नं महारथम् ॥ ५५

ते हि वैतस्तिका नाम शरा आसन्नयोधिनः ।
द्रोणस्य विहिता राजन् यैर्धृष्टद्युम्नमक्षिणोत् ॥ ५६

स वध्यमानो बहुभिस् सायकैस्तैर्महाबलः ।

---

1 ङ—निशितैश्शरैः 2 क-ख-ङ—नास्तीदमर्धम्

अवप्लुत्य रथात् तस्मात् भग्नवेगपराक्रमः ॥ ५७

आरुह्य स्वरथं वीरः प्रगृह्य च महद्धनुः ।
विव्याध समरे द्रोणं धृष्टद्युम्नो महाबलः ॥ ५८

तदद्भुतं तयोर्युद्धं भूतसङ्घा ह्यपूजयन ॥ ५८॥

क्षत्रियाश्च महाराज ये चान्ये तत्र सैनिकाः ।
[1]अस्त्रे चैव जवे राजन् वैनतेयोऽयमित्युत ॥ ५९॥

अवश्यं समरे द्रोणो धृष्टद्युम्नेन सङ्गतः ।
वशमेष्यति नो राज्ञः पाञ्चाला इति चक्रुशुः ॥ ६०॥

द्रोणस्तु त्वरितो युद्धे धृष्टद्युम्नस्य सारथेः ।
शिरः प्रच्यावयामास तालात् पक्वं फलं यथा ॥ ६१॥

ततस्ते प्रद्रुता राजन् वाहास्तस्य महात्मनः ॥ ६२

तेषु प्रद्रवमाणेषु पाञ्चालान् सृञ्जयांस्तथा ।
व्यद्रावयद्रणे द्रोणस् तत्र तत्र पराक्रमी ॥ ६३

विजित्य पाण्डुपाञ्चालान् भारद्वाजः प्रतापवान् ।
स्वव्यूहं पुनरागम्य स्थितोऽभवदरिन्दमः ॥ ६४

न चैनं पाण्डवा युद्धे जेतुमुत्सेहिरि प्रभो ॥* ६४॥

---

1 क-ख-घ-ङ—नास्तीदमर्धम्

* सर्वेषु कोशेषु अत्रैवाध्यायसमाप्तिर्दृश्यते

ततो दुश्शासनो राजञ् शैनेयं समुपाद्रवत् ।
किरञ् शरसहस्राणि पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ ६५॥

स विद्ध्वा सात्यकिं षष्ट्या पुनष्षोडशभिश्शरैः ।
नाकम्पयत् स्थिरं युद्धे मैनाकमिव पर्वतम् ॥ ६६॥

स तु दुश्शासनं वीरस् सायकैरावृणोद्भृशम् ।
[1]मशकं समनुप्राप्तम् ऊर्णनाभिरिवोर्णया ॥ ६७॥

दृष्ट्वा दुश्शासनं राजा तथा शरशताचितम् ।
त्रिगर्तांश्चोदयामास युयुधानरथं प्रति ॥ ६८॥

तेऽगच्छन् युयुधानस्य समीपं क्रूरकर्मणः ।
त्रिगर्तानां त्रिसाहस्रं रथा युद्धविशारदाः ॥ ६९॥

ते तु तं रथवंशेन महता पर्यवारयन् ।
स्थिरां कृत्वा मतिं युद्धे भूत्वा संशप्तका मिथः ॥ ७०॥

तेषां प्रयतमानानां शरवर्षाणि मुञ्चताम् ।
योधान् पञ्चशतान् मुख्यान् अग्रानीके व्यपोथयत् ॥ ७१॥

तेऽपतन् निहतास्तूर्णं शिनिप्रवरसायकैः ।
महामारुतवेगेन रुग्णा इव महाद्रुमाः ॥ ७२॥

रथैश्च बहुधा च्छिन्नैर् ध्वजैश्चैव विशां पते ।

---

1. ख—तमङ्कं

हयैश्च कनकापीडैः पतितैस्तत्र मेदिनी ॥ ७३॥

शैनेयशरसङ्कृत्तैश् शोणितौघपरिप्लुतैः ।
अशोभत महाराज किंशुकैरिव पुष्पितैः ॥ ७४॥

ते वध्यमानाश्शतशो युयुधानेन तावकाः ।
त्रातारं नाध्यगच्छन्त पङ्कमग्ना इव द्विपाः ॥ ७५॥

ततस्ते पर्यवर्तन्त सर्वे द्रोणरथं प्रति ।
[1]भयात् पतगराजस्य पातालमिव पन्नगाः ॥ ७६॥

हत्वा पञ्चशतान् योधाञ् छरैराशीविषोपमैः ।
प्रायात् स शनकैर्वीरो धनञ्जयरथं प्रति ॥ ७७॥

तं प्रयान्तं नरश्रेष्ठं पुत्रो दुश्शासनस्तव ।
विव्याध नवभिस्तूर्णं शरैस्सन्नतपर्वभिः ॥ ७८॥

स तु तं प्रतिविव्याध पञ्चभिर्निशितैश्शरैः ।
रुक्मपुङ्खैर्महेष्वासो गृध्रपत्रैर्महारथः ॥ ७९॥

सात्यकिस्तु महाराज [2]प्रहसन्निव भारत ।
दुश्शासनं त्रिभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ॥ ८०॥

शैनेयस्तव पुत्रं तु विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा प्रहसन्नर्जुनं ययौ ॥ ८१॥

ततो दुश्शासनः क्रुद्धो वृष्णिवीराय गच्छते ।

---

1 ङ—अर्धद्वयं नास्ति 2 ख—कर्मारपरिमार्जितैः

सर्वपारशवीं शक्ति विससर्ज जिघांसया ॥ ८२॥

तां तु शक्तिं तदा घोरां तव पुत्रस्य सात्यकिः ।

चिच्छेद शतधा राजन् निशितैः कङ्कपत्रिभिः ॥ ८३॥

अथान्यद्धनुरादाय पुत्रस्तव जनेश्वरः ।

सात्यकिं दशभिर्विद्ध्वा सिहनादं ननाद च ॥ ८४॥

सात्यकिस्तु रणे क्रुद्धो मोहयन्निव ते सुतम् ।

शरैरग्निशिखाकारैर् आजघान स्तनान्तरे ॥ ८५॥

सर्वायसैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैः पुनर्विव्याध चाष्टभिः ॥ ८६

दुश्शासनस्तु सङ्क्रुद्धो वृष्णिवीराय गच्छते ।

प्रेषयामास वीराय [1]गृध्रपत्राञ् शिलाशितान् ॥ ८७

सात्वतोऽपि महाराज तं विव्याध स्तनान्तरे ।

त्रिभिरेव महावेगैश् शरैस्सन्नतपर्वभिः ॥ ८८

ततोऽस्य वाहान् निशितैश् चतुर्भिरहनच्छरैः ।

सारथिं चास्य सङ्क्रुद्धो रथनीलादपाहरत् ॥ ८९

धनुरेकेन बाणेन हस्तावापं च पञ्चभिः ।

ध्वजं च रथशक्तिं च भल्लाभ्यां परमास्त्रवित् ॥ ९०

निमेषमात्रेण शरैर् उभौ च पार्ष्णिसारथी ॥ ९०॥

स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।

---

1 क-ख—गृध्रपत्रान्शिताञ्शरान् ङ—गार्ध्र

त्रिगर्तसेनापतिना स्वरथेनापवाहितः ॥ ९१॥

तमभिद्रुत्य शैनेयो मुहूर्तमिव भारत ।
[1]न जघान महाबाहुर् भीमसेनवचस्स्मरन् ॥ ९२॥

भीमसेनेन हि वधस् सुतानां तव भारत ।
प्रतिज्ञातस्सभामध्ये सर्वेषामेव संयुगे ॥ ९३॥

ततो दुश्शासनं जित्वा सात्यकिस्संयुगे प्रभो ।
जगाम त्वरितो राजन् येन यातो धनञ्जयः ॥ ९४॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ९४॥ श्लोकाः ]

## ॥ अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥

सङ्कुलयुद्धवर्णनम् ॥

धृतराष्ट्रः—

किं तस्यां मम सेनायां नासन् केचिन्महारथाः ।
ये तथा सात्यकिं यान्तं नाघ्नन्नावारयंस्तदा ॥ १

एको हि समरे कर्म कृतवान् रोमहर्षणम् ।
शक्रतुल्यबलो युद्धे महेन्द्रो दानवेष्विव ॥ २

1. घ—अर्धद्वयं नास्ति

अथ वा शून्यमेवासीद् येन यातस्स सात्यकिः ।
एकोऽपि बहुधा सेना विमृद्नन् पुरुषर्षभः ॥ ३

कथं च युध्यमानानाम् अतिक्रान्तो महात्मनाम् ।
एको बहूनां शैनेयस् तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ४

सञ्जयः—

राजन् सेनासमुद्योगो रथनागाश्वपत्तिमान् ।
अतुल्यस्तव सेनायां युगान्तसदृशोऽभवत् ॥ ५

आहितेषु समूहेषु तव सैन्यस्य मानद ।
नास्ति लोके समः कश्चित् समूह इति मे मतिः ॥ ६
तत्र देवास्तु भाषन्ते चारणाश्च समागताः ॥ ६॥

देवचारणाः—

एतदन्तास्समूहा वै भविष्यन्ति महीतले ॥ ७
न च वै तादृशः कश्चिद् व्यूह आसीद्विशां पते ।
यादृग्जयद्रथवधे द्रोणेन विहितोऽभवत् ॥ ८

उद्धूता पृथिवी नूनं युद्धहेतोस्समागतैः ॥ ८॥

सञ्जयः—

इति तत्र जनास्स्माहुर् दृष्ट्वा ता जनसंसदम् ॥ ९

चण्डवाताभिपन्नानां समुद्राणामिव स्वनः ।
एवमासीद्बलौघानाम् अन्योन्यमभिधावताम् ॥ १०
तावकानां तदा ह्यासन् प्रयुतान्यर्बुदानि च ।

तथैव राजन् पाण्डूनां सहस्राणि सहस्रशः ॥ ११

संरब्धानां प्रवीराणां समरे दृष्टकर्मणाम् ।
तत्रासीत् तुमुलश्शब्दस् सुमहान् रोमहर्षणः ॥ १२

पाण्डवानां कुरूणां च गर्जतामितरेतरम् ।
क्ष्वेलाः किलकिलाशब्दास् तत्रासन् वै सहस्रशः ॥ १३

भेरीशब्दाश्च तुमुला बाणशब्दाश्च भारत ।
अन्योन्यं निघ्नतां चैव नराणां शुश्रुवे स्वनः ॥ १४

अथाक्रन्दन् भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
नकुलस्सहदेवश्च धर्मराजश्च पाण्डवः ॥ १५

आगच्छत प्रहरत बलवत् परिधावत ।
प्रविष्टौ कुरुसेनां तु वीरौ माधवपाण्डवौ ॥ १६

यथा सुखेन गच्छेतां जयद्रथवधं प्रति ।
तथाऽऽशु कुरुत क्षिप्रम् इति सैन्यान्यचोदयन् ॥ १७

तयोरभावे कुरवः कृतार्थास्स्युर्वयं जिताः ।
[1]यत्र यातौ महात्मानौ तूर्णं परपुरञ्जयौ ॥ १८

ते यूयं सहिता भूत्वा तूर्णमेव बलार्णवम् ।
[2]क्षोभयध्वं महावेगाः पवनास्सागरं यथा ॥ १९

---

1. ख—अर्धचतुष्टयं नास्ति
2. ङ—क्षत्राणां निधनं युद्धे शस्त्रेणोत्तमतेजसाम् । [अधिकः पाठः]

भीमसेनेन ते राजन् पाञ्चाल्येन प्रचोदिताः ।
आजघ्नुः कौरवान् सङ्ख्ये त्यक्त्वाऽसूनात्मनः प्रियान् ॥ २०

इच्छन्तो निधनं युद्धे [1]शस्त्रेणोत्तमतेजसः ।
स्वर्गाच्च मित्रकार्याच्च नाभ्यरक्षन्त जीवितम् ॥ २१

तथैव तावका राजन् प्रार्थयन्तो महद्यशः ।
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा युद्धायैवावतस्थिरे ॥ २२

तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे वर्तमाने महाभये ।
हत्वा सैन्यानि सर्वाणि प्रायात् सात्यकिरर्जुनम् ॥ २३

कवचानां प्रभास्तत्र सूर्यरश्मिविमिश्रिताः ।
ध्वजशस्त्रप्रतिहता लोकान् समवदीपयन् ॥ २४

चण्डवातोद्धतान् मेघान् विकिरन् रश्मिमानिव ।
तथा तव महत् सैन्यं तद्व्यरोचत तापयन् ॥ २५

सम्प्रहृष्टस्स सहसा तव सैन्यार्णवं प्रभो ।
लोलयन् सर्वतो गत्वा समुद्रं मकरो यथा ॥ २६

तत्र राजन् महानासीत् सङ्ग्रामो भीतिवर्धनः ।
पाण्डवस्य महाबाहो तावकानां च दारुणः ॥ २७

रुद्रस्याक्रीडसङ्काशस् संहारस्सर्वदेहिनाम् ।
ततश्शब्दो महानासीत् प्रायाद्यत्र धनञ्जयः ॥ २८

---

1 ख—अष्टौ पादा न सन्ति

तत्र स्म कदनं घोरं वर्तते पाण्डुपूर्वज ।
अर्जुनस्य महाबाहोस् तावकानां च धन्विनाम् ॥ २९

[1]मध्ये भारतसैन्यस्य माधवस्य महारणे ।
द्रोणस्यापि परैस्सार्धं व्यूहद्वारे सुदारुणम् ॥ ३०

एवमेव क्षयो वृत्तः पृथिव्यां पृथिवीपते ।
क्रुद्धेऽर्जुने तथा द्रोणे सात्वते च महारथे ॥ ३१

तथा प्रवर्तमानेषु पाण्डवेयेषु निर्भयः ।
दुर्योधनो महाराज विजगाहे द्विषद्बलम् ॥ ३२

स सन्निपातस्तुमुलस् तेषां यस्य च भारत ।
अभवत् सर्वसैन्यानां महानकरुणोदयः ॥ ३३

धृतराष्ट्रः—

तथा गतेषु सैन्येषु तथा कृच्छ्रगतस्स्वयम् ।
कच्चिद्दुर्योधनस्सूत नाकर्षीत् पृष्ठतो रणम् ॥ ३४

एकस्य च बहूनां च सन्निपातो महाहवे ।
विशेषतस्तु नृपतेर् विषमः प्रतिभाति मे ॥ ३५

सोऽत्यन्तसुखसंवृद्धो रक्ष्यो लोकस्य चेश्वरः ।
एको बहून् समासाद्य कच्चिन्नासीत् पराङ्मुखः ॥ ३६

सञ्जयः—

राजन् सङ्ग्राममाश्चर्यं तव पुत्रस्य भारत ।

---

1 ख—अर्धपञ्चकं नास्ति

एकस्य च बहूनां च शृणु त्वं गदतो मम ॥ ३७

दुर्योधनेन सहसा पाण्डवी पृतना रणे ।
नलिनी द्विरदेनेव समन्ताद्विप्रलोलिता ॥ ३८

पाण्डुसेनां हतां दृष्ट्वा तव पुत्रेण मारिष ।
भीमसेनपुरोगास्तं पाञ्चालास्समुपाद्रवन् ॥ ३९

स भीमसेनं दशभिर् माद्रीपुत्रौ त्रिभिस्त्रिभिः ।
विराटद्रुपदौ षड्भिश् शतेन च शिखण्डिनम् ॥ ४०

धृष्टद्युम्नं च विंशत्या धर्मराजं च पञ्चभिः ।
केकयान् दशभिः पञ्च द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ४१

शतशश्चापरान् योधान् सद्विपांश्च रथान् रणे ।
शरैरवचकर्तोग्रैः क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः ॥ ४२

न सन्दधद्विमुञ्चन् वा मण्डलीकृतकार्मुकः ।
अदृश्यत रिपून् निघ्नञ् छिक्षयाऽस्त्रबलेन च ॥ ४३

तस्य तान् निघ्नतश्शत्रून् हेमपृष्ठं महद्धनुः ।
भल्लाभ्यां पाण्डवज्येष्ठस् त्रिधा चिच्छेद मारिष ॥ ४४

विव्याध चैनं बहुधा सम्यगस्तैश्शितैश्शरैः ।
मर्माण्याशु तदासाद्य ते भग्नाः क्षितिमाविशन् ॥ ४५

ततः प्रमुदिताः पार्थाः परिवव्रुर्युधिष्ठिरम् ।
यथा वृत्रवधे देवा मुदा शक्रं महर्षयः ॥ ४६

अथ दुर्योधनो राजा दृढमादाय कार्मुकम् ।
तिष्ठ तिष्ठेति राजानं ब्रुवन् पाण्डवमभ्ययात् ॥ ४७

तमेवं वादिनं दृष्ट्वा तव पुत्रं महामृधे ।
प्रत्युद्ययुः प्रमुदिताः पाञ्चाला जयगृद्धिनः ॥ ४८

तान् द्रोणः प्रतिजग्राह परीप्सन् युधि पार्थिवम् ।
चण्डवातोद्धतान् मेघान् गिरिरम्बुमुचो यथा ॥ ४९

तत्र राजन् महानासीत् सङ्ग्रामो भीतिवर्धनः ।
रुद्रस्याक्रीडसङ्काशस् संहारस्सर्वदेहिनाम् ॥ ५०

तत्र शब्दो महानासीद् यातो यत्र धनञ्जयः ।
अतीव सर्वशब्देभ्यो रोमहर्षप्रदो भृशम् ॥ ५१

एवमेष क्षयो वृत्तः पृथिव्यां पृथिवीपते ।
क्रुद्धेऽर्जुने तथा द्रोणे सात्यके च महारथे ॥ ५२

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ५२ श्लोकाः ]

## ॥ नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥

द्रोणपराक्रमवर्णनम् ॥

सञ्जयः—

अपराह्णे महाराज सङ्ग्रामस्समपद्यत ।
पर्जन्यसमनिर्घोषः पुनर्द्रोणस्य सोमकैः ॥ १

शोणाश्वं रथमास्थाय नरवीरस्समाहितः ।
समरेऽभ्यद्रवत् पाण्डून् जवमास्थाय मध्यमम् ॥ २

तव प्रियहिते युक्तो महेष्वासो महाबलः ।
चित्रपुङ्खैश्शितैर्बाणैर् अर्दयन् कलशोद्भवः ॥ ३

जघान सोमकान् राजन् सृञ्जयान् केकयानपि ॥ ३॥

वरान् वरान् हि योधानां विचिन्वन्निव भारत ।
चिक्रीड समरे राजन् भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ४॥

तमभ्ययाद्बृहत्क्षत्रः केकयानां महारथः ।
भ्रातृणां वीर पञ्चानां ज्येष्ठस्समरकर्कशः ॥ ५॥

विमुञ्चन् विशिखांस्तीक्ष्णान् आचार्यं चार्दयद्भृशम् ।
महामेघो यथा वृष्टिं विमुञ्चन् गन्धमादने ॥ ६॥

तस्य द्रोणो महाराज स्वर्णपुङ्खाञ् शिलाशितान् ।

[1]प्रेषयामास सङ्क्रुद्धस् सायकान् दश चाष्ट च ॥ ७॥

तांस्तु द्रोणधनुर्मुक्तान् घोरानाशीविषोपमान् ।
एकैकं दशभिर्बाणैर् युधि चिच्छेद हृष्टवत् ॥ ८॥

तदस्य लाघवं दृष्ट्वा प्रहसन् द्विजसत्तमः ।
प्रेषयामास विशिखान् अष्टौ सन्नतपर्वणः ॥ ९॥

तान् दृष्ट्वा पततश्शीघ्रान् द्रोणचापच्युताञ् शरान् ।
अवारयद्बृहत्क्षत्रस् तावद्भिर्निशितैश्शरैः ॥ १०॥

ततोऽभवन्महाराज तव सैन्यस्य विस्मयः ।
बृहत्क्षत्रेण तत् कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करम् ॥ ११॥

ततो द्रोणो महाराज केकयं वै विशेषयन् ।
प्रादुश्चक्रे रणे दिव्यं ब्राह्ममस्त्रं महातपाः ॥ १२॥

तदस्य राजन् कैकेयः प्रत्यवारयदच्युतः ।
ब्राह्मेणैव महाबाहुर् आहवे समुदीरितम् ॥ १३॥

प्रतिहत्य तदस्त्रं तु भारद्वाजस्य संयुगे ।
विव्याध ब्राह्मणं षष्ट्या स्वर्णपुङ्खैश्शिलाशितैः ॥ १४॥

तं द्रोणो द्विपदां श्रेष्ठो नाराचेन समर्पयत् ।
स तस्य कवचं भित्त्वा प्राविशद्धरणीतलम् ॥ १५॥

कृष्णसर्पो यथा मुक्तो वल्मीकं नृपसत्तम ।

1. अ—अर्धचतुष्टयं नास्ति

तथाऽप्यगान्महीं बाणो भित्त्वा कैकेयमाहवे ॥　　१६॥

सोऽतिविद्धो महाराज द्रोणेनास्त्रविदा दृढम् ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो व्यावृत्य नयने शुभे ॥　　१७॥

द्रोणं विव्याध बाणैश्च स्वर्णपुङ्खैश्शिलाशितैः ॥　　१८
सारथिं चास्य भल्लेन बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥　　१८॥

द्रोणस्तु बहुधा विद्धो बृहत्क्षत्रेण मारिष ।
व्यसृजद्विशिखांस्तीक्ष्णान् कैकेयस्य रथं प्रति ॥　　१९॥

व्याकुलीकृत्य तं द्रोणो बृहत्क्षत्रं महारथम् ।
व्यसृजत् सर्वतो बाणान केकयस्य विमोहनान् ॥　　२०॥

[1]तमविध्यत् पृषत्केन द्रोणो राजन स्तनान्तरे ।
[2]भ्रातॄणां पञ्चमो ह्येष महाबलपराक्रमः ॥　　२१॥

स गाढविद्धस्तेनाशु महाराजस्स्तनान्तरे ।
रथात् पुरुषशार्दूलस् सम्भिन्नहृदयोऽपतत् ॥　　२२॥

बृहत्क्षत्रे हते राजन् केकयानां महारथे ।
शैशुपालिस्सुसङ्क्रुद्धो यन्तारमिदमब्रवीत् ॥　　२३॥

धृष्टकेतुः—

सारथे याहि यत्रैष द्रोणस्तिष्ठति दंशितः ।
विनिघ्नन् केकयान् सर्वान् पाञ्चालानां च वाहिनीम् ॥ २४॥

---

1. ख—इदमर्धद्वयं नास्ति　　2. घ—अर्धद्वयं नास्ति

सञ्जयः—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सारथी रथिनां वरम् ।
द्रोणाय प्रापयामास काम्भोजैर्जवनैर्हयैः ॥ २५॥

धृष्टकेतुश्च चेदीनाम् ऋषभोऽतिबलोदितः ।
वधायाभ्यद्रवद्द्रोणं पतङ्ग इव पावकम् ॥ २६॥

[1]सोऽभ्यविध्यत् ततो द्रोणं षष्ट्या साश्वरथद्विपम् ।
पुनरन्यैश्शरैस्तीक्ष्णैस् सुप्तं व्याघ्रं तुदन्निव ॥ २७॥

तस्य द्रोणो धनुर्मध्ये क्षुरप्रेण शितेन च ।
चिच्छेद राजन् बलिनो यतमानस्य संयुगे ॥ २८॥

अथान्यद्धनुरादाय शैशुपालिर्महारथः ।
विव्याध सायकैर्द्रोणं पुनस्सुनिशितैर्दृढम् ॥ २९॥

तस्य द्रोणो हयान् हत्वा सारथिं च महाबलः ।
अथैनं पञ्चविंशत्या सायकानां समाचिनोत् ॥ ३०॥

विरथो विधनुष्कश्च चेदिराजोऽपि संयुगे ।
गदां चिक्षेप सम्भ्रान्तो भारद्वाजरथं प्रति ॥ ३१॥

तामापतन्तीं सहसा घोररूपां भयावहाम् ।
अश्मसारमयीं गुर्वीं तपनीयविभूषिताम् । ३२॥
शरैरनेकसाहस्रैर् भारद्वाजो न्यपातयत् ॥ ३३

1. ङ—अर्धषट्कं नास्ति

सा पपात गदा भूमौ भारद्वाजेन सादिता ।
रक्तमाल्याम्बरधरा तारेव नभसस्तदा ॥　　३४

गदां विनिहतां दृष्ट्वा धृष्टकेतुर्महाबलः ।
तोमरं व्यसृजत् तूर्णं शक्तिं च कनकोज्ज्वलाम् ॥　　३५

तोमरं च त्रिभिर्बाणैर् द्रोणश्छित्त्वा महामृधे ।
शक्तिं चिच्छेद दशधा कृतहस्तो महाबलः ॥　　३६

ततोऽस्य विशिखं तीक्ष्णं वधार्थे वधकाङ्क्षिणः ।
प्रेषयामास समरे भारद्वाजः प्रतापवान् ॥　　३७

स तस्य कवचं भित्त्वा हृदयं चामितौजसः ।
अत्यगाद्धरणीं बाणो हंसः पद्मसरो यथा ॥　　३८

पतङ्गं ग्रसते चाषो यथा राजन् बुभुक्षितः ।
तथा द्रोणोऽग्रसच्छूरो धृष्टकेतुं महाहवे ॥　　३९

निहते चेदिराजे तु तत् खण्डं पित्र्यमाविशत् ।
अमर्षवशमापन्नः पुत्रोऽस्य परमास्त्रवित् ॥　　४०

तमपि प्रहसन् द्रोणश् [1]शरैर्निन्ये यमक्षयम् ।
महाव्याधो महारण्ये मृगशावं यथा बली ॥　　४१

तेषु प्रक्षीयमाणेषु पाण्डवेयेषु भारत ।

---

1. ङ—शरैरग्निशिखोपमैः ।
प्रापयामास राजेन्द्र चेदिपुत्रं यमक्षयम् ।　　[अधिकः पाठः]

जरासन्धसुतो वीरस्त्वरन् द्रोणमुपाद्रवत् ॥ ४२

स तु द्रोणं महाराज च्छादयन् सायकैश्शितैः ।
अदृश्यमकरोत् तूर्णं जलदो भास्करं यथा ॥ ४३

तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ।
व्यसृजत् सायकांस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४४

छादयित्वा रणे द्रोणो रथस्थं रथिनां वरम् ।
जारासन्धिमथो जघ्ने मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥ ४५

यो यो विधीयते खण्डस्तं तं द्रोणोऽन्तकोपमः ।
आदत्ते सर्वभूतानि प्राप्ते काले यथाऽन्तकः ॥ ४६

ततो द्रोणो महाराज नाम विश्राव्य संयुगे ।
शरैरनेकसाहस्रैः पाण्डवेयान् व्यमोहयत् ॥ ४७

ते तु द्रोणाङ्किता बाणास्स्वर्णपुङ्खाश्शिलाशिताः ।
नरान् नागान् हयांश्चैव परलोकाय निन्यिरे ॥ ४८

ते वध्यमाना द्रोणेन शक्रेणेव महासुराः ।
समकम्पन्त पाञ्चाला गावश्शीतार्दिता इव ॥ ४९

ततो निष्टानको घोरः पाण्डवानामजायत ।
द्रोणेन वध्यमानेषु सैन्येषु भरतर्षभ ॥ ५०

मोहिताश्शरजालेन भारद्वाजेन संयुगे ।
ऊरुग्राहगृहीता हि पाञ्चालानां महारथाः ॥ ५१

चेदयश्च महाराज सृञ्जयास्सोमकास्तथा ।
अभ्यद्रवन्त संहृष्टा भारद्वाजं युयुत्सवः ॥ ५२

घ्नत द्रोणं घ्नत द्रोणम् इति ते द्रोणमभ्ययुः ॥ ५२॥

ते यतन्तो यथाशक्ति व्यथयन्तो महाद्युतिम् ।
निनीषन्तो युधि द्रोणं यमस्य सदनं प्रति ॥ ५३॥

यतमानांस्तु ताञ् शूरान भारद्वाजश्शिलीमुखैः ।
यमाय प्रेषयामास चेदिमुख्यान विशेषतः ॥ ५४॥

तेषु प्रक्षीयमाणेषु चेदिमुख्येषु सर्वशः ।
पाञ्चालास्समकम्पन्त द्रोणसायकपीडिताः ॥ ५५॥

प्राक्रोशद्भीमसेनस्तु धृष्टद्युम्नरथं प्रति ।
दृष्ट्वा द्रोणस्य कर्माणि तथारूपाणि मारिष ॥ ५६॥

भीमः—

ब्राह्मणेन तपो नूनं चरितं दुश्चरं महत् ।
तथा हि युधि सङ्क्रुद्धो दहति क्षत्रियर्षभान् ॥ ५७॥

धर्मो युद्धं क्षत्रियस्य ब्राह्मणस्य परन्तपः ।
तपस्वी कृतविद्यश्च [1]प्रेक्षितानपि निर्दहेत् ॥ ५८॥

द्रोणास्त्रमग्निसंस्पर्शं प्रविष्टाः क्षत्रियर्षभाः ।
बहवो दुस्तरं घोरं यत्रादह्यन्त भारत ॥ ५९॥

1 क-घ-ङ—प्रेषितानपि ख—प्रेक्षणादवनिं दहेत्

यथाबलं यथोत्साहं यथासत्त्वं महाद्युतिः ।
मोहयन् सर्वसैन्यानि द्रोणो हन्ति बलानि नः ॥ ६०॥

सञ्जयः—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा क्षत्रधर्मा व्यवस्थितः ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद द्रोणस्य सशरं धनुः ॥ ६१॥

स संरब्धतरो भूत्वा द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ।
अन्यत् कार्मुकमादाय भास्वरं वेगवत्तरम् ॥ ६२॥

[1]तत्राधाय शरं तीक्ष्णं परघ्नं विमलं दृढम् ।
आकर्णपूर्णमाचार्यो बलवानभ्यवासृजत् ॥ ६३॥

स हत्वा क्षत्रधर्माणं जगाम धरणीतलम् ॥ ६४

स भिन्नहृदयो वाहाद् अपतन्मेदिनीतलम् ।
ततस्सैन्यान्यकम्पन्त धृष्टद्युम्नसुते हते ॥ ६५

[2]ततस्तु समरे वीरश् चेकितानो महारथः ।
स द्रोणं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥ ६६

चतुर्भिस्सारथिं चास्य चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
तस्याचार्यष्षोडशभिर् अविध्यद्दक्षिणं भुजम् ॥ ६७

ध्वजं षोडशभिर्बाणैर् यन्तारं चैव सप्तभिः ॥ ६७॥

---

1. क—तलादाय ख—तलायस
2 ङ—नास्तीदमर्धम्

तस्य सूते हते तेऽश्वा रथमादाय विद्रुताः ।
समरे शरसंवीता भारद्वाजेन मारिष ॥ ६८॥

चेकितानरथं दृष्ट्वा विद्रुतं [1]हतसारथिम् ।
पाञ्चालान् पाण्डवांश्चैव महद्भयमथाविशत् ॥ ६९॥

तान् समेतान् रणे दृष्ट्वा चेदिपाञ्चालसृञ्जयान् ।
समन्ताद्द्रावयन् द्रोणो बहुशो भरतर्षभ ॥ ७०॥

आकर्णपलितश्श्यामो वयसाऽशीतिकात् परः ।
रणे पर्यचरद्द्रोणो वृद्धष्षोडशवर्षवत् ॥ ७१॥

अथ द्रोणं महाराज विचरन्तमभीतवत् ।
वज्रहस्तममन्यन्त शत्रवश्शत्रुसूदनम् ॥ ७२॥

ततोऽब्रवीन्महाराज द्रुपदो बुद्धिमान् नृपः ॥ ७३

द्रुपदः—

लुब्धोऽयं क्षत्रियान् हन्ति व्याघ्रः क्षुद्रमृगानिव ।
कृच्छ्रान् दुर्योधनो लोकान् पापः प्राप्स्यति दुर्मतिः ॥ ७४

यस्य लोभाद्विनिहतास् समरे क्षत्रियर्षभाः ।
शतशश्शेरते भूमौ निकृत्ता गोवृषा इव ॥ ७५

रुधिरेण परीताङ्गाश् श्वशृगालादनीकृताः ॥ ७५॥

---

1 ख—सह

सञ्जयः—

एवमुक्त्वा महाराज द्रुपदोऽक्षौहिणीपतिः ।
पुरस्कृत्य रणे पार्थान् द्रोणमभ्यद्रवद्द्रुतम् ॥ ७६॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ७६॥ श्लोकाः ]

## ॥ दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥

अर्जुनवृत्तान्तपरिज्ञानाय सात्यकिं प्रेषितवता युधिष्ठिरेण पुनस्तयोर्वृत्तान्तपरिज्ञानाय भीमसेनस्य तत्र गमनचोदना ॥

सञ्जयः—

व्यूहेष्वालोड्यमानेषु पाण्डवानां ततस्ततः ।
अदूरमन्वयुर्द्रोणं पाञ्चालास्सह सोमकैः ॥ १

वर्तमाने तथा रौद्रे सङ्ग्रामे रोमहर्षणे ।
प्रक्षये जगतस्तीव्रे युगान्त इव भारत ॥ २

द्रोणे युधि पराक्रान्ते नर्दमाने मुहुर्मुहुः ।
पाञ्चालेषु च क्षीणेषु वध्यमानेषु पाण्डुषु ॥ ३

नापश्यच्छरणं कञ्चिद् धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३॥
चिन्तयामास राजेन्द्र कथमेतद्भविष्यति ॥ ४

तत्र वीक्ष्य दिशस्सर्वास् सव्यसाचिदिदृक्षया ।
युधिष्ठिरो ददर्शाथ नैव पार्थं न माधवम् ॥　　५

सोऽपश्यन्नरशार्दूलो वानरर्षभलक्षणम् ।
गाण्डीवस्य च निर्घोषम् अशृण्वन् व्यथितेन्द्रियः ॥　　६

अपश्यन् सात्यकिं चापि वृष्णीनां प्रवरं रथम् ।
ततश्शोकपरीताङ्गो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥　　७

नाभ्यगच्छत् तदा शान्ति तावपश्यन्नरर्षभौ ॥　　७॥

लोकोपक्रोशभीरुत्वाद् धर्मपुत्रो महायशाः ।
अचिन्तयन्महाबाहुश् शैनेयस्य रथं प्रति ॥　　८॥

युधिष्ठिरः—

पदवीं प्रेषितश्चैव फल्गुनस्य मया रणे ।
शैनेयस्सात्यकिस्सत्यो मित्राणामभयङ्करः ॥　　९॥

तदिदं ह्येकमेवासीद् द्विधा जातं ममाऽद्य वै ।
सात्यकिश्चापि मे ज्ञेयः पाण्डवश्च धनञ्जयः ॥　　१०॥

सात्यकि प्रेषयित्वा तु पाण्डवस्य पदानुगम् ।
सात्वतस्यापि कं युद्धे प्रेषयिष्ये पदानुगम् ॥　　११॥

करिष्यामि प्रयत्नेन भ्रातुरन्वेषणं यदि ।
युयुधानमनन्विष्य लोको मां गर्हयिष्यति ॥　　१२॥

भ्रातुरन्वेषणं कृत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।

परित्यजति वार्ष्णेयं सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ १३॥

लोके परमभीरुत्वात् सोऽहं पार्थं वृकोदरम् ।
पदवीं प्रेषयिष्यामि माधवस्य महात्मनः ॥ १४॥

यथैव च मम प्रीतिर् अर्जुने शत्रुसूदने ।
तथैव वृष्णिवीरेऽपि सात्वते युद्धदुर्मदे ॥ १५॥

अतिभारे नियुक्तश्च मया शैनेयनन्दनः ।
स तु मित्रानुरोधेन गौरवाच्च महाबलः ॥ १६॥
प्रविष्टो भारतीं सेनां मकरस्सागरं यथा ॥ १७

असौ हि श्रूयते शब्दश् शूराणामनिवर्तिनाम् ।
मिथस्संयुध्यमानानां वृष्णिवीरेण धीमता ॥ १८

प्राप्तकालमहं मन्ये यानं भीमस्य तत्र तु ॥ १८॥

तत्र वै पाण्डवेयस्य भीमसेनस्य धन्विनः ।
गमनं रोचये व्यक्तं यत्र यातो महारथः ॥ १९॥

नासाध्यं भीमसेनस्य विद्यते भुवि किञ्चन ।
शक्तो ह्येष रणे यत्तः पृथिव्यां सर्वधन्विनः ॥ २०॥
स्वबाहुबलमाश्रित्य प्रतिव्यूहितुमञ्जसा ॥ २१

यस्य बाहुबलं सर्वे समाश्रित्य महात्मनः ।
वनवासान्निवृत्तास्स्म न च युद्धेषु निर्जिताः ॥ २२

प्रयातेन च भीमेन सात्वतं प्रति पाण्डवम् ।
नाथवन्तौ भवेतां तौ युधि सात्वतफल्गुनौ ॥ २३

कामं ह्यशोचनीयौ तौ युधि शूरौ महारथौ ।
रक्षितौ वासुदेवेन स्वयं चास्त्रविशारदौ ॥ २४

अवश्यं तु मया कार्यम् आत्मनश्शोकनाशनम् ।
तस्माद्भीमं नियोक्ष्यामि सात्यकस्य पदानुगम् ॥ २५

ततः प्रतिकृतं मन्ये विधानं सात्यकि प्रति ॥ २५॥

सञ्जयः—

एवं निश्चित्य मनसा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
यन्तारमब्रवीद्राजन् भीमं प्रति नयस्व माम् ॥ २६॥

धर्मराजवचश्श्रुत्वा सारथिर्हयकोविदः ।
रथं हेमपरिष्कारं भीमान्तिकमुदावहत् ॥ २७॥

भीमसेनरथं प्राप्य प्राप्तकालमनुस्मरन् ।
कश्मलं प्राविशद्राजा बहु तत्तत् [1]समादिशत् ॥ २८॥

युधिष्ठिरः—

यस्सदेवान् सगन्धर्वान् सर्वांश्चैकरथोऽजयत् ।
तस्य लक्ष्म न पश्यामि भीमसेनानुजस्य ते ॥ २९॥

सञ्जयः—

तमब्रवीत् तदा राजन् भीमसेनस्तथागतम् ॥ ३०

---

1. क—समादिशन्

भीमः—

नैवाद्राक्षं नचाश्रौषं तव कश्मलमीदृशम् ॥ ३०॥

पुरा दुःखान्वितानां हि भवान् भवति नो गतिः ।
उत्तिष्ठ धत्स्व कौन्तेय शाधि किं करवाणि ते ॥ ३१॥

न ह्यसाध्यमकार्यं वा विद्यते मम मानद ।
आज्ञापय कुरुश्रेष्ठ मा च शोके मनः कृथाः ॥ ३२॥

सञ्जयः—

[1]तमब्रवीदश्रुपूर्णः कृष्णसर्प इव श्वसन् ।
भीमसेनमिदं वाक्यं प्रम्लानवदनो नृपः ॥ ३३॥

युधिष्ठिरः—

श्रूयते पाञ्चजन्यस्य यथा शङ्खस्य निस्वनः ।
पूरितो वासुदेवेन संरब्धेन तरस्विना ॥ ३४॥

नूनमद्य हतस्संख्ये भ्राता तव धनञ्जयः ।
तस्मिन् विनिहते नूनं युध्यते स्म जनार्दनः ॥ ३५॥

यस्य सत्त्ववतो वीर्यं उपजीवन्ति पाण्डवाः ।
यं भयेष्वभिगच्छन्ति सहस्राक्षमिवामराः ॥ ३६॥

स शूरस्सैन्धवप्रेप्सुर् अन्वयाद्भारतीं चमूम् ।
तस्य वै गमनं विद्म न च व्यावर्तनं पुनः ॥ ३७॥

---

1. ङ—तमश्रुपूर्णनयनं

[1]श्यामो युवा गुडाकेशो दर्शनीयो महाभुजः ।
व्यूढोरस्को महाबाहुर् मत्तद्विरदविक्रमः ॥ ३८॥

चकोरनेत्रस्ताम्रास्यो द्विषतां भयवर्धनः ।
मम प्रियहितार्थं च शक्रलोकादिहागतः ॥ ३९॥

वृद्धोपसेवी धृतिमान् कृतज्ञस्सत्यसङ्गरः ।
प्रविष्टो महतीं सेनाम् अपर्यन्तां धनञ्जयः ॥ ४०॥

प्रविष्टे च चमूं घोराम् अर्जुने शत्रुनाशने ।
प्रेषितस्सात्वतो वीरः फल्गुनस्य पदानुगः ॥ ४१॥

तस्याभिगमनं जाने भीम नावर्तनं पुनः ।
तदिदं मम भद्रं ते शोकस्थानमरिन्दम ॥ ४२॥

अर्जुनार्थे महाबाहो सात्वतस्य च कारणात् ।
वर्धते हविषेवाग्निर् इध्यमानः पुनः पुनः ॥ ४३॥

तस्य लक्ष्म न पश्यामि तेन विन्दामि कश्मलम् ।
तं विद्धि पुरुषव्याघ्रं सात्वतं च महाबलम् ॥ ४४॥

[2]तं वै महारथं पश्चाद् अनुयान्तं तवानुजम् ।
असम्पश्यन् महाबाहुम् अहं विन्दामि कश्मलम् ॥ ४५॥

अथैनं पुनराचक्ष्व लोहिताक्षं सकेशवम् ।
दृष्ट्वा कुशलिनं पार्थ सैन्धवार्थे ससात्यकिम् ॥ ४६॥

---

1. ङ—अर्धपञ्चकं नास्ति  2. क—नास्त्यर्धद्वयम्

संविदं मम कुर्यास्त्वं सिंहनादेन पाण्डव ॥ ४७

[1]असौ हि पाञ्चजन्यस्य नदतश्श्रूयते स्वनः ।
क्रुद्धेन वासुदेवेन पूर्यमाणस्य पाण्डव ॥ ४८

नूनं विनिहतश्शूरस् सव्यसाची परन्तपः ।
पार्थे तस्मिन् हते चैव युध्यते गरुडध्वजः ॥ ४९

न ह्यस्य प्रियकृत् कश्चिद् अन्यः पाण्डव विद्यते ।
तस्मात् कृष्णो रणे नूनं युध्यते युद्धकोविदः ॥ ५०

यस्य वीर्यवतो वीर्यम् उपजीवन्ति पाण्डवाः ।
त्वं तत्र गच्छ कौन्तेय यत्र यातस्स फल्गुनः ॥ ५१

सात्यकिश्च महावीर्यः कर्तव्यं यदि मन्यसे ।
वचनं मम धर्मज्ञ श्रेष्ठो भ्राता भवामि ते ॥ ५२

न मेऽर्जुनस्तथा ज्ञेयो ज्ञातव्यस्सात्यकिर्यथा ॥ ५२॥

चिकीर्षुर्मत्प्रियं पार्थ स यातस्सव्यसाचिनः ।
पदवीं दुर्गमां घोरां भीरुभिश्चाकृतात्मभिः ॥ ५३॥

भीमः—

ब्रह्मेशानेन्द्रवरुणान् अनयद्यः पुरा रथः ।
तमास्थाय गतौ कृष्णौ न तयोर्विद्यते भयम् ॥ ५४॥

तवाज्ञां शिरसा [2]बिभ्रद् एष गच्छामि मा शुचः ।

---

1 च—अर्धद्वयं नास्ति    2 ङ—कृत्वा

समेत्य तं नरव्याघ्रं तव दास्यामि संविदम् ॥ ५५॥

सञ्जयः—

एतावदुक्त्वा वचनम् परिदाय युधिष्ठिरम् ।
धृष्टद्युम्नाय बलवान् सुहृद्भ्यश्च पुनः पुनः ॥ ५६॥

धृष्टद्युम्नं चेदमाह भीमसेनो महाबलः ॥ ५७

भीमः—

विदितं ते महाबाहो यथा द्रोणो महाबलः ।
ग्रहणे धर्मराजस्य सर्वोपायेन वर्तते ॥ ५८

न च मे गमने कृत्यं तादृक् पार्षत विद्यते ।
यादृशं रक्षणे राज्ञः कार्यमादर्शितं हि नः ॥ ५९

एवमुक्तोऽस्मि पार्थेन प्रतिवक्तुं हि नोत्सहे ।
तत्र यास्यामि यत्रासौ मुमूर्षुस्सैन्धवस्थितः ॥ ६०

धर्मराजस्य वचने स्थातव्यमविशङ्कया ।
सोऽद्य यत्तो रणे तात परिरक्ष युधिष्ठिरम् ॥ ६१

एतद्धि सर्वकृत्यानां परमं कृत्यमाहवे ॥ ६१॥

सञ्जयः—

ततोऽब्रवीन्महाराज धृष्टद्युम्नो वृकोदरम् ॥ ६२

धृष्टद्युम्नः—

ईप्सितेन महाबाहो गच्छ पार्थ यथासुखम् ॥ ६२॥

नाहत्वा समरे द्रोणो धृष्टद्युम्नं कथञ्चन ।

ग्रहणं धर्मराजस्य प्रकरिष्यति संयुगे ॥ ६३॥

सञ्जयः—

ततो निक्षिप्य राजानं धृष्टद्युम्नाय पाण्डवम् ।
अभिवाद्य [1]कुरुश्रेष्ठं प्रययौ यत्र फल्गुनः ॥ ६४॥

परिष्वक्तस्तु कौन्तेयो धर्मराजेन मारुतिः ।
आघ्रातश्च तथा मूर्ध्नि श्रावितश्चाशिषश्शुभाः ॥ ६५॥

भीमसेनो महाबाहुः कवची शुभलक्षणः ।
सगदस्सतलत्राणस् सशरी रथिनां वरः ॥ ६६॥

रथमारुह्य निर्युक्तं सर्वोपकरणान्वितम् ॥ ६७

तस्य कार्ष्णायसं वर्म हेमराजिविभूषितम् ।
विबभौ सर्वतश्श्लिष्टस् सविद्युदिव तोयदः ॥ ६८

पीतरक्तासितश्वेतैर् वासोभिर्वेष्टतेन सः ।
कण्ठसूत्रेण विबभौ सेन्द्रायुध इवाम्बुदः ॥ ६९

प्रयाते तव सैन्यं तु भीमसेने युयुत्सया ।
पाञ्चजन्यरवो घोरः पुनरासीद्विशां पते ॥ ७०

तं श्रुत्वा निनदं घोरं त्रैलोक्यस्यापि भीषणम् ।
पुनर्भीमं महाबाहुं धर्मराजोऽभ्यभाषत ॥ ७१

एष वृष्णिप्रवीरेण प्रध्मातः परमो भृशम् ।

---

1 ख-ङ—गुरुं ज्येष्ठं

[1]पृथिवीं चान्तरिक्षं च विनादयति शङ्खराट् ॥ ७२

नूनं व्यसनमापन्ने सुमहत् सव्यसाचिनि ।
कुरुभिर्युध्यते वीरस् सर्वैः कृष्णो गदाधरः ॥ ७३

नूनमार्या महत् कुन्ती पापं व्यसन[2]दर्शनम् ।
द्रौपदी च सुभद्रा च द्रक्ष्यन्ति सह बन्धुभिः ॥ ७४
तद्भीम त्वरया युक्तो याहि यत्र धनञ्जयः ॥ ७४॥

मुह्यन्तीव च मे सर्वा धनञ्जयदिदृक्षया ।
दिशश्च विदिशः पार्थ सात्वतस्य च कारणात् ॥ ७५॥

सञ्जयः—

गच्छ गच्छेति च पुनः भीमसेनमभाषत ।
स भृशं प्रेषितो भ्रात्रा भ्रात्रे भ्रातुः प्रियङ्करः ॥ ७६॥

आहत्य दुन्दुभीन् त्सर्वान शङ्खं प्रध्माप्य चासकृत् ।
नदित्वा सिंहनादं च ज्यां विष्फार्य पुनः पुनः ॥ ७७॥

दर्शयन् घोरमात्मानम् अमित्रान सहसाऽभ्ययात् ॥ ७८

तमूहुर्जवना दान्ता विकुर्वाणा हयोत्तमाः ।
सुसंयत्ता विशोकेन मनोमारुतरंहसः ॥ ७९

प्रययौ धनुरादाय ज्यां विमृज्य च पाणिना ।

---

1 ख—तद्भीम त्वरया युक्तो याहि यत्र धनञ्जयः । [अधिकः पाठः]
2. अ-क-ध-ङ—कर्शितम्

विष्फारयन् धनुर्भीमस् सेनाग्रं [1]समलोडयत् ॥ ८०

तं प्रयान्तं महाबाहुं पाञ्चालास्सहसोमकैः ।
पृष्ठतोऽनुययुश्शूरा मघवन्तमिवामराः ॥ ८१

तं स सेना महाराज सोदर्याः पर्यवारयन् ।
दुश्शासनश्चित्रसेनः कुण्डभेदी विविंशतिः ॥ ८२

दुर्मुखो दुष्षहश्चैव विकर्णोऽथ शलस्तथा ।
विन्दानुविन्दौ सुमुखो दीर्घबाहुस्सुदर्शनः ॥ ८३

वृन्दारकस्सुहस्तश्च सुषेणो दीर्घलोचनः ।
अभयो रौद्रकर्मा च सुवर्मा दुर्विमोचनः ॥ ८४

विविधै रथिनां श्रेष्ठैस् सहसैन्यैस्सहानुगैः ।
संयत्तास्समरे शूरा भीमसेनमुपाद्रवन् ॥ ८५

तान् समीक्ष्य स कौन्तेयो भीमसेनः पराक्रमी ।
अभ्यद्रवत वेगेन सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ ८६

ते महास्त्राणि दिव्यानि तत्र वीरा व्यदर्शयन् ।
वारयन्तश्शरैस्तीक्ष्णैर् भीमसेनं महाहवे ॥ ८७

स तैर्विद्धो महाराज भीमसेनो महाबलः ।
अग्रतस्स्यन्दनानीकं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ८८

ते वध्यमानास्समरे तव पुत्रा महारथाः ।

---

1. क-ख-घ—अवलोकयन्

भीमं भीमबलं युद्धे योधयंस्तु जयैषिणः ॥ ८९

ततो [1]दुश्शासनः क्रुद्धो रथशक्तिं विचिक्षिपे ।
सर्वपारशवीं तीक्ष्णां जिघांसुः पाण्डुनन्दनम् ॥ ९०

आपतन्तीं महाशक्तिं तव पुत्रप्रचोदिताम् ।
द्विधा चिच्छेद तां भीमस् तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ९१

अथान्यैस्तु शितैर्बाणैस् सुषेणं दीर्घलोचनम् ।
कुण्डभेदिनमप्याशु त्रिभिस्त्रीन् न्यहनद्बली ॥ ९२

[2]-[3]ततो वृन्दारकं वीरं कुरूणां कीर्तिवर्धनम् ।
पुत्राणां तव शूराणां पश्यतामवधीत् पुनः ॥ ९३

अभयं रौद्रकर्माणं दुर्विमोचनमेव च ।
त्रिभिस्त्रीन् न्यहनद्भीमः पुनरेव सुतांस्तव ॥ ९४

हन्यमाना महाराज पुत्रास्तव बलीयसा ।
भीमं प्रहरतां श्रेष्ठं समन्तात् पर्यवारयन् ॥ ९५

ततो विन्दानुविन्दौ तु सुशर्माणं च ते सुतम् ।
प्रहसन्निव कौन्तेयश् शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ ९६

---

1. ख—दुर्योधनः
2 ङ—जघानान्यान् स भीमस्तु पुनरेव सुतांस्तव ।
हन्यमाना महाराज भीमसेनेन तावकाः ॥
त्यक्त्वा भीमं रणाज्जग्मुः पुत्रास्तव बलीयसः ॥ [अधिकः पाठः]
3 ङ—अर्धपञ्चकं नास्ति

ततस्सुदर्शनं वीरं पुत्रं ते भरतर्षभ ।
विव्याध हृदये तूर्णं स पपात ममार च ॥ ९७

सोऽचिरेणैव कालेन तद्रथानीकमाशु वै ।
दिशस्सर्वास्समभ्यस्य व्यधमत् पाण्डुनन्दनः ॥ ९८

ततो वै रथघोषेण गर्जितेन मृगा इव ।
वध्यमानास्तु समरे पुत्रास्तव विशां पते ॥ ९९

प्राद्रवन् समरे राजन् भीमसेनभयार्दिताः ॥ ९९॥

अन्वियाय तु कौन्तेयः पुत्राणां ते महद्बलम् ।
विव्याध समरे राजन् कुरून् सर्वान् समन्ततः ॥ १००॥

वध्यमाना महाराज भीमसेनेन तावकाः ।
हित्वा भीमं रणाज्जग्मुश् चोदयन्तो हयोत्तमान् ॥ १०१॥

तांस्तु निर्जित्य समरे भीमसेनो महाबलः ।
सिंहनादरवं चक्रे बाहुशब्दं च पाण्डवः ॥ १०२॥

[1]महान्तं तलशब्दं च कृत्वा द्रोणान्तिकं ययौ ।
तमवारयदाचार्यो वेलेवोद्वृत्तमर्णवम् ॥ १०३॥

तस्य द्रोणो रथं राजञ् छादयामास संयुगे ।
साश्वसूतध्वजं तूर्णं तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १०४॥

ललाटेऽताडयच्चैनं नाराचेन स्मयन्निव ।

---

1. ख—अर्धषट्कं नास्ति

ऊर्ध्वरश्मिरिवादित्यो विबभौ तत्र पाण्डवः ॥ १०५॥

स मन्यमानस्त्वाचार्यो ममायं फल्गुनो यथा ।
भीमः करिष्यते पूजाम् इत्युवाच वृकोदरम् ॥ १०६॥

द्रोणः—

भीमसेन न ते शक्यं प्रवेष्टुमरिवाहिनीम् ।
[1]मामनिर्जित्य समरे शत्रुमद्य महाबल ॥ १०७॥

यदि ते सानुजः कृष्णः प्रविष्टोऽनुमते मम ।
अनीकं न तु शक्यं मे प्रवेष्टुमिह वै त्वया ॥ १०८॥

सञ्जयः—

अथ भीमस्तु तच्छ्रुत्वा गुरोर्वाक्यमशेषतः ।
क्रुद्धः प्रोवाच वै द्रोणं रक्तताम्रेक्षणश्श्वसन् ॥ १०९॥

भीमः—

तवार्जुनो नानुमते ब्रह्मबन्धो रणाजिरम् ।
प्रविष्टस्स हि दुर्धर्षश् शक्रस्यापि विशेद्बलम् ॥ ११०॥

येन त्वं परमां पूजां कुर्वता मानितो ह्यसि ।
नार्जुनोऽहं घृणी विप्र भीमसेनोऽस्मि ते रिपुः ॥ १११॥

पिता नस्त्वं गुरुर्बन्धुस् तथा पुत्रा हि ते वयम् ।
इति मन्यामहे सर्वे भवन्तं प्रणतास्स्थिताः ॥ ११२॥

1. ख—अर्धलयं नास्ति

तदद्य विपरीतं ते वदतोऽस्मासु दृश्यते ॥ ११३

यदि शत्रुं त्वमात्मानं मन्यसे तत्तथाऽस्त्विह ।
एष ते सदृशं कर्म शत्रोर्भीमः करिष्यति ॥ ११४

सञ्जयः—

अथोद्भ्राम्य गदां [1]भीमः कालदण्डमिवान्तकः ।
द्रोणायावासृजद्राजन् स रथादवपुप्लुवे ॥ ११५

साश्वसूतध्वजं यानं द्रोणस्यापोथयद्गदा ।
तदद्भुतमपश्याम पाण्डवेयस्य विक्रमम् ॥ ११६

द्रोणं तु विरथं कृत्वा भीमसेनो महाबलः ।
अभ्यवर्तत सैन्यानि तावकानि समन्ततः ॥ ११७

स मृद्नंस्तरसा योधान् वायुर्वृक्षानिवौजसा ।
विचचार रणे राजन् वायुतुल्यपराक्रमः ॥ ११८

निर्जितस्तु तदा तेन पाण्डवेन महात्मना ।
अन्यं तु रथमातिष्ठद् द्रोणः प्रहरतां वरः ॥ ११९

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ११९ श्लोकाः ]

---

1 अ-क-घ-ङ—वीरः

## ॥ एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥

पुनर्द्रोणरथान् भङ्क्त्वा गच्छतो भीमस्यार्जुनदर्शनेन सिंहनादः ॥ १ ॥ तच्छ्रवणेन युधिष्ठिरस्य हर्षोदयः ॥ २ ॥

सञ्जयः—

समुत्तीर्णं रथानीकं तमसो भास्करं यथा ।
विवारयिषुराचार्यश् शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १

पिबन्निव शरौघांस्तान् द्रोणचापपरिच्युतान् ।
सोऽभ्यवर्तत सोदर्यान् मोहयन् बलमायया ॥ २

तं मृधे वेगमास्थाय परं परमधन्विनः ।
चोदितास्तव पुत्रेण सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ३

तैर्वृतस्सर्वतो भीमः क्रोधेन प्रदहन्निव ।
उद्गृह्य स गदां तेभ्यस् शत्रुभ्यस्सहसा नदन् ॥ ४

अवासृजच्च वेगेन तान् मृतान् प्रार्थयन् बली ॥ ४॥

सेन्द्राशनिरिवेन्द्रेण प्रविद्धा संशितात्मना ।
घोषेण महता राजन् पूरयन्ती दिशो दश ॥ ५॥

ज्वलन्ती तेजसा भीमा त्रासयामास ते सुतान् ॥ ६

तामापतन्तीं वेगेन दृष्ट्वा तेजोभिसंवृताम् ।
प्राद्रवंस्तावकास्सर्वे नदन्तो भैरवान् रवान् ॥ ७

सिंहनादमसह्यं हि श्रुत्वा भीमस्य संयुगे ।
प्रापतंश्च नरास्त्रस्ता रथेभ्यो रथिनस्तदा ॥ ८

स तान् विद्राव्य कौन्तेयस्‌ सर्वानेव महारथः ।
सुपर्ण इव वेगेन पक्षिराडत्यगाच्चमूम् ॥ ९

तथा तं विप्रकुर्वाणं रथयूथपयूथपम् ।
भारद्वाजो महाराज भीमसेनं समभ्ययात् ॥ १०

द्रोणस्तु समरे [1]भीमं पीडयित्वा शरोर्मिभिः ।
अकरोत् सहसा नादं पाण्डूनामादधद्भयम् ॥ ११

तद्युद्धमासीत् सुमहद्‌ घोरं देवासुरोपमम् ।
द्रोणस्य च महाराज भीमस्य च महात्मनः ॥ १२

यदा तु विशिखैस्तीक्ष्णैर्‌ द्रोणचापविनिस्सृतैः ।
वध्यन्ते समरे शूराश्‌ शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १३

ततो रथादवप्लुत्य वेगमास्थाय मध्यमम् ।
निमील्य नयने राजन् पदातिर्द्रोणमभ्ययात् ॥ १४

यथा हि गोवृषो वर्षं प्रतिगृह्णाति लीलया ।
तथा भीमो महाराजश्‌ शरवर्षं समग्रहीत् ॥ १५

स वध्यमानस्समरे रथं द्रोणस्य मारिष ।
ईषायां पाणिना गृह्य प्रचिक्षेप महाबलः ॥ १६

---

1 क-व—राजन्

द्रोणस्तु सहसा राजन् क्षिप्तो भीमेन संयुगे ।
ददृशे तावकैर्योधैर् विस्मयोत्फुल्ललोचनैः ॥　　१७

परिहृत्य रथं द्रोणश् चूर्णितं तं महीतले ।
रथमन्यं समास्थाय व्यूहद्वारमथाययौ ॥　　१८

तस्मिन् क्षणे स यन्ताऽस्य तूर्णमश्वानचोदयत् ।
भीमसेनस्य कौरव्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥　　१९

ततस्स्वरथमास्थाय भीमसेनो महाबलः ।
अभ्यद्रवत वेगेन तव पुत्रस्य वाहिनीम् ॥　　२०

स मृद्नन् क्षत्रियानाजौ वातो वृक्षानिवोद्धतः ।
अगच्छद्दारयन् सेनां सिन्धुवेगो नगानिव ॥　　२१

[1]भोजानीकं समासाद्य हार्दिक्येनाभिरक्षितम् ।
प्रमथ्य बहुधा राजन् भीमसेनस्समभ्यगात् ॥　　२२

सन्त्रासयन्ननीकानि तलशब्देन पाण्डवः ।
अजयत् सर्वतस्सैन्यं शार्दूल इव गोकुलम् ॥　　२३

भोजानीकमतिक्रम्य काम्भोजानां च वाहिनीम् ।
तथा म्लेच्छगणानन्यान प्रययौ त्वरयाऽन्वितः ॥　　२४

सात्यकिं चापि सम्प्रेक्ष्य युध्यमानं महारथम् ।
रथेन यत्तः कौन्तेयो वेगेन प्रययौ तदा ॥　　२५

---

1. ख—अर्धचतुष्टयं नास्ति

भीमसेनो महाराज द्रष्टुकामो धनञ्जयम् ।
अतीत्य समरे योधांस् तावकान् पाण्डुनन्दनः ॥ २६

सोऽपश्यदर्जुनं तत्र युध्यमानं महारथम् ।
सैन्धवस्य वधार्थाय पराक्रान्तं पराक्रमी ॥ २७

अर्जुनं तं च दृष्ट्वा तु चुक्रोश महतो रवान् ।
तं तु तस्य महानादं पार्थश्शुश्राव नर्दतः ॥ २८

ततः पार्थो महानादं मुञ्चन् वै माधवश्च ह ।
अभ्ययातां तदा राजन् गर्जन्तौ गोवृषाविव ॥ २९

वासुदेवार्जुनौ श्रुत्वा नादं तस्याभिगर्जतः ।
पुनः पुनः प्रणदतो दिदृक्षू तं वृकोदरम् ॥ ३०

भीमसेनरवं श्रुत्वा फल्गुनस्य च धन्विनः ।
अप्रीयत महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३१

विशोकश्चाभवद्राजा श्रुत्वा तं निनदं महत् ।
धनञ्जयस्य समरे जयमाशास्तवान् विभुः ॥ ३२

तथा तु नर्दमाने वै भीमसेने [1]मदोत्कटे ।
स्मितं कृत्वा महाबाहुर् धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३३

हृद्गतं मनसा प्राह ध्यात्वा धर्मभृतां वरः ॥ ३३॥

1. क-घ—मदोद्धते ख—रणोत्कटे

युधिष्ठिर.—

[1]उक्तेन संविदं भीम कृतं गुरुवचस्त्वया ।
न हि तेषां जयो युद्धे येषां द्वेष्टाऽसि पाण्डव ॥　३४॥

दिष्ट्या जीवति सङ्ग्रामे सव्यसाची धनञ्जयः ॥　३५

दिष्ट्या च कुशली वीरस् सात्त्वतस्सत्यविक्रमः ।
दिष्ट्या शृणोमि गर्जन्तौ वासुदेवधनञ्जयौ ॥　३६

येन शक्रं रणे जित्वा तर्पितो हव्यवाहनः ।
स हन्ता द्विषतां सङ्ख्ये दिष्ट्या जीवति फल्गुनः ॥　३७

यस्य बाहुबलं सर्वे जीवामस्संश्रिता वयम् ।
स हन्ता सर्वसैन्यानां दिष्ट्या जीवति फल्गुनः ॥　३८

निवातकवचा येन देवैरपि दुरासदाः ।
निर्जिता धनुषैकेन दिष्ट्या पार्थस्स जीवति ॥　३९

[2]कौरवान् सहितान् सर्वान् गोधनार्थे समागतान् ।
योऽजयन्मत्स्यनगरे दिष्ट्या पार्थस्स जीवति ॥　४०

कालकेयान् महेष्वासान् सहस्राणि चतुर्दश ।
योऽघ्नन्निमिषमात्रेण दिष्ट्या पार्थस्स जीवति ॥　४१

गन्धर्वराजं बलिनं दुर्योधनकृते च वै ।
जितवान् योऽस्त्रवेगेन दिष्ट्या पार्थस्स जीवति ॥　४२

---

1. ङ—भुक्तेन नन्विदं भीमः कृतं कुरुवधस्त्वया ? ।　[पाठान्तरम्]
ख—मत्तेन संविदं ?　　2 ङ—अर्धद्वयं नास्ति

किरीटमाली बलवान् श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
मम प्रियश्च यो नित्यं दिष्ट्या जीवति पाण्डवः ॥ ४३

पुत्रशोकाभिसन्तप्तश् चिकीर्षुः कर्म दुष्करम् ।
जयद्रथवधान्वेषी प्रतिज्ञा कृतवांश्च यः ॥ ४४

कच्चित् सैन्धवकं सङ्ख्ये पातयिष्यति फल्गुनः ॥ ४४॥

कच्चित् तीर्णप्रतिज्ञं तं वासुदेवेन रक्षितम् ।
अनस्तमित आदित्ये समेष्याम्यहमर्जुनम् ॥ ४५॥

कच्चित् सैन्धवको राजा दुर्योधनहिते रतः ।
नन्दयिष्यत्यमित्रांश्च फल्गुनेन निपातितः ॥ ४६॥

[1]अद्य दुर्योधनो धन्वी फल्गुनेन निपातितम् ।
दृष्ट्वा च सैन्धवं सङ्ख्ये शममस्मासु यास्यति ॥ ४७॥

दृष्ट्वा विनिहतान् भ्रातॄन् भीमसेनेन संयुगे ।
भयाद्दुर्योधनो राजा शममस्मासु यास्यति ॥ ४८॥

पदातिरथनागाश्वान् पातितान् धरणीतले ।
दृष्ट्वा दुर्योधनो मन्दः पश्चात्तापं करिष्यति ॥ ४९॥

कच्चिद्भीष्मेण नो वैरम् एकेनैवापयास्यति ।
कच्चिच्छेषस्य रक्षार्थं सन्धास्यति सुयोधनः ॥ ५०॥

---

1 क-ख-घ-ङ—नास्तीदमर्धम्

सञ्जयः—

एवं बहुविधं तस्य चिन्तयानस्य पार्थिव ।
कृपयाऽभिपरीतस्य घोरं युद्धमवर्तत ॥ ५१॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥
[अस्मिन्नध्याये ५१॥ श्लोकाः]

## ॥ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥

भीमेन कर्णपराजयो दुश्शलवधश्च ॥

धृतराष्ट्रः—

तथा तु नर्दमानं तं भीमसेनं महाबलम् ।
मेघस्तनितनिर्घोषं के वीराः पर्यवारयन् ॥ १

न हि पश्याम्यहं तं वै त्रिषु लोकेषु सञ्जय ।
[1]क्रुद्धस्य भीमसेनस्य यस्तिष्ठेदग्रतो रणे ॥ २

गदामुद्यच्छमानस्य के वीराः पर्यवारयन् ।
न हि पश्याम्यहं तात यस्तिष्ठेत् प्रमुखे रणे[2] ॥ ३

[3]रथं रथेन यो हन्ति कुञ्जरं कुञ्जरेण हि ।
कस्तस्य प्रमुखे स्थाता साक्षादपि शतक्रतुः ॥ ४

---

1. अ—अर्धचतुष्टयं नास्ति
2. अ—कामयाना हि मे पुत्रान् भीमेनावेक्ष्य संयुगे । [अधिकः पाठः]
3. अ-ङ—अर्धद्वयं नास्ति

[1]क्रुद्धस्य भीमसेनस्य पुत्रान् मम जिघांसतः ।
दुर्योधनहिते युक्तास् समतिष्ठन्त केऽग्रतः ॥ ५

भीमसेनदवाग्नेस्तु मम पुत्रतृणोलपम् ।
प्रधक्ष्यतो रणमुखे के वीराः प्रमुखे स्थिताः ॥ ६

काल्यमानान् हि मे पुत्रान् भीमेनावेक्ष्य संयुगे ।
कालेनेव प्रजास्सर्वाः के भीमं पर्यवारयन् ॥ ७

भीमवह्नेः प्रदीप्तस्य मम पुत्रान् प्रधक्ष्यतः ।
के वीराः पर्यवर्तन्त तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ८

सञ्जयः—

तथा तु नर्दमानं तं भीमसेनं महाबलम् ।
तुमुलेनैव शब्देन योद्धुं कर्णोऽभ्ययाद्बली ॥ ९

व्याक्षिपद्बलवच्चापम् अतिमात्रममर्षितः ।
शूरस्सुयुद्धमाकाङ्क्षन् दर्शयिष्यन् बली बलम् ॥ १०

प्रावेपन्निव गात्राणि भीमकर्णसमागमे ॥ १०॥

रथिनां सादिनां चैव तयोश्श्रुत्वा तलस्वनम् ।
भीमसेनस्य निनदं श्रुत्वा घोरं रणाजिरे ॥ ११॥

खं च भूमिं च सम्बद्धां मेनिरे क्षत्रियर्षभाः ॥ १२

पुनर्घोरेण शब्देन पाण्डवस्य महात्मनः ।

---

1 ङ—अर्धपञ्चकं नास्ति

समरे सर्वयोधानां धनूंष्यभ्यपतन् क्षितौ ॥ १३

वित्रस्तानि च सैन्यानि शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः ।
वाहनानि महाराज बभूवुर्विमनांस्युत ॥ १४

प्रादुरासन् निमित्तानि घोराणि च बहूनि च ॥ १४॥

गृध्रकङ्कबलैश्चासीद् अन्तरिक्षं समावृतम् ।
तस्मिंस्तु तुमुले राजन् भीमकर्णसमागमे ॥ १५॥

ततः कर्णस्तु विंशत्या शराणां भीममर्पयन् ।
विव्याध चास्य त्वरितस् सूतं पञ्चभिराशुगैः ॥ १६॥

प्रहस्य भीमसेनोऽपि कर्णं प्रत्यर्पयद्रणे ।
सायकानां चतुष्षष्ट्या क्षिप्रकारी वृकोदरः ॥ १७॥

तस्य कर्णो महेष्वासस् सायकांश्चतुरोऽक्षिपत् ॥ १८

असम्प्राप्तांस्तु तान् भीमस् सायकैरेव सायकान् ।
चिच्छेद बहुधा राजन् दर्शयन् हस्तलाघवम् ॥ १९

तं कर्णश्छादयामास शरव्रातैरनेकशः ॥ १९॥

सञ्छाद्यमानः कर्णेन बहुधा पाण्डुनन्दनः ।
चिच्छेद चापं कर्णस्य मुष्टिदेशे महारथः ॥ २०॥

[1]विव्याध चैनं दशभिस् सायकैर्नतपर्वभिः ॥ २१

अथान्यद्धनुरादाय सज्यं कृत्वा स सूतजः ।

---

1. ङ—एकादशार्धानि न सन्ति

विव्याध समरे भीमं भीमकर्मा महारथः ॥ २२

ततो भीमो भृशं क्रुद्धस् [1]सायकान् नतपर्वणः ।
निजघानोरसि क्रुद्धस् सूतपुत्रस्य वेगितः ॥ २३

तैश्शरैर्विबभौ कर्ण उरोमध्यगतैस्तदा ।
महीधर इवोदग्रस् त्रिश्शृङ्गो भीमदर्शनः ॥ २४

तस्य सुस्राव रुधिरं विद्धस्य परमेषुभिः ।
गिरेः प्रस्रुतसानोस्तु यथा [2]गैरिकजं रजः ॥ २५

किञ्चिद्विचलितः कर्णस् सम्प्रहाराभिपीडितः ।
ससायकं धनुः कृत्वा भीमं विव्याध मारिष ॥ २६

चिक्षेप च पुनर्बाणाञ् शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २६॥

सञ्छाद्यमानस्समरे कर्णेन दृढधन्विना ।
धनुर्ज्यामच्छिनत् तूर्णं कर्णस्य च महात्मनः ॥ २७॥

सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपाहरत् ।
वाहांश्च चतुरस्तस्य व्यसूंश्चक्रे महारथः ॥ २८॥

हताश्वात् तु रथात् कर्णस् [3]समाप्लुत्य विशां पते ।
स्यन्दनं वृषसेनस्य समारोहन्महाबलः ॥ २९॥

निर्जित्य तु रणे कर्णं भीमसेनः प्रतापवान् ।

---

1 क-ख-घ—तीक्ष्णशरान्  2 क-ख-घ—गैरिकजो रसः
3. क-ख-घ—तूर्णं

ननाद स महानादं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ ३०॥

तस्य तं निनदं श्रुत्वा प्रहृष्टोऽभूद्युधिष्ठिरः ॥ ३१

कर्णं तु निर्जितं श्रुत्वा भीमसेनेन मारिष ।
सबाणशङ्खनिनदः पाण्डूनामभवन्नृप ॥ ३२

शत्रुसेनाध्वनिं श्रुत्वा तावका व्यरुदन् भृशम् ।
गाण्डीवं व्याक्षिपत् पार्थः कृष्णोऽप्यब्जमनादयत् ॥ ३३
तमन्तर्धाय निनदं ध्वनिर्भीमस्य नर्दतः ।
अश्रूयत तदा राजन् सर्वसैन्येषु मारिष ॥ ३४
[1]ततो व्यायच्छतामस्त्रैः पृथक् पृथगरिन्दमौ ।
मृदुपूर्वं तु राधेयः क्रोधपूर्वं च पाण्डवः ॥ ३५

भीमोऽपि च महाराज वैकर्तनमुपाद्रवत् ।
आसुरे च महासैन्ये तारकं पावकिर्यथा ॥ ३६

तयोरेवं महद्युद्धम् अभवद्भीमकर्णयोः ॥ ३६॥

तं भीमसेनो महता शरवर्षेण वारयत् ।
विव्याध सारथिं चास्य हयांश्च चतुरश्शरैः ॥ ३७॥

ध्वजं चास्य पताकां च भल्लैस्सन्नतपर्वभिः ।
रथं च चक्ररक्षौ च भीमश्चिच्छेद मारिष ॥ ३८॥

कर्णोऽपि रथिनां श्रेष्ठो भीमसेनेन कम्पितः ।

---

1 ख—इतश्चतुर्विंशतिरर्धानि न सन्ति

खड्गचर्मधरो राजन् भीममभ्यद्रवद्बली ॥ ३९॥

भीमश्चिच्छेद खड्गं च चर्मणा सह मारिष ॥ ४०

दृष्ट्वा कर्णं च पार्थेन बाधितं बहुभिश्शरैः ।
दुर्योधनो महाराज दुश्शलं प्रत्यभाषत ॥ ४१

दुर्योधनः—

कर्णं कृच्छ्रगतं पश्य शीघ्रं यानं प्रयच्छ ह ॥ ४१॥

सञ्जयः—

एवमुक्तस्ततो राज्ञा दुश्शलस्समुपाद्रवत् ।
दुश्शलस्य रथं कर्णश्चारुरोह महारथः ॥ ४२॥

तौ पार्थस्सहसा गत्वा विव्याध दशभिश्शरैः ।
पुनश्च कर्णं [1]विव्याध दुश्शलस्य शिरोऽहरत् ॥ ४३॥

दुश्शलं निहतं दृष्ट्वा भीमसेनेन मारिष ।
तस्यैव धनुरादाय कर्णो विव्याध पाण्डवम् ॥ ४४॥

अन्योन्यं समरे वीरौ युयुधाते महाबलौ ।
शत्रुघ्नौ शत्रुमध्ये तु [2]बलिवज्रभृताविव ॥ ४५॥

भीमो विद्ध्वा हयांश्चैव सारथिं च पुनः पुनः ।
कर्णमभ्यद्रवत् पार्थः प्रहसंश्च महाबलः ॥ ४६॥

---

1. क-ब-ङ—विद्ध्वाऽपि 2 ङ—बल

[1]ततो व्यायच्छमानस्य भीमसेनस्य संयुगे ।
तत् सैन्यं शकलीभूतं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ 　४७॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥
[अस्मिन्नध्याये ४७॥ श्लोकाः]

---

## ॥ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥

द्रोणदुर्योधनसंवादो दुर्योधनयुद्धं च ॥

---

सञ्जयः—

तस्मिन् विलुलिते सैन्ये सैन्धवायार्जुने गते ।
सात्वते भीमसेने च पुत्रस्ते द्रोणमभ्ययात् ॥ 　१

त्वरन्नेकरथेनैव बहु कृत्यं विचिन्तयन् ।
सरथस्तव पुत्रस्तु त्वरया परयाऽन्वितः ॥ 　२

तूर्णमभ्यद्रवद्द्रोणं मनोमारुतवेगवान् ॥ 　२॥

इह दृष्ट इतो नष्टस् सरथः प्राद्रवन्नृपः ॥ 　३

मुहूर्तादिव पुत्रस्ते द्रोणमासाद्य मारिष ।
उवाच चैनं पुत्रस्ते संरम्भाद्रक्तलोचनः ॥ 　४

---

1 क-च-ङ—अर्धद्वयं नास्ति

दुर्योधनः—

अर्जुनो भीमसेनश्च सात्यकिश्चापराजितः ।
विजित्य सर्वसैन्यानि सुमहान्ति महारथाः ॥ ५

सम्प्राप्तास्सिन्धुराजस्य समीपमनिवारिताः ।
[1]व्यायच्छन्ति च तत्रस्थास् सर्व एव महारथाः ॥ ६

यदि तावद्रणे पार्थो व्यतिक्रान्तो महारथः ।
कथं सात्यकिभीमाभ्यां व्यतिक्रान्तोऽसि मानद ॥ ७

[2]आश्चर्यभूतो लोकेऽस्मिन् समुद्रस्येव शोषणम् ।
निर्जयस्तव विप्रेन्द्र सात्वतेनार्जुनेन च ॥ ८

तथैव भीमसेनेन लोकस्संवदते भृशम् ॥ ८॥

कथं द्रोणो जितस्सङ्ख्ये धनुर्वेदस्य पारगः ।
नाश एव [3]तु मे नूनं मन्दभाग्यस्य संयुगे ॥ ९॥

यत्र त्वां पुरुषव्याघ्रम् अतिक्रान्तास्त्रयो रथाः ॥ १०

द्रोणः—

एवं गते तु कृत्येऽस्मिन् ब्रूहि यत् ते विवक्षितम् ।
यद्गतं गतमेवेह शेषं चिन्तय मानद ॥ ११

---

1. ख-ङ—अर्धद्वयं नास्ति    2. घ—आचार्य
3. ङ—भवेन्नूनं मम सैन्यस्य

दुर्योधनः—

[1-2]यत् कृत्यं सिन्धुराजस्य प्राप्तकाल[3]मनन्तरम् ।
तद्ब्रवीतु भवान् क्षिप्रं साधु तत् संविधीयताम् ॥ १२

द्रोणः—

चिन्त्यं बहु महाराज कृत्यं यत्तत्तु मे शृणु ।
त्रयोऽपि समतिक्रान्ताः पाण्डवानां महारथाः ॥ १३

यावदेव बलं पश्चात् तावदेव पुरस्सरम् ।
तद्गरीयस्तरं मन्ये यत्र कृष्णधनञ्जयौ ॥ १४

सा पुरस्ताच्च पश्चाच्च गृहीता भारती चमूः ।
तत्र कृत्यमहं मन्ये सैन्धवस्याभिरक्षणम् ॥ १५

स नो रक्ष्यतमस्तात क्रुद्धाद्भीतो धनञ्जयात् ।
गतौ हि सैन्धवं वीरौ युयुधानवृकोदरौ ॥ १६

तत्र द्यूतं हि सम्भूतं यत् तच्छकुनिबुद्धिजम् ।
न सभायां जयो वृत्तो नापि तत्र पराजयः ॥ १७

इह नो ग्लहमानानाम् अद्य तात जयाजयौ ।
यान् स्म तान् ग्लहते घोराञ् छकुनिः कुरुसंसदि ॥ १८

अक्षांस्तु मन्यमानस्स प्राक्शरास्ते [4]दुरावराः ।

---

1 ङ—यश्च कृत्यमतिक्रान्तः पाण्डवानां महारथः । [अधिकः पाठः]
2. ङ—अर्धचतुष्टयं नास्ति 3 क-ब—मरिन्दम
4. क-ब—दुरासदाः

यत्र ते [1]बह्वस्तात ग्लहमाना व्यवस्थिताः ॥ १९

सेनां दुरोदरं विद्धि शरानक्षान् विशां पते ।
[2]ग्लहं च सैन्धवं राजन्नत्र द्यूतं च निश्चयम् ॥ २०

सैन्धवे हि महद्द्यूतं समायत्तं परैस्सह ।
अत्र ते ध्रुवमायत्तो जयो वाऽजय एव वा ॥ २१

अत्र सर्वैर्महाराज त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ।
सैन्धवस्य रणे रक्षां विधिवत् कर्तुमर्हसि ॥ २२

तत्र नो ग्लहमानानां ध्रुवं तात जयाजयौ । २२॥

यत्र ते परमेष्वासा यत्ता रक्षन्ति सैन्धवम् ।
तत्र याहि स्वयं शीघ्रं तान् स्म रक्षस्व रक्षिणः ॥ २३॥

इहैव त्वहमासिष्ये प्रेषयिष्यामि चापरान् ।
निरोत्स्यामि च पाञ्चालान् सहितान् पाण्डुसृञ्जयैः ॥ २४॥

सञ्जयः—

ततो दुर्योधनः प्रायात् तूर्णमाचार्यशासनात् ।
उद्यम्यात्मानमुग्राय कर्मणे सपदानुगः ॥ २५॥

चक्ररक्षौ च पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ।
बाह्येन सेनामभ्येत्य जग्मतुस्सव्यसाचिनम् ॥ २६॥

तौ हि पूर्वं महाराज वारितौ कृतवर्मणा ।

---

1. क-ख—कुरव 2. ख—इदमर्धं नास्ति

प्रविष्टे त्वर्जुने तत्र तव सैन्यं युयुत्सया ॥ २७॥

पार्श्वं भित्त्वा चमूं तूर्णं प्रविष्टौ तव वाहिनीम् ॥ २८

ताभ्यां दुर्योध[1]नस्सार्धं योद्धुमिच्छत् सुदारुणम् ।
त्वरितस्त्वरमाणाभ्यां भ्रातृभ्यां सहसा बली ॥ २९

तावेनमभ्यगाहेताम् उभावुद्यतकार्मुकौ ।
महारथसमाख्यातौ क्षत्रियप्रवरौ युधि ॥ ३०

युधामन्युश्च पाञ्चाल्य उत्तमौजास्तथैव च ।
भित्त्वा पार्श्वेन सैन्यं तु प्रविष्टौ फल्गुनं प्रति ॥ ३१

तौ समासादयद्वीरश् शरैः कायास्थिभेदिभिः ।
सप्तभिश्च युधामन्युं षड्भिश्चैवोत्तमौजसम् ॥ ३२

तौ तं सुनिशितैर्बाणैर् अविध्येतां महारथौ ।
उत्तमौजास्तु भल्लेन चापं चिच्छेद वीर्यवान् ॥ ३३

अथान्यत् सुमहातेजा धनुर्गृह्य महाबलः ।
छादयामास सङ्क्रुद्धः पाञ्चालौ कुरुनन्दनः ॥ ३४

उत्तमौजास्तु सङ्क्रुद्धश् शरांस्त्रिशतमायतान् ।
व्यसृजत् तव पुत्रस्य त्वरमाणस्स्तनान्तरे ॥ ३५

दुर्योधनोऽपि राजेन्द्र पाञ्चालस्यौत्तमौजसः ।

1. ङ—नो राजन् समाछंद्युद्धमुत्तमम्

जघान चतुरोऽस्याश्वान् उभौ च पार्ष्णिसारथी ॥ ३६

उत्तमौजा हताश्वस्तु हतसूतश्च संयुगे ।
युधामन्युरथं शीघ्रम् आरुरोह परन्तपः ॥ ३७

तं भ्रातुस्स रथं प्राप्य दुर्योधनहयाञ् शरैः ।
बहुभिस्ताडयामास ते हताः प्रापतन् भुवि ॥ ३८

हयेषु पतितेष्वस्य चिच्छेद परमेषुणा ।
युधामन्यू रथं शीघ्रं शरावापं च संयुगे ॥ ३९

तथोत्तमौजास्सङ्क्रुद्धश् शरैर्हेमपरिष्कृतैः ।
अविध्यत् सारथिं चास्य प्राहिणोद्यमसादनम् ॥ ४०

हताश्वसूतात् सरथाद् अवतीर्य महारथः ।
गदामादाय ते पुत्रः पाञ्चाल्यावभ्यधावत ॥ ४१

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य क्रुद्धं परपुरञ्जयम् ।
अवप्लुतौ रथोपस्थाद् युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ ४२

ततस्स हेमचित्राङ्गं स्यन्दनप्रवरं गदी ।
गदया चूर्णयामास साश्वसूतध्वजं रणे ॥ ४३

एतदीदृशकं कार्षीत् पुत्रस्तव जनाधिप ।
गदया गदिनां श्रेष्ठस् सर्वलोकमहारथः ॥ ४४

भङ्क्त्वा रथं स पुत्रस्ते हताश्वो हतसारथिः ।
मद्रराजरथं तूर्णम् आरुरोह परन्तपः ॥ ४५

पाञ्चालानां तु मुख्यौ तौ राजपुत्रौ महाबलौ ।
रथावन्यौ समास्थाय धनञ्जयमुपेयतुः ॥　　४६

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥
[अस्मिन्नध्याये ४६ श्लोकाः]

---

## ॥ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥

---

भीमेन कर्णस्य पराजयः ॥

---

सञ्जयः—

वर्तमाने महाराज सङ्ग्रामे रोमहर्षणे ।
व्याकुलेषु च सैन्येषु पीड्यमानेषु संयुगे ॥　　१

राधेयो भीममागच्छद् युद्धाय भरतर्षभ ।
यथा नागो वने नागं मत्तो मत्तमभिद्रवेत् ॥　　२

ततो व्यायच्छतामस्त्रैः पृथक् पृथगरिन्दमौ ।
मृदुपूर्वं च राधेयो दृढपूर्वं च पाण्डवः ॥　　३

धृतराष्ट्रः—

यौ तौ कर्णश्च भीमश्च सम्प्रयुद्धौ महाबलौ ।
अर्जुनस्य रथोपान्ते कीदृशस्सोऽभवद्रणः ॥　　४

पूर्वं हि निर्जितः कर्णो भीमसेनेन संयुगे ।

कथं भूयोऽपि राधेयो भीममागान्महारथम् ॥ ५

भीमो वा सूततनयं प्रत्युद्यातः कथं रणे ।
महारथसमाख्यातं पृथिव्यां प्रवरं रथम् ॥ ६

द्रोणभीष्मावतिक्रम्य धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नान्यतो भयमादत्ते विना कर्णं धनुर्धरम् ॥ ७

भयान्न शेते सततं चिन्तयन् वै महारथम् ।
तं कथं सूतपुत्रं हि भीमोऽयुध्यत संयुगे ॥ ८

ब्रह्मण्यं वीर्यसम्पन्नं समरेष्वनिवर्तिनम् ।
कथं कर्णं युधां श्रेष्ठं भीमोऽयुध्यत संयुगे ॥ ९

यौ तौ समीयतुर्वीरावर्जुनस्य रथं प्रति ।
कथं नु तावयुध्येतां सूतपुत्रवृकोदरौ ॥ १०

भ्रातृत्वं दर्शितं पूर्वं घृणी चापि स सूतजः ।
कथं युध्यति भीमेन कुन्त्या वाक्यमनुस्मरन् ॥ ११

भीमो वा सूतपुत्रस्य स्मरन् वैरं पुरा कृतम् ।
अयुध्यत रणे शूरः कथं कर्णेन संयुगे ॥ १२

[1]आशास्ते च सदा सूतपुत्रे दुर्योधनो मम ।
कर्णो जेष्यति सङ्ग्रामे सहितान् पाण्डवानिति ॥ १३

जयाशा यत्र मन्दस्य मम पुत्रस्य सञ्जय ।

---

1. ख—इदमादि अर्धचतुष्टयं नास्ति

स कथं भीमकर्माणं भीमसेनमयुध्यत ॥　　१४

यं समाश्रित्य पुत्रैर्मे कृतं वैरं महारथैः ।
स सूततनयस्तात कथं भीममयोधयत् ॥　　१५

[1]अनेकान् विप्रकारांश्च सूतपुत्रसमुद्भवान् ।
स्मरमाणः कथं भीमो युयुधे सूतसूनुना ॥　　१६

योऽजयत् पृथिवीं सर्वां रथेनैकेन वीर्यवान् ।
तं सूततनयं युद्धे कथं भीमोऽभ्ययोधयत् ॥　　१७

यो जातः कुण्डलाभ्यां वै कवचेन च वीर्यवान् ।
तं सूतपुत्रं समरे कथं भीमोऽभ्ययोधयत् ॥　　१८

[2]अस्त्रहेतोः पुरा तात भार्गवं समपूजयत् ।
तस्य प्रसादाद्ब्रह्मास्त्रं लब्धवांश्च भृगूत्तमात् ॥　　१९

यथा तयोर्युद्धमभूद् यश्चैव विजयी तयोः ।
तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥　　२०

सञ्जय.—

भीमसेनस्तु राधेयम् उत्सृज्य रथिनां वरम् ।
इयेष गन्तुं यत्रास्तां वीरौ कृष्णधनञ्जयौ ॥　　२१

तं प्रयान्तमनादृत्य राधेयः कङ्कपत्रिभिः ।

---

1. ङ—बाल्यात्प्रभृति यो धीमान् क्लेशान् बहुविधांस्तदा ।
2. ख—अर्धद्वयं नास्ति　　[पाठान्तरम्]

अभ्यवर्षन्महाराज मेघो वृष्ट्या यथाऽचलम् ॥ २२

फुल्लेन पङ्कजेनेव वक्त्रेणाभ्युत्स्मयन् बली ।
आजुहाव रणे यान्तं भीममातिरथिस्तदा ॥ २३

भीमसेनस्तदाह्वानं कर्णे नामर्षयद्युधि ॥ २३॥

[1]अथ मण्डलमावृत्य सूतपुत्रमयोधयत् ।
अवक्रगामिभिर्बाणैर् अभ्यवर्षन्महायसैः ॥ २४॥

दंशितं द्वैरथे यत्तं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
विधित्सुः कलहस्यान्तं जिघांसुः कर्णमक्षमी ॥ २५॥

तं च हत्वेतरान् सर्वान् हन्तुकामो महारथः ।
तस्मै व्यसृजदुग्राणि विविधानि परंतपः ॥ २६॥

अमर्षी पाण्डवः क्रुद्धश् शरवर्षाणि मारिष ॥ २७

तस्य तानीषुवर्षाणि मत्तद्विरदगामिनः ।
सूतपुत्रोऽस्त्रमायाभिर् अग्रसत् सुमहारथः ॥ २८

स यथावन्महाबाहुर् विद्यया वै सुपूजितः ।
आचार्यवन्महेष्वासः कर्णः पर्यपतद्रथी ॥ २९

संरम्भेण च युध्यन्तं भीमसेनं हसन्निव ।
अत्यमन्यत राधेयः कर्णो मानी वृकोदरम् ॥ ३०

तन्नामृष्यत कौन्तेयः कर्णस्य स्मितमाहवे ।

---

1 ख-ङ—अर्ध

युध्यमानेषु वीरेषु पश्यत्सु च समन्ततः ॥ ३१

तं भीमसेनस्सम्प्राप्तं वत्सदन्तैस्स्तनान्तरे ।
विव्याध बलवत् क्रुद्धस् तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ ३२

सूतं तु सूतपुत्रस्य सुपुङ्खैर्निशितैश्शरैः ।
विमुक्तैश्चित्रवर्माणं निर्बिभेद त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ३३

अश्वाञ् जाम्बूनदैर्जालैः प्रच्छन्नान् वातरंहसः ।
विव्याधातिरथिर्वीरः पञ्चभिः पञ्चभिश्शरैः ॥ ३४

[1]ततो बाणमयं वर्षं भीमसेनरथं प्रति ।
कर्णेन विहितं राजन् निमेषार्धाददृश्यत ॥ ३५

स रथस्सध्वजस्तस्य ससूतः पाण्डवस्य ह ।
प्राच्छाद्यत महाराज कर्णचापच्युतैश्शरैः ॥ ३६

तं स कर्णश्चतुष्षष्ट्या विव्याध कवचं दृढम् ।
क्रुद्धश्चाभ्यहनत् पार्थं नाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥ ३७

ततोऽचिन्त्य महावेगान् कर्णकार्मुकनिस्सृतान् ।
समाश्लिष्यदसम्भ्रान्तस् सूतपुत्रं वृकोदरः ॥ ३८

स कर्णचापप्रभवान् इषूनाशीविषोपमान् ।
बिभ्रद्भीमो महाबाहुर् नाजगाम व्यथां रणे ॥ ३९

ततो द्वात्रिंशता भल्लैर् निशितैस्तिग्मतेजनैः ।

---

1 ङ—अर्धचतुष्टयं नास्ति

विव्याध समरे कर्णं भीमसेनः प्रतापवान् ॥ ४०

[1-2]अयत्नेनैव तं कर्णश् शरैरुपसमाकिरत् ।
भीमसेनं महाबाहुं सैन्धवस्य वधैषिणम् ॥ ४१

मृदुपूर्वं च राधेयो भीममाजावयोधयत् ।
क्रुद्धो वै भीमसेनस्तु पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ४२

तं भीमसेनो नामृष्यद् अवमानममर्षितः ।
स तस्मै व्यसृजत् तूर्णं शरवर्षममित्रजित् ॥ ४३

ते शराः प्रेषिता राजन् भीमसेनेन संयुगे ।
सम्पेतुस्सर्वतो भीमाः कूजन्त इव पक्षिणः ॥ ४४

हेमपुङ्खा महावेगा भीमसेनधनुश्च्युताः ।
अभ्यद्रवन्त राधेयं व्याघ्राः क्षुद्रमृगं यथा ॥ ४५

कर्णस्तु रथिनां श्रेष्ठश् छाद्यमानस्समन्ततः ।
राजन् व्यसृजदुग्राणि शरवर्षाणि मारिष ॥ ४६

तस्य तानशनिप्रख्यान् इषून् समरशोभिनः ।
चिच्छेद बहुभिर्भल्लैर् अनवाप्तान् वृकोदरः ॥ ४७

पुनश्च शरवर्षेण च्छादयामास भारत ।
कर्णो वैकर्तनो युद्धे भीमसेनं महारथम् ॥ ४८

---

1. ङ—आयसैरेव तं कर्णं शरवर्षममित्रजित् । [अधिकः पाठः]
2 ङ—अर्धषट्कं नास्ति

तत्र भारत भीमं तु दृष्टवन्तस्तु सायकैः ।
समाचिततनुं सङ्ख्ये श्वाविधं शललैरिव ॥　　४९

हेमपुङ्खाञ्छिलाधौतान् कर्णचापच्युताञ् छरान् ।
दधार समरे वीरस् स्वरश्मीनिव भास्करः ॥　　५०

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गो भीमसेनो व्यरोचत ।
तपनीयनिभैः पुष्पैः पलाश इव कानने ॥　　५१

तत् तु भीमो महाराजः कर्णस्य चरितं रणे ।
नामृष्यत महाराजः क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी ॥　　५२

स कर्णं पञ्चविंशत्या नाराचानां समर्पयत् ।
महीधरमिव श्वेतं गूढपादैर्विषोल्बणैः ॥　　५३

[1]अर्धमण्डलमावृत्य सूतपुत्रमपोथयत् ।
[2]आपतन्नेव तं कर्णश् शरैरुपसमाकिरत् ॥　　५४

उपसृत्य प्रहासेन तमाविध्यत् स्मयन्निव ।
तं विव्याध पुनर्भीमष् षड्भिरष्टाभिरेव च ॥　　५५

मर्मस्वमरविक्रान्तं सूतपुत्रं महारणे ॥　　५५॥

ततः कर्णस्य सङ्क्रुद्धो भीमसेनः प्रतापवान् ।
चिच्छेद कार्मुकं तूर्णं सर्वोपकरणानि च ॥　　५६॥

---

1. क-ख-घ—अर्धद्वयं नास्ति
2. ङ—चिच्छेद कार्मुकं तूर्णं सर्वोपकरणानि च ।　　[अधिक' पाठः]

जघान त्वरितोऽश्वांश्च सूतं च त्वरितश्शरैः ।
नाराचैरर्करश्म्याभैः कर्णं विव्याध चोरसि ॥ ५७॥

ते जग्मुर्धरणीं बाणाः कर्णं निर्भिद्य मारिष ।
यथा हि जलदं भित्त्वा राजन् सूर्यस्य रश्मयः ॥ ५८॥

स वैकल्यं महत् प्राप्य च्छिन्नधन्वा शरार्दितः ।
तथा पुरुषमानी सन् लज्जामुत्सृज्य भारत ॥ ५९॥

भीमसेनभयात् कर्णः प्रत्यपायाद्रथान्तरम् ॥ ६०

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ६० श्लोकाः ]

## ॥ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥

भीमकर्णयोर्युद्धम् ॥

धृतराष्ट्रः—

यस्मिञ्जयाशा सततं पुत्राणां मम सञ्जय ।
तं दृष्ट्वा विमुखं यान्तं किं नु दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ १

कर्णोऽपि समरे तात किमकार्षीदतः परम् ।
भीमसेनं रणे दृष्ट्वा ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ २

सञ्जयः—

रथमन्यं समास्थाय विधिवत् कल्पितं पुनः ।
अभ्ययात् पाण्डवं कर्णो वातोद्धूत इवार्णवः ॥ ३

क्रुद्धमातिरथिं दृष्ट्वा पुत्रास्तव विशां पते ।
भीमसेनममन्यन्त वैश्वानरमुखे हुतम् ॥ ४

चापशब्दं महत् कृत्वा तलशब्दं च भैरवम् ।
अभ्यवर्तत राधेयो भीमसेनरथं प्रति ॥ ५

पुनरेव तयो राजन् महानासीत् सुदारुणः ।
विमर्दस्सूतपुत्रस्य भीमस्य च विशां पते ॥ ६

सुसंरब्धौ महाबाहू परस्परवधैषिणौ ।
अन्योन्यमीक्षांचक्राते दहन्ताविव लोचनैः ॥ ७

क्रोधरक्तेक्षणौ क्रुद्धौ निश्श्वसन्ताविवोरगौ ।
युद्धेऽन्योन्यं समासाद्य ततक्षतुररिन्दमौ ॥ ८

व्याघ्राविव सुसङ्क्रुद्धौ श्येनाविव च शीघ्रगौ ।
शरभाविव संरब्धौ युयुधाते परस्परम् ॥ ९

ततो भीमस्स्मरन् क्लेशान् अक्षद्यूते वनेऽपि च ।
विराटनगरे यच्च दुःखं प्राप्तमरिन्दमैः ॥ १०

राष्ट्राणां स्फीतरत्नानां हरणं च तवात्मजैः ।
सततं च परिक्लेशान् सपुत्रेण कृतांस्त्वया ॥ ११

दग्धुमैच्छच्च यः कुन्तीं सहपुत्रामनागसीम् ।
कृष्णायाश्च सभामध्ये परिक्लेशं दुरात्मभिः ॥ १२

पतिमन्यं परीप्सस्व न सन्ति पतयस्तव ।
पङ्के निपतिताः पार्थास् सर्वे षण्डतिला इति ॥ १३

समक्षं तव कौरव्य यदूचुस्तनयास्तदा ।
दासीभावेन कृष्णां च भोक्तुकामास्तवात्मजाः ॥ १४

यत्र प्रव्राजितान् पार्थान कृष्णाजिननिवासिनः ।
परुषाण्युक्तवान् कर्णस् सभायां सन्निधौ तव ॥ १५

तृणीकृत्य च यत् पार्थान सूतपुत्रो जजल्प ह ।
विषमस्थान् समस्थो हि संरम्भाद् गतचेतनः ॥ १६

बाल्यात् प्रभृति यानि स्युस् तानि दुःखानि चिन्तयन् ।
निरविद्यत धर्मात्मा जीवितेन वृकोदरः ॥ १७

[1]एवं बहुविधान् घोरान् स्मरन् दीप्ताग्निसन्निभः ।
ततो विष्फार्य सुमहद्धेमपृष्ठं दुरासदम् ॥ १८

चापं भरतशार्दूलस् त्यक्तात्मा कर्णमभ्ययात् ॥ १८॥

स सायकमयैर्जालैर् भीमः कर्णरथं प्रति ।
भानुमद्भिश्शिलाधौतैर् भानोः प्राच्छादयत् प्रभाम् ॥ १९॥

ततः प्रहस्यातिरथिस् तूर्णमस्यञ् शिताञ् शरान् ।

---

1. ख—इदमर्धं नास्ति

व्यधमद्भीमसेनस्य शरजालानि पत्रिभिः ॥ २०॥

महाराज महाबाहुर् महावेगैर्महारथम् ।
विव्याधातिरथि[1]र्भीमं नवभिर्निशितैश्शरैः ॥ २१॥

स तोत्रैरिव मातङ्गो वार्यमाणः पतत्त्रिभिः ।
अभ्यधावदसम्भ्रान्तस् सूतपुत्रं वृकोदरः ॥ २२॥

तमापतन्तं वेगेन रभसं पाण्डवं रणे ।
कर्णः प्रत्युद्ययौ योद्धुं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ २३॥

ततः प्रध्माप्य जलजं भेरीशतविनादितम् ।
अक्षोभयद्बलं हर्षाद् उद्धूत इव सागरः ॥ २४॥

तदुद्धूतं बलं दृष्ट्वा रथनागाश्वपत्तिमत् ।
भीमः कर्णं समासाद्य च्छादयामास संयुगे ॥ २५॥

अश्वानृश्यसवर्णांस्तु हंसवर्णैर्हयोत्तमैः ।
व्यामिश्रयद्रणे कर्णः पाण्डवं छादयञ् छरैः ॥ २६॥

ऋश्यवर्णान् हंसवर्णैर् विमिश्रान् वातरंहसः ।
आलोक्य तव पुत्राणां हाहाभूतमभूद्बलम् ॥ २७॥

ते हया बह्वशोभन्त मिश्रिता वातरंहसः ।
[2]सितासिता महाराज यथा व्योम्नि वलाहकाः ॥ २८॥

---

1 क-घ—स्तूर्णं

2 ख-(सितासिता) एतदादि अनन्तराध्याये 'कृतवान् यानि युद्धानि' इति अष्टमश्लोकपर्यन्तं नास्ति

संयत्तौ क्रोधताम्राक्षौ प्रेक्ष्य कर्णवृकोदरौ ।
सन्त्रस्तास्समकम्पन्त त्वदीयानां महारथाः ॥ २९॥

[1]यमराष्ट्रोपमं घोरम् आसीदायोधनं तयोः ।
दुर्दर्शं भरतश्रेष्ठ प्रेतराजपुरं यथा ॥ ३०॥

समाजमिव तच्चित्रं प्रेक्षमाणा महारथाः ।
नालक्षयञ्जयं व्यक्तम् एकस्यैकस्य वा रणे ॥ ३१॥

तयोरथासीत् सम्मर्दस् सन्निकृष्टो महास्त्रयोः ।
तव दुर्मन्त्रिते राजन् सपुत्रस्य विशां पते ॥ ३२॥

छादयन्तौ हि शत्रुघ्नावन्योन्यमपराजितौ ।
शरजालावृतं व्योम चक्राते शरवृष्टिभिः ॥ ३३॥

तावन्योन्यं जिघांसन्तौ शरैस्तीक्ष्णैर्महारथौ ।
प्रेक्षणीयतरावास्तां वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ॥ ३४॥

सुवर्णविकृतान् बाणान् विमुञ्चन्तावरिन्दमौ ।
भास्वरं व्योम चक्राते बहूल्काभिरिव प्रभो ॥ ३५॥

ताभ्यां मुक्ताः प्रकाशन्ते कङ्कबर्हिणवाससः ।
पङ्क्त्यश्शरदि मत्तानां सारसानामिवाम्बरे ॥ ३६॥

संसक्तं सूतपुत्रेण दृष्ट्वा भीममरिंदमम् ।
अतिभारममन्येतां भीमे कृष्णधनञ्जयौ ॥ ३७॥

---

1 ङ—अर्धद्वयं नास्ति

वारयेद्यो रणे कर्णस् सदेवासुरमानवान् ॥ २

स कथं पाण्डवं युद्धे भ्राजमानमिव श्रिया ।
नातरत् संयुगे तात तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ३

भूयः कथमभूद्युद्धं तयोः प्रणदतो रणे ।
अत्र मन्ये समायत्तो जयो वाऽजय एव वा ॥ ४

कर्णं प्राप्य रणे सूत मम पुत्रस्सुयोधनः ।
जेतुमुत्सहते पार्थान् सगोविन्दान् ससात्वतान् ॥ ५

श्रुत्वा तु निर्जितं कर्णम् असकृद्भीमकर्मणा ।
भीमसेनेन समरे मोहो मां सूत आविशत् ॥ ६

नष्टानेव कुरून् मन्ये मम पुत्रस्य दुर्नयैः ।
न हि कर्णो महेष्वासान् पार्थाञ्जेष्यति [1]सञ्जय ॥ ७

कृतवान् यानि युद्धानि कर्णः पाण्डुसुतैस्सह ।
सर्वत्र पाण्डवाः कर्णम् अजयंस्ते रणाजिरे ॥ ८

अजेयाः पाण्डवास्सूत देवैरपि सवासवैः ।
न च तद्बुध्यते मन्दः पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ ९

[2]धनं धनेश्वरस्येव मन्दः पार्थस्य मे सुतः ।
मधुलिप्सुरिवाबुद्धिः प्रपातं नावबुध्यते ॥ १०

निकृत्या निकृतिप्रज्ञो राज्यं हृत्वा महात्मनाम् ।

---

1. क-घ-ङ—संयुगे 2 ख—इदमर्धं नास्ति

जितमित्येव मन्वानः पाण्डवानवमन्यते ॥ ११

पुत्रस्नेहाभिभूतेन मया चाप्यकृतात्मना ।
धर्मे स्थिता महाभागा निकृताः पाण्डुनन्दनाः ॥ १२

शमकामस्सदा पार्थो धर्मान्वेषी युधिष्ठिरः ।
अशक्त इति मन्वानैः पुत्रैर्मे स निराकृतः ॥ १३

तानि दुःखान्यनेकानि विप्रकारांश्च पाण्डवः ।
हृदि कृत्वा महाबाहुर् भीमोऽयुध्यत सूतजम् ॥ १४

तस्मान्मे सञ्जय ब्रूहि कर्णभीमौ यथा रणे ।
अयुध्येतां युधां श्रेष्ठौ परस्परवधैषिणौ ॥ १५

सञ्जयः—

शृणु राजन् यथावृत्तं सङ्ग्रामं भीमकर्णयोः ।
परस्परवधप्रेप्स्वोर् वनकुञ्जरयोरिव ॥ १६

राजन् वैकर्तनो भीमं क्रुद्धः क्रुद्धमरिन्दमम् ।
पराक्रान्तं पराक्रम्य विव्याध त्रिशता शरैः ॥ १७

महावेगैः प्रसन्नाग्रैश् शातकुम्भमयैर्दृढैः ।
नातरद्भरतश्रेष्ठ भीमं वैकर्तनश्शरैः ॥ १८

तस्यास्यतो धनुर्भीमश् चकर्त विशिखैस्त्रिभिः ।
रथनीडाच्च यन्तारं भल्लेनापातयत् क्षितौ ॥ १९

स काङ्क्षन् भीमसेनस्य वधं वैकर्तनो रणे ।

शक्तिं कनकवैडूर्यचित्रदण्डां परामृशत् ॥ २०

प्रतिगृह्य महाशक्तिं कालरात्रिमिवापराम् ।
समुत्क्षिप्य च राधेयस् संलक्ष्य च महाबलम् ॥ २१
चिक्षेप भीमसेनस्य प्राणानिव विचिन्वतीम् ॥ २१॥

शक्तिं विसृज्य राधेयः पुरन्दर इवाशनिम् ।
ननाद बलवान् नादं नादेनानादयज्जगत् ॥ २२॥

तस्य नादं भृशं श्रुत्वा पुत्रास्ते हृषिताभवन् ॥ २३

तां कर्णभुजनिर्मुक्ताम् अर्कवैश्वानरप्रभाम् ।
शक्तिं वियति चिच्छेद भीमस्सप्तभिराशुगैः ॥ २४

छित्त्वा शक्तिं ततो भीमो निर्मुक्तोरगसन्निभाम् ।
मार्गमाणामिव प्राणान् सूतपुत्रस्य पाण्डवः ॥ २५

प्राहिणोन्नव संरब्धश् शरान् बर्हिणवाससः ।
स्वर्णपुङ्खाञ् शिलाधौतान् यमदण्डोपमान् रणे ॥ २६

कर्णोऽप्यन्यद्धनुर्गृह्य हेमपृष्ठं दुरानमम् ।
विकृष्य च महातेजा व्यसृजत् सायकान् नव ॥ २७

तान् पाण्डुपुत्रश्चिच्छेद नवभिर्नतपर्वभिः ।
वसुषेणविनिर्मुक्तान् नव राजन् महाशरान् ॥ २८

सुवर्णविकृतैर्बाणैस् सुवर्णविकृताञ् शरान् ।
छित्त्वा भीमो महाराज नादं सिंह इवानदत् ॥ २९

तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ वाशितान्तरे ।
शार्दूलाविव चान्योन्यम् अभीक्ष्णं सञ्जगर्जतुः ॥　　३०

अन्योन्यं प्रजिगीषन्तावन्योन्यस्यान्तरैषिणौ ।
अन्योन्यमन्ववेक्षेतां गोष्ठे गोवृषभाविव ॥　　३१

महागजाविवासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् ।
[1]शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैर् अन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥　　३२

निर्दहन्तौ महाराज शस्त्रवृष्ट्या परस्परम् ।
अन्योन्यमभिसंरब्धौ क्रोधादुद्वृत्तलोचनौ ॥　　३३

प्रहसन्तौ तथाऽन्योन्यं भर्त्सयन्तौ मुहुर्मुहुः ।
शङ्खशब्दं च कुर्वाणौ युयुधाते परस्परम् ॥　　३४

तस्य भीमः पुनश्चापं मुष्टौ चिच्छेद मारिष ।
शङ्खवर्णांश्च तानश्वान् शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥　　३५

तथा कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कर्णं दुर्योधनो नृपः ।
वेपमान इव क्रोधाद् आदिदेश च दुर्जयम् ॥　　३६

दुर्योधनः—
गच्छ दुर्जय राधेयं पुरा ग्रसति पाण्डवः ।
जहि तूबरकं क्षिप्रं कर्णस्य बलमादधत् ॥　　३७

सञ्जयः—
एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा तव पुत्रस्तवात्मजम् ।

---

1 ख—अर्धपञ्चकं नास्ति

अभ्यद्रवद्भीमसेनं व्यासक्तं विकिरञ् छरान् ॥ ३८

स भीमं दशभिर्बाणैर् अश्वानष्टाभिरर्पयत् ।
षड्भिस्सूतं त्रिभिः केतुं पुनर्भीमं च पञ्चभिः ॥ ३९

भीमसेनोऽपि सङ्क्रुद्धस् साश्वयन्तारमाशुगैः ।
दुर्जयं भिन्नमर्माणम् अनयद्यमसादनम् ॥ ४०

बाढं हतं क्षितौ क्षुण्णं वेष्टमानमिवोरगम् ।
[1]रुदन्नार्तस्तव सुतं कर्णश्चक्रे प्रदक्षिणम् ॥ ४१

स तु तं विरथीकृत्य स्मरन्नत्यन्तवैरिणम् ।
समाचिनोद्बाणगणैश् शतघ्नीमिव शङ्कुभिः ॥ ४२

तथा तु विरथः क्षुण्णश् छाद्यमानश्च सायकैः ।
न जहौ समरे भीमं क्रुद्धरूपं परन्तप ॥* ४३

स तथा विरथः कर्णः पुनर्भीमेन निर्जितः ।
रथमन्यं समास्थाय क्रुद्धो विव्याध पाण्डवम् ॥ ४४

महागजाविवासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् ।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैर् अन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ ४५

अथ कर्णश्शरव्रातैर् भीमं बलवदर्पयत् ।
ननाद च महानादं पुनर्विव्याध चोरसि ॥ ४६

---

1. ङ—अर्धचतुष्टयं नास्ति

* सर्वेषु कोशेषु अत्रैवाध्यायसमाप्तिर्दृश्यते ।

भीमोऽपि दशभिस्तीक्ष्णैः प्रत्यविध्यदजिह्मगैः ।
पुनर्विव्याध सप्तत्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ ४७

कर्णस्तु नवभिर्भीमं विध्वा राजन् स्तनान्तरे ।
ध्वजमेकेन विव्याध विशोकं च त्रिभिश्शरैः ॥ ४८

प्रतिविव्याध तं पार्थस् त्रिषष्ट्या निशितैश्शरैः ।
तोत्रैरिव महानागं कशाभिरिव वाजिनम् ॥ ४९

सोऽतिविद्धो महाराज पाण्डवेन यशस्विना ।
सृक्किणी लेलिहन् वीरः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ५०

ततश्शरं महाराज सर्वकायावदारणम् ।
प्राहिणोद्भीमसेनाय बलायेन्द्र इवाशनिम् ॥ ५१

स निर्भिद्य रणे पार्थं सूतपुत्रधनुश्च्युतः ।
अगच्छद्दारयन् भूमिं रुक्मपुङ्खश्शिलीमुखः ॥ ५२

ततश्शैक्यां चतुष्किष्कुं गुर्वीं रुक्माङ्गदां गदाम् ।
प्राहिणोत् सूतपुत्राय षडश्रामविचारयन् ॥ ५३

तया जघानातिरथेस् सदश्वान् साधुवाहिनः ।
गदया भारतः क्रुद्धो वज्रेणेन्द्र इवासुरान् ॥ ५४

धनुर्गृहीत्वा स पुनः क्षुराभ्यां भरतर्षभः ।
ध्वजमातिरथेश्छित्त्वा सूतमप्यवधीच्छरैः ॥ ५५

हताश्वसूतमुत्सृज्य रथं स पतितध्वजम् ।
विष्फारयन धनुः कर्णस् तस्थौ भारत दुर्मनाः ॥ ५६

तत्राद्भुतमपश्याम राधेयस्य पराक्रमम् ।
विरथो रथिनां श्रेष्ठो वारयामास यद्रिपुम् ॥ ५७

विरथं रथिनां श्रेष्ठं दृष्ट्वाऽऽतिरथिमाहवे ।
दुर्योधनस्तदा राजन्नभ्यभाषत दुर्मुखम् ॥ ५८

दुर्योधनः—

एष दुर्मुख राधेयो भीमेन विरथीकृतः ।
तं रथेन रथश्रेष्ठ सम्पादय महारथम् ॥ ५९

सञ्जयः—

ततो दुर्योधनवचश् श्रुत्वा भारत दुर्मुखः ।
त्वरमाणोऽभ्ययात् कर्णं भीमं चैवाकिरच्छरैः ॥ ६०

दुर्मुखं प्रेक्ष्य सङ्ग्रामे सूतपुत्रपदानुगम् ।
भीमसेनः प्रहृष्टोऽभूत् सृक्किणी चापि लेलिहन ॥ ६१

ततः कर्णं महाराज वारयित्वा शिलीमुखैः ।
दुर्मुखाय रथं तूर्णं प्रेषयामास पाण्डवः ॥ ६२

तस्मिन् क्षणे महाराज नवभिर्नतपर्वभिः ।
सुमुखैर्दुर्मुखं भीमश् शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ ६३

ततस्तमेवातिरथिस् स्यन्दनं दुर्मुखे हते ।

आस्थितः प्रययौ राजन् दीप्यमान इवानलः ॥ ६४

शयानं भिन्नमर्माणं दुर्मुखं शोणितोक्षितम् ।
दृष्ट्वा कर्णोऽश्रुपूर्णाक्षो मुहूर्तं नाभ्यवर्तत ॥ ६५

तं गतासुमतिक्रम्य कृत्वा कर्णः प्रदक्षिणम् ।
उष्णमार्तं श्वसन् वीरो न किञ्चित् प्रत्यपद्यत ॥ ६६

तस्मिंस्तु विवरे राजन् नाराचान् गृध्रवाससः ।
प्राहिणोत् सूतपुत्राय भीमसेनश्चतुर्दश ॥ ६७

ते तस्य कवचं भित्त्वा [1]महोरस्कस्य चाप्युरः ।
हेमपुङ्खा व्यराजन्त द्योतयन्तो दिशो दश ॥ ६८

तेऽपिबन् सूतपुत्रस्य शोणितं रक्तभोजनाः ।
क्रुद्धा इव मनुष्येन्द्र भुजगाः कालचोदिताः ॥ ६९

ते मेदिनीं प्रसर्पन्तश् शोभन्ते रुधिरोक्षिताः ।
अर्धप्रविष्टास्संरब्धा बिलानीव महोरगाः ॥ ७०

तं प्रत्यविध्यद्राधेयो जाम्बूनदविभूषणैः ।
चतुर्दशभिरायत्तो नाराचैरविचारयन् ॥ ७१

ते भीमसेनस्य भुजं सव्यं निर्भिद्य पत्रिणः ।
[2]विदार्य प्राविशन् भूमिं क्रौञ्चं पत्ररथा इव ॥ ७२

---

1. ङ—अयं पादोऽनन्तरश्च न स्तः
2. अ—अर्धषट्कं नास्ति

ते व्यरोचन्त नाराचाः प्रविशन्तो वसुन्धराम् ।
अस्तं गच्छन्तमादित्यं प्रविशन्त इवांशवः ॥ ७३

स निर्भिन्नो रणे भीमो नाराचैर्मर्मभेदिभिः ।
सुस्राव रुधिरं भूरि पर्वतस्सलिलं यथा ॥ ७४

स भीमस्त्रिभिरायत्तस् सूतपुत्रं पतत्रिभिः ॥
सुवर्णपुङ्खैर्विव्याध सारथिं चास्य सप्तभिः ॥ ७५

स विह्वलो महाराज कर्णो भीमशराहतः ।
प्राद्रवज्जवनैरश्वै रणं हित्वा महारथः ॥ ७६

भीमसेनस्तु विष्फार्य चापं रुक्माङ्गदं दृढम् ।
आहवेऽतिरथोऽतिष्ठज् ज्वलन्निव हुताशनः ॥ ७७

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥
[ अस्मिन्नध्याये ७७ श्लोकाः ]

## ॥ सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥

भीमेन दुर्मर्षणादिदुर्योधनानुजानां पञ्चानां हननम् ॥

धृतराष्ट्रः—

दैवमेव परं मन्ये पौरुषं तु निरर्थकम् ।
यत्राधिरथिरायत्तो नातरत् पाण्डवं रणे ॥ १

कर्णः पार्थान् सगोविन्दाञ् जेतुमुत्सहते रणे ॥ १॥

न च कर्णसमं योधं लोके पश्यामि कञ्चन ।
इति दुर्योधनस्याहम् अश्रौषं जल्पतो मुहुः ॥ २॥

कर्णो हि बलवाञ् छूरो दृढधन्वा जितक्लमः ।
इति मामब्रवीत् सूत मन्दो दुर्योधनः पुरा ॥ ३॥

वसुषेणसहायं मां नालं देवाश्च बाधितुम् ।
किमु पाण्डुसुता राजन् गतसत्त्वा विचेतसः ॥ ४॥

तं तत्र निर्जितं दृष्ट्वा भुजङ्गमिव निर्विषम् ।
युद्धात् कर्णमपक्रान्तं किंस्विद्दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ५॥

अहो दुर्मुखमेवैकं युद्धानामविशारदम् ।
प्रावेशयद्धुतवहं पतङ्गमिव मोहितः ॥ ६॥

अश्वत्थामा मद्रराजः कृपः कर्णश्च सङ्गताः ।
न शक्तास्समरे स्थातुं नूनं भीमस्य सञ्जय ॥ ७॥

तेऽपि चास्य महाघोरं बलं नागायुतोपमम् ।
जानन्तो व्यवसायं च क्रूरं मारुतरंहसः ॥ ८॥

किमर्थं क्रूरकर्माणं कालसूर्यान्तकोपमम् ।
बलसंरम्भवीर्यज्ञाः पाण्डवं समकोपयन् ॥ ९॥

कर्णस्त्वेको महाबाहुस् स्वबाहुबलमाश्रितः ।
भीमसेनमनादृत्य युयुधे शत्रुकर्शनः ॥ १०॥

योऽजयत् समरे कर्णं पुरन्दर इवासुरम् ।
[1]न स पाण्डुसुतो जेतुं शक्यस्सङ्ख्ये कथञ्चन ॥ ११॥

योऽजयत् समरे कर्णं वज्रहस्त इवाचलम् ।
द्रोणं यः सम्प्रमथ्यैकः प्रविष्टो मम वाहिनीम् ॥ १२॥

भीमो धनञ्जयान्वेषी कस्तमृच्छेज्जिजीविषुः ॥ १३

को हि सञ्जय भीमस्य स्थातुमुत्सहतेऽग्रतः ।
उद्धृताशनिहस्तस्य महेन्द्रस्येव दानवः ॥ १४

प्रेतराजपुरं प्राप्य निवर्तेतापि मानवः ।
न भीमसेनं सम्प्राप्य निवर्तेत कथञ्चन ॥ १५

पतङ्गा इव वह्निं ते प्राविशन्नल्पचेतसः ।
ये भीमसेनं सङ्क्रुद्धम् अभ्यधावन् विमोहिताः ॥ १६

यत् तत् सभायां भीमेन मम पुत्रवधाश्रयम् ।

1 अ-क—अर्धद्वयं नास्ति

शप्तं संरम्भिणोग्रेण कुरूणां शृण्वतां तदा ॥ १७

तत् सत्यमिति सञ्चिन्त्य दृष्ट्वा कर्णं च निर्जितम् ।
दुश्शासनस्सह भ्रात्रा भयाद्भीममवर्जयत् ॥ १८

यश्च सञ्जय दुर्बुद्धिर् अब्रवीत् समितौ मुहुः ।
कर्णो दुश्शासनोऽहं च जेष्यामो युधि पाण्डवान् ॥ १९

स नूनं विरथं दृष्ट्वा कर्णं भीमेन निर्जितम् ।
प्रत्याख्यानाच्च कृष्णस्य भृशं सञ्जय तप्स्यति ॥ २०

दृष्ट्वा भ्रातॄन् हतान् युद्धे भीमसेनेन दंशितान् ।
आत्मापराधात् सम्मूढो नूनं तप्स्यति पुत्रकः ॥ २१

को हि जीवितमन्विच्छन् प्रतीपं मृत्युमाव्रजेत् ।
भीमं भीमायुधं क्रुद्धं साक्षात् कालमिव स्थितम् ॥ २२

बडबामुखमध्यस्थो मुच्येतापि हि मानवः ।
न भीममुखमासाद्य मुच्येतेति मतिर्मम ॥ २३

न पार्था न च पाञ्चाला न च केशवसात्यकी ।
जानन्ति युधि संरब्धा जीवितं परिरक्षितुम् ॥ २४

सञ्जयः—

यत् त्वं शोचसि कौरव्य वर्तमाने महाहवे ।
त्वमस्य जगतो मूलं विनाशस्य न संशयः ॥ २५

स्वयं वैरं महत् कृत्वा पुत्राणां वचने स्थितः ।

उच्यमानो न गृह्णीषे मर्तुकामो यथौषधम् ॥ २६

स्वयं पीत्वा महाराज कालकूटं सुदुर्जरम् ।
तस्येदानीं फलं कृत्स्नम् अवाप्नुहि नरोत्तम ॥ २७

त्वं तु कुत्सयसे योधान् घटमानान् यथाबलम् ।
तत्र ते वर्तयिष्यामि यथा युद्धमवर्तत ॥ २८

दृष्ट्वा कर्णं तु पुत्रास्ते भीमसेनपराजितम् ।
नामृष्यन्त महेष्वासास् सोदर्याः पञ्च भारत ॥ २९

दुर्मर्षणो दुर्मदश्च दुष्पहो विजयो जयः ।
पाण्डवं चित्रसन्नाहास् तं प्रतीपमुपाद्रवन् ॥ ३०

ते समन्तान्महाबाहुं परिवार्य वृकोदरम् ।
दिशश्शरैस्समावृण्वञ् शलभानामिव व्रजैः ॥ ३१

आगच्छतस्तान् सहसा कुमारान् देवरूपिणः ।
प्रतिजग्राह समरे भीमसेनो हसन्निव ॥ ३२

तव दृष्ट्वा तु तनयान् दुर्मर्षणपुरोगमान् ।
अभ्यधावत राधेयो भीमसेनं यथाबलम् ॥ ३३

विसृजन् विशिखांस्तीक्ष्णान् स्वर्णपुङ्खाञ् छिलाशितान् ।
तं तु भीमोऽभ्ययात् तूर्णं वार्यमाणस्सुतैस्तव ॥ ३४

कुमारास्तु ततः कर्णं परिवार्य समन्ततः ।

[1]अवारयन् भीमसेनं शरैस्सन्नतपर्वभिः ॥ ३५

तान् पञ्चत्रिंशता राजन् बाणैस्साश्वान् नरर्षभान् ।
ससूतान् भीमधन्वा तु भीमो निन्ये यमक्षयम् ॥ ३६

ते स्यन्दनेभ्यः प्रपतन् सार्धं सूतैर्गतासवः ।
चित्रपुष्पधरा भग्ना वातेनेव महाद्रुमाः ॥ ३७

तत्राद्भुतमपश्याम भीमसेनस्य विक्रमम् ।
संवार्यातिरथिं बाणैर् यज्जघान तवात्मजान् ॥ ३८

स वार्यमाणो भीमेन शितैर्बाणैस्समन्ततः ।
सूतपुत्रो महाराज भीमसेनमवैक्षत ॥ ३९

तं भीमसेनस्संरब्धः क्रोधात् संरक्तलोचनः ।
विष्फारयन् महच्चापं मुहुः कर्णमवैक्षत ॥ ४०

तवात्मजांस्तु पतितान् दृष्ट्वा कर्णः प्रतापवान् ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो निर्विण्णोऽभूत् स जीविते ॥ ४१

आगस्कृतमिवात्मानं मेने चातिरथिस्तदा ।
[2]भीमवेगं ततः [3]कृत्वा स्वमारोहद्रथं शुभम् ॥ ४२

---

1. ख-ङ—अवाकिरन्
　* सर्वेषु कोशेषु अत्रैवाध्यायसमाप्तिर्दृश्यते ।
2. ख-ङ—भीमसेनं
3. क—क्रुद्धस्समा　ख-ङ—क्रुद्धस्समारोहदसम्भ्रमम्

स भीमं पञ्चभिर्विद्ध्वा राधेयः प्रहसन्निव ।
पुनर्विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैश्शिलीमुखैः ॥ ४३

अपहारं तु तं पार्थो नामृष्यत वृकोदरः ।
ततो विव्याध राधेयं शरेणानतपर्वणा ॥ ४४

ततस्स विशिखैस्तीक्ष्णैर् विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सूतपुत्रस्य मारिष ॥ ४५

अथान्यद्धनुरादाय कर्णो भारत दुर्मनाः ।
इषुभिश्छादयामास भीमसेनं समन्ततः ॥ ४६

तस्य भीमो हयान् हत्वा विनिहत्य च सारथिम् ।
प्रजहास महाहासं कृतप्रतिकृतं महत् ॥ ४७

इषुभिः कार्मुकं चास्य चकर्त पुरुषर्षभः ।
तत् पपात महाराज स्वर्णपृष्ठं महद्धनुः ॥ ४८

अवारोहद्रथात् तस्माद् अथ कर्णो महारथः ।
गदां गृहीत्वा समरे भीमसेनाय चाक्षिपत् ॥ ४९

तामापतन्तीं सहसा गदां दृष्ट्वा वृकोदरः ।
शरैरवारयद्राजन् सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ५०

[1]ततो बाणसहस्राणि प्रेषयामास पाण्डवः ।
सूतपुत्रवधाकाङ्क्षी त्वरमाणः पराक्रमी ॥ ५१

1 ख—दशार्धानि न सन्ति

तानिषूनिषुभिः कर्णो वारयित्वा महाहवे ।
कवचं भीमसेनस्य पातयामास सायकैः ॥ ५२

अथैनं पञ्चविंशत्या सायकानां समर्पयत् ।
पश्यतां सर्वभूतानां तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ५३

ततो भीमो महाबाहुर् नवतिं नतपर्वणाम् ।
प्रेषयामास सङ्क्रुद्धस् सूतपुत्रस्य मारिष ॥ ५४

ते तस्य कवचं भित्त्वा तथा बाहुं च दक्षिणम् ।
अभ्ययुर्धरणीं राजन् वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ ५५

राधेयं समरे दृष्ट्वा पदाति समवस्थितम् ।
भीमसेनेन संसक्तं भ्रातॄन दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ५६

दुर्योधनः—

त्वरध्वं सर्वतो यत्ता राधेयस्य रथं प्रति ॥ ५६॥

सञ्जयः—

ततस्तव सुता राजञ् श्रुत्वा भ्रातृवचो द्रुतम् ।
अभ्ययुः पाण्डवं युद्धे विसृजन्तश्शराञ् शितान् ॥ ५७॥

चित्रो विचित्रश्चित्राक्षश् चारुचित्रश्शरासनः ।
चित्रायुधश्चित्रवर्मा समरे चित्रयोधिनः ॥ ५८॥

आगच्छतस्तान् सहसा भीमो राजन् महामनाः ।
साश्वसूतध्वजान् यत्तान् पातयामास पाण्डवः ॥ ५९॥

ते हता न्यपतन् भूमौ वायुनुन्ना इव द्रुमाः ॥ ६०

दृष्ट्वा विनिहतान् पुत्रांस् तव राजन् महारथान् ।
अश्रुपूर्णमुखः कर्णः कश्मलं प्रत्यपद्यत ॥ ६१

सोऽन्यं रथं समास्थाय विधिवत् कल्पितं पुनः ।
अभ्ययात् पाण्डवं युद्धे त्वरमाणः पराक्रमी ॥ ६२

[1]तावन्योन्यं शरैर्विध्वा स्वर्णपुङ्खैश्शिलाशितैः ।
व्यभ्राजेतां महाराज पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ६३

ततष्षट्त्रिंशता भल्लैर् निशितैस्तिग्मतेजनैः ।
व्यधमत् कवचं क्रुद्धस् सूतपुत्रस्य पाण्डवः ॥ ६४

रक्तचन्दनदिग्धाङ्गौ शरैः कृतमहाव्रणौ ।
शोणिताक्तौ व्यराजेतां कालसूर्याविवोदितौ ॥ ६५

तौ शोणितोक्षितैर्गात्रैश् शरैश्छिन्नतनुच्छदौ ।
विवृताङ्गौ व्यराजेतां निर्मुक्ताविव पन्नगौ ॥ ६६

---

1. ख—तानिषूनिषुभिः कर्णो वारयित्वा महाहवे ।
कवचं भीमसेनस्य पातयामास सायकैः ॥
अथैनं पञ्चविंशत्या सायकानां समर्पयत् ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां तदद्भुतमिवाभवत् ॥
ततो भीमो महाबाहुर्नवभिर्नतपर्वभिः ।
प्रेषयामास संक्रुद्धः सूतपुत्ररथं प्रति ॥
तत्तस्य कवचं भित्त्वा गत्वा बाहुं च दक्षिणम् ।
अभ्ययुर्धरणीं राजन् वल्मीकमिव पन्नगः ॥
(अधिकः पाठः पुनरुक्तश्च)

क्रोधाग्नितेजसा दीप्तौ संरम्भाद्रक्तलोचनौ ।
व्यभ्राजेतां महाराज विधूमाविव पावकौ ॥　　६७

व्याघ्राविव नरव्याघ्रौ दंष्ट्राभिरितरेतरम् ।
शरदंष्ट्रौ विधून्वानौ ततक्षतुररिन्दमौ ॥　　६८

वारणाविव चासक्तौ रङ्गमध्ये विचेरतुः ।
तुदन्तौ विशिखैस्तीक्ष्णैर् मत्तवारणविक्रमौ ॥　　६९

प्रच्छादयन्तौ समरे शरजालैस्समन्ततः ।
रथाभ्यां नादयन्तौ च दिशस्सर्वा विचेरतुः ॥　　७०

तौ रथाभ्यां महाराज मण्डलावर्तनादिषु ।
व्यरोचेतां महात्मानौ वृत्रवज्रधराविव ॥　　७१

सहस्ताभरणाभ्यां तु भुजाभ्यां विक्षिपन् धनुः ।
व्यरोचत रणे भीमस् सविद्युदिव तोयदः ॥　　७२

स चापघोषस्तनितश् शरधारामहाम्बुदः ।
भीममेघं महाराज कर्णमेघोऽभ्ययाद्युधि ॥　　७३

ततश्शरसहस्रेण सुप्रयुक्तेन भारत ।
भीममाच्छादयत् तूर्णं यथाऽद्रिं तोयदोऽम्बुना ॥　　७४
तत्र प्रैक्षन्त पुत्रास्ते भीमसेनस्य विक्रमम् ॥　　७४॥

सुपुङ्खैः कङ्कवासोभिः कर्णं प्रच्छादयञ् शरैः ।
स नन्दयन् रणे पार्थं केशवं च यशस्विनम् ॥　　७५॥

सात्यकिं चक्ररक्षौ च भीमः कर्णमयोधयत् ॥ ७६

विक्रमं भुजयोर्वीर्यं ददृशुर्विदितात्मनः ।
पुत्रास्तव महाराज भीमसेनस्य संयुगे ॥ ७७

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥
[अस्मिन्नध्याये ७७ श्लोकाः]

---

## ॥ अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥

भीमेन कर्णसहकारिणां विकर्णादीनां वधः ॥

---

सञ्जयः—

भीमसेनस्य राधेयश् श्रुत्वा ज्यातलनिस्स्वनम् ।
नामृष्यत यथा मत्तो गजः प्रतिगजस्वनम् ॥ १

अपक्रम्य स भीमस्य मुहूर्तं शरगोचरात् ।
तव चातिरथिर्दृष्ट्वा स्यन्दनेभ्यश्च्युतान् सुतान् ॥ २

भीमसेनेन निहतान् विमना दुःखितोऽभवत् ॥ २॥
निश्श्वसन् दीर्घमुष्णं च कर्णः पाण्डवमभ्ययात् ॥ ३

स ताम्रनयनः क्रोधाच् छ्वसन्निव महोरगः ।
बभौ कर्णश्शरानस्यन् रश्मिमानिव भास्करः ॥ ४

रश्मिजालैरिवार्कस्य विहितैर्भरतर्षभ ।
कर्णचापच्युतैर्बाणैः प्राच्छाद्यत वृकोदरः ॥ ५

कर्णचापच्युताश्चित्राश् शरा बर्हिणवाससः ।
विविशुस्सर्वतः पार्थं वासायेवाण्डजा द्रुमम् ॥ ६

कर्णचापच्युता बाणास् सम्पतन्तस्ततस्ततः ।
रुक्मपुङ्खा व्यराजन्त हंसाश्श्रेणीकृता इव ॥ ७

चापध्वजावस्करेभ्यश् चक्रादीषायुगादपि ।
प्रभवन्तो व्यदृश्यन्त राजन्नातिरथेश्शराः ॥ ८

[1]खं पूरयन्तः खचराः खगमाः खगवाससः ।
सुवर्णविकृताश्चित्राश् चेरुरातिरथेश्शराः ॥ ९

तमन्तकमिवायान्तम् आपतन्तं वृकोदरम् ।
त्यक्त्वा प्राणानतिक्रम्य विव्याध निशितैश्शरैः ॥ १०

तस्य वेगमसह्यं तु दृष्ट्वा कर्णस्य पाण्डवः ।
[2]अविचिन्त्य शरौघांस्तान् नैवाव्यधत वीर्यवान् ॥ ११

ततो [3]विध्वंस्यातिरथेश् शरजालानि पाण्डवः ।
विव्याध कर्णं विशत्या पुनर्भीमश्शिलाशितैः ॥ १२

यथैव स्वशरैः पार्थस् सूतपुत्रेण छादितः ।

---

1 ङ—अर्धद्वयं नास्ति 2. ख—अर्धपञ्चकं नास्ति
3. क-घ-ङ—विभ्वास्यातिरथेः

तथैव समरे कर्णं छादयामास पाण्डवः ॥ १३

दृष्ट्वा तु भीमसेनस्य विक्रमं युधि भारत ।
अभ्यनन्दंस्त्वदीयाश्च सम्प्रहृष्टाश्च चारणाः ॥ १४

भूरिश्रवाः कृपो द्रौणिर् मद्रराजो जयद्रथः ।
उत्तमौजा युधामन्युस् सात्यकिः केशवार्जुनौ ॥ १५

कुरुपाण्डवपक्षस्था दश राजन् महारथाः ।
साधु साध्विति वेगेन सिंहनादमथानदन् ॥ १६

तस्मिन् समुत्थिते शब्दे तुमुले रोमहर्षणे ।
अभ्यभाषत पुत्रस्ते राजन् दुर्योधनस्तदा ॥ १७

दुर्योधनः—

राजानो राजपुत्राश्च सोदर्याश्च विशेषतः ।
कर्णं रक्षत भद्रं [1]वः परीप्सन्तो वृकोदरात् ॥ १८

पुरा निघ्नन्ति राधेयं भीमचापच्युताश्शराः ।
ते यतध्वं महेष्वासास् सूतपुत्रस्य रक्षणे ॥ १९

सञ्जयः—

दुर्योधनसमादिष्टास् सोदर्यास्सप्त मारिष ।
भीमसेनमभिद्रुत्य संरब्धाः पर्यवारयन् ॥ २०

ते समासाद्य कौन्तेयम् आवृण्वञ्शरवृष्टिभिः ।

1. व—नः

पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव वलाहकाः ॥ २१

तेऽपीडयन् भीमसेनं क्रुद्धास्सप्त महारथाः ।
प्रजासंहरणे घोरास् सोमं सप्त ग्रहा इव ॥ २२

ततो वामेन कौन्तेयः पीडयित्वा शरासनम् ।
मुष्टिना पाण्डवो राजन् दृढेन सुपरिष्कृतम् ॥ २३

अमानुषं कर्म कृत्वा सप्त सन्धाय सायकान् ।
स तेभ्योऽवासृजद्रक्तान् सूर्यरश्मिनिभान् प्रभुः ॥ २४

निरस्यन्निव देहेभ्यस् तनयानामसूंस्तव ।
भीमसेनो महाराज पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २५

ते क्षिप्ता भीमसेनेन शरा भारत भारतान् ।
विदार्य प्राविशन् भूमिं हेमपुङ्खाश्शिलाशिताः ॥ २६

[1]तेषां विदार्य देहांस्ते शरा हेमविभूषिताः ।
भित्त्वा भित्त्वा क्षितिं जग्मुस् तेषामेवासुभिस्सह ॥ २७

ते व्यराजन् महाराज सुपर्णा इव खेचराः ॥ २७॥

शोणितादिग्धवाजाग्रैस् तप्तहेमविभूषितैः ।
पुत्राणां तव सङ्ग्रामे पीतं शोणितमुत्तमम् ॥ २८॥

ते शरैर्भिन्नमर्माणो रथेभ्यः प्रापतन् क्षितौ ।
गिरिसानुरुहा भग्ना वायुनेव महाद्रुमाः ॥ २९॥

---

1 ख-ङ—अर्धत्रयं नास्ति

शत्रुञ्जयश्शत्रुसहस् सुबाहुर्मदनो [1]द्रुमः ।
चित्रसेनो विकर्णश्च सप्तैते विनिपातिताः ॥ ३०॥

तान् निहत्य महाबाहू राधेयस्यैव पश्यतः ।
सिंहनादरवं घोरम् आनदत् पाण्डुनन्दनः ॥ ३१॥

स रवस्तस्य शूरस्य धर्मराजस्य संयुगे ।
आचख्याविव तद्युद्धं विजयं चात्मनो महत् ॥ ३२॥

तं श्रुत्वा तु महानादं भीमसेनस्य धन्विनः ।
बभूव परमा प्रीतिर् धर्मराजस्य संयुगे ॥ ३३॥

ततो हृष्टो महाराज वादित्राणां महास्वनैः ।
भीमसेनरवं [2]पार्थः प्रतिजग्राह सर्वतः ॥ ३४॥

अभ्ययाच्चैव समरे द्रोणमस्त्रविदां वरम् ।
हर्षेण महता युक्तः कृतसंज्ञो वृकोदरः ॥ ३५॥

एकत्रिंशन्महाराज पुत्रांस्तव महारथान् ।
हतान् दुर्योधनो दृष्ट्वा क्षत्तुस्सस्मार तद्वचः ॥ ३६॥

तदिदं समनुप्राप्तं क्षत्तुर्नैश्श्रेयसं वचः ।
इति सञ्चिन्त्य राजाऽसौ नोत्तरं प्रत्यपद्यत ॥ ३७॥

यद्द्यूतकाले दुर्बुद्धिर् अब्रवीत् तनयस्तव ।
यच्च कर्णोऽब्रवीत् कृष्णां सभायां परुषं वचः ॥ ३८॥

---

1. ङ—न्मदः ख—द्रुकः    2 ङ-ख—तूर्णं

प्रमुखे पाण्डुपुत्राणां तव चैव [1]विशां पते ।
कौरवाणां च सर्वेषाम् आचार्यस्य च संनिधौ ॥ ३९॥

विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वतं निरयं गताः ।
पतिमन्यं वृणीष्वेति तस्येदं [2]कर्मणः फलम् ॥ ४०॥

यां स्म तां परुषाण्याहुस् सभामानाय्य द्रौपदीम् ।
पाण्डवानुग्रधनुषः कोपयन्तस्तवात्मजाः ॥ ४१॥

तं भीमसेनः क्रोधाग्निं त्रयोदश समा [3]हितम् ।
विसृजंस्तव पुत्राणाम् अन्तं गच्छति कौरवः ॥ ४२॥

विलपंश्च बहु क्षत्ता शमं नालभत त्वयि ।
सपुत्रो भरतश्रेष्ठ तस्य पश्य फलोदयम् ॥ ४३॥

हतो विकर्णो राजेन्द्र चित्रसेनश्च वीर्यवान् ।
[4]सुतानां प्रवरौ तौ ते हताश्चान्ये महारथाः ॥ ४४॥

यान् यांश्च ददृशे भीमश् चक्षुर्विषयमागतान् ।
पुत्रांस्तव महाराज त्वरया सञ्जहार तान् ॥ ४५॥

एवं स्म वर्तते रौद्रस् सङ्ग्रामो भरतर्षभ ॥ ४६

---

1. ख-ङ—विशेषतः
2. क-ख-घ—फलमागतम्
3. ख-ङ—जितम्
4. ख—अर्धलयं नास्ति

त्वत्कृते ह्यहमद्राक्षं दह्यमानां वरूथिनीम् ।
[1]सहस्रशश्शरैर्मुक्तैः पाण्डवेन वृषेण च ॥ ४७

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ४७ श्लोकाः ]

---

## ॥ एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

भीमकर्णयोर्युद्धम् ॥

---

धृतराष्ट्रः—

महानपनयस्सूत ममैवात्र विशेषतः ।
इदानीं समतिक्रान्तः प्राप्तस्सञ्जय शोचतः ॥ १

यद्गतं तद्गतमिति ममासीन्मनसि स्थितम् ।
इदानीमत्र किं कार्यं प्रकरिष्यामि सञ्जय ॥ २

यथा त्वेष क्षयो वृत्तो ममापनयसम्भवः ।
वीराणां तन्ममाचक्ष्व स्थिरीभूतोऽस्मि सञ्जय ॥ ३

सञ्जयः—

कर्णभीमौ महाराज पराक्रान्तौ महारणे ।
बाणवर्षाण्यवर्षेतां वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ॥ ४

---

1. ङ—नास्तीदमर्धम्

भीमनामाङ्किता बाणास् स्वर्णपुङ्खाश्शिलाशिताः ।
विविशुः कर्णमासाद्य कर्षन्त इव जीवितम् ॥ ५

तथैव कर्णनिर्मुक्तैस् सविषैरिव पन्नगैः ।
अकीर्यत रणे भीमश् शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६

तयोश्शरैर्महाराज सम्पतद्भिस्समन्ततः ॥
बभूव तव सैन्यानां सङ्क्षोभस्सागरोपमः ॥ ७

भीमचापच्युतैर्बाणैस् [1]तव सैन्यमरिन्दम ।
[2]अवध्यत चमूमध्ये शरैराशीविषोपमैः ॥ ८

वारणैः पतितै राजन् वाजिभिश्च नरैस्सह ।
अदृश्यत मही कीर्णा वातनुन्नैरिव द्रुमैः ॥ ९

ते वध्यमानास्समरे भीमचापच्युतैश्शरैः ।
प्राद्रवंस्तावका योधाः किमेतदिति चाब्रुवन् ॥ १०

ततो व्युदस्तं तत् सैन्यं सिन्धुसौवीरकौरवम् ।
प्रोत्सारितं महावेगैः कर्णपाण्डवयोश्शरैः ॥ ११

ते शूरा हतभूयिष्ठाः पत्त्यश्वरथवारणाः ।
उत्सृज्य भीमं कर्णं च प्राद्रवन् सर्वतो दिशः ॥ १२

[3]नूनं पार्थार्थमेवास्मान् मोहयन्ति दिवौकसः ।

---

1. ख—तव सैन्यैररिन्दम　ङ—मथ्यमानैररिन्दमान्
2. ख-ङ—अर्धद्वयं नास्ति　3. ख—इदमर्धं नास्ति

यत् कर्णभीमप्रभवैर् बलं वध्यति नश्शरैः ॥ १३

एवं ब्रुवन्तो योधास्ते तावका भयपीडिताः ।
शरपातं समुत्सृज्य स्थिता युद्धदिदृक्षया ॥ १४

ततः प्रावर्तत नदी घोररूपा विशां पते ।
बभूव च विशेषेण भीरूणां भयवर्धिनी ॥ १५

वारणाश्वमनुष्याणां रुधिरौघसमुद्भवा ।
संवृता गतसत्त्वैश्च मनुष्यगजवाजिभिः ॥ १६

सानुकर्षपताकैश्च द्विपाश्वरथभूषणैः ।
स्यन्दनैरपविद्धैश्च भग्नचक्राक्षकूबरैः ॥ १७

जातरूपपरिष्कारैश्[1]शक्तिभिः परिघैरपि ।
सुवर्णपुङ्खैरिषुभिर् नाराचैश्च समन्ततः ॥ १८

कर्णपाण्डवनिर्मुक्तैर् निर्मुक्तैरिव पन्नगैः ।
प्रासतोमरनिर्घातैस् सशक्त्यष्टिपरश्वथैः ॥ १९

सुवर्णविकृतैश्चापि गदामुसलपट्टसैः ।
वज्रैश्च विविधाकारैश् शङ्कुभिः परिघैरपि ॥ २०

[2]शतघ्नीभिश्च चित्राभिर् बभौ भारतमेदिनी ॥ २०॥

कटकाङ्गदकेयूरैः कुण्डलैर्मणिभिश्शुभैः ।

---

1. ख-ङ—धनुर्भिः सुमहास्वनैः
2. ख—अर्धचतुष्टयं नास्ति

तनुत्रैस्सतलत्राणैर् हारैर्निष्कैश्च भारत ।
वस्त्रैश्छत्रैश्च विविधैश् चामरव्यजनैरपि ॥ २२

गजाश्वमनुजैर्भिन्नैश् शस्त्रैश्शोणितभूषणैः ।
तैस्तैश्च विविधैर्भावैस् तत्र तत्र वसुन्धरा ॥ २३

[1]पतितैरपविद्धैश्च सम्बभौ द्यौरिव ग्रहैः ॥ २३॥

अचिन्त्यमद्भुतं चैव तयोः कर्मातिमानुषम् ।
दृष्ट्वा चारणसिद्धानां विस्मयस्समपद्यत ॥ २४॥

अग्नेर्वायुसहायस्य गतिः कक्ष इवाहवे ।
आसीद्भीमसहायस्य रौद्रमातिरथेर्गतम् ॥ २५॥

निपातितध्वजरथं हतवाजिनरद्विपम् ।
गजाभ्यां सम्प्रयुक्ताभ्याम् आसीन्नलवनं यथा ॥ २६॥

[2]तथारूपं महत् सैन्यम् आसीद्भारत संयुगे ।
विमर्दः कर्णभीमाभ्याम् आसीच्च परमो रणे ॥ २७॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥
[ अस्मिन्नध्याये २७॥ श्लोकाः ]

---

1. ख—इदमर्धं नास्ति　　2 ख—इदमर्धं नास्ति

## ॥ विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

भीमकर्णयुद्धवर्णनम् ॥

सञ्जयः—

ततः कर्णो महाराज भीमं विद्ध्वा त्रिभिश्शरैः ।
पुनश्च षड्भिस्तीक्ष्णाग्रैर् अविध्यत् कङ्कपत्रिभिः ॥ १
मुमोच शरवर्षाणि विचित्राणि बहूनि च ॥ १॥

वध्यमानो महाराज सूतपुत्रेण पाण्डवः ।
न विव्यथे भीमसेनो भिद्यमान इवाचलः ॥ २॥

स कर्णं कर्णिना कर्णे पीतेन निशितेन च ।
विव्याध युधि राजेन्द्र भीमसेनः पतत्रिणा ॥ ३॥

स कुण्डलं महत् कर्णात् कर्णस्यापातयद्भुवि ।
तापनीयं महाराज दीप्तं ज्योतिरिवाम्बरात् ॥ ४॥

अथापरेण भल्लेन सूतपुत्रं स्तनान्तरे ।
आजघान भृशं भीमस् स्मयन्निव महाबलः ॥ ५॥

पुनरस्य त्वरन् भीमो नाराचान् दश भारत ।
रणे प्रैषीन्महाराज यमदण्डोपमांस्तदा ॥ ६॥

ते ललाटं समासाद्य सूतपुत्रस्य मारिष ।
विविशुश्चोदितास्तेन वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ ७॥

ललाटस्थैस्तु तैर्बाणैस् सूतपुत्रो व्यरोचत ।
नीलोत्पलमयीं मालां धारयन् वै पुरा यथा ॥ ८॥

सोऽतिविद्धो भृशं क्रुद्धः पाण्डवेन तरस्विना ।
रथकूबरमालम्ब्य न्यमीलयत लोचने ॥ ९॥

स मुहूर्तात् ततः कर्णो लब्ध्वा संज्ञां परन्तपः ।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गो रोषमाहारयत् परम् ॥ १०॥

ततः क्रुद्धो रणे कर्णः पीडितो दृढधन्विना ।
वेगं चक्रे महावेगो भीमसेनरथं प्रति ॥ ११॥

तस्मै कर्णश्शतं राजञ् शराणां गृध्रवाससाम् ।
अमर्षी बलवान् क्रुद्धः प्रेषयामास भारत ॥ १२॥

तस्य प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः ।
समरे तमनादृत्य तस्य वीर्यमचिन्तयन् ॥ १३॥

ततः कर्णो महाराज पाण्डवं निशितैश्शरैः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः क्रुद्धरूपं परंतपः ॥ १४॥

समरे नरशार्दूलौ शार्दूलाविव दंष्ट्रिणौ ।
[1]शरदंष्ट्रौ समासाद्य ततक्षतुररिन्दमौ ॥ १५॥

जीमूताविव चान्योन्यं तौ ववर्षतुराहवे ।
तलशब्दरवैश्चैव त्रासयेतां परस्परम् ॥ १६॥

---

1. ख—अर्धपञ्चकं नास्ति

शरजालैश्च विविधैश् छादयामासतुर्मृधे ।
अन्योन्यं समरे क्रुद्धौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ॥ १७॥

ततो भीमो महाराज राधेयस्य महात्मनः ।
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा तं च विव्याध पत्रिणा ॥ १८॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं सूतपुत्रो महामनाः ।
अन्यत् कार्मुकमादय भारघ्नं वेगवत्तरम् ॥ १९॥

दृष्ट्वा च कुरुसौवीरसिन्धूनां च जनक्षयम् ।
[1]भीमं विव्याध कर्णस्तु बलवद्भिश्शितैश्शरैः ॥ २०॥

स वर्मध्वजशस्त्रैश्च [2]पतितैस्संवृतां महीम् ।
रथैर्विमथितैर्भल्लैर् अश्वैश्चान्यैः प्रवल्गितैः ॥ २१॥

भ्रष्टश्रीकैर्नरवरैः पांसुकुण्ठितमूर्धजैः ।
हस्त्यश्वनरदेहांश्च गतासून वीक्ष्य सर्वतः ॥ २२॥

सूतपुत्रस्य संरम्भाद् दीप्तं वपुरजायत ॥ २३

स विष्फार्य महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम् ।
भीमं प्रैक्षत राधेयो राजन घोरेण चक्षुषा ॥ २४

ततः क्रुद्धश्शरानस्यन् सूतपुत्रो व्यराजत ।
मध्यंदिनगतोऽर्चिष्माञ् शरदीव दिवाकरः ॥ २५

मरीचिविकचस्येव राजन्नंशुमतो वपुः ।

---

1. अ-ख-ङ—नास्तीदमर्धम् 2. ख—कवचै

आसीदातिरथेर्घोरं वपुश्शरशताचितम् ॥ २६

कराभ्यामाददानस्य सन्दधानस्य सायकान् ।
विकर्षतो मुञ्चतो वा नान्तरं ददृशुर्जनाः ॥ २७

अग्निचक्रोपमं घोरं मण्डलीकृत[1]कार्मुकम् ।
कर्णस्यासीन्महाराज सव्यं दक्षिणमस्यतः ॥ २८

स्वर्णपुङ्खास्सुनिशिताः कर्णचापच्युताश्शराः ।
प्राच्छादयन् महाराज दिशस्सूर्य इवांशुभिः ॥ २९

ततः कनकपुङ्खानां शराणां नतपर्वणाम् ।
धनुश्च्युतानां वियति ददृशे बहुधा व्रजः ॥ ३०

शरासनादातिरथेः प्रभवन्ति स्म सायकाः ।
[2]श्रेणीकृता व्यराजन्त राजन् क्रौञ्चा इवाम्बरे ॥ ३१

गृध्रपत्राञ् शिलाधौतान् कार्तस्वरविभूषितान् ।
महावेगान् प्रदीप्ताग्रान् मुमोचातिरथिश्शरान् ॥ ३२

ते तु चापबलोद्धूताश् शातकुम्भविभूषिताः ॥
अजस्रमन्वकीर्यन्त शराः पार्थरथं प्रति ॥ ३३

ते व्योम्नि रत्नविकृता व्यराजन्त सहस्रशः ।
शलभानामिव व्राताश् शराः कर्णसमीरिताः ॥ ३४

चापादातिरथेर्मुक्ताः प्रभवन्ति स्म सायकाः ॥ ३४॥

---

1. अ-ख-ङ—मायुधम्  2 ङ--अर्धाष्टकं नास्ति

एको दीर्घ इवापाङ्गप्रभवो दृश्यते शरः ।
पर्वतं वारिधाराभिश् छादयन्निव तोयदः ॥ ३५॥
कर्णः प्राच्छादयत् क्रुद्धो भीमं सायकवृष्टिभिः ॥ ३६
तत्र भारत भीमस्य बलं वीर्यं पराक्रमम् ।
व्यवसायं च पुत्रास्ते प्रैक्षन्त कुरुभिस्सह ॥ ३७
तां समुद्रादिवोद्भूतां शरवृष्टिं समुत्थिताम् ।
अचिन्तयित्वा भीमस्तु क्रुद्धः कर्णमुपाद्रवत् ॥ ३८
रुक्मपृष्ठं महच्चापं भीमस्यासीद्विशां पते ।
विकृष्टं मण्डलीभूतं शक्रायुधमिवापरम् ॥ ३९
तस्माच्छराः प्रादुरासन् पूरयन्त इवाम्बरम् ॥ ३९॥
सुवर्णपुङ्खैर्भीमेन सायकैर्नतपर्वभिः ।
गगने रचिता माला काञ्चनीव व्यराजत ॥ ४०॥
ततो व्योम्नि विषक्तानि शरजालानि मारिष ।
आहतानि व्यशीर्यन्त भीमसेनस्य पत्रिभिः ॥ ४१॥
कर्णस्य शरजालौघैर् भीमसेनस्य चोभयोः ।
अग्निस्फुलिङ्गसंस्पर्शैर् अञ्जोगतिभिराहवे ॥ ४२॥
तैस्तैः कनकपुङ्खानां द्यौरासीत् संवृता व्रजैः ॥ ४३
स भीमं छादयन् बाणैस् सूतपुत्रः पृथग्विधैः ।
उपारोहदनादृत्य तस्य वीर्यं महात्मनः ॥ ४४

तयोर्विसृजतोस्तत्र शरवर्षाणि मारिष ।
वायुभूतान्यदृश्यन्त संसक्तानीतरेतरम् ॥　　४५

तस्मै कर्णश्शितान् बाणान् कर्मारपरिमार्जितान् ।
सुवर्णविकृतान् क्रुद्धः प्राहिणोद्वधकाङ्क्षया ॥　　४६

तानन्तरिक्षे विशिखैस् त्रिधैकैकमशातयत् ।
विशेषयन् सूतपुत्रं भीमस्तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥　　४७

पुनश्चासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः ।
अमर्षी बलवान् क्रुद्धो दिधक्षन्निव पावकः ॥　　४८

तस्य तान्याददे कर्णस् सर्वाण्यस्त्राण्यभीतवत् ।
कुर्वतः पाण्डुपुत्रस्य सूतपुत्रोऽस्त्रमायया ॥　　४९

तस्येषुधी धनुर्ज्यां च बाणैस्सन्नतपर्वभिः ।
रश्मीन् योक्त्राणि चाश्वानां कर्णो वैकर्तनोऽच्छिनत् ॥　　५०

अथ चाश्वान् पुनर्विध्वा त्रिभिर्विव्याध सारथिम् ।
अवप्लुत्य रथात् सूतो युधामन्यो रथं ययौ ॥　　५१

उत्स्मयन्निव भीमस्य युध्यमानस्य मारिष ।
ध्वजं चिच्छेद राधेयः पताकां च न्यपातयत् ॥　　५२

स विधन्वा महाराज रथशक्तिं परामृशत् ॥　　५२॥
तामवासृजदाविध्य क्रुद्धः कर्णरथं प्रति ॥　　५३

तामातिरथिरायत्तः शक्तिं हेमपरिष्कृताम् ।

आपतन्तीं महोल्काभां चिच्छेद दशभिश्शरैः ॥ ५४

साऽपतद्दशधा भूमौ कर्णस्य निशितैश्शरैः ॥ ५४॥

अस्यतस्सूतपुत्रस्य मित्रार्थे चित्रयोधिनः ।
स चर्मादत्त कौन्तेयो जातरूपपरिष्कृतम् ॥ ५५॥

खड्गं चान्यतरप्रेप्सुर् जयं मरणमेव वा ॥ ५६

चर्मास्य सहसा कर्णो व्यधमत् प्रहसन्निव ॥ ५६॥

स विचर्मा महाराज विरथः क्रोधमूर्च्छितः ।
असिं प्रासृजदाविध्य त्वरन् कर्णरथं प्रति ॥ ५७॥

स धनुस्सूतपुत्रस्य छित्त्वा मौर्वीं च संशितः ।
अपतद्भुवि निस्त्रिंशश् च्युतस्सर्प इवाम्बरात् ॥ ५८॥

ततः प्रहस्यातिरथिर् अन्यदादत्त कार्मुकम् ।
शत्रुघ्नं समरे क्रुद्धो दृढज्यं वेगवत्तरम् ॥ ५९॥

स भीमसेनः कुपितो [1]दृढवाक् सत्यविक्रमः ।
वैहायसमनुप्राप्य कर्णस्य रथमाविशत् ॥ ६०॥

तस्य तच्चरितं दृष्ट्वा सङ्ग्रामे विजयैषिणः ।
ध्वजालयस्थो राधेयो भीमसेनमवञ्चयत् ॥ ६१॥

तमदृष्ट्वा रथोपस्थे निलीनं व्यथितेन्द्रियम् ।
ध्वजमस्य समारुह्य तस्थौ स धरणीतले ॥ ६२॥

---

1. ख-ङ—बलवान् घ—दृढवान्

तत् तस्य कुरवस्सर्वे चारणाश्चाभ्यपूजयन् ।
यदियेष रथात् कर्णं हन्तुं तार्क्ष्य इवोरगम् ॥ ६३॥

स च्छिन्नधन्वा विरथस् स्वधर्ममनुपालयन् ।
स्वरथं पृष्ठतः कृत्वा युद्धायैव व्यवस्थितः ॥ ६४॥

तद्विचिन्त्य स राधेयस् तत एनं समभ्ययात् ।
संरम्भात् पाण्डवं युद्धे युद्धाय समुपस्थितम् ॥ ६५॥

तौ समेतौ महारङ्गे स्पर्धमानौ महारथौ ।
जीमूताविव घर्मान्ते गर्जमानौ नरर्षभौ ॥ ६६॥

तयोरासीत् सम्प्रहारः क्रुद्धयोर्नरसिंहयोः ।
अमृष्यमाणयोस्सङ्ख्ये शक्रशम्बरयोरिव ॥ ६७॥

क्षीणशस्त्रस्तु कौन्तेयः कर्णेन समभिद्रुतः ।
दृष्ट्वाऽर्जुनहतान् नागान् पतितान् पर्वतोपमान् ॥ ६८॥

रथमार्गविघातार्थं व्यायुधः प्रविवेश ह ॥ ६९

[1]गजप्रवरमध्यस्थो रथमार्गं विहत्य च ।
पाण्डवो जीविताकाङ्क्षी राधेयं नाभ्यवर्तत ॥ ७०

स व्यवस्थानमाकाङ्क्षन् धनञ्जयशरैर्हतम् ।
उद्यम्य कुञ्जरं पार्थस् तस्थौ [2]परपुरञ्जयः ॥ ७१

---

1. ख-ङ—हस्तिनां व्रजमासाद्य रथदुर्गं प्रविश्य च ।
ख—मार्गं प्रणश्य च　　क-घ—गजप्राकारमध्यस्थो

2 ख—गिरिरिवाचलः

तमस्य विशिखैः कर्णो व्यधमत् कुञ्जरं पुनः ।
हस्त्यङ्गान्यथ कर्णाय व्यसृजत् पाण्डवो नदन् ॥ ७२

चक्राण्यश्वांस्तथा नागान् यद्यत् पश्यति भूतले ।
तत् तदादाय चिक्षेप क्रुद्धः कर्णाय पाण्डवः ॥ ७३

तदस्य सर्वं चिच्छेद क्षिप्तं क्षिप्तं शितैश्शरैः ।
व्यायुधं नावधीच्चैनं कर्णः कुन्त्या वचस्स्मरन् ॥ ७४

धनुषोग्रेण तं कर्णस् त्वभिद्रुत्य परामृशन् ।
उत्स्मयन्निव राधेयो वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ ७५

पुनः पुनस्तूबरक मूढ औदरिकेति च ॥ ७५॥

कर्णः—

अकृतास्त्रक मा योत्सीर् बाल सङ्ग्रामकातर ॥ ७६

यत्र भोज्यं बहुविधं पेयं भक्ष्यं च पाण्डव ।
तत्र त्वं दुर्मते योग्यो न युद्धस्य कदाचन ॥ ७७

मुनिर्भूत्वाऽथवा भीम फलान्यश्नन् सुदुर्मते ।
वनाय व्रज कौन्तेय न त्वं युद्धविशारदः ॥ ७८

फलमूलाशने युक्तस् त्वं तथाऽतिथिभोजने ।
न त्वां शस्त्रसमुद्योगे योग्यं मन्ये वृकोदर ॥ ७९

मूलपुष्पफलाहारो व्रतेषु नियमेषु च ।

उचितस्त्वं वने भीम न त्वं युद्धविशारदः ॥ ८०

[1]सूदं त्वामहमाजाने मात्स्ये प्रेष्यककारकम् ।
त्वं न युद्धोचितस्तात वनवासरतिर्भव ॥ ८१

क्व युद्धं क्व मुनित्वं च वनं गच्छ वृकोदर ॥ ८१॥

सूदान् भृत्यजनान् दासांस् तान् गृहे त्वरयन् भृशम् ।
[2]योग्यस्त्वं बाधितुं क्रोधाद् भोजनार्थे वृकोदर ॥ ८२॥

सञ्जयः—

[3]एवं तं विरथं दृष्ट्वा स्मृत्वा कर्णोऽब्रवीद्वचः ।
कौमारे यानि चाप्यासन्नप्रियाणि विशां पते ॥ ८३॥

पूर्ववृत्तानि चाप्येनं रूक्षाण्यश्रावयद्भृशम् ॥ ८४

अथैनं तत्र संलीनम् अस्पृशद्धनुषा पुनः ।
प्रहसंश्च पुनर्वाक्यं भीममाह वचस्तदा ॥ ८५

कर्णः—

योद्धव्यं तु त्वयाऽन्यत्र न योद्धव्यं तु मादृशैः ।
मादृशैर्युध्यमानानाम् एतच्चान्यच्च दृश्यते ॥ ८६

गच्छ वा यत्र तौ कृष्णौ तौ त्वा रक्षिष्यतो रणे ।
गृहं वा गच्छ कौन्तेय किं ते युद्धेन बालक ॥ ८७

---

1 ङ—इदमर्धं नास्ति 2 घ—इतोऽर्धपञ्चकं नास्ति
3. ख—इदमर्धं नास्ति

सञ्जयः—

एवं तं विरथं कृत्वा कर्णो राजन् व्यकत्थयत् ।
प्रमुखे वृष्णिसिंहस्य पार्थस्य च महात्मनः ॥ ८८

[1]तं ब्रुवाणं तु भीमस्तु काङ्क्षन् भीमपराक्रमः ।
न चाकार्षीन्मृतं स्मृत्वा ह्यर्जुनस्य महाबलम् ॥ ८९

तस्य कार्मुकमारुज्य बभञ्जाशुपराक्रमी ॥ ८९॥

ततो दृष्ट्वा महाराज वासुदेवो महाद्युतिः ॥ ९०

श्रीभगवान्—

अर्जुनार्जुन पश्येमं भीमं कर्णेन बाधितम् ॥ ९०॥

सञ्जयः—

एवमुक्तस्तदा पार्थः केशवेन महात्मना ।
भीमसेनं तथाभूतं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ९१॥

अमर्षवशमापन्नो निर्दहन्निव चक्षुषा ॥ ९२

[2]ततो राजञ् शिलाधौताञ् शराञ् शाखामृगध्वजः ।
प्राहिणोत् सूतपुत्राय केशवेन प्रचोदितः ॥ ९३

---

1 ख-ङ—इतोऽर्धाष्टकं नास्ति

2 ङ—माधवस्सूतपुत्रं तु दृष्ट्वाऽर्जुनमथाब्रवीत् ।

श्रीभगवान्—

धनञ्जय महाबाहो कर्णे विसृज सायकान् ।
भीमं मोचय राधेयादशक्तं मोचने हितम् ॥

सञ्जयः—

वासुदेववचश्श्रुत्वा धनुरायस्य वीर्यवान् । [अधिकः पाठः]

ततः पार्थभुजोत्सृष्टाश् शराः कनकभूषणाः ।
गाण्डीवप्रभवाः कर्णं हंसाः क्रौञ्चमिवाविशन् ॥　　९४

स भुजङ्गैरिवायस्तैर् गाण्डीवप्रेरितैश्शरैः ।
भीमसेनादपासेधत् सूतपुत्रं धनञ्जयः ॥　　९५

स च्छिन्नधन्वा भीमेन धनञ्जयशराहतः ।
कर्णो भीमादपायासीद् रथेन महता द्रुतम् ॥　　९६

भीमोऽपि सात्यकेर्यानम् आरुह्य पुरुषर्षभः ।
अभ्ययात् पाण्डवस्सङ्ख्ये भ्रातरं सव्यसाचिनम् ॥　　९७

ततस्संसाधयन् कर्णं त्वरमाणो धनञ्जयः ।
[1]नाराचं क्रोधताम्राक्षः प्रेषयामास निश्वसन् ॥　　९८

स गरुत्मानिवाकाशे प्रार्थयन् भुजगोत्तमम् ।
नाराचोऽभ्यपतत् तूर्णं कर्णं गाण्डीवचोदितः ॥　　९९

तमन्तरिक्षे नाराचं द्रौणिश्चिच्छेद पत्रिणा ।
धनञ्जयभयात् कर्णम् उज्जिहीर्षुर्महारथम् ॥　　१००

ततो द्रौणिं चतुष्षष्ट्या विव्याध कुपितोऽर्जुनः ।
शिलीमुखैर्महाराज मा गास्तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥　　१०१

स तु मत्तगजाकीर्णम् अनीकं रथसङ्कुलम् ।
तूर्णं तत्राविशद्द्रौणिर् धनञ्जयशराहतः ॥　　१०२

---

1. ङ—अर्धचतुष्टयं नास्ति

ततस्सुवर्णपृष्ठानां चापानां कूजतां रणे ।
शब्दं गाण्डीवघोषेण कौन्तेयोऽभ्यभवद्बली ॥ १०३

धनञ्जयस्तथायान्तं पृष्ठतो द्रौणिमभ्ययात् ।
नातिदीर्घमिवाध्वानं शरैस्सन्त्रासयन् बलम् ॥ १०४

विदार्य देहान्नाराचैर् नरवारणवाजिनाम् ।
कङ्कबर्हिणवासोभिर् बलं व्यधमदर्जुनः ॥ १०५

तद्बलं भरतश्रेष्ठ सवाजिद्विपमानवम् ।
पाकशासनिरायत्तः पार्थस्तु निजघान ह ॥ १०६

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥
[ अस्मिन्नध्याये १०६ श्लोकाः ]

## ॥ एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

सात्यकिना अलम्बुसवधः ॥ १ ॥ सात्यकेरर्जुनदर्शनं भूरिश्रवसा समागमश्च ॥ २ ॥ सात्यकिभूरिश्रवसोर्युद्धम् ॥ ३ ॥ सात्यकिशिरश्छेदायोद्यमितस्य खड्गभृतो भूरिश्रवोभुजस्यार्जुनेन संछेदः ॥

धृतराष्ट्रः—

दातव्यमद्य मन्येऽहं पाण्डवानां स्वकं पुनः ।
न विग्रहो हि बलिना श्रेयसे स्याद्यथातथम् ॥ १

पादयोः प्रणतेनापि भुक्त्वाऽप्युच्छिष्टमप्यरेः ।
अतोऽन्यद्वाऽपि कृत्वैव जीव्यं लोके नरेण वै ॥　　२

जीवतैव परो लोकस् साध्यते चैव सर्वथा ।
अजीवतस्तथैवासीन्न सुखं न परा गतिः ॥　　३

विनाशे सर्वथोत्पन्ने न बालो बुध्यते क्रियाम् ।
मिथ्याभिमानदग्धो हि न बुद्ध्येत कृताकृते ॥　　४

अहन्यहनि मे दीप्तं यशः पतति सञ्जय ।
हता मे बहवो योधा मन्ये कालस्य पर्ययम् ॥　　५

धनञ्जयो यदा क्रुद्धः प्रविष्टो मामकं बलम् ।
रक्षितं द्रोणकर्णाभ्याम् अप्रवेश्यं सुरैरपि ॥　　६

ताभ्यामूर्जितवीर्याभ्याम् आप्यायितपराक्रमः ।
सहितः कृष्णभीमाभ्यां शिनीनामृषभेण च ॥　　७

तदाप्रभृति मां शोको दहत्यग्निरिवाश्रयम् ।
ग्रस्तान् हि प्रति पश्यामि भूमिपालान् ससैन्धवान ॥　　८

अप्रियं हि महत् कृत्वा सिन्धुराजः किरीटिनः ।
चक्षुर्विषयमापन्नः कथं मुच्येत [1]जीवितात् ॥　　९

अनुमानाच्च पश्यामि नास्ति सैन्धवजीवितम् ।
क्रुद्धस्य देवराजस्य शक्रस्येव महाद्युतेः ॥　　१०

1. ख-ङ—जीवितः

युद्धं त्वेतद्यथावृत्तं तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ १०॥

यच्च विक्षोभ्य महतीं सेनां संलोड्य चासकृत् ।
एकः प्रविष्टस्संरब्धो नलिनीमिव कुञ्जरः ॥ ११॥

तस्य मे वृष्णिवीरस्य ब्रूहि युद्धं यथातथम् ।
धनञ्जयार्थे यत्तस्य कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥ १२॥

सञ्जयः—

तथा तु वैकर्तनपीडितं तं
भीमं प्रयान्तं पुरुषप्रवीरम् ।
समीक्ष्य राजन् [1]रथमुख्यमग्रे
शिनिप्रवीरोऽनुययौ स पश्चात् ॥ १३॥

वर्षन् यथा वारिधरस्तपान्ते
ज्वलन् यथा जलदान्ते च सूर्यः ।
निघ्नन्नमित्रान् धनुषा दृढेन
प्रकम्पयंस्तव पुत्रस्य सेनाम् ॥ १४॥

तं यान्तमश्वै रजतप्रकाशैर्
आयोधने नरवीरं चरन्तम् ।
नाशक्नुवन् धारयितुं त्वदीयास्
सर्वे रथा भारत माधवाग्र्यम् ॥ १५॥

1. ख-ङ—नरमुख्यमग्रे

अमर्षपूर्णस्त्वतिचित्रयोधी
  [1]शरान् किरन् काञ्चनवर्मधारी ।
अलम्बुसस्सात्यकि माधवाग्र्यम्
  अवारयद्राजवरोऽभिपत्य ॥   १६॥

तयोरभूद्भारत सम्प्रहारस्
  तथा यथा नैव कश्चित् पुराऽभूत् ।
प्रैक्षन्त सर्वाहवशोभिनौ तौ
  योधास्त्वदीयाश्च परे च सर्वे ॥   १७॥

आविध्यदेनं दशभिः पृषत्कैर्
  अलम्बुसो राजवरः प्रसह्य ।
अनागतानेव तु तान् पृषत्कांश्
  चिच्छेद बाणैश्शिनिपुङ्गवोऽपि ॥   १८॥

पुनस्स बाणैस्त्रिभिरग्निकल्पैर्
  आकर्णपूर्णैर्निशितैः प्रसह्य ।
विव्याध देहावरणं विदार्य
  ते सात्यकेराविविशुश्शरीरम् ॥   १९॥

तैः कायमस्यावनिपालपुत्रस्
  सन्धाय बाणैरपरैर्ज्वलद्भिः ।

---

1. क-घ—शरासनी

आजघ्निवांस्तान् रजतप्रकाशान्
अश्वांश्चतुर्भिश्चतुरः प्रसह्य ॥ २०॥

तथा स तेनाभिहतस्तरस्वी
नप्ता शिनेश्चक्रधरप्रभावः ।
अलम्बुसस्योत्तमवेगवद्भिर्
[1]जघान वाहान् निशितैस्ससूतान् ॥ २१॥

अथास्य सूतस्य शिरो निकृत्य
भल्लेन शक्राशनिसन्निभेन ।
सकुण्डलं पूर्णशशिप्रकाशं
भ्राजिष्णु वक्त्रं निचकर्त देहात् ॥ २२॥

निहत्य तं पार्थिवपुत्रमग्र्यं
सङ्ख्ये मधूनामृषभः प्रमाथी ।
[2]ततोऽन्वयादर्जुनमेव वीरस्
सैन्यानि राजंस्तव सन्निवार्य ॥ २३॥

अन्वागतं वृष्णिवीरं समीक्ष्य
तथाऽरिमध्ये परिवर्तमानम् ।

---

1 ख-ङ—अश्वांश्चतुर्भिर्निजघान बाणैः
2. ङ—सर्वाणि सैन्यान्यवजित्य धीरः

घ्नन्तं कुरूणामिषुभिर्बलानि
　　पुनः पुनर्वारयितुं न शेकुः ॥　　२४॥

ततोऽवहन् सिन्धुभवास्सुदान्ता
　　गोक्षीरशङ्खेन्दुहिमप्रकाशाः ।
सुवर्णजालावततास्सदश्वा
　　यतो यतः कामयते नृसिंहः ॥　　२५॥

अथात्मजास्ते सहिता निपेतुर्
　　अन्ये च योधास्त्वरितास्तमाजौ ।
कृत्वा मुखं भारतयोधमुख्यं
　　दुश्शासनं त्वत्सुतमाजमीढ ॥　　२६॥

ते सर्वतस्सम्परिवार्य सङ्ख्ये
　　शैनेयमाजघ्नुरमित्रसाहम् ।
स चापि तान् प्रवरस्सात्वतानां
　　न्यवारयद्बाणबलेन वीरः ॥　　२७॥

निवार्य तांस्तूर्णममित्रघाती
　　नप्ता शिनेः पत्रिभिरग्निकल्पैः ।
दुश्शासनस्याभिजघान वाहान्
　　जवीयसस्तान् मनसोऽपि बाणैः ॥ *　　२८॥

---

* सर्वेषु कोशेषु अत्रैवाध्यायसमाप्तिर्दृश्यते ।

तमुद्यतं महाबाहुं दुश्शासनरथं प्रति ।
त्वरितं त्वदनीकेषु धनञ्जयरथैषिणम् ॥ २९॥

त्रिगर्तानां रथोदारास् सुवर्णविकृतध्वजाः ।
सेनासमुद्रमाविष्टं समन्तात् पर्यवारयन् ॥ ३०॥

अथैनं रथवंशेन मण्डलीकृत्य सर्वतः ।
अवाकिरञ् छरव्रातैः क्रुद्धाः परमधन्विनः ॥ ३१॥

अभ्ययाद्राजपुत्रांस्तु त्वरमाणो महारथः ।
एकः पञ्चाशतं शत्रून् सात्यकिस्सत्यविक्रमः ॥ ३२॥

सम्प्राप्तो भारतीमध्यं तलघोषसमाकुलम् ।
असिशक्तिगदापूर्णम् अप्लवं सागरं यथा ॥ ३३॥

अथैनमनुवृत्तास्तु त्रिगर्तास्सहिताः पुनः ।
तीव्रेण रथवंशेन महता पर्यवारयन् ॥ ३४॥
विकर्षन्तोऽतिमात्राणि चापानि भरतर्षभ ॥ ३५

तत्राद्भुतमपश्याम शैनेयचरितं रणे ।
प्रतीच्यां दिशि तं दृष्ट्वा प्राच्यां पश्याम लाघवात् ॥ ३६

उदीच्यां दक्षिणस्यां च प्रतीक्षामः पुनः पुनः ।
पुनर्मध्यगतो वीर आहवे युद्धदुर्मदः ॥ ३७

एकः पर्यचरद्रङ्गे बहुधा स महारथः ।

नृत्यन्निवाचरच्छूरो यथा रथशतं तथा ॥ ३८

तद्दृष्ट्वा चरितं तस्य सिंहविक्रान्तगामिनः ।
त्रिगर्तास्संन्यवर्तन्त संतप्तास्स्वजनं प्रति ॥ ३९

तमन्ये शूरसेनानां शूरास्सङ्ख्ये न्यवारयन् ।
नियच्छन्तश्शरव्रातैर् मत्तद्विपमिवाङ्कुशैः ॥ ४०

तैर्व्यवाहरदार्यात्मा मुहूर्तमिव सात्यकिः ।
ततः कलिङ्गैर्युयुधे सोऽचिन्त्यबलविक्रमः ॥ ४१

तां च सेनामतिक्रम्य कलिङ्गानां दुरत्ययाम् ।
अथ पार्थं महाबाहुर् धनञ्जयमुपासदत् ॥ ४२

तरन्निव जलश्रान्तो यथा स्थलमुपेयिवान् ॥ ४२॥

तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रं युयुधानस्समाश्वसत् ।
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य केशवः पार्थमब्रवीत् ॥ ४३॥

श्रीभगवान्—

असावायाति शैनेयस् तव पार्थ पदानुगः ॥ ४४

एष शिष्यस्सखा चैव तव सत्यपराक्रमः ।
सर्वान् योधांस्तृणीकृत्य विजिग्ये पुरुषर्षभः ॥ ४५

एष कौरवयोधानां कृत्वा घोरमुपद्रवम् ।
तव प्राणैः प्रियतरः किरीटिन्नेति सात्यकिः ॥ ४६

एष द्रोणं तथा भोजं कृतवर्माणमेव च ।

कदर्थीकृत्य विशिखैः फल्गुनाभ्येति सात्यकिः ॥ ४७

धर्मराजप्रियान्वेषी हत्वा योधान् वरान् वरान् ।
शूरश्चैव कृतास्त्रश्च फल्गुनाभ्येति सात्यकिः ॥ ४८

कृत्वा सुदुष्करं कर्म सैन्यमध्ये महाबलः ।
तव दर्शनमन्विच्छन् पार्थागच्छति सात्यकिः ॥ ४९

बहूनेकरथेनाजौ योधयित्वा महारथान् ।
आचार्यप्रभृतीन् पार्थ आयात्येष हि सात्यकिः ॥ ५०

स्वबाहुबलवीर्येण विदार्य च वरूथिनीम् ।
प्रेषितो धर्मपुत्रेण पार्थ याहीति सात्यकिः ॥ ५१

[1]प्रियश्शिष्यश्च ते पार्थ त्वया तुल्यपराक्रमः ।
[2]विद्राव्य महतीं सेनाम् एष आयाति सात्यकिः ॥ ५२

यस्य नास्ति समो योद्धा कौरवेषु कथञ्चन ।
सोऽयमायाति कौन्तेय सात्यकि[3]स्सत्यविक्रमः ॥ ५३

विमुक्तः कुरुसेनातस् सिंहो मध्याद्गवामिव ।
निहत्य बहुशस्सेनां बाणैर्विक्षोभ्य सात्यकिः ॥ ५४

एष राजसहस्राणां वक्त्रैः पङ्कजसन्निभैः ।
आस्तीर्य वसुधां पार्थ क्षिप्रमायाति सात्यकिः ॥ ५५

---

1. ख—अष्टार्धानि न सन्ति 2. क-घ—विदार्य
3. क-घ—र्युद्धदुर्मदः

एष दुर्योधनं जित्वा भ्रातृभिस्सहितं रणे ।
निहत्य जलसन्धं [1]च क्षिप्रमायाति सात्यकिः ॥ ५६

रुधिरौघवतीं कृत्वा नदीं शोणितकर्दमाम् ।
तृणवन्न्यस्य कौरव्यान् एष आयाति सात्यकिः ॥ ५७

सञ्जयः—
ततोऽप्रहृष्टः कौन्तेयः केशवं वाक्यमब्रवीत् ॥ ५७॥

अर्जुनः—
न मे प्रियं महाबाहो यन्मामभ्येति सात्यकिः ।
नाभिजानामि वृत्तान्तं धर्मराजस्य केशव ॥ ५८॥

सात्वतेन विहीनस्स सत्यं जीवति वा न वा ।
एतेन हि महाबाहो रक्षितव्यस्स पार्थिवः ॥ ५९॥

तमेष कथमुत्सृज्य मम कृष्ण पदानुगः ।
राजा द्रोणाय चोत्सृष्टश् सैन्धवश्च न पातितः ॥ ६०॥

प्रत्युद्याति च शैनेयम् एष भूरिश्रवा रणे ।
सोऽयं गुरुतरो भारस् सैन्धवार्थे समाहितः ॥ ६१॥

ज्ञातव्यश्च हि मे राजा रक्षितव्यश्च सात्यकिः ।
जयद्रथश्च हन्तव्यो लम्बते च दिवाकरः ॥ ६२॥

श्रान्तश्च हि महाबाहुर् अल्पबाणश्च साम्प्रतम् ।

---

1 ख—वै सात्यकिं क्रोधमूर्च्छितः

प्रतिरुद्धा हयाश्चास्य हययन्ता च माधव ॥ ६३॥

न च भूरिश्रवाश्श्रान्तस् ससहायश्च केशव ।
अपीदानीं भवेदस्य क्षेममस्मिन् समागमे ॥ ६४॥

कच्चिन्न सागरं तीर्त्वा सात्यकिस्सत्यविक्रमः ।
गोष्पदं प्राप्य सीदेत महौजाश्शिनिनन्दनः ॥ ६५॥

अपि कौरवमुख्येन कृतास्त्रेण महात्मना ।
समेत्य भूरिश्रवसा स्वस्तिमान् सात्यकिर्भवेत् ॥ ६६॥

अतिक्रममिमं मन्ये धर्मराजस्य केशव ।
आचार्याद्भयमुत्सृज्य यत् प्रेषयति सात्यकिम् ॥ ६७॥

ग्रहणं धर्मराजस्य वेगाच्छ्येन इवामिषम् ।
नित्यमाकाङ्क्षते द्रोणः कच्चित् स्यात् कुशली नृपः ॥ ६८॥

सञ्जयः—

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य माधवं युद्धदुर्मदम् ।
क्रोधाद्भूरिश्रवा राजन् सहसा समुपाद्रवत् ॥ ६९॥

तमब्रवीन्महाराज कौरव्यश्शिनिपुङ्गवम् ॥ ७०

भूरिश्रवाः—

अद्य प्राप्तोऽसि दिष्ट्या त्वं चक्षुर्विषयमच्युत ।
चिराभिलषितं कामम् अहं प्राप्स्यामि संयुगे ॥ ७१

---

* सर्वेषु कोशेषु अत्रैवाध्यायसमाप्तिर्दृश्यते ।

न हि मे मोक्ष्यसे जीवन् यदि नोत्सृजसे रणम् ॥ ७१॥

अद्य त्वा समरे हत्वा नित्यं शूराभिमानिनम् ।
नन्दयिष्यामि दाशार्ह कुरुराजं सुयोधनम् ॥ ७२॥

अद्य मद्बाणनिर्दग्धं पतितं धरणीतले ।
द्रक्ष्यतस्त्वां रणे वीरौ सहितौ केशवार्जुनौ ॥ ७३॥

अद्य धर्मसुतो राजा श्रुत्वा त्वां निहतं मया ।
सव्रीडो भविता सद्यो येनासीह प्रवेशितः ॥ ७४॥

अद्य मे विक्रमं पार्थो विज्ञास्यति धनञ्जयः ।
त्वयि भूमौ निपतिते शयाने रुधिरोक्षिते ॥ ७५॥

चिराभिलषितो ह्यद्य त्वया सह समागमः ।
पुरा देवासुरे युद्धे शक्रस्य बलिना यथा ॥ ७६॥

अद्य युद्धं महाघोरं तव दास्यामि सात्वत ।
ततो ज्ञास्यसि तत्त्वेन मद्वीर्यबलपौरुषम् ॥ ७७॥

अद्य संयमनीं तात यायास्त्वं निहतो मया ।
यथा रामानुजेनाजौ रावणिर्लक्ष्मणेन ह ॥ ७८॥

अद्य कृष्णश्च पार्थश्च धर्मराजश्च माधव ।
हते त्वयि निरुत्साहा रणं त्यक्ष्यन्त्यसंशयम् ॥ ७९॥

अद्य तेऽपचितिं कृत्वा शितैर्माधव सायकैः ।
तत्स्त्रियो नन्दयिष्यामि त्वया ये निहता रणे ॥ ८०॥

मच्चक्षुर्विषयं प्राप्तो न त्वं माधव मोक्ष्यसे ।
सिंहस्य विषयं प्राप्तो यथा क्षुद्रमृगस्तथा ॥ ८१॥

सञ्जयः—
युयुधानस्तु तं राजन् प्रत्युवाच हसन्निव ॥ ८२

सात्यकिः—
कौरवेय न सन्त्रासो वर्तते मम संयुगे ।
न तं पश्यामि सङ्ग्रामे यो मां हन्यात् सहायुधम् ॥ ८३
स तु मा शाश्वतं हन्याद् यो मां हन्यादसङ्गरे ।
किं चिरोक्तेन बहुना कर्मणा तत् समाचर ॥ ८४
शारदस्येव मेघस्य गर्जितं निष्फलं हि ते ।
श्रुत्वैतद्गर्जितं वीर हास्यं हि मम जायते ॥ ८५
चिरकालेप्सितं लोके युद्धमद्यास्तु कौरव ।
त्वरते मे मनस्तात त्वयि युद्धाभिकाङ्क्षिणि ॥ ८६
नाहत्वा विनिवर्तिष्ये त्वामद्य भरतर्षभ ॥ ८६॥

सञ्जयः—
अन्योन्यं तौ तदा वाग्भिस् तक्षन्तौ नरपुङ्गवौ ।
जिघांसू परमक्रुद्धावभिजघ्नतुराहवे ॥ ८७॥
तौ समेतौ महेष्वासौ शुष्मिणौ स्पर्धिनौ तथा ।
द्विरदाविव सङ्क्रुद्धौ वाशितार्थे मदोत्कटौ ॥ ८८॥

तावुभौ शरवर्षाभ्याम् अन्योन्यमभिवर्षताम् ।
भूरिश्रवास्सात्यकिश्च मेघाविव महारथौ ॥ ८९॥

सौमदत्तिस्तु शैनेयं प्रच्छाद्येषुभिराशुगैः ।
जिघांसुर्भरतश्रेष्ठ विव्याध निशितैश्शरैः ॥ ९०॥

दशभिस्सात्यकिं विद्ध्वा सौमदत्तिरथापरान् ।
मुमोच निशितान् बाणान् जिघांसुश्शिनिपुङ्गवम् ॥ ९१॥

तानस्य विशिखांस्तीक्ष्णान् अन्तरिक्षे विशां पते ।
अप्राप्तानस्त्रमायाभिर् अग्रसत् सात्यकिः प्रभो ॥ ९२॥

तौ पृथक् शरवर्षाभ्याम् अवर्षेतां परस्परम् ।
उत्तमाभिजनौ वीरौ कुरुवृष्णियशस्करौ ॥ ९३॥

तौ नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपौ ।
रथशक्तिभिरन्योन्यं विशिखैश्चाभ्यकृन्तताम् ॥ ९४॥

निर्भिन्दन्तौ च गात्राणि विक्षरन्तौ च शोणितम् ।
व्यष्टम्भयेतामन्योन्यं प्राणद्यूताभिदेविनौ ॥ ९५॥

एवमुत्तमकर्माणौ कुरुवृष्णियशस्करौ ।
ततःपरमयुध्येतां वारणाविव यूथपौ ॥ ९६॥

तावदीर्घेण कालेन ब्रह्मलोकपुरस्कृतौ ।
गमिष्यन्तौ परं स्थानम् अन्योन्यं संततक्षतुः ॥ ९७॥

सात्यकिस्सौमदत्तिश्च शरवृष्ट्या परस्परम् ।

वृष्टिं तामभिवर्षन्तौ शराणां महतीं तदा ॥ ९८॥

तौ प्रैक्षन्त जनास्ते च युध्यमानौ युधां पती ।
यूथपौ वाशिताहेतोः प्रवृद्धाविव कुञ्जरौ ॥ ९९॥

भूयो भूयश्शरै राजंस् तक्षन्तौ क्रोधमूर्च्छितौ ।
अयुध्येतां महारङ्गे वने केसरिणाविव ॥ १००॥

मर्मज्ञाविव सङ्क्रुद्धौ जिघांसन्तौ जगर्जतुः ।
विमर्दन्तावथान्योन्यं [1]बलिवज्रधराविव ॥ १०१॥

अथान्योन्यं पताकाश्च रथोपकरणानि च ।
सञ्चिच्छिदतुरायत्तौ बाणैस्सन्नतपर्वभिः ॥ १०२॥

पुनश्च शरवर्षाभ्याम् अन्योन्यमभिवर्षताम् ।
उभौ तु जघ्नतुस्तूर्णम् इतरेतरसारथी ॥ १०३॥

अन्योन्यं च हयान् हत्वा धनुषी विनिकृत्य च ।
विरथावसियुद्धाय समेयातां महारणे ॥ १०४॥

आर्षभे चर्मणी चित्रे प्रगृह्य विपुले शुभे ।
विकोशौ चाप्यसी कृत्वा समरे चारु चेरतुः ॥ १०५॥

चरन्तौ विविधान् मार्गान् मण्डलानि च भारत ।
मुहुराजघ्नतुः क्रुद्धावन्योन्यमरिमर्दनौ ॥ १०६॥

सखड्गौ चित्रवर्माणौ सनिष्काङ्गदभूषणौ ।

---

1 क-ख-ङ—बल

रणोत्कटौ महावेगावन्योन्यं पर्यकर्षताम् ॥　　१०७॥

मुहूर्तमिव राजेन्द्र परिकृष्य परस्परम् ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां वीरावाश्वसतां पुनः ॥　　१०८॥

असिभ्यां चर्मणी शुभ्रे विपुले च शरावरे ।
निकृत्य पुरुषव्याघ्रौ बाहुयुद्धं प्रचक्रतुः ॥　　१०९॥

व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ नियुद्धकुशलावुभौ ।
बाहुभिस्समसज्जेताम् आयसैः परिघैरिव ॥　　११०॥

ततो राजन् भुजाघाता निग्रहावग्रहास्तथा ।
शिक्षाबलविशेषाश्च सर्वयोधप्रहर्षणाः ॥　　१११॥

तयोर्नृवरयो राजन समरे युध्यमानयोः ।
भीमोऽभवन्महाशब्दो वज्रपर्वतयोरिव ॥　　११२॥

द्विपाविव विषाणाग्रैश् शृङ्गैरिव महर्षभौ ।
युयुधाते महात्मानौ कुरुसात्वतपुङ्गवौ ॥　　११३॥

　　क्षीणायुधे सात्वते युध्यमाने
　　　　ततोऽब्रवीदर्जुनं वासुदेवः ॥　　११४

श्रीभगवान्—

　　सम्पश्यैनं विरथं युध्यमानं
　　　　योऽसौ केतुस्सर्वधनुर्धराणाम् ॥　　११४॥

सञ्जयः—

सिन्धुराजवधे सक्तं पार्थं कृष्णोऽब्रवीत् पुनः ॥ ११५

श्रीभगवान्—

सीदन्तं सात्यकिं पश्य पार्थैनं परिरक्ष च ॥ ११५॥

प्रविष्टो भारतीं तीर्त्वा तव पाण्डव पृष्ठतः ।
योधितश्च महाबाहुस् सर्वैर्भारत भारतैः ॥ ११६॥

धार्तराष्ट्राश्च ये मुख्या ये च मुख्या महारथाः ।
निहता वृष्णिवीरेण शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ११७॥

परिश्रान्तं युधां श्रेष्ठं सम्प्राप्तो भूरिदक्षिणः ।
युद्धकाङ्क्षी समासीनो नैतत् सममिवार्जुन ॥ ११८॥

सञ्जयः—

ततो भूरिश्रवाः क्रुद्धस् सात्यकिं युद्धदुर्मदः ।
उद्यम्य न्यहनद्राजन् मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ११९॥

ततो जलदनिर्घोषस् समीपे नृपसत्तम ।
हाहाकारो महानासीत् सैन्यानां भरतर्षभ ॥ १२०॥

यदुद्यम्य महाबाहुस् सात्यकिं न्यहनद्भुवि ॥ १२१

रथस्थयोर्द्वयोस्संख्ये क्रुद्धयोर्योधमुख्ययोः ।
केशवार्जुनयो राजन् समरे प्रेक्षमाणयोः ॥ १२२

अथ कृष्णो महाबाहुर् अर्जुनं प्रत्यभाषत ॥ १२२॥

श्रीभगवान्—

पश्य वृष्ण्यन्धकव्याघ्रं सौमदत्तिवशं गतम् ।
परिश्रान्तं गतं भूमौ कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ १२३॥

तवान्तेवासिनं शूरं पालयार्जुन सात्यकिम् ॥ १२४

न वशं यज्ञशीलस्य गच्छेत् पाण्डव माधवः ।
त्वत्कृते पुरुषव्याघ्र तदाऽशु क्रियतां प्रभो ॥ १२५

सञ्जयः—

अथाब्रवी[1]द्धृष्टमना वासुदेवं धनञ्जयः ॥ १२५॥

अर्जुनः—

पश्य वृष्णिप्रवीरेण क्रीडन्तं कुरुपुङ्गवम् ।
महाद्विपेनेव वने मत्तेन [2]हरियूथपम् ॥ १२६॥

सञ्जयः—

स सिंह इव मातङ्गं विकर्षन् भूरिदक्षिणः ।
व्यरोचत कुरुश्रेष्ठस् सात्त्वतप्रवरं युधि ॥ १२७॥

अर्जुनः—

मामेव च महाबाहो परियान्ति महारथाः ।
यथाशक्ति यतन्तो मां योधयन्तो जनार्दन ॥ १२८॥

ध्रुवं च योधयाम्येताञ् छिद्रान्वेषणतत्परान् ।

---

1. क-घ—हृषीकेशो वासुदेवो धनञ्जयम्
2 अ-क-घ—द्विप

रक्षामि सात्यकिं चैव सौमदत्तिवशं गतम् ॥ १२९॥

अप्राप्तोऽयं मया कृष्ण हन्तुं भूरिश्रवा रणे ।
अन्येन तु समासक्तं मम नोत्सहते मनः ॥ १३०॥

अवश्यं च मया कृष्ण वृष्णिवीरस्य रक्षणम् ।
मदर्थं युध्यमानस्य कार्यं प्राणैरपि प्रभो ॥ १३१॥

अधर्मो वाऽस्तु धर्मो वा मम माधव माधवः ।
परेण निहतो मा स्म प्राणान् हासीन्महारथः ॥ १३२॥

सञ्जयः—

एवमुक्त्वाऽर्जुनः कृष्णं परानाशु शितैश्शरैः ।
छादयामास सङ्क्रुद्धः परे चापि धनञ्जयम् ॥ १३३॥

एवं स्म युध्यते वीरस् सात्यकिं च मुहुर्मुहुः ।
प्रेक्षते स्म नरव्याघ्रो भूरिश्रवसमेव च ॥ १३४॥

स सिंह इव मातङ्गं विकर्षन् भूरिदक्षिणः ।
व्यरोचत कुरुश्रेष्ठस् सात्त्वतप्रवरं युधि ॥ १३५॥

तथा तु कृष्यमाणं तं दृष्ट्वा सात्यकिमाहवे ।
वासुदेवस्तदा राजन् भूयोऽप्यर्जुनमब्रवीत् ॥ १३६॥

श्रीभगवान्—

पश्य वृष्ण्यन्धकव्याघ्रं सौमदत्तिवशं गतम् ।
तव शिष्यं महाबाहो धनुष्यनवमं त्वया ॥ १३७॥

अनित्यो विक्रमः पार्थ यत्र भूरिश्रवा रणे ।
विशेषयति वार्ष्णेयं सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥　　१३८॥

अन्यैर्महारथैरेष पराक्रान्तैर्युयुत्सुभिः ।
युद्ध्वा भृशं परिश्रान्तः क्षीणायुधपरिच्छदः ॥　　१३९॥

सञ्जयः—

एवमुक्तो महाराज वासुदेवेन पाण्डवः ।
मनसा पूजयामास भूरिश्रवसमाहवे ॥　　१४०॥

अर्जुनः—

विकर्षन् सात्वतां श्रेष्ठं क्रीडमान इवाहवे ।
स हर्षयति मां भूयः कुरूणां नन्दिवर्धनः ॥　　१४१॥

प्रवरं वृष्णिवीराणां यन्निहन्त्येष सात्यकिम् ।
महाद्विपमिवारण्ये कर्षन्निव हरिर्भृशम् ॥　　१४२॥

सञ्जयः—

एवं तु मनसा राजन् पार्थस्सम्पूज्य कौरवम् ।
अयुध्यतारिभिर्वीरस् तं स सम्प्रेक्षते मुहुः ॥　　१४३॥

अथ कोशाद्विनिष्कृष्य खड्गं भूरिश्रवादिशतम् ।
मूर्धजेषु च जग्राह पदा चोरस्यताडयत् ॥　　१४४॥

आक्रम्य चाप्यथोद्यम्य सहासि सुभुजो भुजम् ॥　　१४५

शुशुभे स भुजस्तस्य तपनीयविभूषणः ।

मध्ये रथसमूहस्य इन्द्रध्वज इवोच्छ्रितः ॥ १४६

हाहाकृतमभूत् सर्वं पाण्डवानां महद्बलम् ।
तावकाश्च मुदा युक्तास् सिंहनादं विचुक्रुशुः ॥ १४७

निमीलिताक्षास्त्वभवञ् जनास्सङ्ग्रामभीरवः ॥ १४७॥
तथा भूरिश्रवोग्रस्ते सात्वते नष्टविक्रमे ।
वासुदेवं महाबाहुर् अर्जुनः प्रत्यभाषत ॥ १४८॥

अर्जुनः—

सैन्धवे सक्तदृष्टित्वान्नैनं पश्यामि माधवम् ।
एष त्वसुकरं कर्म यादवार्थे करोम्यहम् ॥ १४९॥

मम शिष्यो ममार्थाय युध्यते मम शत्रुभिः ।
तं कृष्ण मोक्षयिष्यामि दावात् सिंहशिशुं यथा ॥ १५०॥

सञ्जयः—

इत्युक्त्वा वचनं कुर्वन् वासुदेवस्य पाण्डवः ।
ततः क्षुरप्रं निशितं गाण्डीवे समयोजयत् ॥ १५१॥

पार्थबाहुविसृष्टस्स महोल्केव नभश्च्युता ।
सखड्गं यज्ञशीलस्य बाहुं दक्षिणमच्छिनत् ॥ १५२॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥
[ अस्मिन्नध्याये १५२॥ श्लोकाः ]

## ॥ द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

अर्जुनच्छिन्नभुजस्य भूरिश्रवस तदुपालम्भपूर्वकं प्रायोपवेशः ॥ १ ॥ सात्यकिना भूरिश्रवश्शिरश्छेदः ॥ २ ॥

सञ्जयः—

स बाहुर्न्यपतद्भूमौ [1]सखड्गस्सशुभाङ्गदः ।
यन्त्रमुक्तो महेन्द्रस्य ध्वजो वृत्तोत्सवो यथा ॥　　१

आदधज्जीवलोकस्य दुःखमुत्तममुत्तमः ।
प्रहरिष्यन् हृतो बाहुर् अदृष्टेन किरीटिना ॥　　२
वेगेन न्यपतद्भूमौ पञ्चास्य इव पन्नगः ॥　　२॥

स मोघं कृतमात्मानं दृष्ट्वा पार्थेन पार्थिवः ।
उत्सृज्य सात्यकिं क्रोधाद् गर्हयामास चार्जुनम् ॥　　३॥

स विबाहुर्महाराज एकपक्ष इवाण्डजः ।
एकचक्रो रथो यद्वद् धरणीमास्थितो नृपः ॥　　४॥
उवाच पाण्डवं चैव सर्वक्षत्रस्य शृण्वतः ॥　　५

भूरिश्रवाः—

नृशंसं बत कौन्तेय कर्मेह कृतवानसि ॥　　५॥
अपश्यतो विषक्तस्य व्यासक्तस्य च सात्वते ।

1. अ—इतोऽष्टौ पादा न सन्ति

अनागसोऽन्यमनसो यन्मे त्वं बाहुमच्छिनः ॥ ६॥

किं नु वक्ष्यसि राजानं धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
किं कुर्वाणो मया सङ्ख्ये हतो भूरिश्रवा इति ॥ ७॥

इदमिन्द्रेण ते साक्षाद् उपदिष्टं महात्मना ।
अस्त्रं रुद्रेण वा पार्थ द्रोणेनाथ कृपेण वा ॥ ८॥

ननु नाम स्वधर्मज्ञस् त्वं लोकेऽभ्यधिकः परैः ।
अयुध्यमानस्य रणे कथं प्रहृतवानसि ॥ ९॥

न प्रमत्ताय भीताय विरथाय प्रयाचते ।
व्यसने वर्तमानाय प्रहरन्ति मनीषिणः ॥ १०॥

इदं तु नीचाचरितम् असत्पुरुषसेवितम् ।
कथमाचरितं पार्थ त्वया कर्म सुदुष्करम् ॥ ११॥

आर्येण सुकरं प्राहुर् आर्यकर्म धनञ्जय ।
अनार्यकर्म त्वार्येण सुदुष्करतमं विदुः ॥ १२॥

कथं हि राजवंशस्थः कौरवस्सन् विशेषतः ।
क्षत्रधर्मादपक्रान्तो दुर्वृत्तश्चलितव्रतः ॥ १३॥

अल्पस्तवापराधोऽत्र न त्वां तात विगर्हये ।
[1]वार्ष्णेयापशदं प्राप्य क्षुद्रं कृतमिदं त्वया ॥ १४॥

[2]येषु येषु नरः पार्थ वर्तते सुसमाहितः ।

---

1 ङ-ख—यादवा    2 ङ—अर्धत्रयं नास्ति

आशु तच्छीलतामेति तदिदं दृश्यते त्वयि ॥　　१५॥

इदं तु यदतिक्षुद्रं वार्ष्णेयार्थे कृतं त्वया ।
वासुदेवमतं नूनं नैतत् त्वय्युपपद्यते ॥　　१६॥

को हि नाम प्रमत्ताय युध्यमानाय शत्रुणा ।
ईदृशं व्यसनं दद्याद् यो न कृष्णसखो भवेत् ॥　　१७॥

व्रात्यास्सङ्क्लिष्टकर्माणः प्रकृत्या क्षत्रगर्हिताः ।
वृष्ण्यन्धकाः कथं पार्थ प्रमाणं भवता कृताः ॥　　१८॥

सञ्जयः—

एवमुक्तो रणे पार्थो भूरिश्रवसमब्रवीत् ॥　　१९

अर्जुनः—

व्यक्तमेव हि जीर्णस्सन् बुद्धिं रञ्जयसे नृप ।
अनर्थकमिदं सर्वं यत्त्वया व्याहृतं प्रभो ॥　　२०

हृषीकेशेन सम्बन्धं गर्हसे मां च मूढवत् ।
रणानामस्मि धर्मज्ञस् सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥　　२१

न चाधर्ममहं कुर्याम् अजानंश्चैव मुह्यसि ॥　　२१॥

युध्यन्ते क्षत्रियाश्शत्रून् स्वैस्स्वैः परिवृता नृप ।
भ्रातृभिः पितृभिः पुत्रैस् तथा सम्बन्धिबान्धवैः ॥　　२२॥

वयस्यैरथ मित्रैश्च स्वबाहुबलमाश्रिताः ॥　　२३

अहं हि सात्यकिं शिष्यं सहायं बान्धवं तथा ।

मदर्थे युध्यमानं च त्यक्त्वा प्राणान् सुदुस्त्यजान् ॥ २४

मम बाहुं रणे राजन् दक्षिणं युद्धदुर्मदम् ।
निकृष्यमाणं तं दृष्ट्वा कथं शत्रुवशं गतम् ॥ २५

त्वया विकृष्यमाणं च दृष्टवानस्मि निष्क्रियम् ॥ २५॥

न चैव रक्षितव्यो हि एको रणगतेन वै ।
यो यस्य युध्यतेऽर्थाय स संरक्ष्यो नराधिप ॥ २६॥

तै रक्ष्यमाणैस्स नृपो रक्षितव्यो महामृधे ॥ २७

यद्यहं सात्यकिं दृष्ट्वा तूष्णीमासिष्य आहवे ।
ततस्तेन वियोगश्च प्राप्यं नरकमेव च ॥ २८

रक्षितश्च मया यस्मात् तस्माल्लब्धो मया स च ।
यशश्चैव स्वपक्षेभ्यः फलं मित्रस्य रक्षणात् ॥ २९

यच्च मां गर्हसे राजन् कृष्णेन सह सङ्गतम् ।
कस्तेन सङ्गमं नेच्छेत् तत्र ते बुद्धिविभ्रमः ॥ ३०

आबद्धकवचस्येह रथमारुह्य तिष्ठतः ।
सर्वायुधैरुपेतस्य प्रतियोद्धृप्रतीक्षिणः ॥ ३१

अस्मिन् गजरथानीके हयपत्तिसमाकुले ।
सिंहनादोद्धतरवे गम्भीरे सैन्यसागरे ॥ ३२

स्वैश्चापि समुपेतस्य विक्रान्तस्य तथा रणे ।
सात्यकेन कथं योग्यस् सङ्ग्रामस्ते भविष्यति ॥ ३३

बहुभिस्सह सङ्गम्य निर्जित्य च महारथान् ।
श्रान्तश्च श्रान्तवाहश्च क्षीणसर्वायुधस्त्वया ॥ ३४

समेतस्सात्यकिस्सङ्ख्ये निर्जितश्च महारथः ॥ ३४॥

अधिकं त्वां विजानामि तथाऽप्यन्यमना भवान् ।
इच्छसि त्वं शिरस्तस्य असिना हर्तुमाहवे ॥ ३५॥

तथा कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा सात्यकिं कः क्षमिष्यति ॥ ३६

त्वं तु गर्हय चात्मानं स्वधर्मं यो न रक्षसि ।
कथं रक्षिष्यसे वीर ये वै त्वां संश्रिता जनाः ॥ ३७

आत्तशस्त्रस्य हि रणे वृष्णिपुत्रं जिघांसतः ।
छिन्नवान् यदहं बाहुं नैतल्लोकविगर्हितम् ॥ ३८

न्यस्तशस्त्रस्य हि पुनर् विरथस्य विवर्मणः ।
अभिमन्योर्वधं तात धार्मिकः को नु पूजयेत् ॥ ३९

सञ्जयः—

एवमुक्तो महाराज यूपकेतुर्महायशाः ।
धनञ्जयेन वीरेण विनिश्वस्य मुहुर्मुहुः ॥ ४०

युयुधानं समुत्सृज्य रणे प्रायमुपाविशत् ॥ ४०॥

शरानास्तीर्य सव्येन पाणिना पुण्यलक्षणः ।
यियासुर्ब्रह्मलोकाय प्राणान् प्राणेष्वथाजुहोत् ॥ ४१॥

सूर्ये चक्षुस्समाधाय प्रसन्नं सलिले मनः ।

ध्यायन् महोपनिषदं योगयुक्तोऽभवन्मुनिः ॥ ४२॥

ततस्तु सर्वसेनासु जनाः कृष्णधनञ्जयौ ।
गर्हयामासुरप्येतौ शशंसुर्भूरिदक्षिणम् ॥ ४३॥

निन्द्यमानौ तथा कृष्णौ नोचतुः किञ्चिदप्रियम् ।
प्रशस्यमानं च तथा नामृष्यद्यूपकेतनम् ॥ ४४॥

तांस्तथा वादिनो राजन् पुत्रांस्तव धनञ्जयः ।
अमृष्यमाणश्च तदा तेषां तस्य च भाषितम् ॥ ४५॥

असङ्क्रुद्धमना वाचस् स्मारयन्निव भारत ।
उवाच पाण्डुतनयस् साक्षेपमिव फल्गुनः ॥ ४६॥

अर्जुनः—

मम सर्वेऽपि राजानो जानन्त्येतन्महाव्रतम् ।
न शक्यो मामको हन्तुं यो मे स्याद्बाणगोचरे ॥ ४७॥

यूपकेतुं समीक्ष्यैतन्न मां गर्हितुमर्हथ ।
न हि धर्ममविज्ञाय युक्तं गर्हयितुं च माम् ॥ ४८॥

आत्तशस्त्रस्य हि रणे वृष्णिवीरं जिघांसतः ।
यदहं बाहुमच्छैत्सं स धर्मो न विगर्हितः ॥ ४९॥

न्यस्तशस्त्रस्य हि पुनो विरथस्य विवर्मणः ।
नाभिमन्योर्वधं यूयं गर्हयध्वं कुतस्तदा ॥ ५०॥

दुर्योधनस्य क्षुद्रस्य नप्रमाणेऽवतिष्ठतः ।

सौमदत्तेर्वधस्साधुस् स वै साह्यकारिणः ॥ ५१॥

अस्मदीया मया रक्ष्याः प्राणबाध उपस्थिते ।
ये मे प्रत्यक्षतो वीरा हन्येरन्निति मे मतिः ॥ ५२॥

सात्यकश्च वशं नीतः कौरवेण महात्मना ।
ततो मयैतच्चरितं प्रतिज्ञारक्षणं प्रति ॥ ५३॥

सञ्जयः—

पुनश्च कृपयाऽऽविष्टो बहु तत्तद्विचिन्तयन् ।
उवाच चैनं कौरव्यम् अर्जुनश्शोकपीडितः ॥ ५४॥

अर्जुनः—

धिगस्तु क्षत्रधर्मं तु यत्र त्वं पुरुषेश्वरः ।
अवस्थामीदृशीं प्राप्तश् शरण्यश्शरणप्रदः ॥ ५५॥

नातिभारः कृतान्तस्य विद्यते कुरुनन्दन ।
यत्र त्वं पुरुषव्याघ्रः प्राप्तः पापामिमां दशाम् ॥ ५६॥

[1]न नूनं सुकृतस्यास्य फलं वै नृपसत्तम ।
[2]यत्र त्वं कुरुशार्दूल पापः पापामिमां दशाम् ॥ ५७॥

रौरवं नरकं भीमं गमिष्यति सुयोधनः ।
यत्कृते नरशार्दूलः प्राप्तः पापामिमां दशाम् ॥ ५८॥

[3]को हि नाम पुमाँल्लोके मादृशः पुरुषोत्तम ।

---

1. अ—अर्धचतुष्टयं नास्ति　　2. ख—इदमर्धं नास्ति
3 ङ—नास्तीदमर्धम्

प्रहरेत् त्वद्विधं त्वद्य प्रतिज्ञा यदि नो भवेत् ॥ ५९॥

सञ्जयः—

एवमुक्तस्तु पार्थेन शिरसा भूमिमस्पृशन् ।
पाणिना चैव सव्येन प्राहिणोद्दक्षिणे भुजे ॥ ६०॥

एतत् पार्थस्य तु वचस् तत्र श्रुत्वा महाद्युतिः ।
यूपकेतुर्महाराज तूष्णीमासीत् पराङ्मुखः ॥ ६१॥

अर्जुनः—

या प्रीतिर्धर्मराजे मे भीमे च वदतां वरे ।
नकुले सहदेवे च सा मे त्वयि शलाग्रज ॥ ६२॥

मया त्वं समनुज्ञातः कृष्णेन च महात्मना ।
गच्छ पुण्यकृताँल्लोकाञ् छिबिरौशीनरो यथा ॥ ६३॥

सञ्जयः—

धनञ्जये ब्रुवत्येवं घृणया च परिप्लुते ।
अवाङ्मुखा बभूवुश्च सैनिकास्सर्व एव ते ॥ ६४॥

मुहूर्तादिव विश्राम्य सात्यकिः क्रोधमूर्च्छितः ।
अमर्षवशमापन्नस् सौमदत्तिनिराकृतः ॥ ६५॥

तत उत्थाय शैनेयो विमुक्तस्सौमदत्तिना ।
खड्गमादाय चिच्छित्सुश् शिरस्तस्य महात्मनः ॥ ६६॥

निहतं पाण्डुपुत्रेण प्रमत्तं भूरिदक्षिणम् ।

इयेष सात्यकिर्हन्तुं शलाग्रजमकल्मषम् ॥ ६७॥

निकृत्तभुजमासीनं छिन्नहस्तमिव द्विपम् ।
क्रोशतां सर्वसैन्यानां निन्द्यमानस्सुदुर्मनाः ॥ ६८॥

वार्यमाणस्स कृष्णेन पार्थेन च महात्मना ।
भीमेन चक्ररक्षाभ्याम् अश्वत्थाम्ना कृपेण च ॥ ६९॥

कर्णेन वृषसेनेन सैन्धवेन तथैव च ।
विक्रोशतां च सैन्यानाम् अवधीत् तं यतव्रतम् ॥ ७०॥

प्रायोपविष्टस्य रणे पार्थेन च्छिन्नबाहुनः ।
सात्यकिः कौरवेयस्य खड्गेनापाहरच्छिरः ॥ ७१॥

नाभ्यनन्दन्त तं सैन्यास् सात्यकिं तेन कर्मणा ।
[1]अर्जुनेन हतं पूर्वं यज्जघान कुरूद्वहम् ॥ ७२॥

समाश्रयन्त तं तत्र सिद्धचारणमानवाः ।
भूरिश्रवसमालोक्य युद्धे प्रायगतं हतम् ॥ ७३॥

अपूजयंश्च तं देवास् सात्यकिं पूर्वकर्मणा ।
पक्षपातांश्च बहुशः प्रावदंस्तत्र सैनिकाः ॥ ७४॥

देवाः—

न वार्ष्णेयेऽपराधोऽस्ति भवितव्यं हि तत् तथा ।
तस्मान्मन्युर्न वः कार्यः क्रोधो दुःखकरो नृणाम् ॥ ७५॥

---

1. ख—अर्धचतुष्टयं नास्ति

हन्तव्यश्चैष वीरेण नात्र कार्या विचारणा ।
विहितो ह्यस्य धात्रेह मृत्युस्सात्यकिराहवे ॥ ७६॥

मर्तव्यमेव सर्वेण चरमं पूर्वमेव वा ॥ ७७

सञ्जयः—

[1]तान् प्रत्युवाच विजयश् शोकमोहसमन्वितान् ॥ ७७॥

अर्जुनः—

मन्यध्वं मृत इत्येष मा भूद्वो बुद्धिलाघवम् ॥ ७८

सञ्जयः—

तस्मिन् हते महाबाहौ यूपकेतौ महात्मनि ।
धिगेनमिति चाक्रन्दन् क्षत्रियाः क्रोधमूर्च्छिताः ॥ ७९

अन्ये न युक्तमित्येव भवितव्यं तथेति च ।
केचिदासन् विमनसः केचिद्दुःखसमन्विताः ॥ ८०

सात्यकिः—

न हन्तव्यो न हन्तव्य इति मन्दाः प्रभाषत ।
धर्मवादैरधर्मिष्ठा धर्मकञ्चुकमाश्रिताः ॥ ८१

यदा बालस्सुभद्रायास् सुतश्शस्त्रविनाकृतः ।
युष्माभिर्निहतो युद्धे तदा धर्मः क वो गतः ॥ ८२

मया त्वेतत् प्रतिज्ञातं क्षेपे कस्मिश्चिदाहवे ।
श्रुत्वा तत् सर्वभावेन गर्हयध्वं न चार्जुनम् ॥ ८३

---

1 अ-ङ—नास्तीदमर्धम्

शृणुध्वं सर्वमेवेह श्रुत्वा गर्हथ मानवाः ॥　　८३॥

यो मां निष्पिष्य सङ्ग्रामे जीवन् हन्यान्नरो रुषा ।
स मे वध्यो भवेच्छत्रुर् यद्यपि स्यान्मुनिव्रतः ॥　　८४॥

चेष्टमानं प्रतीघाते सुभुजं मां सुचक्षुषः ।
मन्यध्वं मृत इत्येवम् एतद्वो बुद्धिलाघवम् ॥　　८५॥

युक्तो ह्यस्य प्रतीघातः कृतो मे कुरुपुङ्गवाः ॥　　८६

यत्तु पार्थेन मां दृष्ट्वा प्रतिज्ञां परिरक्षता ।
सखड्गोऽस्य हृतो बाहुर् एतेनैवास्मि वञ्चितः ॥　　८७

भवितव्यं च यद्भावि दैवं चेष्टयते हि तत् ।
सोऽयं हतो विमर्देऽस्मिन् किमत्राधर्मचेष्टितम् ॥　　८८

अपि चेदं पुरा गीतम् एवं वाल्मीकिना भुवि ।
पीडाकरममित्राणां यत् स्यात् कर्तव्यमेव तत् ॥　　८९

[1]अनुष्ठितं मया तच्च कस्माद्गर्हथ मूढवत् ॥　　८९॥

सञ्जयः—

एवमुक्ता महाराज सर्वे च कुरुपाण्डवाः ।
न किञ्चित् प्रत्यभाषन्त मनसाऽपूजयंश्च तम् ॥　　९०॥

मन्त्राभिपूतस्य महाध्वरेषु
यशस्विनः कामसहस्रदस्य ।

---

1 ख-ङ—इदमर्धं नास्ति

मुनेरिवारण्यगतस्य कश्चि-

न्न यूपकेतोर्वधमभ्यनन्दत् ॥ ९१॥

सुनीलकेशं वरदस्य तस्य

शूरस्य पारावतलोहिताक्षम् ।

अश्वस्य मेध्यस्य शिरः प्रकृत्तं

न्यस्तं हविर्धान[1]मिवोत्तरेण ॥ ९२॥

स तेजसा शस्त्रकृतेन पूतो

महाहवे देहवरं विसृज्य ।

आक्रामदूर्ध्वं वरदो वराहो

व्यावृत्त्य धर्मेण परेण रोदसी ॥ ९३॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ९३॥ श्लोकाः ]

---

1. क-च—मथो

## ॥ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

सञ्जयेन धृतराष्ट्रं प्रति सात्यकेः भूरिश्रवसा पराभवकारणकथनम् ॥ १ ॥ तथा यादवानां प्रशंसनम् ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रः—

अजितो द्रोणराधेयविकर्णकृतवर्मभिः ।
यश्चैवोत्सहते जेतुं समस्तं मामकं बलम् ॥ १

तीर्णस्सेनार्णवं वीरः प्रतिश्रुत्य युधिष्ठिरे ।
स कथं कौरवेयेण समरेष्वनिवर्तिना ॥ २

निगृह्य भूरिश्रवसा बलाद्भुवि निपातितः ॥ २॥

सञ्जय—

शृणु राजन् यथोत्पत्तिं शैनेयस्य महात्मनः ।
यथा च भूरिश्रवसो यत्र ते संशयो नृप ॥ ३॥

ब्रह्मणस्त्वभवत् पुत्रो मानसोऽत्रिर्महातपाः ।
अत्रेः पुत्रोऽभवत् सोमस् सोमस्य तु बुधस्स्मृतः ॥ ४॥

बुधस्यैलो महाबाहुः पुत्र आसीत् पुरूरवाः ।
पुरूरवस्सुतस्त्वायुर् नहुषस्त्वायुषस्सुतः ॥ ५॥

नहुषस्य ययातिस्तु राजर्षिर्देवसम्मितः ।
ययातेर्देवयान्यां तु यदुर्ज्येष्ठोऽभवत् सुतः ॥ ६॥

यदोरभूदन्ववाये आजमीढ इति स्मृतः ।
यादवस्य सुतस्तस्य शूरस्त्रैलोक्यविश्रुतः ॥ ७॥

शूरस्य शौरिर्नृवरो वसुदेवो महायशाः ।
धनुष्यनवमश्शूरः कार्तवीर्यसमो युधि ॥ ८॥

तद्वीर्यश्चापि तत्रैव कुले शिनिरभून्नृपः ॥ ९

एतस्मिन्नेव काले तु देवकस्य महात्मनः ।
दुहितुस्स्वयंवरे राजन् सर्वक्षत्रसमागतम् ॥ १०

तत्र वै देवकीं देवीं वसुदेवार्थमात्मवान् ।
निर्जित्य पार्थिवान् सर्वान् रथमारोपयच्छिनिः ॥ ११

तां दृष्ट्वा नीयमानां तु वसुदेवाय देवकीम् ।
नामृष्यत महाराज सोमदत्तश्शिनि नृपम् ॥ १२

तयोर्युद्धमभूद्राजन् दिनार्धं चित्रमद्भुतम् ।
बाहुयुद्धं सुबलिनोः प्रसक्तं पुरुषर्षभ ॥ १३

शिनिना सोमदत्तस्तु प्रसह्य भुवि पातितः ।
असिमुद्यम्य केशेषु प्रगृह्य च पदा हतः ॥ १४

मध्ये राजसहस्राणां प्रेक्षकाणां समन्ततः ।
कृपया च पुनस्तेन जीवेति च विसर्जितः ॥ १५

तदवस्थः कृतस्तेन सोमदत्तो नरर्षभः ।
प्रासादयन्महादेवम् अमर्षवशमास्थितः ॥ १६

तस्य तुष्टो महादेवो वरदानां वरो विभुः ।
वरेण च्छन्दयामास स तु वव्रे वरं नृप ॥　　१७

पुत्रमिच्छामि भगवन् शिनेर्नप्तारमाहवे ।
मध्ये राजसहस्राणां यो निर्जित्य पदा हनेत् ॥　　१८

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा [1]भगवान् नीललोहितः ।
[2]सशिरःकम्पमाहेदं नैतदेवं भवेन्नृप ॥　　१९

स पूर्वमेव तपसा मामाराध्य जगत्त्रये ।
कस्याप्यवध्यतां मत्तः प्राप्तवान वरमुत्तमम् ॥　　२०

तवाप्ययं प्रयासस्तु निष्फलो न भविष्यति ।
तस्य पौत्रं तु समरे त्वत्पुत्रो मोहयिष्यति ॥　　२१

न तु मारयितुं शक्यः कृष्णसंरक्षितो ह्यसौ ।
अहमेव तु कृष्णोऽस्मि नावयोरन्तरं क्वचित् ॥　　२२

इति तस्मै वरं दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ।
नातिहृष्टमनास्सोऽपि पुरमागान्महीपतिः ॥　　२३

स तेन वरदानेन लब्धवान् भूरिदक्षिणम् ।
अपातयच्च समरे सौमदत्तिश्शिनेस्सुतम् ॥　　२४

---

1. क-ख-घ—सोमदत्तस्य पार्थिव　ङ—सोमदत्तस्य पाण्डवे
2. क-ख-घ-ङ—अर्धनवकं नास्ति; तत्स्थाने-
एवमस्त्विति देवेशस्तत्रैवान्तरधीयत ।　इदमर्धं वर्तते

[1]पश्यतां सर्वसैन्यानां पदा चैनमताडयत् ॥ २४॥

एतत् ते कथितं राजन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
न हि शक्यो रणे जेतुं सात्वतो मनुजर्षभः ॥ २५॥

[2]लब्धलक्षाश्च समरे बहुशश्चित्रयोधिनः ।
देवदानवगन्धर्वान् विजेतारो व्यवस्थिताः ॥ २६॥

स्ववीर्यविजये युक्ता नैते परपरिग्रहाः ॥ २७

न तुल्यं वृष्णिभिरिह दृश्यते भुवि किञ्चन ।
भूतं भव्यं भविष्यच्च बलेन भरतर्षभ ॥ २८

न ज्ञातीनवमन्यन्ते वृद्धानां वचने रताः ।
न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ॥ २९

जेतारो वृष्णिवीराणां कि पुनर्मानवा रणे ।
ब्रह्मस्वे च सुहृत्स्वे च ज्ञातिस्वे चाप्यहिंसकाः ॥ ३०

एतेषां रक्षितारश्च ये स्युः कस्यांचिदापदि ।
अर्थवन्तो न चोत्सिक्ता ब्रह्मण्यास्सत्यवादिनः ॥ ३१

समर्थान् नावमन्यन्ते दीनानभ्युद्धरन्ति च ।
नित्यं देवपरा दान्ता दातारश्चाविकत्थनाः ॥ ३२

तेन तद्वृष्णिवीराणां चक्रं न प्रतिहन्यते ॥ ३२॥

अपि मेरुं वहेत् कश्चित् तरेद्वा वरुणालयम् ।

---

1 ख-ङ—नास्तीदमर्धम्    2. ख—अर्धपञ्चकं नास्ति

न हि वृष्णिप्रवीराणां समेत्यान्तं व्रजेन्नृप ॥ ३३॥

एतत् ते सर्वमाख्यातं यत्र ते संशयो विभो ।
कुरुराज नरश्रेष्ठ तवैवापनयो महान् ॥ ३४॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ३४॥ श्लोकाः ]

## ॥ चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

कृष्णार्जुनयोः संवादः कर्णसात्यक्योर्युद्धं च ॥

धृतराष्ट्रः—

तदवस्थे हते तस्मिन् भूरिश्रवसि कौरवे ।
यथा भूयोऽभवद्युद्धं तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ १

सञ्जयः—

भूरिश्रवसि सङ्क्रान्ते परलोकाय भारत ।
वासुदेवं महाबाहुम् अर्जुनस्समचूचुदत् ॥ २

अर्जुनः—

चोदयाश्वान् द्रुतं कृष्ण यतो राजा जयद्रथः ।
अस्तमेति महाबाहो त्वरमाणो दिवाकरः ॥ ३

एतद्धि पुरुषव्याघ्र महदभ्युद्यतं मया ।

कार्यं संरक्ष्यते चैष कुरुसेनामहारथैः ॥ ४

यथा नात्येति मां सूर्यो यथा सत्यं भवेद्वचः ।
चोदयाश्वान् हृषीकेश यथा हन्यां जयद्रथम् ॥ ५

सञ्जयः—

ततः कृष्णो महाबाहुर् अश्वान् रजतसन्निभान् ।
हयज्ञश्चोदयामास जयद्रथवधं प्रति ॥ ६

तं प्रयान्तममोघेषुम् उत्पतन्तमिवाशुगैः ।
त्वरमाणा महाराज सेनामुख्यास्समाद्रवन् ॥ ७

दुर्योधनश्च [1]कर्णश्च वृषसेनश्च मद्रराट् ।
अश्वत्थामा कृपश्चैव स्वयमेव च सैन्धवः ॥ ८

समासाद्य तु बीभत्सुस् सैन्धवं प्रमुखे स्थितम् ।
नेत्राभ्यां क्रोधताम्राभ्यां प्रेक्षते स्म दहन्निव ॥ ९

यथाऽग्निरिन्धनेद्धो वै क्रोधेन्धनसमीरितः ।
सैन्धवस्य मुखं त्यक्त्वा कर्णस्सात्वतमभ्ययात् ॥ १०

*तत्राभियान्तं राधेयं दृष्ट्वा पार्थोऽपि सत्यकम् ।
प्रहसन् देवकीपुत्रम् इदं वचनमब्रवीत् ॥ ११

---

1 ङ—बलवान्

* इत आरभ्य उत्तराध्यायस्थ-मन्दरश्मिस्सहस्रांशुरस्तं गिरिमुपाद्रवत् इति २५-तमश्लोकपर्यन्तं विद्यमानाः श्लोकाः ख—कोशे १२७-अध्याये २९॥-श्लोकानन्तरं अधिकतया वर्तन्ते ।

अर्जुनः—

एष प्रयात्यातिरथिस् सात्यकस्य रथं प्रति ।
नामृष्यत हतं मन्ये भूरिश्रवसमाहवे ॥ १२

यत्र यात्येष तत्र त्वं चोदयाश्वाञ् जनार्दन ।
सौमदत्तेस्तु पदवीं गमयेत् सात्यकिं वृषा ॥ १३

सञ्जयः—

एवमुक्तो महाबाहुः केशवस्सव्यसाचिना ।
तमब्रवीन्महाराज पाण्डुपुत्रमिदं वचः ॥ १४

श्रीभगवान्—

अलमेष महाबाहो कर्णस्यैकोऽपि पाण्डव ।
किं पुनर्द्रौपदेयाभ्यां सहितस्सात्वतर्षभः ॥ १५

न हि तावत् क्षमः पार्थ कर्णेन तव सङ्गमः ॥ १५॥

प्रज्वलन्ती महोल्केव तिष्ठत्यस्मिन् हि वासवी ।
त्वदर्थं पूज्यमाना च शक्तिश्शत्रुप्रमाथिनी ॥ १६॥

ततः कर्णः प्रयात्वद्य सात्वताय यथातथम् ।
अहं जानामि कौन्तेय कालमस्य दुरात्मनः ॥ १७॥

तदा गन्तासि पार्थ त्वं तेन योद्धुं दुरात्मना ॥ १८

धृतराष्ट्रः—

यत् तत् कर्णेन वीरेण सात्त्वतस्य महारणे ।
सौमदत्तिं हतं दृष्टस् तद्युद्धमभवत् कथम् ॥ १९

[1]सात्यकिश्चापि विरथः कं समारूढवान् रथम् ।
चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ २०

सञ्जयः—

हन्त ते कथयिष्यामि तयोः प्राणदुरोदरम् ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां केशवार्जुनयोरपि ॥ २१

पूर्वमेव हि कृष्णस्य [2]मनोगतमिदं विभो ।
विजेतव्यो यथा वीरस् सौमदत्तेन सात्यकिः ॥ २२

अनागतमतीतं च सर्वं वेद जनार्दनः ।
व्यपदेशेन तं रात्रौ दारुकं सन्दिदेश ह ॥ २३

रथो मे युज्यतां कल्यम् इति राजन् महाबलः ॥ २३॥

न हि देवा न गन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ।
मानवाश्च विजेतारः कृष्णयोस्स्यन्दनस्थयोः ॥ २४॥

पितामहपुरोगाश्च देवास्सिद्धाश्च तं विदुः ।
प्रभावं वासुदेवस्य शृणु युद्धं हि तद्यथा ॥ २५॥

[3]सात्यकिं विरथं दृष्ट्वा कर्णं चाभ्युद्यतं रणे ।
दध्मौ शङ्खं महाघोषम् अमर्षेणेव पूरितम् ॥ २६॥

दारुकः कृष्णसन्देशं रहस्युक्तं हृदा वहन् ।

---

1. ख—अर्धद्वयं नास्ति 2. ख—हृदि चैव व्यवस्थितम्
3. ख—अर्धद्वयं नास्ति

रथमन्वानयत् तस्मै स तार्क्ष्योच्छ्रितकेतनम् ॥ २७॥
स केशवस्यानुमते रथं दारुकसंयुतम् ।
आरुरोह शिनेर्नप्ता ज्वलनादित्यसन्निभम् ॥ २८॥
कामगैस्सैन्यसुग्रीवमेघपुष्पवलाहकैः ।
हयैर्युक्तं महावेगैर् हेमाभरणभूषितैः ॥ २९॥
स तं दिव्यं समारुह्य विमानप्रतिमं रथम् ।
अभ्यद्रवत् स राधेयं प्रवपन् वै शरान् बहून् ॥ ३०॥
[1]चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ।
जयद्रथरथं प्राप्य राधेयं प्रत्युदीयतुः ॥ ३१॥
राधेयोऽपि महाराज शरवर्षं समुत्सृजन् ।
अभ्यद्रवत् स शैनेयं कर्णोऽपि रणकोविदः ॥ ३२॥
नैव दैवं न गान्धर्वं नासुरोरगराक्षसम् ।
तादृशं भुवि नो युद्धं दृष्टं नासीन्नच श्रुतम् ॥ ३३॥
[2]सर्वं ह्युपारमत् सैन्यं सनराश्वरथद्विपम् ॥ ३४
[3]तयोर्दृष्ट्वा महाराज कर्म सम्मूढचेतनम् ।
सर्वे च समपश्यन्त तद्युद्धमतिमानुषम् ॥ ३५
तयोर्नृवरयो राजन् सारथ्यं दारुकस्य च ॥ ३५॥
गतप्रत्युद्गतावृत्तैर् मण्डलैस्सन्निवर्तनैः ।

1. ख—अर्धश्लोकं नास्ति     2. ङ—अर्धश्लोकं नास्ति
3 ख—अर्धश्लोकं नास्ति

सारथेश्चरितं दृष्ट्वा केशवस्येव विस्मिताः ॥ ३६॥

नभस्स्थलगताश्चैव देवगन्धर्वदानवाः ।
अतीवावहिता द्रष्टुं कर्णशैनेयविक्रमम् ॥ ३७॥

मित्रार्थे तु पराक्रान्तौ शुष्मिणौ स्पर्धिनौ तदा ।
अन्योन्यं समरे राजन् शरवर्षैरवर्षताम् ॥ ३८॥

कर्णस्त्वमितविक्रान्तस् तव पुत्रहिते रतः ।
प्रममाथ शिनेः पौत्रं शरैराशीविषोपमैः ॥ ३९॥

जलसन्धं हतं दृष्ट्वा भूरिश्रवसमेव च ।
कर्णो रोषसमाविष्टो विषं सर्प इवोद्वमन् ॥ ४०॥

स शैनेयं रणे क्रुद्धं सर्वतश्शरवृष्टिभिः ।
अभ्यर्दयन्महाबाहुस् सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ ४१॥

तं तु सम्प्रेक्ष्य संरब्धं विसृजन्तं शराञ् शितान् ।
शरैरेव प्रजग्राह सत्यको वृष्णिपुङ्गवः ॥ ४२॥

तत्राश्चर्यं तदा राजन् अकरोच्छिनिनन्दनः ।
कर्णं च प्रतिविव्याध शरांस्तत्प्रहिताञ् शितान् ॥ ४३॥

ततस्तौ स्पर्धया वीरावुभौ युद्धविशारदौ ।
अतक्षतामथान्योन्यम् उभौ विजयकाङ्क्षिणौ ॥ ४४॥

समेयातां नरव्याघ्रौ व्याघ्राविव तरस्विनौ ।
बाणसङ्कुलयुद्धैश्च स्पर्धिनौ युद्धदुर्मदौ ॥ ४५॥

अयुध्येतामथान्योन्यं रणेऽनुपमविक्रमौ ॥ ४६

ततः कर्णं शिनेर्नप्ता सर्वपारशवैश्शरैः ।
बिभेद सर्वगात्रेषु पुनःपुनररिन्दमः ॥ ४७

सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपाहरत् ।
अश्वांश्च चतुरश्श्वेतान् निजघान शितैश्शरैः ॥ ४८

ध्वजं चिच्छेद [1]भल्लेन रथं च शतधाऽकरोत् ।
चकार विरथं कर्णं पुत्राणां तव पश्यताम् ॥ ४९

ततो विमनसो राजंस् तावका वै महारथाः ।
कृपश्च मद्रराजश्च वृषसेनश्च संयुगे ॥ ५०

द्रोणपुत्रश्च शैनेयं सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ५०॥

ततः पर्याकुलं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ५१

तथा सात्यकिना वीरे विरथे सूतजे कृते ।
[2-3]हाहाकारस्ततो राजन् सर्वसैन्येष्वभून्महान् ॥ ५२

---

1 ख—छत्रं च

2 ख—कर्णे पुरुषवीरेण सत्यकेन तथाकृते ।
कर्णस्यापि च ते पुत्र· शङ्खगोक्षीरपाण्डरै· ॥
चित्रकाञ्चनसन्नाहै' सदश्वैर्वेगवत्तरैः ।
हेमकक्ष्याध्वजोपेतं कृतयन्त्रपताकिनम् ॥
तद्रथं ससुयन्तारं बहुशस्त्रपरिच्छदम् ।
वधे यत्नमथाकार्षीत् कर्णस्तव सुतैस्सह ॥
सत्यकस्य पुरस्ताद्धि व्यथमल्लीलया शरैः ।
युधामन्युरथस्तेन भीमेन सहता नृप ॥ [अधिकः पाठः]

3 ख—त्रयोदशार्धानि न सन्ति

कर्णोऽपि विह्वलो राजन् सात्वतेनार्दितश्शरैः ।
दुर्योधनरथं तूर्णम् आरुरोह विनिश्श्वसन् ॥ ५३

मानयंस्तव पुत्रस्य बाल्यात् प्रभृति सौहृदम् ।
कृतां राज्यप्रदानेन प्रतिज्ञां परिपालयन् ॥ ५४

तथाऽपि विरथं कर्णं पुत्रांश्च तव पार्थिव ।
दुश्शासनमुखान् संख्ये नावधीत् सात्यकिर्वशी ॥ ५५

रक्षन् प्रतिज्ञां च पुनर् भीमसेनकृतां पुरा ।
विरथान् विह्वलांश्चक्रे न तु प्राणैर्व्ययोजयत् ॥ ५६

भीमसेनेन हि वधः पुत्राणां ते प्रतिश्रुतः ।
पुनर्द्यूते च पार्थेन वधः कर्णस्य संश्रुतः ॥ ५७

वधे त्वकुर्वन् यत्नं ते तस्य कर्णमुखास्तदा ।
नाशक्नुवंश्च तं हन्तुं सात्त्वतप्रवरं तदा ॥ ५८

सात्यकिस्तु सुतांस्ते वै व्यधमल्लीलया शरैः ॥ ५८॥

द्रौणिश्च कृतवर्मा च तथाऽन्ये प्रवरा रथाः ।
निर्जिता धनुषैकेन शतशः क्षत्रियर्षभाः ॥ ५९॥

[1]काङ्क्षता च परं लोकं धर्मराजस्य च प्रियम् ॥ ६०

---

1 ख—काङ्क्षन्वै स्वर्गलोकं हि धर्मराजहितं च यत् ।
पार्थेन सदृशो युद्धे वासुदेवसमोऽथवा ॥
सर्वक्षत्रियवीराणामेकवीरं तु सूतजम् । [पाठान्तरम्]

[1]कृष्णयोस्सदृशो वीर्ये सात्यकिश्शत्रुतापनः ।
कृष्णो वाऽपि भवेल्लोके पार्थो वाऽपि धनुर्धरः ॥ ६१

शैनेयो वा नरव्याघ्र चतुर्थस्तु न विद्यते ॥ ६१॥

अजय्यं वासुदेवस्य रथमास्थाय सात्यकिः ।
चकार विरथं कर्णं सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ६२॥

[2]पार्थेन सदृशो युद्धे वासुदेवसमो युवा ।
सर्वक्षत्रियवीराणाम् एकवीरस्तु सूतजः[3] ॥ ६३॥

धृतराष्ट्रः—

दारुकेण समायुक्तम् औरसेन बलेन च ।
असह्यं सात्यकि मन्ये रथमेघौघनिस्स्वनम् ॥ ६४॥

सञ्जयाचक्ष्व भूयो मे यच्चक्राते पुनश्च तौ ॥ ६५

सञ्जयः—

शृणु राजन् यथा तस्य रथमन्यं महाद्युतिः ।
दारुकस्यानुजस्तूर्णं सद्यो दृढतरं ततः ॥ ६६

आयसैः काञ्चनैः पट्टैस् सन्नद्धं चित्रकूबरम् ।
तारासहस्ररचितं सिंहध्वजपताकिनम् ॥ ६७

---

1 ख—अर्धत्रयं नास्ति
2. ख—इदमर्धद्वयं नास्ति
3 ख—अजेयं रथमास्थाय वासुदेवस्य सात्यकिः ।
चकार विरथं कर्णं सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ [अधिकः पाठः]

अश्वैर्वातजवैर्युक्तं हेमभाण्डपरिच्छदैः ।
पाण्डरैरिन्दुसङ्काशैस् सर्वशब्दातिगैर्दृढैः ॥ ६८

चित्रकाञ्चनसन्नद्धैर् अष्टवर्षैस्तुरङ्गमैः ॥ ६८॥

घण्टाजालपरिक्षिप्तं शक्तितोमरसङ्कुलम् ॥ ६९

चित्रं साङ्ग्रामिकैर्द्रव्यैर् बहुशस्त्रपरिच्छदम् ।
रथं सम्पादयामास मेघगम्भीरनिस्स्वनम् ॥ ७०

तं समारुह्य शैनेयस् तव सैन्यमभिद्रवत् ।
दारुकोऽपि यथाकामं प्रययौ केशवान्तिकम् ॥ ७१

कर्णस्यापि सुता राजञ् शङ्खगोक्षीरपाण्डरैः ।
चित्रकाञ्चनसन्नाहैस् सदश्वैर्वेगवत्तरैः ॥ ७२

हेमकक्ष्याध्वजोपेतं क्लृप्तयन्त्रपताकिनम् ।
अग्र्यं रथं सयन्तारं बहुशस्त्रपरिच्छदम् ॥ ७३

उपाजह्रुस्तमासाद्य कर्णोऽप्यभ्यद्रवद्रिपून् ॥ ७३॥

एतत् ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
भूयोऽपि च निबोधेमं तवापनयजं क्षयम् ॥ ७४॥

एकत्रिंशत् तव सुता भीमसेनेन पातिताः ।
दुर्मुखं प्रमुखे कृत्वा बहुशश्चित्रयोधिनः ॥ ७५॥

शूराभ्यां निहताश्शूरास् सात्यकेनार्जुनेन च ।

भीष्मोऽपि निहतश्शूरो भगदत्तश्च भारत ॥ ७६ ॥

एवमेष क्षयो वृत्तो राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ७७

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥
[अस्मिन्नध्याये ७७ श्लोकाः]

## ॥ पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

अर्जुनेन कर्णं प्रति तत्कृतभीमगर्हणातितिक्षया तद्गर्हणपूर्वकं तत्सुतवधप्रतिज्ञा ॥ १ ॥ कर्णदुर्योधनसंवादः सङ्कुलयुद्धं च ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रः—

तथा हतेषु शूरेषु तेषां मम च सञ्जय ।
किस्विद्भीमार्जुनौ चैव सात्यकिश्चाकरोत् तदा ॥ १

सञ्जयः—

भीमसेनोऽब्रवीदेनं कर्णवाक्शल्यपीडितः ।
अमर्षवशमापन्नः पाण्डवं सव्यसाचिनम् ॥ २

भीमः—

पुनः पुनस्तूबरक मूढ औदरिकेति च ।
अकृतास्त्रक मा योत्सीर् बाल सङ्ग्रामकातर ॥ ३
इति मामब्रवीत् कर्णश् शृण्वतस्ते धनञ्जय ।

एवं वक्ता च मे वध्यस् तेन चोक्तस्तथा ह्यहम् ॥ ४

एतद्व्रतं महाबाहो त्वया सह कृतं मया ।
यथैतन्मम कौन्तेय तथा तव न संशयः ॥ ५

तं वारय रथश्रेष्ठ स्मरैतद्वचनं मम ।
यथा भवति तत् सत्यं तथा कुरु धनञ्जय ॥ ६

सञ्जयः—

वचनं भीमसेनस्य श्रुत्वा त्वमरविक्रमः ।
ततोऽर्जुनोऽब्रवीत् कर्णं किञ्चिदभ्येत्य संयुगे ॥ ७

अर्जुनः—

कर्ण कर्ण मृषादृष्टे सूतपुत्र सुदुर्मते ।
अधर्मबुद्धे शृणु मे यत् त्वा वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥ ८

द्वावेव कर्ण शूराणां रणे दृष्टौ जयाजयौ ।
तौ चाप्यनित्यौ राधेय वासवस्यापि युध्यतः ॥ ९

रणमुत्सृज्य निर्लज्ज गच्छसे वै पुनः पुनः ।
माहात्म्यं पश्य भीमस्य कर्ण जन्म कुले तथा ॥ १०

नोक्तवान् परुषं यत् त्वा पलायनपरायणम् ॥ १०॥

भूयस्त्वमपि सङ्गम्य सकृदेव यदृच्छया ।
विरथं कृतवान् वीरं पाण्डवं सूतदायद ॥ ११॥

कुलस्य सदृशं चापि राधेय कृतवानसि ।

त्वमिदानीं नरश्रेष्ठ प्रस्तुतं नावबुध्यसे ॥　　१२॥

सृगाल इव वन्येन क्षत्रं त्वमवमन्यसे ।
पित्र्यं कर्मास्य सङ्ग्रामस् तव तस्य कुलोचितम् ॥　　१३॥

अहं त्वामपि राधेय ब्रवीमि रणमूर्धनि ।
सर्वशस्त्रभृतां मध्ये कुरु कार्याणि सर्वशः ॥　　१४॥

[1]नैकान्तसिद्धिस्सङ्ग्रामे वासवस्यापि विद्यते ।
मुमूर्षुर्वृष्णिवीरेण विरथोऽसि विनिर्जितः ॥　　१५॥

स त्वया भीमसेनस्य जयः प्राप्तो यदृच्छया ।
अधर्मेण च राधेय स त्वं भीममवोचथाः ॥　　१६॥

युद्धधर्ममजानन वै युद्ध्यन्तमपलायिनम् ।
पूरयन्तं यथाशक्ति शूरकर्माहवे स्थितम् ॥　　१७॥

पश्यतां सर्वसैन्यानां केशवस्य च सन्निधौ ।
विरथो भीमसेनेन कृतो युधि पुनः पुनः ॥　　१८॥

सर्वशस्त्रभृतां मध्ये गुरुकार्यं त्वया कृतम् ॥　　१९

परोक्षं मम सौभद्रो युष्माभिर्बहुभिर्हतः ।
तस्मात् तस्यावलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि ॥　　२०

त्वया तस्य धनुश्छिन्नम् आत्मनाशाय दुर्मते ।
तस्माद्वध्योऽसि मे मूढ सामात्यसुतबान्धवः ॥　　२१

---

1. क-घ—कोशयोरेवेमानि नवार्धानि वर्तन्ते ।

कुरु त्वं सर्वकृत्यानि मन्द ते भयमागतम् ।
हन्तास्मि वृषसेनं ते प्रेक्षमाणस्य संयुगे ॥ २२

ये च तत्रापि हन्तारम् उपयास्यन्ति मां युधि ।
तांश्च सर्वान् हनिष्यामि सत्येनायुधमालभे ॥ २३
मौण्डिनं तं वधिष्यामि त्वां च कर्णातिमानिनम् ॥ २३॥

सञ्जय:—

[1]अर्जुनेन प्रतिज्ञाते वधे कर्णसुतस्य ह ।
महान् सुतुमुलश्शब्दो बभूव रथिनां तदा ॥ २४॥

तस्मिन्नाकुलसङ्ग्रामे वर्तमाने तथाविधे ।
मन्दरश्मिस्सहस्रांशुर् अस्तं गिरिमुपाद्रवत् ॥ २५॥

[2]ततो दुर्योधनो राजा राधेयं त्वरितोऽब्रवीत् ॥ २६

अमानुषाणि कर्माणि कुर्वन्तौ पुरुषर्षभौ ।
सात्यकिं भीमसेनं च यत्तौ तौ दर्शयन्निव ॥ २७

दुर्योधन:—

अयं स वैकर्तन युद्धकालो
विदर्शयस्वात्मबलं महात्मन् ।

---

1. ख—इदमर्धद्वयं नास्ति
2. ख—अथ सञ्चरतो वीरं फल्गुनं भीमसात्यकौ ।
जयद्रथानुगैर्वीरैर्युद्धाय समुपाययुः ॥ [अधिकः पाठः]

यथा न वध्येत रणेऽर्जुनेन
　जयद्रथः कर्ण तथा कुरुष्व ॥ २८

अल्पावशेषो दिवसो हि साम्प्रतं
　निवारयेहाद्य रिपुं शरौघैः ।
दिनक्षयं प्राप्य नरप्रवीर
　ध्रुवो हि नः कर्ण जयो भविष्यति ॥ २९

सैन्धवे रक्ष्यमाणे तु सूर्यस्यास्तमयं प्रति ।
मिथ्याप्रतिज्ञः कौन्तेयः प्रवेक्ष्यति हुताशनम् ॥ ३०

[1]अनर्जुनायां च भुवि मुहूर्तमपि मानद ।
जीवितुं नोत्सहेरन् वै भ्रातरोऽस्य सहानुगाः ॥ ३१

पाण्डवेषु च नष्टेषु सशैलवनकाननाम् ।
कर्णेमां वसुधां कृत्स्नां भोक्ष्यामो हतकण्टकाम् ॥ ३२

दैवेनोपहतः पार्थो विपरीतश्च मानद ।
कार्याकार्यमजानन् वै प्रतिज्ञां कृतवान् रणे ॥ ३३

नूनमात्मविनाशाय पाण्डवेन किरीटिना ।
मिथ्याप्रतिज्ञैव कृता जयद्रथवधं प्रति ॥ ३४

कथं जीवति सामर्षे त्वयि राधेय फल्गुनः ।
अनस्तमित आदित्ये न हन्यात् सैन्धवं नृपम् ॥ ३५

---

1. ङ—अर्जुनं च विना रात्रौ

रक्षितं मद्रराजेन कृपेण च महात्मना ।
जयद्रथं रणमुखे कथं हन्याद्धनञ्जयः ॥ ३६

द्रौणिना रक्ष्यमाणं च मया दुश्शासनेन च ।
कथं प्राप्स्यति बीभत्सुस् सैन्धवं कालचोदितः ॥ ३७

युध्यन्ते बहवश्शूरा लम्बते च दिवाकरः ।
शङ्के जयद्रथं पार्थो नैनं प्राप्स्यति मानद ॥ ३८

स त्वं कर्ण मया सार्धं शरैश्चान्यैर्महारथैः ।
युध्यस्व यत्नमास्थाय परं पार्थेन संयुगे ॥ ३९

सञ्जयः—

एवमुक्तस्तु राधेयस् तव पुत्रेण मारिष ।
दुर्योधनमिदं वाक्यं प्रत्युवाच कुरूद्वहम् ॥ ४०

कर्णः—

दृढलक्ष्येण वीरेण भीमसेनेन धन्विना ।
दृढमुद्वेजितस्सङ्ख्ये शरजालैरनेकधा ॥ ४१

स्थातव्यमिति तिष्ठामि रणे सम्प्रति मानद ।
नाङ्गमिङ्गति मे किञ्चित् सन्तप्तस्य रथेषुभिः ॥ ४२
योत्स्ये चाहं यथाशक्ति त्वदर्थं जीवितं हि मे ॥ ४२॥

तत् तथा प्रयतिष्येऽहं परं शक्त्या सुयोधन ।
यथा पाण्डवमुख्योऽसौ न हनिष्यति सैन्धवम् ॥ ४३॥

न हि मे जीवमानस्य सायकांश्चास्यतश्शितान् ।

सैन्धवं प्राप्नुयाद्वीरस् सव्यसाची [1]धनञ्जयः ॥ ४४॥

यत् तु शक्तिमता कार्यं सततं हितकारिणा ।
तत् करिष्यामि कौरव्य जयो दैवे प्रतिष्ठितः ॥ ४५॥

[2]अद्य योत्स्येऽर्जुनमहं पौरुषे स्वे व्यवस्थितः ।
त्वदर्थं पुरुषव्याघ्र जयो दैवे प्रतिष्ठितः ॥ ४६॥

अद्य युद्धं कुरुश्रेष्ठ मम पार्थस्य चोभयोः ।
पश्यन्तु सर्वभूतानि दारुणं रोमहर्षणम् ॥ ४७॥

सञ्जयः—

कर्णकौरवयोरेवं रणे सम्भाषमाणयोः ।
अर्जुनो निशितैर्बाणैर् जघान तव वाहिनीम् ॥ ४८॥

चिच्छेद निशितैर्बाणैश् शूराणामनिवर्तिनाम् ।
भुजान् भुजगसङ्काशान् हस्तिहस्तोपमान् रणे ॥ ४९॥

शिरांसि च महाबाहुश् चिच्छेद निशितैश्शरैः ॥ ५०

हस्तिहस्तान् द्विपस्कन्धान् रथाक्षांश्च समन्ततः ।
बाहूंश्चकर्त वै नृणां गृहीतप्रासतोमरान् ॥ ५१

[3]क्षुरैश्चिच्छेद बीभत्सुर् द्विधैकैकं त्रिधैव च ।
हयवारणमुख्याश्च प्रापतंश्च सहस्रशः ॥ ५२

---

1 क-ख—परन्तपः  2. ख—अर्धद्वयं नास्ति
3. ङ—शरैः

ध्वजांश्छत्राणि चापानि चामराणि शिरांसि च ।
कक्षमग्निरिवोद्भूतः प्रादहन् तव वाहिनीम् ॥ ५३

अचिरेण महीं पार्थश् चकार रुधिरोक्षिताम् ॥ ५३॥

हतभूयिष्ठयोधं तन् कृत्वा तव बलं बली ।
आससाद दुराधर्षस् सैन्धवं सत्यविक्रमः ॥ ५४॥

बीभत्सुर्भीमसेनेन सात्यकेन च रक्षितः ।
बभूव भरतश्रेष्ठ ज्वलन्निव हुताशनः ॥ ५५॥

तं तथाऽवस्थितं दृष्ट्वा त्वदीया वीरसम्मताः ।
नामृष्यन्त महेष्वासाः फल्गुनं पुरुषर्षभम् ॥ ५६॥

दुर्योधनश्च कर्णश्च वृषसेनोऽथ मद्रराट् ।
अश्वत्थामा कृपश्चैव स्वयमेव च सैन्धवः ॥ ५७॥

सन्नद्धास्सैन्धवस्यार्थे समावव्रुः किरीटिनम् ।
नृत्यन्तं रथमास्थाय धनुर्ज्यातलनादितैः ॥ ५८॥

सङ्ग्रामकोविदं पार्थं सर्वे युद्धविशारदाः ।
[1]अभीताः पर्यवर्तन्त व्यात्ताननमिवान्तकम् ॥ ५९॥

सैन्धवं पृष्ठतः कृत्वा जिघांसन्तोऽच्युतार्जुनौ ।
सूर्यास्तमयमिच्छन्तो लोहितायति भास्करे ॥ ६०॥

ते भुजैर्भोगिभोगाभैर् धनूंष्यायम्य सायकान् ।

1. ङ—अभितः

मुमुचुस्सूर्यरश्म्याभाञ् छतशः फल्गुनं प्रति ॥　　६१॥

ततस्तानस्यमानांश्च किरीटी युद्धदुर्मदः ।
द्विधा त्रिधाऽष्टधा च्छित्त्वा सद्यो विव्याध तान् रथी ॥६२॥

सिंहलाङ्गूलकेतुस्तु दर्शयञ् शक्तिमात्मनः ।
शारद्वतीसुतो राजन्नर्जुनं प्रत्ययोधयत् ॥　　६३॥

स विद्ध्वा दशभिः पार्थं वासुदेवं च सप्तभिः ।
अतिष्ठद्रथमार्गेषु सैन्धवं प्रतिपालयन् ॥　　६४॥

अथैनं कौरवश्रेष्ठास् सर्व एव समन्ततः ।
महता रथवंशेन सर्वतः पर्यवारयन् ॥　　६५॥

विष्फारयन्तश्चापानि विसृजन्तश्च सायकान् ।
सैन्धवं परिरक्षन्तश् शासनात् तनयस्य ते ॥　　६६॥

ततः पार्थस्य शूरस्य बाह्वोर्बलमदृश्यत ।
इषुधेरक्षयत्वं च धनुषो गाण्डिवस्य च ॥　　६७॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्रौणेश्शारद्वतस्य च ।
एकैकं बहुभिर्बाणैस् सर्वानेव समर्पयत् ॥　　६८॥

तं द्रौणिः पञ्चविंशत्या वृषसेनश्च पञ्चभिः ।
दुर्योधनश्च सप्तत्या कर्णश्च दशभिश्शरैः ॥　　६९॥

त एनमभिगर्जन्तो विध्यन्तश्च पुनः पुनः ।
विधून्वन्तश्च चापानि सर्वतः पर्यवारयन् ॥　　७०॥

क्लिष्टं च सर्वतश्चक्रू रथमण्डलमाशुगैः ।
सूर्यास्तमयमिच्छन्तस् त्वरमाणा महारथाः ॥ ७१॥

[1]त एनमभिनर्दन्तो विधून्वाना धनूंषि च ।
सिषिचुर्मार्गणैर्वीरा गिरिं मेघा इवाम्बुभिः ॥ ७२॥

ते समेता महास्त्राणि तत्र राजन् व्यदर्शयन् ।
धनञ्जयस्य गात्रेषु शूराः परिघबाहवः ॥ ७३॥

निवार्य ताञ् शरव्रातैर् दिव्यान्यस्त्राणि दर्शयन् ।
हतभूयिष्ठयोधं तत् कृत्वा ते बलमर्जुनः ॥ ७४॥

आससाद दुराधर्षस् सैन्धवं सत्यविक्रमः ॥ ७५

तं कर्णस्संयुगे राजन् प्रत्यवारयदाशुगैः ।
मिषतो भीमसेनस्य सात्वतस्य च भारत ॥ ७६

तं पार्थो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यद्रणाजिरे ।
सूतपुत्रं महाबाहुस् सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ७७

सात्वतोऽपि त्रिभिर्बाणैः कर्णं विव्याध मारिष ।
[2]भीमसेनस्त्रिभिश्चैव पुनः पार्थश्च सप्तभिः ॥ ७८

तान् कर्णः प्रतिविव्याध षष्ट्या षष्ट्या महारथः ।
तद्युद्धमभवद्राजन् कर्णस्य बहुभिस्सह ॥ ७९

तत्राद्भुतमपश्याम सूतजस्य च विक्रमम् ।

1. क-ख—इदमर्धं नास्ति 2. ख—अर्धचतुष्टयं नास्ति

यदेकस्समरे क्रुद्धांस् तांश्च त्रीन पर्यवारयत् ॥　　८०

फल्गुनश्च महाबाहुः कर्णं वैकर्तनं रणे ।
सायकानां शतेनैव सर्वमर्मस्वताडयत् ॥　　८१

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गस् सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
शरैः पञ्चाशता राजन प्राविध्यत् फल्गुनं रणे ॥　　८२

तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा सव्यसाची न मृष्यते ॥　　८२॥

तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा विव्याधैनं स्तनान्तरे ।
सायकैर्नवभिर्वीरस् त्वरमाणो धनञ्जयः ॥　　८३॥

वधार्थं तस्य समरे सायकं सूर्यवर्चसम् ।
चिक्षेप त्वरया राजंस् त्वराकाले धनञ्जयः ॥　　८४॥

तमापतन्तं भल्लेन द्रौणिश्चिच्छेद सायकम् ।
अर्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन स च्छिन्नः प्रापतद्भुवि ॥　　८५॥

अथान्यद्धनुरादाय सूतपुत्रः प्रतापवान ।
सायकैर्बहुसाहस्रैः कृतप्रतिकृतेप्सया ॥　　८६॥

तौ वृषाविव नर्दन्तौ नरसिंहौ महारथौ ।
सायकौघप्रतिच्छन्नौ चक्रतुः खमजिह्मगैः ॥　　८७॥

अदृश्यौ च शरौघैस्तौ निघ्नन्तावितरेतरम् ।
पार्थोऽहमस्मि तिष्ठ त्वं कर्णोऽहं तिष्ठ फल्गुन ॥　　८८॥

इत्येवं तर्जयन्तौ तौ वाक्शल्यैस्तु परस्परम् ।

विध्येतां समरे वीरौ चित्रं लघु च सुष्ठु च ॥ ८९॥

प्रेक्षणीयतमावास्तां सर्वयोधसमागमे ।
प्रशस्यमानौ समरे सिद्धचारणवादिकैः ॥ ९०॥

अयुध्येतां महाराज परस्परवधैषिणौ ।
ततो दुर्योधनो राजा तावकानभ्यभाषत ॥ ९१॥

दुर्योधन—

यत्ता रक्षत राधेयं नाहत्वा समरेऽर्जुनम् ।
निवर्तिष्यति राधेयो न वाऽजित्वाऽद्य फल्गुनम् ॥ ९२॥

सञ्जयः—

एतस्मिन्नन्तरे राजन् दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ।
आकर्णमुक्तैरिषुभिः कर्णस्य चतुरो हयान् ॥ ९३॥

अनयन्मृत्युलोकाय चतुर्भिस्सायकोत्तमैः ॥ ९४

सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपाहरत् ।
छादयामास च शरैस् तव पुत्रस्य पश्यतः ॥ ९५

सञ्छाद्यमानस्समरे हताश्वो हतसारथिः ।
मोहितश्शरजालेन कर्तव्यं नाभ्यपद्यत ॥ ९६

तं तथा विरथं दृष्ट्वा आरोप्य स्वरथं तदा ।
अश्वत्थामा महाराज भूयोऽर्जुनमयोधयत् ॥ ९७

मद्रराजश्च कौन्तेयम् अविध्यत् त्रिशता शरैः ।

आवव्रेऽर्जुनमार्गं च शरजालेन भारत ॥ ९८

शारद्वतस्तु विंशत्या वासुदेवं समर्पयन् ।
धनञ्जयं द्वादशभिर् आजघान शिलीमुखैः ॥ ९९

चतुर्भिस्सिन्धुराजश्च वृषसेनश्च सप्तभिः ।
पृथक् पृथङ्महाराज कृष्णपार्थावविध्यताम् ॥ १००

तथैव तान् प्रत्यविध्यत् कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
द्रोणपुत्रं चतुष्षष्ट्या मद्रराजं शतेन च ॥ १०१

सैन्धवं दशभिर्बाणैर् वृषसेनं त्रिभिश्शरैः ।
शारद्वतं च विंशत्या विद्ध्वा पार्थस्समानदत् ॥ १०२

ते प्रतिज्ञाप्रतीघातम् इच्छन्तस्सव्यसाचिनः ।
सहितास्तावकास्तूर्णम् अभिपेतुर्धनञ्जयम् ॥ १०३

ततोऽर्जुनस्सर्वतोदारमस्त्रं
प्रादुश्चक्रे त्रासयन् धार्तराष्ट्रान् ।
तं प्रत्युदीयुः कुरवः पाण्डुसूनुं
रथैर्महार्हैश्शरवर्षं सृजन्तः ॥ १०४

ततस्तु तस्मिंस्तुमुले समुत्थिते
सुदारुणे भारत मोहनीये ।
न सम्मुमोहाथ स राजपुत्रः
किरीटमाली विसृजञ् शरौघान् ॥ १०५

वधं प्रेप्सुस्सव्यसाची कुरूणां
स्मरन् क्लेशान् द्वादशवर्षवृत्तान् ।
गाण्डीवमुक्तैरिषुभिर्महात्मा
सर्वा दिशो व्यावृणोदन्तरिक्षम् ॥ १०६

[1]प्रदीप्तोल्कमभवच्चान्तरिक्षं
देहेषु भूरीण्यपतन् वयांसि ।
यत्पिङ्गलज्येन किरीटमाली ।
क्रुद्धो रिपूनुग्रजवेन हन्ति ॥ १०७

किरीटमाली महता महायशाश्
शरासनेनास्य शरानीकजित् ।
हयप्रवेकोत्तमनागधूर्गतान्
कुरुप्रवीरानिषुभिर्व्यपातयत् ॥ १०८

गदाश्च गुर्वीः परिघानयस्मयान्
असींश्च शक्तीश्च रणे नराधिपाः ।
महान्ति शस्त्राणि च भीमदर्शनाः
प्रगृह्य पार्थं सहसाऽभिदुद्रुवुः ॥ १०९

स तानुदीर्णान् सरथाश्ववारणान्
पदातिसङ्घांश्च महाधनुर्धरः ।

---

1. अ-ग—प्रदीप्तोल्केन प्रभया चान्तरिक्षं
क-ब—प्रदीप्तोल्केव प्रभया चान्तरिक्षं

विपन्नसर्वायुधजीवितान् रणे
चकार वीरो यमराष्ट्रवर्धनान् ॥ ११०

मध्यंदिनगतं सूर्यम् आपतन्तमिवाम्बरे ।
न शेकुस्सर्वभूतानि पाण्डवं प्रतिवीक्षितुम् ॥ १११

स रणे व्यचरत् पार्थः प्रेक्षणीयो धनञ्जयः ।
युगपद्दिक्षु सर्वासु चित्राण्यस्त्राण्यदर्शयन् ॥ ११२

आददानं महाराज संदधानं च पाण्डवम् ।
उत्कर्षन्तं विकर्षन्तं नाभ्यपश्याम लाघवात् ॥ ११३

स्रवन्त इव गाण्डीवाच् छरव्राता महात्मनः ।
आकाशे समदृश्यन्त हंसानामिव पङ्क्तयः ॥ ११४

अवारयत् स वीराणाम् अस्त्रैरस्त्राणि सर्वतः ।
दर्शयन् रौद्रमात्मानम् उग्रमुग्रपराक्रमः ॥ ११५

स तान् रथवरान् राजन्न् ह्यतिक्रामदर्जुनः ।
मोहयन्निव नाराचैर् जयद्रथवधेप्सया ॥ ११६

विसृजन् दिक्षु सर्वासु शरानच्युतसारथिः ।
सरथो व्यचरत् तूर्णं प्रेक्षणीयो धनञ्जयः ॥ ११७

भ्रमन्त इव शूरस्य शरव्राता महात्मनः ।
अदृश्यन्तान्तरिक्षस्थाश् शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ११८

आददानं महेष्वासं सन्दधान च [1]सायकम् ।
विसृजन्तं च कौन्तेयं नानुपश्याम हे तदा ॥ ११९

ततस्सर्वा दिशो राजन् सर्वांश्च रथिनो रणे ।
आकुलीकृत्य कौन्तेयो जयद्रथमुपाद्रवत् ॥ १२०

विव्याध च चतुष्षष्ट्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ १२०॥

सैन्धवस्तु तथा विद्धश् शरैर्गाण्डीवधन्वना ।
न चक्षमे सुसङ्क्रुद्धस् तोत्रार्दित इव द्विपः ॥ १२१॥

स वराहध्वजस्तूर्णं गृध्रपक्षानजिह्मगान् ।
आशीविषसमप्रख्यान् कर्मारपरिमार्जितान् ॥ १२२॥

मुमोच निशितान् सङ्ख्ये [2]सायकान सव्यसाचिने ॥ १२३

त्रिभिश्च विद्ध्वा गोविन्दं नाराचैष्षड्भिरर्जुनम् ।
अष्टभिर्वाजिनो विध्वा ध्वजं चैकेन पत्रिणा ॥ १२४

भूयश्चैवार्जुनं सङ्ख्ये शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १२४॥

स विधूयार्जुनस्सङ्ख्ये सैन्धवस्य शरान बहून ।
युगपत् सम्प्रचिच्छेद शराभ्यां सैन्धवस्य ह ॥ १२५॥

सारथेश्च शिरः कायाद् ध्वजं च समलङ्कृतम् ॥ १२६

स च्छिन्नयष्टिस्सुमहान् शीर्यमाणश्शराहतः ।

---

1. क-ख-घ—पाण्डवम् ङ—सायकान्
2. ख—इतः षट्ट पादा न सन्ति

वराहस्सिन्धुराजस्य पपातेन्दुसमप्रभः ॥　　१२७

आदित्यं प्रेक्षमाणस्तु वीभत्सुस्सृक्किणी लिहन् ।
अपश्यन्नान्तरं तस्य रश्मिभिस्संवृतस्य वै ॥　　१२८

अभवत् क्रोधरक्ताक्षो व्यात्तानन इवान्तकः ॥　　१२८॥

अथाब्रवीद्वासुदेवः कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ॥　　१२९

श्रीभगवान्—

नैष शक्यस्त्वया हन्तुं निर्व्याजं भरतर्षभ ।
स्रक्ष्याम्यहमुपायं तम् आदित्यस्यापवारणे ॥　　१३०

ततोऽस्तं गतमादित्यं मंस्यते सिन्धुराडिह ॥　　१३०॥

ततोऽस्य विस्मयात् पार्थ हर्षश्चैव भविष्यति ।
आत्मजीवितलाभाच्च प्रतिज्ञायाश्च नाशनात् ॥　　१३१॥

अस्तङ्गतमिवादित्यं दृष्ट्वा मोहेन बालिशः ।
न हि शक्ष्यत्यथात्मानं रक्षितुं हर्षसम्भवात् ॥　　१३२॥

एतस्मिन्नेव काले तु प्रहर्तव्यं धनञ्जय ।
जयद्रथस्य क्षुद्रस्य सवितुर्दर्शनार्थिनः ॥　　१३३॥

सञ्जयः—

तथेत्युक्त्वा तदा पार्थं क्षिप्रमेवाहरत् प्रभाम् ॥　　१३४

पार्थस्तु बलवान् ज्ञात्वा तमो दृष्ट्वाऽतिदुःखितः ॥　　१३४॥

जनार्दनेन सृष्टं वै तम आदित्यनाशनम् ।

अभवंस्तावका दृष्ट्वा हर्षसङ्कुलचेतनाः ॥ १३५॥

[1–2]अनस्तमित आदित्ये एतान् निर्जित्य सैन्धवः ।
न शक्यो हन्तुमित्येवं मन्यमानो जनार्दनः ॥ १३६॥

सस्मार चक्रं दैत्यारिर् हरिश्शत्रुविनाशनम् ॥ १३७

तदादिदेश भगवान् स्मृतमात्रमुपस्थितम् ।
अस्तं गतमिवादित्यं तमसा च्छादयेति वै ॥ १३८

तत् तथोक्तं भगवता तमो भूत्वा विशां पते ।
अन्धं तम इवाज्ञानम् आदित्यस्याहरत् प्रभाम् ॥ १३९

उन्नमय्य शिरो ग्रीवाम् अपश्यत् सैन्धवो रविम् ।
अथार्जुनं हृषीकेशश् शोकपूर्णमथाब्रवीत् ॥ १४०

**श्रीभगवान्—**

पश्य कौन्तेय सिन्धूनाम् अधिपं पापकारिणम् ।
एष तिष्ठति मध्ये वै स्यन्दनस्य धनञ्जय ॥ १४१

उन्नमय्य शिरो ग्रीवां वीक्षते सूर्यमण्डलम् ।
तस्य शीघ्रं पृषत्केन कायाच्छीर्षमपाहर ॥ १४२

**सञ्जयः—**

केशवेनैवमुक्तस्सन्नमर्षाद्रक्तलोचनः ।
समुद्वहच्छरं तीक्ष्णम् अमरैरपि दुस्सहम् ॥ १४३

---

1 क—एकादशार्धानि न सन्ति 2. ख—अर्धसप्तकं नास्ति

एकं तूणीशयं घोरम् इन्द्राशनिसमप्रभम् ।
सर्वभेदिनमत्यर्थं गन्धमाल्यार्चितं सदा ॥　　१४४

विससर्ज ततस्तूर्णं सैन्धवस्य रथं प्रति ॥　　१४४॥

स तु गाण्डीवनिर्मुक्तश् शरश्श्येन इवाशुगः ।
शकुन्तमिव वृक्षाग्रात् सैन्धवस्याहरच्छिरः ॥　　१४५॥

प्रपतिष्यति शीर्षे तु कृष्णोऽर्जुनमथाब्रवीत् ॥　　१४६

श्रीभगवान्—

पार्थ पार्थ शिरो ह्येतद् यथा नेयान्महीतलम् ।
तथा कुरु कुरुश्रेष्ठ वक्ष्ये तस्यापि कारणम् ॥　　१४७

सञ्जय·—

श्रुत्वा तु वचनं तस्य त्वरमाणोऽस्त्रमायया ।
तथाऽहरच्छिरस्तस्य शरैरूर्ध्वं धनञ्जयः ॥　　१४८

दुर्हृदामप्रहर्षाय सुहृदां हर्षणाय च ॥　　१४८॥

तिर्यगूर्ध्वमधश्चैव पुनरूर्ध्वमथापि च ।
दीर्घकालमवाक्चैव सम्प्रक्रीडन्निवार्जुनः ॥　　१४९॥

तत् सैन्यं सर्वतोऽपश्यन्महदाश्चर्यमद्भुतम् ।
प्रापयत् स शिरो यस्माद् योधयन्नेव पार्थिवान् ॥　　१५०॥

शरैः कन्दुकवत् कृत्वा तस्यालोकाय पाण्डवः ।
स्यमन्तपञ्चकाद्बाह्ये शिरस्तदहरच्छरैः ॥　　१५१॥

जयद्रथस्यार्जुनबाणनालं
मुखारविन्दं रुधिराम्बुसिक्तम् ।
दृष्टं नरैश्चोपरि वर्तमानं
विद्याधरोत्सृष्टमिवैकपद्मम् ॥ १५२॥

स देवशत्रूनिव देवराजः
किरीटमाली व्यधमन् सपत्नान् ।
यथा तमांस्यभ्युदितस्तमोघ्नः
पूर्णां प्रतिज्ञां समवाप्य वीरः ॥ १५३॥

अथाब्रवीन् केशवं पाण्डवेयः
कियन्तमध्वानमिदं हरामि ।
किमर्थमेतन्न निपात्यमुर्व्यां
क्व च प्रयातव्यमिदं च शंस ॥ १५४॥

शक्नोम्यहं यत्र भवान् ब्रवीति
तं भूमिदेशं च शिरो विनेतुम् ॥ १५५

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि एकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥
[ अस्मिन्नध्याये १५५ श्लोकाः ]

## ॥ षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

कृष्णेनार्जुनं प्रति सैन्धवमूर्ध्नो धरण्यामनिपातनीयत्वे कारणाभिधानम् ॥ १ ॥ कृष्णाज्ञयाऽर्जुनेन स्यमन्तपञ्चके सन्ध्यामुपासमानस्य वृद्धक्षत्रस्योत्सङ्गे जयद्रथशिरसो निपातनम् ॥ २ ॥ उत्तिष्ठमानस्य तस्योत्सङ्गाच्छिरसि धरणौ पतिते वृद्धक्षत्रमूर्ध्नो विदारणम् ॥ ३ ॥

सञ्जयः—

एतस्मिन्नेव काले तु त्वरमाणे दिवाकरे ।
अब्रवीत् पाण्डवं तत्र त्वरमाणो जनार्दनः ॥ १

श्रीभगवान्—

पार्थ पार्थ शिरो ह्येतद् यत्कृते न पतेद्भुवि ।
अस्तं गिरिमिहासाद्य त्वरते वै दिवाकरः ॥ २

श्रूयतां तद्यथावृत्तं कारणं सैन्धवं प्रति ॥ २॥
वृद्धक्षत्रः पिता ह्यस्य बभूव भुवि विश्रुतः ।
स च घोरेण तपसा सैन्धवं प्राप्तवान् सुतम् ॥ ३॥
जयद्रथममित्रघ्नं तं चोवाच तदा नृपम् ।
अन्तर्हिता पुरा वाणी मेघदुन्दुभिनिस्स्वना ॥ ४॥

आकाशवाक्—

तवात्मजोऽयं मर्त्येषु कुलशीलदमादिभिः ।
गुणैर्भविष्यति विभो सदृशो वंशयोर्द्वयोः ॥ ५॥

क्षत्रियप्रवरो लोके नित्यं शूराभिसत्कृतः ॥ ६

शत्रुभिर्युध्यमानस्य सङ्ग्रामे सहधन्विनः ।
शिरश्छेत्स्यति सङ्क्रुद्धश् शत्रुर्नालक्षितो भुवि ॥ ७

श्रीभगवान्—

एतच्छ्रुत्वा सिन्धुराजो ध्यात्वा चिरमरिन्दमः ।
ज्ञातीन् सर्वानुवाचेदं पुत्रस्नेहाभिचोदितः ॥ ८

वृद्धक्षत्रः—

सङ्ग्रामे युध्यमानस्य वहतो महतीं धुरम् ।
धरण्यां मम पुत्रस्य पातयिष्यति यश्शिरः ॥ ९

तस्यापि शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः ।
यदि चेदस्ति मे लाभस् तपसो वा दमस्य वा ॥ १०

श्रीभगवान्—

एवमुक्त्वा ततो राज्ये स्थापयित्वा जयद्रथम् ।
वृद्धक्षत्रो वनं यातस् तपश्चोग्रं समास्थितः ॥ ११

स एष तप्यते राजा तपो घोरं सनातनम् ।
स्यमन्तपञ्चकादस्माद् बहिरेव धनञ्जय ॥ १२

तस्माज्जयद्रथस्य त्वं शिरश्छित्त्वा महामृधे ।
दिव्येनास्त्रेण रिपुहन् घोरेणाद्भुतकर्मणा ॥ १३

सकुण्डलं सिन्धुपतेः प्रभञ्जनसुतानुज ।
उत्सङ्गे पातयस्वाशु वृद्धक्षत्रस्य भारत ॥ १४

अथ त्वमस्य मूर्धानं पातयिष्यसि भूतले ।
तवापि शतधा मूर्धा पतिष्यति न संशयः ॥ १५

यथा चेदं न जानीयात् स राजा पृथिवीपतिः ।
तथा कुरु कुरुश्रेष्ठ अस्त्रमेतदुपाश्रितः ॥ १६

न ह्यसाध्यमकार्यं वा विद्यते भुवि किञ्चन ।
अस्त्रस्यास्य प्रमुक्तस्य पशुभर्तुः कथञ्चन ॥ १७

यथैतन् सैन्धवशिरश् शरैरेव धनञ्जय ।
वृद्धक्षत्रे पतत्येव तथा नीतिर्विधीयताम् ॥* १८

सञ्जयः—

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं वासुदेवस्य भारत ।
अर्जुनस्त्वरया युक्तस् तदस्त्रं समुपाश्रितः ॥ १९

वृद्धक्षत्राश्रमद्वारम् अहरत् तदरेश्शिरः ॥ १९॥

एतस्मिन्नेव काले तु वृद्धक्षत्रो महीपतिः ।
सन्ध्यामुपास्ते विधिवज् जपयुक्तस्समाहितः ॥ २०॥

उपासीनस्य सन्ध्यां तु [1]वृद्धक्षत्रस्य पाण्डवः ।
तच्छिरस्सिन्धुराजस्य उत्सङ्गे समपातयत् ॥ २१॥

तस्योत्सङ्गे निपतितं तच्छिरश्चारुकुण्डलम् ।

---

* ख—अत्राध्यायसमाप्तिर्दृश्यते

1 ख-ङ—तेजसाऽस्त्रस्य

वृद्धक्षत्रस्य नृपतेर् आलक्षितमभूत् तदा ॥ २२॥

ततो भीतस्य तस्याथ वृद्धक्षत्रस्य [1]पश्यतः ।
प्रोत्तिष्ठतस्तत् सहसा शिरोऽगच्छद्धरातलम् ॥ २३॥

ततस्तस्मिन् नरेन्द्रस्य क्षितिं प्राप्ते शिरस्यथ ।
तच्छिरश्शतधा राजन् पपात पृथिवीतले ॥ २४॥

ततस्सर्वाणि सैन्यानि विस्मयं जग्मुरुत्तमम् ।
वासुदेवश्च बीभत्सुं प्रशशंस महारथम् ॥ २५॥

ततो दृष्ट्वा विनिहतं सिन्धुराजं जयद्रथम् ।
कर्मणा तेन पार्थस्य विस्मितास्सर्वदेवताः ॥ २६॥

सर्वदा समरे यस्य गोप्ता नित्यं जनार्दनः ।
कथं तस्य जयो न स्याद् इति भूतानि मेनिरे ॥ २७॥

एतदर्थं शिरस्तस्य च्यावयामास पाण्डवः ।
स्यमन्तपञ्चकाद्बाह्यं शरैरेव यथाक्रमम् ॥ २८॥

कृत्वा तच्च महत् कर्म निहत्य च जयद्रथम् ।
अस्त्रं पाशुपतं पार्थस् संहर्तुमुपचक्रमे ॥ २९॥

संहरत्यपि कौन्तेये तदस्त्रं तत्र भारत ।
ववौ शीतस्सुगन्धश्च पवनो ह्लादयन्निव ॥ ३०॥

संहारं च प्रमोक्षं च दृष्ट्वा तत्र दिवौकसः ।

---

1 ख-ङ—धीमतः

ते तु सर्वे प्रयत्नेन भारद्वाजं जिघांसवः ।
निहते सैन्धवे राजन्नयुध्यन्त महारथाः ॥ ४१॥

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा सैन्धवं विनिहत्य च ।
अयोधयन् रणे द्रोणं जयोन्मत्तास्सहस्रशः ॥ ४२॥

अर्जुनोऽपि रणे योधांस् तावकान् रथसत्तमान् ।
योधयामास बहुधा हत्वा सिन्धुपतिं भृशम् ॥ ४३॥

[1]स देवशत्रूनिव देवराजः
किरीटमाली व्यधमत् सपत्नान् ।
यथा तमांस्यभ्युदितस्तमोघ्नः
कृतां प्रतिज्ञां च समाप्य वीरः ॥ ४४॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५० ॥
[ अस्मिन्नध्याये ४४॥ श्लोकाः ]

---

1. ख-ङ—अर्धद्वयं नास्ति

## ॥ सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

अर्जुनेन निजशराहतिमोहितं कृपं प्रति शोचनम् ॥ १ ॥ सार्जुनेन कृष्णेन युधिष्ठिरमेत्य जयद्रथवधकथनम् ॥ २ ॥ भीमादीनां युधिष्ठिरसमीपसमागमनम् ॥ ३ ॥ युधिष्ठिरेण स्वाभिवादकानां कृष्णभीमार्जुनसात्यकीनामालिङ्गनादिना सत्कारः ॥ ४ ॥ कृष्णयुधिष्ठिरयोः संलापः ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्रः—

तस्मिन् विनिहते वीरे सैन्धवे सव्यसाचिना ।
मामकाः किमकुर्वन्त तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ १

पश्यतां सर्वयोधानां मामकानां महारणे ।
[1]अहन्यत कथं युद्धे सैन्धवस्सव्यसाचिना ॥ २

कथं द्रौणिकृपैर्गुप्तः कर्णेन च महारणे ।
फल्गुनाभिमुखं घोरं प्रविष्टस्साधु सैन्धवः ॥ ३

तस्मिन् हते महेष्वासे मन्दात्मा स सुयोधनः ।
भ्रातृभिस्सहितस्सूत किमकार्षीदनन्तरम् ॥ ४

सञ्जयः—

सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा रणे पार्थेन मारिष ।
अमर्षवशमापन्नः कृपश्शारद्वतस्ततः ॥ ५

महता शरवर्षेण पाण्डवं समवाकिरत् ।

1. घ—अर्धद्वयं नास्ति

[1]द्रौणिश्चाभ्यपतद्राजन् पश्चादागत्य पाण्डवम् ॥ ६

तावेव रथिनां श्रेष्ठौ रथाभ्यां रथसत्तमौ ।
उभावुभयतस्तीक्ष्णैर् विशिखैस्समवर्षताम् ॥ ७

स तथा शरवर्षाभ्यां सुमहद्भ्यां महाभुजः ।
पीड्यमानः परामार्तिम् अगमद्रथिनां वरः ॥ ८

अजिघांसुर्गुरुं सङ्ख्ये गुरोस्तनयमेव च ।
चकाराचार्यकं तत्र कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ ९

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्रौणेश्शारद्वतस्य च ।
मन्दवेगानिषूंस्ताभ्याम् अजिघांसुरवासृजत् ॥ १०

तेन नातिभृशं त्रस्तौ विशिखैरवलेढितौ ।
बहुत्वात् तु परामार्तिं शराणां तावगच्छताम् ॥ ११

अथ शारद्वतो राजन् कौन्तेयशरपीडितः ।
अवासीदद्रथोपस्थे मूर्च्छामभिजगाम ह ॥ १२

विह्वलं तमभिज्ञाय रथमध्यगतं कृपम् ।
मृत इत्येव मन्वानस् सारथिस्तमपावहत् ॥ १३

तस्मिन् सन्ने महाराज कृपे शारद्वते युधि ।
अश्वत्थामाऽप्यपायासीत् पाण्डवेयाद्रथान्तरम् ॥ १४

दृष्ट्वा शारद्वतं पार्थो मूर्छितं शरपीडितम् ।

---

1. ख—इदमर्धं नास्ति

धिग्धिङ्मामिति चैवोक्त्वा कृपणं पर्यदेवयत् ॥ १५

अर्जुन—

पश्यन्निदं महाप्राज्ञः क्षत्ता राजानमुक्तवान् ।
कुलान्तकरणे पापे जातमात्रे सुयोधने ॥ १६

नीयता परलोकाय साध्वयं कुलपांसनः ।
अस्माद्धि कुरुमुख्यानां महदुत्पत्स्यते भयम् ॥ १७

तदिदं समनुप्राप्तं वचनं सत्यवादिनः ।
तत्कृते ह्यद्य पश्यामि शरतल्पगतं कृपम् ॥ १८

धिगस्तु क्षात्रमाचारं धिगस्तु बलपौरुषम् ।
को हि ब्राह्मणमाचार्यम् अनुद्रुह्येत मादृशः ॥ १९

ऋषिपुत्रो ममाचार्यो द्रोणस्य दयितस्सखा ।
एष शेते रथोपस्थे मद्बाणबलपीडितः ॥ २०

अकामयानेन मया विशिखैरर्दितो भृशम् ।
अवसीदद्रथोपस्थे प्राणान पीडयतीव मे ॥ २१

शरार्दितस्स हि मया प्रेक्षमाणो महाद्युतिः ।
अभ्यस्तो बहुभिर्बाणैर् दशाधर्मगतेन वै ॥ २२

शोचयत्येष निपतन् भूयः पुत्रवधादिव ।
कृपणं स्वरथे सन्नं पश्य कृष्ण यथातथम् ॥ २३

उपाहरन्ति ये विद्याम् आचार्येभ्यो नरोत्तमाः ।

प्रयच्छन्ति हि कामान्न वै देवत्वमुपयान्ति ते ॥ २४

ये तु विद्यामुपादाय गुरुभ्यः पुरुषाधमाः ।
घ्नन्ति तानेव दुष्प्रज्ञास् ते वै निरयगामिनः ॥ २५

तदिदं निरयायैव कृतं कर्म सुदुष्करम् ।
आचार्यं शरवर्षेण रणे सादयता कृपम् ॥ २६

यत्तत्पूर्वमुपाकुर्वन्नस्त्रं मामब्रवीत् कृपः ।
न कथञ्चन कौन्तेय प्रहर्तव्यं गुराविति ॥ २७

तदिदं वचनं साधोर् आचार्यस्य तथा कृतम् ।
नैवानुष्ठितमेवाजौ विशिखैरभिवर्षता ॥ २८

नमस्तस्मै सुपूज्याय गौतमायापलायिने ।
धिगस्तु मम वार्ष्णेय योऽद्यास्मै प्रहराम्यहम् ॥ २९

सञ्जयः—

तथा तं विलपन्तं तु सव्यसाचिनमाहवे ।
ततो राजन् हृषीकेशस् सङ्ग्रामशिरसि स्थितम् ॥ ३०
तीर्णप्रतिज्ञं बीभत्सुं परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥ ३०॥

श्रीभगवान्—

दिष्ट्या सम्पादिता जिष्णो प्रतिज्ञा महती त्वया ।
दिष्ट्या च निहतः पापो वृद्धक्षत्रस्सहात्मजः ॥ ३१॥

धार्तराष्ट्रबलं प्राप्य देवसेनाऽपि पाण्डव ।

सीदेत समरे जिष्णो नात्र कार्या विचारणा ॥　　३२॥

न तं पश्यामि लोकेऽस्मिन् चिन्तयन् पुरुषं क्वचित् ।
त्वदृते पुरुषव्याघ्र य एतद्योधयेद्बलम् ॥　　३३॥

महाप्रभावा बह्वस् त्वया तुल्याधिकाऽपि वा ।
समेताः पृथिवीपाला धार्तराष्ट्रस्य कारणात् ॥　　३४॥

ते त्वां प्राप्य रणे क्रुद्धं नातिवर्तन्ति दंशिताः ।
तव वीर्यं बलं चैव रुद्रशक्रान्तकोपमम् ॥　　३५॥

नैवं हि शक्तिमान् कश्चिद् रणे कर्तुं पराक्रमम् ।
यादृशं कृतवानद्य त्वमेकश्शत्रुतापन ॥　　३६॥

एवमेव हते कर्णे सानुबन्धे दुरात्मनि ।
वर्धयिष्यामि भूयस्त्वां विजितारि हतद्विपम् ॥　　३७॥

सञ्जय.—

तमर्जुनः प्रत्युवाच प्रसादात् तव माधव ।
प्रतिज्ञेयं मया तीर्णा विबुधैरपि दुस्तरा ॥　　३८॥

[1]अनाश्चर्यो जयस्तेषां येषां नाथोऽसि केशव ।
त्वत्प्रसादान्महीं कृत्स्नां सम्प्राप्स्यति युधिष्ठिरः ॥　　३९॥

तवैष भारो वार्ष्णेय तव चैष जयः प्रभो ।
वर्धनीयास्तव वयं प्रेष्याश्च मधुसूदन ॥　　४०॥

---

1. क-घ—अनाशास्यो

एवमुक्तस्स्मयन् कृष्णश् शनकैर्वाहयन् हयान् ।
दर्शयामास पार्थाय क्रूरं विशसनं महत् ॥ ४१॥

श्रीभगवान्—

प्रार्थयन्तो जयं युद्धे प्रथितं च महद्यशः ।
पृथिव्यां शेरते शूराः पार्थिवास्त्वच्छरैर्हताः ॥ ४२॥

विकीर्णशस्त्राभरणा विपन्नाश्वरथद्विपाः ।
सञ्छिन्नभिन्नमर्माणो वैक्लव्यं परमं गताः ॥ ४३॥

ससत्त्वा गतसत्त्वाश्च प्रभया परया युताः ।
सजीवा इव लक्ष्यन्ते गतसत्त्वा नराधिपाः ॥ ४४॥

तेषां शरैस्स्वर्णपुङ्खैश् शस्त्रैश्च विविधैश्शितैः ।
वाहनैश्चायुधैश्चैव सम्पूर्णां पश्य मेदिनीम् ॥ ४५॥

वर्मभिर्मणिभिर्हारैश् शिरोभिश्चारुकुण्डलैः ।
उष्णीषैर्मकुटैस्स्रग्भिश् चूडामणिभिरम्बरैः ॥ ४६॥

कण्ठसूत्राङ्गदैश्चैव निष्कैरपि च सुप्रभैः ।
अन्यैश्चाभरणैश्चित्रैर् भाति भारत मेदिनी ॥ ४७॥

[1]चामरैर्व्यजनैश्चित्रैर् ध्वजैश्चाश्वरथैर्द्विपैः ।
विविधैश्च परिस्तोमैर् अश्वानां च प्रकीर्णकैः ॥ ४८॥

---

* ख—कोशे न विना सर्वेषु कोशेषु अत्रैवाध्यायसमाप्तिर्दृश्यते ।

1. अ-क-ब—नास्तीदमर्धम्

ईषाभिश्च विचित्राभिर् वरूथैश्च महाधनैः ।
सङ्कीर्णां वसुधां पश्य चित्रपट्टैरिवाचिताम् ॥　　४९॥

नागांश्च पतितान् नागैः कल्पितान् पश्य फल्गुन ।
सिंहान् [1]वप्रप्रणुन्नेभ्यो गिर्यग्रेभ्य इव च्युतान् ॥　　५०॥

संस्यूतान् वाजिभिस्सार्धं धरण्यां पश्य चापरान् ।
पदातिसादिसङ्घांश्च क्षतजौघपरिप्लुतान् ॥　　५१॥

सञ्जय —

एवं सन्दर्शयन् कृष्णो रणभूमिं किरीटिने ।
तैस्समेतः प्रमुदितैः पाञ्चजन्यं व्यनादयत् ॥　　५२॥

[2]सात्यकिः पार्थमभ्यायाद् भीमसेनश्च पाण्डवः ।
युधामन्युश्चोत्तमौजाः पाञ्चालस्यात्मजावुभौ ॥　　५३॥

ते निवार्य शरैर्द्रौणिं कर्णं च सह भूमिपैः ।
आगच्छन् रथिनश्चैव यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥　　५४॥

ततो युधिष्ठिरो राजा रथादाप्लुत्य भारत ।
पर्यष्वजत् तदा कृष्णावानन्दाश्रुपरिप्लुतः ॥　　५५॥

विमृज्य वदनं शुभ्रं पुण्डरीकसमप्रभम् ।
अब्रवीद्वासुदेवं च पाण्डवं च धनञ्जयम् ॥　　५६॥

युधिष्ठिरः—

दिष्ट्या पश्यामि सङ्ग्रामे तीर्णभारौ महारथौ ।

---

1 क-ख-घ—वज्र　　2 ख-ङ—अर्धचतुष्टयं नास्ति

दिष्ट्या विनिहतः पापस् सैन्धवः पुरुषाधमः ॥ ५७॥

कृष्ण दिष्ट्या मम प्रीतिः महती प्रतिपादिता ।
दिष्ट्या शत्रुगणाश्चैव निमग्नाश्शोकसागरे ॥ ५८॥

न तेषां दुष्करं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
सर्वलोकगुरुर्येषां त्वं नाथो मधुसूदन ॥ ५९॥

तव प्रसादाद्गोविन्द विजेष्यामो वयं रिपून् ।
यथा पुरा प्रसादात् ते दानवान् पाकशासनः ॥ ६०॥

पृथिव्या विजयो वाऽपि त्रैलोक्यविजयोऽपि वा ।
ध्रुवो हि तेषां वार्ष्णेय येषां तुष्टोऽसि मानद ॥ ६१॥

न तेषां विद्यते पापं सङ्ग्रामे वा पराजयः ।
[1]त्रिदशेश्वर नाथस्त्वं येषां तुष्टोऽसि माधव ॥ ६२॥

[2]त्वत्प्रसादाद्धृषीकेश शक्रस्सुरगणेश्वरः ।
त्रैलोक्यविजयं श्रीमान् प्राप्तवान् रणमूर्धनि ॥ ६३॥

तव चैव प्रसादेन त्रिदशास्त्रिदशेश्वर ।
अमरत्वं गताः कृष्ण लोकांश्चाश्नुवतेऽक्षयान् ॥ ६४॥

त्वत्प्रसादात् समुद्धेन विक्रमेणारिसूदन ।
सुरेशत्वं गतश्शक्रो हत्वा दैत्यान् सहस्रशः ॥ ६५॥

---

1. ङ—सर्वलोकप्रभुर्येषां त्वं नाथो मधुसूदनः । [पाठान्तरम्]
2. ङ—अर्धद्वयं नास्ति

त्वत्प्रसादान्महाबाहो जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
स्वे वर्त्मनि स्थितं वीर जपहोमेषु वर्तते ॥ ६६॥

एकार्णवमिदं पूर्वं सर्वमासीत् तमोमयम् ।
त्वत्प्रकाशात् प्रकाशत्वं जगत् प्राप्तं सुरोत्तम ॥ ६७॥

स्रष्टारं सर्वभूतानां परमात्मानमच्युतम् ।
ये प्रपन्ना हृषीकेश न ते मुह्यन्ति कर्मसु ॥ ६८॥

पुराणं परमं देव देवदेवं सनातनम् ।
ये प्रपन्नास्सुरगुरुं न ते मुह्यन्ति कर्हिचित् । ६९॥

अनादिनिधनं देवं लोककर्तारमव्ययम् ।
ये भक्तास्ते हृषीकेश दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ ७०॥

[1]परं पराणां परमं [2]पुराणानां पुरातनम् ।
[3]प्रपद्यतस्तत् परमं परा भूतिर्विधीयते ॥ ७१॥

यं गान्ति चतुरो वेदा यश्च वेदेषु गीयते ।
तं प्रपद्य महात्मानं भूतिमाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ ७२॥

धनञ्जयसखा यश्च धनञ्जयहितश्च यः ।
तं धनञ्जयगोप्तारं प्रपद्य सुखमेधते ॥ ७३॥

---

1. ख—परं पुराणं परमं पुराणानां परं च यत् ।
प्रपद्यतस्त्वां परमं पुरा भूमिर्विशां पते ॥
यं गायन्ति चतुर्वेदा [पाठान्तरम्]

2 क—अयं पादोऽनन्तरश्च न स्तः

3 घ—ये प्रपन्नास्सुरगुरुं न ते मुह्यन्ति कर्हिचित् । [अधिकः पाठः]

सञ्जय.—

इत्युक्तौ तौ महात्मानावुभौ केशवपाण्डवौ ।
तावन्नूतां रणे [1]हृष्टौ राजानं पृथिवीपतिम् ॥ ७४॥

कृष्ण धनञ्जयौ—

तव रोषाग्निना दग्धः पापो राजञ् जयद्रथः ।
उदीर्णं चापि सुमहद् धार्तराष्ट्रबलं रणे ॥ ७५॥

युधिष्ठिरः—

हन्यन्ते च हताश्चैव विनङ्क्ष्यन्ति च केशव ।
तव क्रोधहता ह्येते कौरवाश्शत्रुसूदन ॥ ७६॥

त्वां हि चक्षुर्हणं वीर कोपयित्वा सुयोधनः ।
समित्रबन्धुस्समरे प्राणांस्त्यक्ष्यति दुर्मतिः ॥ ७७॥

तव क्रोधहतः पूर्वं देवैरपि सुदुर्जयः ।
शरतल्पगतश्शेते भीष्मः कुरुपितामहः ॥ ७८॥

दुर्लभो हि जयस्तेषां सङ्ग्रामे रिपुसूदन ।
यान्ति मृत्युवशं ते वै येषां क्रुद्धोऽसि मानद ॥ ७९॥

राज्यं प्राणाश्श्रियः पुत्रास् सौख्यानि विविधानि च ।
अचिरादेव नश्यन्ति येषां क्रुद्धोऽसि माधव ॥ ८०॥

विनष्टान् कौरवान् मन्ये सपुत्रपशुबान्धवान् ॥ ८१

1. अ—कृष्णौ

श्रीभगवान्—

एवमेतन्महाबाहो विनष्टाः कौरवा मृधे ।
राजन् धर्मभृतां श्रेष्ठ त्वयि क्रुद्धे युधिष्ठिर ॥ ८२

सञ्जयः—

ततो युधिष्ठिरं भीमस् सात्यकिश्च महारथः ।
अभिवाद्य गुरुं ज्येष्ठं मार्गणैः क्षतविग्रहौ ॥ ८३

स्थितावास्तां महेष्वासौ पाञ्चालैः परिवारितौ ॥ ८३॥

दृष्ट्वा प्रमुदितौ वीरौ प्राञ्जली समुपस्थितौ ।
अभ्यनन्दत कौन्तेयस् तावुभौ भीमसात्यकी ॥ ८४॥

युधिष्ठिरः—

[1]दिष्ट्या पश्यामि वां वीरौ विमुक्तौ सैन्यसागरात् ।
द्रोणग्राहाद्दुराधर्षाद्धार्दिक्यमकरालयात् ॥ ८५॥

दिष्ट्या विनिर्जितास्सङ्ख्ये पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः ।
युवां विजयिनौ चापि दिष्ट्या पश्यामि संयुगे ॥ ८६॥

दिष्ट्या द्रोणो जितस्सङ्ख्ये हार्दिक्यश्च महाबलः ।
सैन्यार्णवं समुत्तीर्णौ दिष्ट्या पश्यामि चाक्षयौ ॥ ८७॥

समरे श्लाघिनौ वीरौ समरेष्वपराजितौ ।
मम प्राणसमौ वीरौ दिष्ट्या पश्यामि चाव्ययौ ॥ ८८॥

1 ख—अर्धत्रयं नास्ति

सञ्जयः—

इत्युक्त्वा पाण्डवो राजन् युयुधानवृकोदरौ ।
सस्वजे पुरुषव्याघ्रौ हर्षाद्बाष्पं मुमोच ह ॥ ८९॥

ततः प्रमुदितं सर्वं बलमासीद्विशां पते ।
पाण्डवानां महद्धृष्टं युद्धाय च मनो दधे ॥ ९०॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि एकपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥
[अस्मिन्नध्याये ९०॥ श्लोकाः]

## ॥ अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

सैन्धववधदुःखितेन दुर्योधनेन द्रोणमेत्य आत्मोपालम्भपूर्वकं परिशोचनम् ॥ १ ॥ द्रोणेन सोपालम्भं दुर्योधनाश्वासनपूर्वकं रणाय निर्याणम् ॥ २ ॥

सञ्जयः—

सैन्धवे निहते राजन् पुत्रस्तव सुयोधनः ।
अश्रुक्लिन्नमुखो दीनो निरुत्साहो द्विषज्जये ॥ १
अमन्यतार्जुनसमो न [1]योद्धाऽस्तीति मारिष ॥ १॥

न द्रोणो न च राधेयो नाश्वत्थामा कृपो न च ।
पार्थस्य सम्मुखे स्थातुं पर्याप्ता इति मारिष ॥ २॥

1 ख—योध इह विद्यते

निर्जित्य हि रणे पार्थस् सर्वान मम महारथान ।
अवधीन् सैन्धवं सङ्ख्ये न च कश्चिदवारयत् ॥　　३॥

सर्वथा हतमेवैतत् कौरवाणां महद्बलम् ।
न ह्यस्य विद्यते त्राता साक्षादपि पुरन्दरः ॥　　४॥

यमुपाश्रित्य सङ्ग्रामे कृतश्शस्त्रसमुद्यमः ।
स कर्णो विजितस्सङ्ख्ये हतश्चैव जयद्रथः ॥　　५॥

[1]परुषाणि सभामध्ये प्रोक्तवान् यो हि पाण्डवान् ।
स कर्णो निर्जितस्सङ्ख्ये सैन्धवश्च निपातितः ॥　　६॥

यस्य वीर्यं समाश्रित्य शर्म याचन्तमच्युतम् ।
तृणवत् तमहं मन्ये स कर्णो निर्जितो युधि ॥　　७॥

एवं क्लान्तमना राजन्नुपायाद्द्रोणमीक्षितुम् ।
आगस्कृन् सर्वलोकस्य पुत्रस्ते भरतर्षभ ॥　　८॥

ततस्तत् सर्वमाचख्यौ कुरूणां वैशसं महत् ।
परान् विजयतश्चापि धार्तराष्ट्रान् निमज्जतः ॥　　९॥

दुर्योधनः—

पश्य मूर्धावसिक्तानाम् आचार्य कदनं कृतम् ।
हत्वा [2]प्रमुखतश्शूरं भीष्मं मम पितामहम् ॥　　१०॥

तं निहत्य प्रलुब्धोऽयं शिखण्डी पूर्णमानसः ।

---

1. ख-ङ—अर्धद्वयं नास्ति　　2. क—प्रमुदित

पाञ्चालैस्सहितस्सर्वैस् सेनाग्रमभिवर्तते ॥ ११॥

अर्जुनेन च दुर्धर्षश् शिष्येण तव धन्विना ।
अक्षौहिणीस्सप्त हत्वा हतो राजा जयद्रथः ॥ १२॥

अस्मद्विजयकामानां सुहृदामुपकारिणाम् ।
गन्तास्मि कथमानृण्यं गतानां यमसादनम् ॥ १३॥

ये मदर्थं परीप्सन्ते वसुधां वसुधाधिपाः ।
ते हित्वा वसु चैश्वर्यं वसुधामधिशेरते ॥ १४॥

सोऽहं कापुरुषः कृत्वा मित्राणां क्षयमीदृशम् ।
नाश्वमेधसहस्रेण पातुमात्मानमुत्सहे ॥ १५॥

मम लुब्धस्य पापस्य तथा धर्मापचायिनः ।
व्यायामेन जिगीषन्तः प्राप्ता वैवस्वतक्षयम् ॥ १६॥

कथं पतितवृत्तस्य पृथिवी सुहृदां द्रुहः ।
विवरं नाशकन् कर्तुं मम पार्थिवसंसदि ॥ १७॥

योऽहं मूर्धावसिक्तानां राज्ञां मध्ये पितामहम् ।
शयानं नाशकं त्रातुं भीष्ममायोधने हतम् ॥ १८॥

तं मामनार्यपुरुषं [1]मित्रद्रुहमधार्मिकम् ।
किं स वक्ष्यति दुर्धर्षस् समेत्य परलोकजित् ॥ १९॥

जलसन्धं महेष्वासं पश्य सात्यकिना हतम् ।

---

1. ख—अयं पादः अनन्तरश्च न स्तः

मदर्थमुद्यतं शूरं प्राणांस्त्यक्त्वा महारथम् ॥ २०॥

काम्भोजं निहतं दृष्ट्वा तथाऽलम्बुसमेव च ।
अन्यांश्च सुहृदस्सर्वान् जीवितार्थोऽद्य को मम ॥ २१॥

व्यायच्छन्तो हताश्शूरा मदर्थे येऽप्यवाङ्मुखाः ।
यतमानाः परं शक्त्या विजेतुमहितान्न मम ॥ २२॥

तेषां कृत्वाऽहमानृण्यम् अद्य शक्त्या परन्तप ।
तर्पयिष्यामि तानेव जलेन यमुनामनु ॥ २३॥

सत्यं ते प्रतिजानामि सर्वशस्त्रभृतां वर ।
इष्टापूर्तेन सत्येन वीर्येण च सुतैरपि ॥ २४॥

निहत्य च रणे सर्वान पाञ्चालान् पाण्डवैस्सह ।
शान्ति गन्तास्मि तेषां वा रणे गन्ता सलोकताम् ॥ २५॥

निहता हि सहाया मे परैस्सत्यपुरस्कृताः ।
श्रेयो हि पाण्डून्न मन्यन्ते न तथाऽस्मान्न महाभुज ॥ २६॥

स्वयं हि मृत्युर्विहितस् सत्यसन्धेन संयुगे ॥ २७

भवानुपेक्षां कुरुते शिष्यत्वादर्जुनस्य वै ।
अतो विनिहतास्सर्वे येऽस्मज्जयचिकीर्षवः ॥ २८
कर्णमेव तु पश्यामि सम्प्रत्यस्मज्जयैषिणम् ॥ २८॥

यो ह्यमित्रमविज्ञाय याथातथ्येन मन्दधीः ।
मित्रार्थे योजयत्येनं तस्य स्वार्थोऽवसीदति ॥ २९॥

ताद्दग्रूपं कृतमिदं मम कार्यं [1]सुहृद्ब्रुवैः ।
[2]मोहाल्लुब्धस्य पापस्य जिह्माचारैस्ततस्ततः ॥ ३०॥

यौ मे युद्धस्य कृत्यस्य जिह्माचारैस्समीयतुः ।
हतो जयद्रथश्चैव सौमदत्तिश्च वीर्यवान् ॥ ३१॥

अभीषाहाश्शूरसेनाश् शिबयोऽथ वसातयः ॥ ३२

सोऽहमद्य गमिष्यामि यत्र ते पुरुषर्षभाः ।
हता मदर्थे सङ्ग्रामे युध्यमानाः किरीटिना ॥ ३३

न हि मे जीवितेनार्थस् तानृते पुरुषर्षभान् ।
आचार्यः पाण्डुपुत्राणाम् अनुजानातु मा भवान् ॥* ३४

धृतराष्ट्रः—

सिन्धुराजे हते तात समरे सव्यसाचिना ।
तथा च भूरिश्रवसि किमासीद्वो मनस्तदा ॥ ३५

[3]दुर्योधनेन द्रोणस्तु तथोक्तः कुरुसंसदि ।
किमुक्तवान् परं तस्मात् तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ३६

सञ्जयः—

निष्टानको महानासीत् सैन्यानां तव भारत ।

---

1 ङ—सुहृद्भवैः
2. ङ—नास्तीदमर्धम्
* सर्वेषु कोशेषु अत्रैवाध्यायसमाप्तिर्दृश्यते ।
3. ङ—अर्धचतुष्टयं नास्ति

सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा भूरिश्रवसमेव च ॥ ३७

अवमेनिरे च ते सर्वे पुत्रस्य तव मन्त्रितम् ।
येन मन्त्रेण निहताश् शतशः क्षत्रियर्षभाः ॥ ३८

द्रोणस्तु तद्वचश्श्रुत्वा पुत्रस्य तव दुर्मनाः ।
मुहूर्तमिव च ध्यात्वा भृशमार्तोऽभ्यभाषत ॥ ३९

द्रोणः—

दुर्योधन किमेवं मां वाक्छल्यैरुपकृन्तसि ।
अजय्यं सततं सङ्ख्ये ब्रुवाणं सव्यसाचिनम् ॥ ४०

एतेनैवार्जुनं ज्ञातुम् अलं कौरव्य संयुगे ।
यच्छिखण्ड्यवधीद्भीष्मं पाल्यमानः किरीटिना ॥ ४१

अवध्यं निहतं दृष्ट्वा संयुगे देवमानुषैः ।
तदैवाज्ञासिषमहं नेयमस्तीति भारती ॥ ४२

यं पुमांसं त्रिलोकेषु सर्वशूरममंस्महि ।
[1]तस्मिन् निपतिते भीष्मे किं शेषं पर्युपास्महे ॥ ४३

यान् स्म तान् ग्लहते तात शकुनिः कुरुसंसदि ।
अक्षान्न तेऽक्षा निशिता बाणास्ते शत्रुतापनाः ॥ ४४
[2]अक्षांस्तु मन्यसे बाणाञ् शोभमानाञ् छिताञ् शरान् ॥ ४४ ॥
त एते घ्नन्ति नस्तात विशिखाः पार्थचोदिताः ।

---

1 ख—इदमर्धं नास्ति  2 ख-ङ—नास्तीदमर्धम्

यांस्तदाऽऽख्याप्यमानांस्तु विदुरेण न बुध्यसे ॥ ४५॥
यास्ता विलपतश्चापि विदुरस्य महात्मनः ।
धीरस्य वाचो नाश्रौषीः क्षेमाय वदतश्शुभाः ॥ ४६॥
तदिदं वर्तते घोरम् आयातं वैशसं महत् ।
[1]तस्यावमानाद्वाक्यस्य दुश्शासनकृतेन च ॥ ४७॥
[2]यच्च नः प्रेक्षमाणानां कृष्णामानाययत् सभाम् ।
अनर्हन्तीं कुले जातां सर्वधर्मोपचायिनीम् ॥ ४८॥
तस्याधर्मस्य गान्धारे फलं प्राप्तमिदं महत् ।
नेह वै परलोकाय पापमिच्छेत पार्थिवः ॥ ४९॥
यश्च तान् पाण्डवान् द्यूते विषमेण विजित्य च ।
प्राव्राजयस्तदाऽरण्ये रौरवाजिनवाससः ॥ ५०॥
पुत्राणामिव चैतेषां धर्ममाचरतां सदा ।
द्रुह्येत् को नु नरो लोके मदन्यो ब्राह्मणब्रुवः ॥ ५१॥
पाण्डवानामयं कोपस् त्वया शकुनिना सह ।
आहृतो धृतराष्ट्रस्य सम्मते कुरुसंसदि ॥ ५२॥
दुश्शासनेन संसिक्तः कर्णेन परिरक्षितः ।
क्षत्तुर्वाक्यमनादृत्य त्वयाऽभ्यस्तः पुनः पुनः ॥ ५३॥

---

1. ख-ङ—नेह वै परलोकाय पापमिच्छेत पार्थिव: । [तत्स्थाने एवं वर्तते]
2. ख—यच्च तान्पाण्डवान्यन्ते जयमिच्छेत पार्थिवः । [अधिकः पाठः]

[1]स हि नः क्रोधवृक्षश्च कृतमूलो महात्मनाम् ।
तस्य पुष्पफले राजन्नुपभुङ्क्ष्व महाबल ॥ ५४॥

यस्तु शर्वाद्वरं लब्ध्वा पर्यवारयदर्जुनम् ।
सिन्धुराजस्समाश्रित्य स वो मध्ये कथं हतः ॥ ५५॥

कथं त्वयि च कर्णे च कृपे शल्ये च जीवति ।
अश्वत्थामनि कौरव्य सैन्धवो निधनं गतः ॥ ५६॥

[2]यत्तास्सर्वे च राजानस् तेजस्विन उपासते ।
सिन्धुराजं परित्रातुं स वो मध्ये कथं हतः ॥ ५७॥

मय्येव च विशेषेण तथा दुर्योधन त्वयि ।
आशंसते परित्राणम् अर्जुनात् स महीपतिः ॥ ५८॥

ततस्तस्मिन् परित्राणम् अलब्धवति फल्गुनात् ।
न किञ्चिदनुपश्यामि जीवितस्थानमात्मनः ॥ ५९॥

मज्जन्तमिव चात्मानं धृष्टद्युम्नस्य संयुगे ।
पश्याम्यहं वै पाञ्चालं सह तेन शिखण्डिना ॥ ६०॥

तं मां किमभितप्यन्तं वाक्शरैरुपकृन्तसि ।
अशक्तस्सिन्धुराजस्य भूत्वा त्राणाय भारत ॥ ६१॥

सौवर्णं सिन्धुराजस्य [3]ध्वजमक्लिष्टकर्मणः ।

---

1 ख-ङ—अर्धद्वयं नास्ति   2. ख—अर्धद्वयं नास्ति
3 ख-ङ—इतः दश पादा न सन्ति

अपश्यन्युधि भीष्मस्य कथमाशंससे जयम् ॥ ६२॥

मध्ये महारथानां च यत्राहन्यत सैन्धवः ।
हतो भूरिश्रवाश्चैव किं शेषं तत्र मन्यसे ॥ ६३॥

कृपमेकं प्रशंसामि यदि तत्र स जीवति ।
पापस्य सिन्धुराजस्य वधं तं पूजयाम्यहम् ॥ ६४॥

यच्चापश्यं हतं भीष्मं पश्यतस्तेऽनुजस्य वै ।
दुश्शासनस्य कौरव्य कुर्वाणं कर्म दुष्करम् ॥ ६५॥

अवध्यकल्पं सङ्ग्रामे देवैरपि सवासवैः ।
न ते वसुन्धराऽस्तीति तदहं चिन्तये नृप ॥ ६६॥

इमानि पाण्डवानां हि सृञ्जयानां च भारत ।
अनीकान्याद्रवन्ते मां सहितान्येव सर्वतः ॥ ६७॥

नाहत्वा सर्वपाञ्चलान् कवचस्य विमोक्षणम् ।
कर्तास्मि समरे कर्म धार्तराष्ट्र हितं तव ॥ ६८॥

राजन् ब्रूयास्सुतं मे त्वम् अश्वत्थामानमाहवे ।
[1]ब्राह्मणा नावमन्तव्या जीवितं परिरक्षता ॥ ६९॥

[2]त्वं च पुत्राद्विशिष्टोऽसि तद्वचः परिपालय ।
आनृशंस्ये दमे सत्य आर्जवे च स्थिरो भव ॥ ७०॥

---

1. ख-ङ—न सोमकाः प्रमोक्तव्या
2 ख—यच्च पितानु

धर्मार्थकामकुशलो धर्मार्थावप्यपीडयन् ।
धर्मप्रधानकार्याणि कुर्वन्न सर्वाणि सर्वशः ॥ ७१॥

चक्षुर्मनोभिस्ते विप्रास् सेव्यास्तोष्याश्च शक्तितः ।
न चैषां विप्रियं कार्यं ते हि वह्निशिखोपमाः ॥ ७२॥

एष त्वहमनीकानि प्रविशाम्यरिसूदन ।
रणाय महते राजंस् त्वया वाक्शल्यपीडितः ॥ ७३॥

त्वं च दुर्योधन बलं यदि शक्तोपि धारय ।
रात्रावपि च योद्धव्यास् संरब्धाः कुरुसृञ्जयाः ॥ ७४॥

सञ्जयः—

एवमुक्त्वा ततः प्रायाद् द्रोणः पाण्डवसृञ्जयान् ।
मुष्णन् क्षत्रियतेजांसि नक्षत्राणामिवांशुमान् ॥ ७५॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥
॥ ६९ ॥ जयद्रथवधपर्वणि द्विपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५२ ॥
[अस्मिन्नध्याये ७५॥ श्लोकाः]

जयद्रथवधपर्व समाप्तम्

---

## ॥ एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

दुर्योधनेन कर्णं प्रति जयद्रथवधे द्रोणस्य पार्थपक्षपातादौदासीन्यस्य हेतुत्वेऽभिहिते कर्णेन तन्निराकरणपूर्वकं दैवस्यैव तत्र हेतुत्वकथनम् ॥ १ ॥ रात्रियुद्धारम्भः ॥ २ ॥ युधिष्ठिरेण दुर्योधनपराजयः ॥ ३ ॥

(घटोत्कचवधपर्व)

सञ्जयः—

ततो दुर्योधनो राजा द्रोणेनैवं प्रचोदितः ।
अमर्षवशमापन्नो युद्धायैव मनो दधे ॥ १

अब्रवीच्च तदा कर्णं पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ १॥

दुर्योधनः—

पश्य कृष्णसहायेन पाण्डवेन किरीटिना ।
आचार्यविहितं व्यूहं [1]भित्त्वा देवैस्सुदुर्भिदम् ॥ २॥

तव व्यायच्छमानस्य द्रोणस्य च महात्मनः ।
मिषतां योधमुख्यानां सैन्धवो विनिपातितः ॥ ३॥

पश्य राधेय राजानः पृथिव्यां प्रवरा युधि ।
पार्थेनैकेन निहतास् सिंहेनेवेतरे मृगाः ॥ ४॥

मम व्यायच्छमानस्य समरे शत्रुसूदन ।

---

1 ख—इतः षोडश पादा न सन्ति

अल्पावशेषं सैन्यं मे कृतं शक्रात्मजेन ह ॥ ५॥

कथं वै युध्यमानस्य द्रोणस्य युधि फल्गुनः ।
भिन्द्यात् सुदुर्भिदं व्यूहं यतमानोऽपि संयुगे ॥ ६॥

प्रियो हि फल्गुनो नित्यम् आचार्यस्य महात्मनः ।
ततोऽस्य दत्तवान द्वारम् अयुद्धेनैव सूतज ॥ ७॥

अभयं सैन्धवस्यादौ दत्त्वा द्रोणः प्रतापवान् ।
प्रादान् किरीटिने द्वारं पश्यन्निर्गुणतां मयि ॥ ८॥

[1]यद्यस्याभ्यनुजानाद्धै पूर्वमेव गृहान प्रति ।
सिन्धुराजस्य समरान्न भवेज्जीवितक्षयः ॥ ९॥

जयद्रथो जीवितार्थी गच्छमानो गृहान प्रति ।
मयाऽनार्येण संरुद्धो द्रोणात् प्राप्याभयं रणे ॥ १०॥

[2]रक्षामि सैन्धवं युद्धे नैनं प्राप्स्यति फल्गुनः ।
मम सैन्यविनाशाय रुद्धो विप्रेण सैन्धवः ॥ ११॥

तस्य मे मन्दभाग्यस्य यतमानस्य संयुगे ।
हतानि सर्वसैन्यानि हतो राजा जयद्रथः ॥ १२॥

पश्य योधवरान् कर्ण शतशोऽथ सहस्रशः ।
[3]पार्थनामाङ्कितैर्बाणैस् सर्वे नीता यमक्षयम् ॥ १३॥

---

1. अ-ङ—यद्यसाभ्यमजानाद्धै ख—यद्यदास्यदनुज्ञां वै
2. ख-ङ—त्रास्यामि 3. ख—अर्धत्रयं नास्ति

कथमेकरथेनाजौ बहूना नः प्रपश्यताम् ।
विपन्नस्सैन्धवो राजा योधाश्चैव सहस्रशः ॥ १४॥

अद्य मे भ्रातरः क्षीणाश्_ चित्रसेनादयो युधि ।
भीमसेनं समासाद्य पश्यतां नो दुरात्मनाम् ॥ १५॥

कर्णः—

आचार्यं मा विगर्हिष्ठाश्_ शक्त्या युध्यत्यसौ द्विजः ।
अजय्यान् पाण्डवान् मन्ये द्रोणेनास्त्रविदा मृधे ॥ १६॥

तथा ह्येनमतिक्रम्य प्रविष्टश्श्वेतवाहनः ॥ १७

[1]सततं चेष्टमानानां निकृत्या विक्रमेण च ।
दैवदृष्टोऽन्यथाभावो न मन्युर्विद्यते क्वचित् ॥ १८

ततो नो युध्यमानानां परं शक्त्या सुयोधन ।
सैन्धवो निहतो राजा दैवमत्र परं स्मृतम् ॥ १९

परं यत्नं कुर्वतां च त्वया सह रणाजिरे ।
हत्वाऽस्माकं पौरुषं हि दैवं पश्चात् करोति नः ॥ २०

[2]सततं चेष्टमानानां निकृत्या विक्रमेण च ।
[3]निहत्य यत्नं चास्माकं दैवं याति स्वकार्यतः ॥ २१

नूनमेतेन मार्गेण गन्तव्यो जनसङ्क्षयः ।

1. ख—इदमर्धं नास्ति 2. ङ—अर्धचतुष्टयं नास्ति
3. ख—इदमर्धद्वयं नास्ति

ततो व्यायच्छमानानां दैवं पश्चात्करोति नः ॥ २२

दैवोपसृष्टः पुरुषो यत् कर्म कुरुते क्वचित् ।
कृतं कृतं हि तत् तस्य दैवेन विनिहन्यते ॥ २३

यत् कर्तव्यं मनुष्येण व्यवसायवता सदा ।
तत् कार्यमविशङ्केन दैवे सिद्धिः प्रतिष्ठिता ॥ २४

निकृत्या निकृताः पार्था विषयोगैश्च भारत ।
दग्धा जतुगृहे चैव द्यूतेन च पराजिताः ॥ २५

राजनीतिं समाश्रित्य प्रहिताश्चैव काननम् ।
यत्नेन च कृतं तत्तद् दैवेन विनिपातितम् ॥ २६

युध्यस्व यत्नमास्थाय मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ।
यततस्तव तेषां च दैवं मार्गेण यास्यति ॥ २७

न तेषां मतिपूर्वं हि सुकृतं दृश्यते क्वचित् ।
दुष्कृतं तव वा वीर बुद्ध्या हीनं कुरूद्वह ॥ २८

दैवं प्रमाणं सर्वस्य सुकृतस्येतरस्य वा ।
अनन्यकर्म दैवं हि जागर्ति स्वपतामपि ॥ २९

तेन युक्तो हि पुरुषः कार्याकार्ये नियुज्यते ॥ २९॥

बहूनि तव सैन्यानि योधाश्च बहवस्तथा ।
न तथा पाण्डवेयानां ततो युद्धमवर्तत ॥ ३०॥

तैरल्पैर्बहवो यूयं क्षयं नीताः प्रहारिणः ।

शङ्के दैवस्य तत् कर्म पौरुषं येन नाशितम् ॥ ३१॥

सञ्जयः—

एवं सम्भाषमाणानां बहु तत्तज्जनाधिप ।
पाण्डवानामनीकानि समदृश्यन्त संयुगे ॥ ३२॥

ततः प्रववृते युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् ।
तावकानां परैस्सार्धं राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ३३॥

तदुदीर्णरथाश्वेभं बलं तव जनाधिप ।
पाण्डुसेनामभिद्रुत्य योधयामास सर्वतः ॥ ३४॥

पाञ्चालाः कुरवश्चैव योधयन्तः परस्परम् ।
यमलोकाय महते परलोकाय दीक्षिताः ॥ ३५॥

शूरैश्शूरास्समासाद्य शरतोमरशक्तिभिः ।
विव्यधुस्समरे तूर्णं निन्युश्चैव यमक्षयम् ॥ ३६॥

रथिनो रथिभिस्सार्धं रुधिरस्राावि दारुणम् ।
प्रावर्तत महायुद्धं निघ्नतामितरेतरम् ॥ ३७॥

वारणा वारणैरेव समासाद्य परस्परम् ।
विषाणैर्दयामासुस् संनिपत्य मुहुर्मुहुः ॥ ३८॥

हयारोहा हयारोहैः प्रासशक्तिपरश्वधैः ।

---

* सर्वेषु कोशेषु अत्रैवाध्यायसमाप्तिर्दृश्यते ।

विरेदुस्तुमुले युद्धे प्रार्थयन्तो महद्यशः ॥　　३९॥

पत्तयश्च महाबाहो शतशश्शस्त्रपाणयः ।
अन्योन्यं घातयाञ्चक्रुर् नित्ययुक्ताः पराक्रमे ॥　　४०॥

गोत्राणि नामधेयानि कुलानां चैव मारिष ।
श्रावयित्वा विजानानाः पाञ्चालाः कुरुभिस्सह ॥　　४१॥

तेऽन्योन्यं समरे योधाश् शरशक्तिपरश्वधैः ।
प्रैपयन परलोकाय विचरन्तो ह्यभीतवत् ॥　　४२॥

शरैर्दश दिशो राजंस् तेषां मुक्तैस्सहस्रशः ।
न भ्राजन्ते यथापूर्वं भास्करस्य च नाशनात् ॥　　४३॥

तथा प्रवर्तमानेषु पाण्डवेयेषु निर्भयः ।
दुर्योधनो महाराज विजगाहे द्विषद्बलम् ॥　　४४॥

सैन्धवस्य वधादेव भृशं दुःखसमन्वितः ।
मर्तव्यमिति निश्चिन्त्य प्राविशत् तन्महाबलम् ॥　　४५॥

नादयन् रथघोषेण कम्पयंश्चैव मेदिनीम् ।
अभ्यवर्तत पुत्रस्ते पाण्डवानां महाचमूम् ॥　　४६॥

स सन्निपातस्तुमुलस् तस्य तेषां च भारत ।
अभवत् सर्वसैन्यानाम् अभावकरणो महान् ॥　　४७॥

धृतराष्ट्रः—

तथा हतेषु सैन्येषु तथा कृच्छ्रगतेषु च ।

कच्चिद्दुर्योधनस्सूत नाकार्षीत् पृष्ठतो रणम् ॥ ४८॥

एकस्य च बहूना च सन्निपातो महानभूत् ।
विशेषतो हि नृपतेर् विषम प्रतिभाति मे ॥ ४९॥

सोऽत्यन्तसुखसंवृद्धो रक्ष्यो लोकस्य चेश्वरः ।
एको बहून समासाद्य कच्चिन्नासीत् पराङ्मुखः ॥ ५०॥

द्रोणः कर्णः कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ।
[1]नावारयन कथं युद्धे राजानं राजकाङ्क्षिणः ॥ ५१॥

सर्वोपायैर्हि युद्धेषु रक्षितव्यो महीपतिः ।
एषा नीतिः परा युद्धे दृष्टा तत्र महर्षिभिः ॥ ५२॥

प्रविष्टे वा मम सुते परेषा वै महद्बलम् ।
मामका रथिनां श्रेष्ठाः किमकुर्वत सञ्जय ॥ ५३॥

सञ्जय.—

राजन सङ्ग्राममाश्चर्यं पुत्रस्य तव भारत ।
एकस्य च बहूनां च शृणु मे ब्रुवतोऽद्भुतम् ॥ ५४॥

द्रोणेन वार्यमाणोऽसौ कर्णेन च कृपेण च ।
प्राविशत् पाण्डवीं सेनां मकरस्सागरं यथा ॥ ५५॥

किरन्निषुसहस्राणि तत्र तत्र तदा तदा ।
पाञ्चालान् पाण्डवांश्चैव विव्याध निशितैश्शरैः ॥ ५६॥

---

1. ख-ङ—अर्धलयं नास्ति

यथोद्यन् विततं सूर्यो रश्मिभिर्नाशयेत् तमः ।
तथा पुत्रस्तव बलं नाशयन् तन्महाबलः ॥　　५७॥

मध्यन्दिनगतं सूर्यं प्रतपन्तमिवांशुभिः ।
न शेकुर्भारतं युद्धे पाण्डवाः प्रतिवीक्षितुम् ॥　　५८॥

पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ।
पर्यधावन्त पाञ्चाला हन्यमाना महात्मना ॥　　५९॥

रुक्मपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैस् तव पुत्रेण धन्विना ।
हन्यमानाश्शरैस्तूर्णं भ्रमराणां व्रजैरिव ॥　　६०॥

व्यद्रवंश्च भयाद्योधा दृष्ट्वा तं परमाहवे ।
व्यात्ताननमिव प्राप्तम् अन्तकं प्राणहारिणम् ॥　　६१॥

न तादृशं रणे कर्म कृतवन्तस्स्म तावकाः ।
यादृशं कृतवान् राजन् पुत्रस्तव विशां पते ॥　　६२॥

पुत्रेण तव सा सेना मथिता पाण्डवी रणे ।
नलिनी द्विरदेनेव समन्ताद्विप्रलोलिता ॥　　६३॥

क्षीणतोयानिलार्काभ्यां हतशोभेव पद्मिनी ।
बभूव पाण्डवी सेना पुत्रस्य तव तेजसा ॥　　६४॥

पाण्डुसेनां हतां दृष्ट्वा तव पुत्रेण मारिष ।
भीमसेनपुरोगास्तु पाञ्चालास्समुपाद्रवन् ॥　　६५॥

स भीमसेनं दशभिर् माद्रीपुत्रौ त्रिभिस्त्रिभिः ।

विराटद्रुपदौ षड्भिश् शतेन च शिखण्डिनम् ॥ ६६॥

धृष्टद्युम्नं च सप्तत्या धर्मपुत्रं च पञ्चभिः ।
केकयांश्चैव चेदींश्च बहुभिर्निशितैश्शरैः ॥ ६७॥

सात्वतं पञ्चभिर्विद्ध्वा द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ।
घटोत्कचं चतुष्षष्ट्या विद्ध्वा सिंह इवानदन् ॥ ६८॥

शतशश्चापरान् योधान् सद्विपाश्वरथान् रणे ।
शरैरवचकर्तोग्रैः क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः ॥ ६९॥

तस्य तान् निघ्नतश्शत्रून् रुक्मपृष्ठं महद्धनुः ।
भल्लाभ्यां पाण्डवश्रेष्ठस् त्रिधा चिच्छेद मारिष ॥ ७०॥

विव्याध चैनं दशभिस् सम्यगस्तैश्शितैश्शरैः ।
मर्माणि भित्त्वा ते सर्वे सम्भग्नाः क्षितिमाविशन् ॥ ७१॥

ततः प्रमुदिता योधाः परिवव्रुर्युधिष्ठिरम् ।
वृत्रेण सह युध्यन्तं यद्वद्देवाश्शतक्रतुम् ॥ ७२॥

ततो युधिष्ठिरो राजा तव पुत्रस्य मारिष ।
[1]शरं परमदुर्वारं प्रेषयामास संयुगे ॥ ७३॥

स तेन भृशसंविद्धो निषसाद रथोत्तमे ॥ ७४

ततः पाञ्चाल्यसैन्यानां भृशमासीद्रणे ध्वनिः ।
हतो राजेति राजेन्द्र मुदितानां समन्ततः ॥ ७५

1. ख—इदमर्धं नास्ति

वाणशङ्खरवक्षोभश्‌ शुश्रुवे तत्र मारिष ॥ ७५॥

अथ द्रोणो द्रुतं तत्र प्रत्यदृश्यत संयुगे ॥ ७६

हृष्टो दुर्योधनश्चापि दृढमादाय कार्मुकम्‌ ।
तिष्ठ तिष्ठेति राजानं ब्रुवन्‌ पाण्डवमभ्ययात्‌ ॥ ७७

प्रत्युद्ययुस्तं त्वरिताः पाञ्चाला राजगृद्धिनः ।
तान्‌ द्रोणः प्रतिजग्राह परीप्सन्‌ कुरुसत्तमम्‌ ॥ ७८

चण्डवातस्समुद्भूतो मेघानभिमुखो यथा ॥ ७८॥

ततो राजन्‌ महानासीत्‌ सङ्ग्रामो भूरिवर्धनः ।
तावकानां परेषां च समेतानां युयुत्सया ॥ ७९॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥
॥ ७० ॥ घटोत्कचवधपर्वणि प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥
[अस्मिन्नध्याये ७९॥ श्लोकाः]

---

## ॥ त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

द्रोणयुद्धवर्णनम्‌ ॥ १ ॥ भीमेन दुर्मददुष्कर्णादिवधः ॥ २ ॥

---

धृतराष्ट्रः—

यत्‌ तदा प्राविशत्‌ पाण्डून्‌ आचार्यः कुपितो वशी ।
उक्त्वा दुर्योधनं सम्यङ्‌ मन्दं शास्त्रातिगं सुतम्‌ ॥ १

प्रविश्य विचरन्तं च रणे शूरमवस्थितम् ।
कथं द्रोणं महेष्वासं पाण्डवाः पर्यवारयन ॥ २

केऽरक्षन् दक्षिणं चक्रम् आचार्यस्य महात्मनः ।
के चोत्तरमरक्षन्त निघ्नतश्शात्रवान रणे ॥ ३

नृत्यन स रथमार्गेषु सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
धूमकेतुरिव क्रुद्धः कथं मृत्युमुपेयिवान् ॥ ४

सञ्जयः—

सायाह्ने सैन्धवं हत्वा राज्ञा पार्थस्समेत्य च ।
सात्यकिश्च महेष्वासो द्रोणमेवाभ्यधावताम् ॥ ५

तथा युधिष्ठिरस्तूर्णं भीमसेनश्च पाण्डवः ।
पृथक् चमूभ्यां सम्पृक्तौ द्रोणमेवाभ्यधावताम् ॥ ६

तथैव नकुलो धीमान् सहदेवश्च दुर्जयः ।
[1]धृष्टद्युम्नश्शतानीको विराटश्च सकेकयः ॥ ७

मात्स्यास्साल्वेयसेनाश्च द्रोणमेवाभ्ययुर्युधि ॥ ७॥

द्रुपदश्च महाराज पाञ्चालैरभिरक्षितः ।
धृष्टद्युम्नपिता राजन द्रोणमेवाभ्यवर्तत ॥ ८॥

द्रौपदेया महेष्वासा राक्षसश्च घटोत्कचः ।
ससेनास्तेऽन्ववर्तन्त द्रोणमेव महाद्युतिम् ॥ ९॥

---

1. अ-ड—अर्धत्रयं नास्ति

प्रभद्रकाश्च पाञ्चालाप् षट्सहस्राः प्रहारिणः ।
द्रोणमेवाभ्यवर्तन्त पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥ १०॥

तथेतरे नरव्याघ्राः पाण्डवानां महारथाः ।
सहितास्संन्यवर्तन्त द्रोणमेव नरर्षभाः ॥ ११॥

तेषु शूरेषु युद्धाय गतेषु भरतर्षभ ।
बभूव रजनी घोरा भीरूणां भयवर्धिनी ॥ १२॥

योधानामशिवा रौद्रा राजन्नन्तकगामिनी ।
कुञ्जराश्वमनुष्याणा प्राणान्तकरणी तदा ॥ १३॥

तस्या रजन्यां घोरायां नदन्त्यस्सर्वतश्शिवाः ।
न्यवेदयन भयं घोरं सज्वालाकबलैर्मुखैः ॥ १४॥

उलूकाश्चाप्यदृश्यन्त शंसन्तो विपुलं भयम् ।
विशेषतः कौरवाणां ध्वजिन्यामतिदारुणम् ॥ १५॥

ततस्सैन्येषु राजेन्द्र शब्दस्समभवन्महान ।
भेरीशब्देन महता मृदङ्गाना तथैव च ॥ १६॥

गजानां गर्जितैश्चापि तुरगाणा च हेषितैः ।
खुरशब्दनिपातैश्च तुमुलस्सर्वतोऽभवत् ॥ १७॥

ततस्समभवद्युद्धं रात्रौ तदतिदारुणम् ।
द्रोणस्य च महाराज सृञ्जयानां च सर्वशः ॥ १८॥

तमसा संवृते लोके न प्राज्ञायत किञ्चन ।

सैन्येन रजसा चैव समन्तादुत्थितेन च ॥ १९॥

[1]नरस्याश्वस्य नागस्य सम्प्रसुस्राव शोणितम् ।
नापश्याम रजो भौमं कश्मलेनाभिसंवृताः ॥ २०॥

रात्रौ वंशवनस्येव दह्यमानस्य पर्वते ।
घोरश्चटचटाशब्दश् शस्त्राणां पततामभूत् ॥ २१॥

नैव स्वे न परे राजन्नाज्ञायन्त तमोवृते ।
उन्मत्तमिव तत् सर्वं बभूव रजनीमुखम् ॥ २२॥

भौमं रजोऽथ राजेन्द्र शोणितेन प्रशामितम् ।
शातकुम्भैश्च कवचैर् भूषणैश्च तमोऽनशत् ॥ २३॥

ततस्सा भारती सेना मणिहेमविभूषिता ।
द्यौरिवासीत् सनक्षत्रा रजन्यां भरतर्षभ ॥ २४॥

गोमायुबलसङ्घुष्टा शक्तिध्वजसमाकुला ।
वारणाभिरुता घोरा क्ष्वेडितोद्घुष्टनादिता ॥ २५॥

ततोऽभवन्महारौद्रस् तुमुलो रोमहर्षणः ।
समावृण्वन् दिशस्सर्वा महेन्द्राशनिनिस्स्वनः ॥ २६॥

सा निशीथे महाराज सेनाऽदृश्यत भारती ।
अङ्गदैर्मकुटैर्निष्कैश् शस्त्रैश्चैवावभासिभिः ॥ २७॥

तत्र नागा रथाश्चैव जाम्बूनदविभूषिताः ।

---

1 अ-क-च—अर्धद्वयं नास्ति

निशायां प्रत्यदृश्यन्त मेघा इव सविद्युतः ॥ २८॥

यष्टिशक्तिगदाबाणमुसलप्रासपट्टसाः ।
सम्पतन्तो ह्यदृश्यन्त भ्राजमाना इवाग्नयः ॥ २९॥

दुर्योधनपुरोवातां रथनागवलाहकाम् ।
वादित्रघोषस्तनितां चापविद्युद्ध्वजावृताम् ॥ ३०॥

द्रोणपाण्डवपर्जन्यां खड्गशक्तिगदाशनिम् ।
शरधारास्त्रपवनां शस्त्रपातोष्मसङ्कुलाम् ॥ ३१॥

घोरां विस्मापनीमुग्रां जीवितच्छिदमप्लवाम् ।
तां प्राविशन्नतिभयां नदीं युद्धचिकीर्षवः ॥ ३२॥

तस्मिन् रात्रिमुखे घोरे महाशब्दनिनादिते ।
भीरूणां त्रासजनने शूराणां हर्षवर्धने ॥ ३३॥

रात्रियुद्धे वर्तमाने तदा घोरे सुदारुणे ।
द्रोणमभ्यद्रवन् क्रुद्धास् सहिताः पाण्डसृञ्जयाः* ॥ ३४॥

ये ये प्रमुखतो राजन्नवर्तन्त महात्मनः ।
तान् सर्वान् विमुखांश्चक्रे कांश्चिन्निन्ये यमक्षयम् ॥ ३५॥

**धृतराष्ट्रः—**

तस्मिन् प्रविष्टे दुर्धर्षे सृञ्जयानमितौजसि ।
अमृष्यमाणे संरब्धे का वोऽभूद्वै मतिस्तदा ॥ ३६॥

---

* सर्वेषु कोशेषु अत्रैवाध्यायसमाप्तिर्दृश्यते ।

दुर्योधनं तथा पुत्रम् उक्त्वा शास्त्रातिगं मम ।
यत् प्राविशदमेयात्मा किं पार्थः प्रत्यपद्यत ॥ ३७॥

निहते सैन्धवे वीरे भूरिश्रवसि चैव हि ।
यदाऽभ्यगान्महातेजाः पाञ्चालानपराजितः ॥ ३८॥

किममन्यत दुर्धर्षः प्रविष्टे शत्रुसूदने ।
दुर्योधनश्च किं कृत्यं प्राप्तकालममन्यत ॥ ३९॥

के च तं परमं वीरम् अन्वयुर्द्विजसत्तमम् ।
के चास्य पृष्ठतोऽगच्छन् वीराश्शूरस्य गच्छतः ॥ ४०॥
के पुरस्तादवर्तन्त निघ्नन्तश्शात्रवान् रणे ॥ ४१

मन्येऽहं पाण्डवान् सर्वान् भारद्वाजशरार्दितान् ।
शिशिरे कम्पमानान् वै कृशाङ्गान् गा इवाभितः ॥ ४२

प्रविश्य च महेष्वासः पाञ्चालानरिमर्दनः ।
कथं स पुरुषव्याघ्रः पञ्चत्वमुपजग्मिवान् ॥ ४३

सर्वेषु सैन्येषु च संहतेषु
रात्रौ समेतेषु महारथेषु ।
सँक्षोभ्यमानेषु पृथग्बलेषु
के वस्तदानीं मतिमन्त आसन् ॥ ४४

हतांश्चैव विषक्तांश्च पराभूतांश्च शंस मे ।
रथिनो विरथांश्चैव कृतान् युद्धेषु मामकान् ॥ ४५

कथमेतत् तदा तत्र पार्थानामपलायिनाम् ।
प्रकाशमभवद्रात्रौ कथं कुरुषु सञ्जय ॥　४६

सञ्जय:—

रात्रियुद्धे तदा राजन् वर्तमाने सुदारुणे ।
द्रोणमभ्यद्रवन् राजन् पाण्डवास्सहसैनिकाः ॥　४७

ततो द्रोणः केकयांश्च धृष्टद्युम्नस्य चात्मजान् ।
सम्प्रैषयत् प्रेतलोकं सर्वानिषुभिराशुगैः ॥　४८

एवं प्रमुखतो राजन् येऽवर्तन्त महारथाः ।
तान् सर्वान् प्रेषयामास परलोकाय भारत ॥　४९

प्रमथ्नन्तं तदा वीरान् भारद्वाजममर्षणम् ।
अभ्यवर्तत सङ्क्रुद्धश् शिबी राजन् प्रतापवान् ॥　५०

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य पाण्डवानां महारथम् ।
विव्याध दशभिर्द्रोणस् सर्वपारशवैश्शरैः ॥　५१

तं शिबिः प्रतिविव्याध त्रिंशद्भिर्निशितैश्शरैः ।
सारथिं चास्य भल्लेन स्मयमानो न्यपातयत् ॥　५२

तस्य द्रोणो हयान् हत्वा सारथिं च महात्मनः ।
अथाऽस्य सशिरस्त्राणं शिरः कायादपाहरत् ॥　५३

कलिङ्गानां च सैन्येन कलिङ्गस्य सुतो महान् ।
त्वरन् पितृवधात् क्रुद्धो भीमसेनमुपाद्रवत् ॥　५४

स भीमं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ।
विशोकं त्रिभिरानर्च्छेद् ध्वजमेकेन पत्रिणा ॥ ५५

कलिङ्गानां च शूरं तं क्रुद्धं क्रुद्धो वृकोदरः ।
रथाद्रथमभिद्रुत्य मुष्टिनाऽभिजघान ह ॥ ५६

मुष्टिनाऽभिहतस्याजौ पाण्डवेन बलीयसा ।
सर्वाण्यस्थीनि सहसा प्रापतन् वै पृथक् पृथक् ॥ ५७

तस्मिंस्तथा हते तेन सिंहनादो महानभूत् ।
पाञ्चालानां महाराज साधु साध्विति पाण्डवम् ॥ ५८

तं कर्णभ्रातरः पञ्च नामृष्यन् कर्ण एव च ।
ते भीमसेनं नाराचैर् जघ्नुराशीविषोपमैः ॥ ५९

ततश्शत्रुरथं त्यक्त्वा भीमो द्रुमरथं गतः ।
द्रुमं चास्यन्तमनिशं मुष्टिना समपोथयत् ॥ ६०

यथा काचमणिर्न्यस्तो मुष्टिनैकेन लीलया ।
स हतस्सर्वथा चूर्णो रक्तमेवोदपद्यत ॥ ६१

तथा चूर्णमभूत् तत्र कर्णभ्राता द्रुमस्तथा ।
आहतः पाण्डुपुत्रेण तलेन बलिनाऽपतत् ॥ ६२

तं निहत्य महाराज भीमसेनो महाबलः ।
जयरातरथं प्राप्य मुहुस्सिंह इवोन्नदन् ॥ ६३

जयरातं तु चरणे गृह्य भीमो महाबलः ।

सूतं चास्य महाबाहुर् गृह्य राजंस्तथैव च ॥ ६४

पादयोर्गृह्य तौ वीरौ भीमः कर्णस्य पश्यतः ।
भूमावाविद्ध्य जघ्ने स तौ च प्राणैर्व्ययुज्यताम् ॥ ६५

कर्णस्तु पाण्डवे शक्तिं काञ्चनीं समवासृजत् ॥ ६५॥

ततस्तामेव जग्राह प्रहसन् पाण्डुनन्दनः ।
कर्णायैव च दुर्धर्षश् चिक्षेपाजौ वृकोदरः ॥ ६६॥

तामन्तरिक्षे चिच्छेद [1]शरेणैकेन सूतजः ॥ ६७

ततस्तव सुता राजन् भीमस्य रथमाव्रजन् ।
महता शरवर्षेण च्छादयन्तो वृकोदरम् ॥ ६८

दुर्मदस्य ततो भीमः प्रहसन्निव संयुगे ।
सारथिं च हयांश्चैव क्षणान्निन्ये यमक्षयम् ॥ ६९

दुर्मदस्तु ततो यानं दुष्कर्णस्याभिपुप्लुवे ॥ ६९॥

तावेकरथमारूढौ भ्रातरौ परितापिनौ ।
सङ्ग्रामशिरसो मध्ये भीमं द्वाभ्यामविध्यताम् ॥ ७०॥

यथाम्बुपतिमित्रौ हि तारकं दैत्यसत्तमम् ॥ ७१

ततस्तु दुर्मदश्चैव दुष्कर्णश्च तवात्मजौ ।
रथमेकं समारुह्य भीमं बाणैरविध्यताम् ॥ ७२

ततः कर्णस्य मिषतो द्रौणेर्दुर्योधनस्य च ।

---

1. क-ख—शकुनिस्तैलपायिनीम्	ङ—शकुनिस्त्वनपायिना

कृपस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च पाण्डवः ॥ ७३

दुर्मदस्य च वीरस्य दुष्कर्णस्य च तं रथम् ।
पादप्रहारेण धरां प्रावेशयदरिन्दमः ॥ ७४

ततस्सुतौ ते बलिनौ शूरौ दुष्कर्णदुर्मदौ ।
मुष्टिनाऽऽहत्य सङ्क्रुद्धो ममर्द चरणेन सः ॥ ७५

ततो हाहाकृते सैन्ये दृष्ट्वा भीमं नृपा ब्रुवन् ।
रुद्रोऽयं भीमरूपेण धार्तराष्ट्रेषु क्रुध्यति ॥ ७६

एवमुक्त्वाऽपालयन्त सर्वे भारत पार्थिवाः ।
विसंज्ञाश्चाभवन् वाहा न च द्वौ समधावताम् ॥ ७७

ततो बले भृशलुलिते निशामुखे
सुपूजितो नृपवृषभैर्वृकोदरः ।
महाबलः कमलविबुद्धलोचनो
युधिष्ठिरं नृपतिमपूजयद्बली ॥ ७८

ततो यमौ द्रुपदविराटकेकया
युधिष्ठिरश्चापि परां मुदं ययुः ।
वृकोदरं भृशमभिपूजयंश्च ते
यथाऽन्धके प्रतिनिहते हरं सुराः ॥ ७९

ततस्सुतास्तव वरुणात्मजोपमा
रुषाऽन्वितास्सह गुरुणा महात्मना ।

वृकोदरं सरथपदातिकुञ्जरा
  महारथा भृशमभिपर्यवारयन् ॥ ८०

[1]ततो यमौ द्रुपदसुतास्ससैनिका
  युधिष्ठिरद्रुपदविराटसात्वताः ।
घटोत्कचो जयविजयौ द्रुमो वृकस्
  ससृञ्जयास्तव तनयानवारयन् ॥ ८१

ततोऽभवत् तिमिरघनैरिवावृतं
  महारवं भयदमतीव दारुणम् ।
निशामुखे बलवृकगृध्रमोदनं
  महात्मनां नृपवर युद्धमद्भुतम् ॥ ८२

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥
॥ ७० ॥ घटोत्कचवधपर्वणि द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥
[अस्मिन्नध्याये ८२ श्लोकाः]

---

1. ख—अर्धद्वयं नास्ति

## ॥ एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

सात्यकिना सोमदत्तपराजयः ॥ १ ॥ अश्वत्थामघटोत्कचयुद्धमश्वत्थामपराक्रमश्च ॥ २ ॥

सञ्जय.—

प्रायोपविष्टे तु हते पुत्रे सात्यकिना ततः ।
सोमदत्तो भृशं क्रुद्धस् सात्यकिं वाक्यमब्रवीत् ॥ १

सोमदत्तः—

क्षत्रधर्मः परो दृष्टो यस्तु देवैर्महात्मभिः ।
तं त्वं सात्वत सन्त्यज्य दस्युधर्मे सदा रतः ॥ २

पराङ्मुखाय दीनाय न्यस्तशस्त्राय याचते ।
क्षत्रधर्मरतः प्राज्ञः कथं नु प्रहरेद्रणे ॥ ३

द्वावेव किल वृष्णीनां तत्र ख्यातौ महारथौ ।
प्रद्युम्नश्च महाबाहुस् त्वं चैव युधि सात्वत ॥ ४

कथं प्रायोपविष्टाय पार्थेन च्छिन्नबाहवे ।
नृशंसं बत दीनं च तादृशं कृतवानसि ॥ ५

शपे सात्वत पुत्राभ्याम् इष्टेन सुकृतेन च ॥ ५॥

अनतीतामिमां रात्रिं यदि त्वा वीरमानिनम् ।
अरक्ष्यमाणं पार्थेन जिष्णुना ससुतानुजम् ॥ ६॥

न हन्यां नरके घोरे पतेयं वृष्णिपांसन ॥　　७

सञ्जयः—

एवमुक्त्वा तु सङ्क्रुद्धस् सोमदत्तो महाबलः ।
दध्मौ शङ्खं च तारेण सिंहनादं ननाद च ॥　　८

ततः कमलपत्राक्षस् सिंहदंष्ट्रो महाबलः ।
सात्वतो भृशसङ्क्रुद्धस् सोमदत्तमथाब्रवीत् ॥　　९

सात्यकिः—

हतो भूरिश्रवा वीर तव पुत्रो महाहवे ।
शलश्चैव महाराज भ्रातुर्व्यसनकर्शितः ॥　　१०

त्वां चाप्यद्य वधिष्यामि सपुत्रं सहबान्धवम् ।
तिष्ठेदानीं रणे यत्तश् शूरस्त्वं हि महारथः ॥　　११

यस्मिन् दानं दमश्शौचम् अहिंसा ह्रीधृतिक्षमाः ।
अनपायानि सर्वाणि नित्यं राज्ञि युधिष्ठिरे ॥　　१२

मृदङ्गकेतोस्तस्य त्वं तेजसा निहतः पुरा ।
सकर्णसौबलस्सङ्ख्ये विनाशं समुपेष्यसि ॥　　१३

शपेऽहं कृष्णचरणैर् इष्टापूर्तेन चात्मनः ।
यदि त्वां ससुतं पापं न हन्यां युधि रोषितः ॥　　१४

अपयास्यसि चेन् त्यक्त्वा ततो मुक्तो भविष्यसि ॥　　१४॥

सञ्जय.—

एवमाभाष्य चान्योन्यं कोपसंरक्तलोचनौ ।
प्रवृत्तौ शरसम्पातं कर्तुं पुरुषसत्तमौ ॥ १५॥

ततो रथसहस्रेण हयानामयुतेन च ।
दुर्योधनस्सोमदत्तं परिवार्य व्यवस्थितः ॥ १६॥

शकुनिश्च सुसङ्क्रुद्धस् सर्वशस्त्रविशारदः ।
पुत्रपौत्रैः परिवृतो भ्रातृभिश्चेन्द्रविक्रमैः ॥ १७॥

स्यालस्तव महाबाहुर् वज्रसंहननो युवा ॥ १८

साग्रं शतसहस्रं तु योधानां तस्य धीमतः ।
सोमदत्तं महेष्वासं समन्तात् पर्यरक्षत ॥ १९

रक्ष्यमाणश्च बलिभिश् छादयामास सात्यकिम् ॥ १९॥

तं छाद्यमानं विशिखैर् दृष्ट्वा सन्नतपर्वभिः ।
धृष्टद्युम्नोऽभवत् क्रुद्धः प्रगृह्य महतीं चमूम् ॥ २०॥

[1]अभ्यरक्षन्महाबाहुस् सात्वतं सत्यविक्रमम् ॥ २१

चण्डवाताभिसृष्टानाम् उदधीनामिव स्वनः ।
आसीद्राजन् बलौघानाम् अन्योन्यमभिनिघ्नताम् ॥ २२

विव्याध सोमदत्तस्तु सात्वतं नवभिश्शरैः ।
सात्यकिर्दशभिश्चैनम् अवधीत् कुरुपुङ्गवम् ॥ २३

---

1. ख—इदमर्धं नास्ति

सोऽतिविद्धो बलवता समरे दृढधन्विना ।
रथोपस्थं समासाद्य मुमोह गतचेतनः ॥　　२४

[1]तं विमूढं समालक्ष्य सारथिस्त्वरयाऽन्वितः ।
अपोवाह रणाद्वीरं सोमदत्तं महाबलम् ॥　　२५

तं विसंज्ञं समालोक्य युयुधानशरार्दितम् ।
द्रौणिरभ्यद्रवत् क्रुद्धस् सात्वतं रणमूर्धनि ॥　　२६

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य शैनेयस्य रथं प्रति ।
भैमसेनिस्सुसङ्क्रुद्धः प्रत्यमित्रमवारयत् ॥　　२७

कार्ष्णायसमयं घोरम् ऋक्षचर्मावृतं महत् ।
युक्तं गजनिभैर्वाहैर् न हयैर्नापि वारणैः ॥　　२८

विक्षिप्तमष्टचक्रेण विवृताक्षेण कूजता ।
ध्वजेनोच्छ्रितदण्डेन गृध्रराजेन राजता ॥　　२९

लोहितार्द्रपताकं च चित्रमाल्योपशोभितम् ।
अष्टचक्रसमायुक्तम् आस्थाय परमं रथम् ॥　　३०

शूलमुद्गरधारिण्या शैलपादपहस्तया ।
रक्षसां घोररूपाणाम् अक्षौहिण्या समावृतः ॥　　३१

तमुद्यतमहाचापं निशाम्य व्यथिता नृपाः ।
युगान्तकालसमये दण्डहस्तमिवान्तकम् ॥　　३२

1. ख—इदमर्धद्वयं नास्ति

भयार्दिता प्रचुक्षोभ पुत्रस्य तव वाहिनी ।
वायुना क्षोभितावर्ता गङ्गेवोर्ध्वतरङ्गिणी ॥ ३३

घटोत्कचप्रमुक्तेन सिंहनादेन भीषिताः ।
प्रसुस्रुवुर्गजा मूत्रं विव्यथुश्च नरा भृशम् ॥ ३४

ततोऽश्मवृष्टिरत्यन्तम् आसीत् तत्र समन्ततः ।
सन्ध्याकालेऽधिकबलैर् विमुक्ता रक्षसां गणैः ॥ ३५

आयसानि च चक्राणि मुसुण्ड्यश्शक्तितोमराः ।
पतन्त्यविरलाश्शूलाश् शतघ्न्यः पट्टसास्तथा ॥ ३६

तदुग्रमतिरौद्रं च दृष्ट्वा युद्धं नराधिपाः ।
तनयास्तव कर्णश्च व्यथिताः प्राद्रवन् भयात् ॥ ३७

तत्रैकोऽस्त्रबलश्लाघी द्रौणिर्मानी न विव्यथे ।
व्यधमच्च शरैर्मायां तां घटोत्कचनिर्मिताम् ॥ ३८

विहतायां तु मायायाम् अमर्षी स घटोत्कचः ।
विससर्ज शरान् घोरांस् तेऽश्वत्थामानमाविशन् ॥ ३९
भुजगा इव वेगेन वल्मीकं क्रोधमूर्च्छिताः ॥ ३९॥
ते शरा रुधिराभ्यक्ता भित्त्वा शारद्वतीसुतम् ।
विविशुर्धरणीं शीघ्रं रुक्मपुङ्खाश्शिलाशिताः ॥ ४०॥
अश्वत्थामा तु सङ्क्रुद्धो लघुहस्तः प्रतापवान् ।

घटोत्कचमभिक्रुद्धो बिभेद दशभिश्शरैः ॥ ४१॥

घटोत्कचोऽतिविद्धस्तु द्रोणपुत्रेण मर्मसु ।
चक्रं शतसहस्रारम् अगृह्णाद्व्यथितो भृशम् ॥ ४२॥

क्षुरान्तं बालसूर्याभं मणिवज्रविभूषितम् ।
अश्वत्थाम्नस्तु चिक्षेप भैमसेनिर्जिघांसया ॥ ४३॥

वेगेन महता गच्छद् विक्षिप्तं द्रौणिना शरैः ।
अभाग्यस्येव संकल्पस् तन्मोघमपतद्भुवि ॥ ४४॥

घटोत्कचस्ततस्तूर्णं दृष्ट्वा चक्रं निपातितम् ।
द्रौणिं प्राच्छादयद्बाणैर् स्वर्भानुरिव भास्करम् ॥ ४५॥

घटोत्कचसुतश्श्रीमान् भिन्नाञ्जनचयोपमः ।
रुरुधे द्रौणिमायान्तं प्रभञ्जनमिवाद्रिराट् ॥ ४६॥

पौत्रेण भीमसेनस्य शरैरञ्जनवर्ष्मणा ।
बभौ मेघेन धाराभिर् गिरिर्मेरुरिवार्दितः ॥ ४७॥

अश्वत्थामा त्वसंभ्रान्तो रुद्रोपेन्द्रेन्द्रविक्रमः ।
ध्वजमेकेन बाणेन चिच्छेदाञ्जनवर्ष्मणः ॥ ४८॥

[1]द्वाभ्यां तु रथयन्तारं त्रिभिश्चास्य त्रिवेणुकम् ।
धनुरेकेन चिच्छेद चतुर्भिश्चतुरो हयान ॥ ४९॥

विरथस्योद्यतं हस्ताद्धेमबिन्दुभिरुज्ज्वलम् ।

1. ङ—नास्तीदमर्धम्

विशिखेन सुतीक्ष्णेन खड्गमस्य द्विधाऽकरोत् ॥ ५०॥

गदा हेमाङ्गदा राजंस् तूर्णं हैडिम्बिसूनुना ।
भ्राम्याक्षिप्ता शरैस्साऽपि द्रौणिनाऽभ्याहताऽपतत् ॥ ५१॥

ततोऽन्तरिक्षमुत्पत्य कालमेघ इवोन्नदन् ।
ववर्षाञ्जनवर्म्मा स द्रुमवर्षं नभस्स्थलात् ॥ ५२॥

ततो मायाधरं द्रौणिर् घटोत्कचसुतं दिवि ।
मार्गणैरभिविव्याध घनं सूर्य इवांशुभिः ॥ ५३॥

सोऽवतीर्य पुनस्तस्थौ रथे हेमविभूषिते ।
महीधर इवात्युच्चश् श्रीमानञ्जनवर्म्मणः ॥ ५४॥

तमयस्मयवर्माणं द्रौणिर्भीमात्मजात्मजम् ।
जघानाञ्जनवर्म्माणं महेश्वर इवान्तकम् ॥ ५५॥

हतं दृष्ट्वाऽथ तं पुत्रम् अश्वत्थाम्ना महाबलम् ।
द्रौणेस्सकाशमभ्येत्य रोषात् प्रस्फुरिताधरः ॥ ५६॥

प्राह वाक्यमसम्भ्रान्तो वीरं शारद्वतीसुतम् ।
दहन्तं पाण्डवानीकं वनमग्निमिवोत्थितम् ॥ ५७॥

घटोत्कचः—

तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन् द्रोणपुत्र गमिष्यसि ।
त्वामद्य निहनिष्यामि क्रौञ्चमग्निसुतो यथा ॥ ५८॥

अश्वत्थामा—

गच्छ त्वं सहसाऽन्यैस्त्वं युध्यस्वामितविक्रम ।
न हि पुत्रेण हैडिम्ब [1]पिता न्याय्यं प्रबाधितुम् ॥　　५९॥

कामं खलु न मे रोषो हैडिम्बे त्वयि विद्यते ।
किं तु रोषान्वितो जन्तुर् हन्यादात्मानमात्मना ॥　　६०॥

सञ्जयः—

श्रुत्वैतत् क्रोधताम्राक्षः पुत्रशोकेन पीडितः ।
अश्वत्थामानमायत्तो भैमसेनिरभाषत ॥　　६१॥

घटोत्कचः—

[2]किमहं कातरो द्रौणे पृथग्जन इवाहवे ।
भीमात् खल्वहमुत्पन्नः कुरूणां विपुले कुले ।　　६२॥

पाण्डवानामहं पुत्रस् समरेष्वनिवर्तिनाम् ।
राक्षसानामभिजातोऽहं दशग्रीवसमो बले ॥　　६३॥

तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन् द्रोणपुत्र गमिष्यसि ।
युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे ॥　　६४॥

सञ्जयः—

इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षो राक्षसस्सुमहाबलः ।
द्रौणिमभ्यद्रवत् क्रुद्धो गजेन्द्रमिव केसरी ॥　　६५॥

तमक्षमात्रैरिषुभिर् अभ्यवर्षद् घटोत्कचः ।

---

1 ख—त्वया　　2. ख—कोश एकस्मिन्नेवेदमर्धद्वयं वर्तते

रथिनामृषभं द्रौणिं धाराभिरिव तोयदः ॥ ६६॥

शरवृष्टिं शरैर्द्रौणिर् अप्राप्तां तां व्यनाशयत् ।
ततोऽन्तरिक्षे बाणानां सङ्ग्रामोऽन्य इवाभवत् ॥ ६७॥

अथास्त्रसङ्घर्षकृतैर् विस्फुलिङ्गैस्समाबभौ ।
विभावरीमुखे व्योम खद्योतैरिव चित्रितम् ॥ ६८॥

निशाम्य निहतां मायां द्रौणिना रणमानिना ।
घटोत्कचस्ततो मायां ससर्जान्तर्हितः पुनः ॥ ६९॥

सोऽभवद्गिरिरत्युच्चैश् शिखरैस्तरुसङ्कटैः ।
शूलप्रासासिमुसलजलप्रस्रवणो महान ॥ ७०॥

तमञ्जनचयप्रख्यं दृष्ट्वा द्रौणिर्महीधरम् ।
प्रपतद्भिश्च बहुभिश् शस्त्रसङ्घैर्न चुक्षुभे ॥ ७१॥

ततस्स्मयन्निव द्रौणिर् वज्रमस्त्रमुदैरयत् ।
स तेनास्त्रेण शैलेन्द्रः क्षिप्तः क्षिप्रमनश्यत ॥ ७२॥

ततस्स तोयदो भूत्वा नीलस्सेन्द्रायुधो दिवि ।
[1]शस्त्रवृष्टिभिरत्युग्रो द्रौणिमाच्छादयद्रणे ॥ ७३॥

अथ सन्धाय वायव्यम् अस्त्रमस्त्रविदां वरः ।
व्यधमद्द्रोणतनयो नीलमेघं तमुत्थितम् ॥ ७४॥

[2]स मार्गणशतैर्द्रौणिर् दिशः प्रच्छाद्य सर्वशः ।

---

1. ङ—नास्तीदमर्धम् 2. ङ—नास्तीदमर्धम्

शतं रथसहस्राणां जघान द्विषतां तथा ॥　　७५॥

स दृष्ट्वा पुनरायान्तं रथेनायतकार्मुकम् ।
घटोत्कचमसम्भ्रान्तं राक्षसैर्बहुभिर्वृतम् ॥　　७६॥

सिंहशार्दूलसदृशैर् मत्तद्विरदविक्रमैः ।
गजस्थैश्च रथस्थैश्च वाजिपृष्ठगतैरपि ॥　　७७॥

विवृतास्यशिरोग्रीवैर् हिडिम्बस्य सुतैस्सह ।
पौलस्त्यैर्यातुधानैश्च तामसैश्चेन्द्रविक्रमैः ॥　　७८॥

नानाशस्त्रधरैर्वीरैर् नानाकवचभूषितैः ।
महाबलैर्भीमरवैस् संरब्धोद्वृत्तलोचनैः ॥　　७९॥

उपस्थितं ततो युद्धे राक्षसैर्युद्धदुर्मदैः ।
विषण्णमभिसम्प्रेक्ष्य पुत्रं ते द्रौणिरब्रवीत् ॥　　८०॥

अश्वत्थामा—

तिष्ठ दुर्योधनाद्य त्वं न कार्यस्सम्भ्रमस्त्वया ।
सहैभिर्भ्रातृभिर्वीरैः पार्थिवैश्चेन्द्रविक्रमैः ॥　　८१॥

निहनिष्याम्यमित्रांस्ते न तवास्ति पराजयः ।
सत्यं मे प्रतिजानीहि पर्याश्वासय वाहिनीम् ॥　　८२॥

दुर्योधनः—

[1]न त्वेतदद्भुतं मन्ये यत्ते महदिदं मनः ।

---

1. ङ—इतोऽर्धपञ्चकं नास्ति

अस्मासु च परा भक्तिस् तव गौतमिनन्दन ॥ ८३॥

सञ्जयः—

अश्वत्थामानमुक्त्वैतं ततस्सौबलमब्रवीन् ॥ ८४

दुर्योधनः—

वृतश्शतसहस्रेण रथानां रथशोभिनाम् ।
षष्ट्या रथसहस्रैश्च प्रयाहि त्वं धनञ्जयम् ॥ ८५

कर्णश्च वृषसेनश्च कृपो नीलस्तथैव च ।
उदीच्याः कृतवर्मा च पुरुमित्र [1]श्श्रुतार्पणः ॥ ८६

दुश्शासनो [2]निकुम्भश्च कुण्डभेदी कुरूद्वह ।
पूरञ्जयो दृढरथः पदातिर्हेमपङ्कजः ॥ ८७

शल्यारुणीन्द्रसेनाश्च सञ्जयो विजयो जयः ।
कमलाक्षस्सवक्राथो जयवर्मसुतस्सुवाक् ॥ ८८

एते त्वामनुयास्यन्ति पत्तीनामयुतानि षट् ॥ ८८॥

जहि भीमं यमौ चोभौ धर्मराजं च मातुल ।
असुरानिव देवेन्द्रो जयाशा मे त्वयि स्थिता ॥ ८९॥

दारितान् द्रौणिना बाणैर् भृशं च क्षतविक्षतान् ।
जहि मातुल कौन्तेयान् असुरानिव पावकिः ॥ ९०॥

सञ्जयः—

एवमुक्तो ययौ शीघ्रं पुत्रेण तव सौबलः ।

---

1. क-घ—शतार्पण.

2. क-घ—विकुन्तश्च ख—निकुन्तश्च कुन्तभेदी पुरूमह.

पिपासुस्ते सुतान् राजन् दिधक्षुश्चैव पाण्डवान् ॥　　९१॥

अथ प्रववृते युद्धं द्रौणिराक्षसयोर्मृधे ।
विभावर्या सुतुमुलं शक्रप्रह्लादयोरिव ॥　　९२॥

ततो घटोत्कचो बाणैर् दशभिर्गौतमीसुतम् ।
जघानोरसि सङ्क्रुद्धो [1]विषाग्निप्रतिमैर्दृढैः ॥　　९३॥

[2]स तैरभ्याहतो गाढं दृढैर्भीमसुतेरितैः ।
चचाल रथपृष्ठस्थो वातोद्धूत इव द्रुमः ॥　　९४॥

भूयश्चाञ्जलिकेनास्य मार्गणेन महाप्रभम् ।
द्रौणिहस्तस्थितं चापं चिच्छेदाशु घटोत्कचः ॥　　९५॥

ततोऽन्यद्द्रौणिरादाय धनुर्भारसहं दृढम् ।
ववर्ष विशिखांस्तीक्ष्णान् वारिधारा इवाम्बुदः ॥　　९६॥

ततश्शारद्वतीपुत्रः प्रेषयामास संयुगे ।
सुवर्णपुङ्खाञ् छत्रुघ्नान् खचरान् खचरान् प्रति ॥　　९७॥

---

1. ङ—व्यर्था न प्रतिपद्यत
2. ङ—तत्त्वेतदद्भुतं मन्ये धत्ते महदिदं मनः ।
अस्मासु च यथा भक्तिस्तव गौतमिनन्दन ॥
अश्वत्थामानमुक्त्वैवं ततस्सौबलमब्रवीत् ।
वृतश्शतसहस्रेण रथानां रथिशोभिनाम् ॥
षष्ट्या रथसहस्रैश्च प्रयाहि त्वं धनञ्जयम् ।
एवमुक्तस्तु शकुनिस्सुतेन तव मारिष ॥
प्रत्युद्ययुर्गुडाकेशमश्वत्थामा च राक्षसम् ॥
[अधिकः पाठः पूर्वोक्तश्च]

तद्बाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम् ।
सिंहैरिव बभौ मत्तं गजानामाकुलं कुलम् ॥ ९८॥

विधम्य राक्षसान् वाणैस् साश्वसूतरथान् विभुः ।
ददाह भगवान् वह्निर् भूतानीव युगक्षये ॥ ९९॥

स दग्ध्वाऽक्षौहिणीं वाणैर् नैर्ऋतान् रुरुधे रिपून् ।
पुरेव त्रिपुरं दग्ध्वा दिवि देवो महेश्वरः ॥ १००॥

युगान्ते सर्वभूतानि दग्ध्वेव वसुरुल्वणः ।
रराज जयतां श्रेष्ठो द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ॥ १०१॥

तेषु राजसहस्रेषु पाण्डवेयेषु भारत ।
नैनं निरीक्षितुं कश्चिच् छक्नोति द्रौणिमाहवे ॥ १०२॥

ऋते घटोत्कचाद्वीराद् राक्षसेन्द्रान्महाबलात् ॥ १०३

स पुनर्भरतश्रेष्ठ क्रोधाद्रक्तान्तलोचनः ।
तलं तलेनाभिहत्य सन्दश्य दशनच्छदम् ॥ १०४
स्वं सूतमब्रवीत् क्रुद्धो द्रोणपुत्राय मां वह ॥ १०४॥

स ययौ घोररूपेण तेन जैत्रपताकिना ।
द्वैरथं द्रोणपुत्रेण पुनरप्यरिसूदनः ॥ १०५॥

स चिक्षेप ततः क्रुद्धो द्रोणपुत्राय राक्षसः ।
अष्टघण्टां महाघोराम् अशनिं रुद्रनिर्मिताम् ॥ १०६॥

तामवप्लुत्य जग्राह द्रौणिर्न्यस्य रथे धनुः ॥ १०७

चिक्षेप चैनां तस्यैव स्यन्दनात् सोऽवपुप्लुवे ॥ १०७॥

साश्वसूतध्वजं वाहं भस्म कृत्वा महाप्रभम् ।
विवेश वसुधां भित्त्वा साऽशनिर्भृशदारुणा ॥ १०८॥

द्रौणेस्तत् कर्म दृष्ट्वा तु सर्वभूतान्यपूजयन् ।
यदवप्लुत्य जग्राह घोरां शङ्करनिर्मिताम् ॥ १०९॥

धृष्टद्युम्नरथं गत्वा भैमसेनिस्ततो नृप ।
मुमोच निशितान् बाणान् पुनर्द्रौणेर्महोरसि ॥ ११०॥

धृष्टद्युम्नोऽप्यसम्भ्रान्तो मुमोचाशीविषोपमान् ।
सुवर्णपुङ्खांस्तीक्ष्णाग्रान् द्रोणपुत्रस्य वक्षसि ॥ १११॥

ततो मुमोच नाराचान् द्रौणिस्ताभ्या सहस्रशः ॥
तावप्यग्निशिखाप्रख्यैर् जघ्नतुस्तस्य मार्गणान् ॥ ११२॥

अतितीव्रं महद्युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः ।
योधानां प्रीतिजननं द्रौणेश्च भरतर्षभ ॥ ११३॥

ततो रथसहस्रेण द्विरदानां शतैस्त्रिभिः ।
षड्भिर्वाजिसहस्रैश्च भीमस्तं देशमाव्रजत् ॥ ११४॥

ततो भीमात्मजं रक्षो धृष्टद्युम्नं च सानुगम् ।
अयोधयत धर्मात्मा द्रौणिरक्लिष्टविक्रमः ॥ ११५॥

तत्राद्भुतं परं द्रौणिर् दर्शयामास विक्रमम् ।
अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु भारत ॥ ११६॥

निमेषान्तरमात्रेण साश्वद्विपरथध्वजाम् ।
अक्षौहिणीं राक्षसानां शितैर्बाणैरशातयत् ॥ ११७॥

मिषतो भीमसेनस्य हैडिम्बेः पार्षतस्य च ।
यमयोर्धर्मपुत्रस्य विजयस्याच्युतस्य च ॥ ११८॥

[1]प्रकाशमञ्जोगतिभिर् नाराचैरभिपीडिताः ।
निपेतुर्द्विरदा भूमौ द्विश्रृङ्गा इव पर्वताः ॥ ११९॥

निकृत्तैर्हस्तिहस्तैश्च विवल्गद्भिरितस्ततः ।
रराज वसुधा कीर्णा विसर्पद्भिरिवोरगैः ॥ १२०॥

क्षिप्तैः काञ्चनदण्डैश्च नृपच्छत्रैः क्षितिर्बभौ ।
द्यौरिवोदितचन्द्रार्का ग्रहनक्षत्रसङ्कुला ॥ १२१॥

प्रविद्धध्वजमण्डूकां भेरीविस्तीर्णकच्छपाम् ।
छत्रहंसावलीजुष्टां फेनचामरमालिनीम् ॥ १२२॥

कङ्कगृध्रमहाग्राहां नैकायुधझषाकुलाम् ।
रथक्षिप्रमहावप्रां पताकारचितद्रुमाम् ॥ १२३॥

शरमीनां महारौद्रां प्रासशक्त्यष्टिडुण्डुभाम् ॥
मज्जामांसमहापङ्कां कबन्धावर्जितोडुपाम् ॥ १२४॥

केशशैवलकल्माषां भीरूणां कश्मलावहाम् ।
नागेन्द्रहययोधानां शरीरक्षयसम्भवाम् ॥ १२५॥

---

1 ङ—अश्वत्थाम्ना विसृष्टैस्तु

शोणितोदां महावेगां द्रौणिः प्रावर्तयन्नदीम् ॥　　१२६

योधार्तरवनिर्घोषां क्षतजोर्मिसमाकुलाम् ।
प्रयान्तीं सुमहाघोरां यमक्षयमहोदधिम् ॥　　१२७

निहत्य राक्षसान् घोरान् द्रौणिर्हैडिम्बिमर्दयन् ।
पुनरप्यतिसंरब्धस् सवृकोदरपार्षतान् ॥　　१२८

स नाराचगणैः पार्थान् विद्ध्वा द्रौणिर्महारथः ।
जघान सुरथं नाम द्रुपदस्य सुतं विभुः ॥　　१२९

पुन[1]श्शत्रुञ्जयं नाम सुरथस्यानुजं रणे ।
हयानीकं जयानीकं जयाश्वं चाभिजघ्निवान् ॥　　१३०

पुनश्शरेण तीव्रेण द्रौणिस्सिंह इवोन्नदन् ।
जघान चैव सुपृथुं चन्द्रदेवं च मानिनम् ॥　　१३१

कुन्तिभोजसुतांश्चाजौ दशभिर्दश जघ्निवान् ॥　　१३१॥

श्रुताह्वयं च राजेन्द्र द्रौणिर्निन्ये यमक्षयम् ।
त्रिभिश्चान्यैश्शरैस्तीक्ष्णैस् सुपुङ्खैर्हेममालिनम् ॥　　१३२॥

शत्रुञ्जयं च बलिनं शक्रलोकं निनाय सः ।
अश्वत्थामा सुसङ्क्रुद्धस् सन्धायोग्रमजिह्मगम् ॥　　१३३॥

मुमोचाकर्णपूर्णेन धनुषा शरमुत्तमम् ।
यमदण्डोपमं घोरम् उद्दिश्याशु घटोत्कचम् ॥　　१३४॥

---

1. ख-घ—श्श्रुतं जयं

स भित्त्वा हृदयं तस्य राक्षसस्य महाशरः ।
विवेश वसुधां शीघ्रं सुपुङ्खः पृथिवीपते ॥ १३५॥

तं हतं पतितं ज्ञात्वा धृष्टद्युम्नो महारथः ।
द्रौणेस्सकाशाद्राजेन्द्र अपनिन्ये रथान्तरम् ॥ १३६॥

तथा पराङ्मुखरथं सैन्यं यौधिष्ठिरं नृप ।
पराजित्य रिपून्न वीरान् द्रोणपुत्रो ननाद ह ॥ १३७॥

पूजितस्सर्वभूतैश्च तव योधैश्च भारत ॥ १३८

अथ शरशतभिन्नकृत्तदेहैर्
हतपतितैः क्षणदाचरैस्समन्तात् ।
निधनमुपगतैर्मही वृता सा
गिरिशिखरैरिव दुर्गमा बभूव ॥ १३९

तं सिद्धगन्धर्वपिशाचसङ्घा
नागास्सुपर्णाः पितरो वयांसि ।
रक्षोगणा भूतगणाश्च द्रौणिम्
अपूजयन्नप्सरसस्तथैव ॥ १४०

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥
॥ ७० ॥ घटोत्कचवधपर्वणि तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥
[ अस्मिन्नध्याये १४० श्लोकाः ]

## ॥ द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

भीमेन बाह्लीकवधः ॥ १ ॥ तथा दुर्योधनानुजदशकस्य शकुनिभ्रातृपञ्चकस्य च वधः ॥ २ ॥ कर्णेन पाण्डवहननं प्रतिजानानमात्मानमधिक्षिपत कृपस्य जिह्वाच्छेदप्रतिज्ञानम् ॥ ३ ॥

सञ्जयः—

द्रुपदस्यात्मजान् दृष्ट्वा कुन्तिभोजसुतांस्तथा ।
द्रोणपुत्रेण निहतान् राक्षसांश्च सहस्रशः ॥ १

युधिष्ठिरो भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
युयुधानश्च संयुक्ता युद्धायैव मनो दधुः ॥ २

सोमदत्तः पुनः क्रुद्धो दृष्ट्वा सात्यकिमाहवे ।
महता बाणवर्षेण च्छादयामास सर्वतः ॥ ३

ततस्समभवद्युद्धम् अतीव भयवर्धनम् ।
त्वदीयानां परेषां च घोरं विजयकाङ्क्षिणाम् ॥ ४

दशभिस्सात्वतस्यार्थे भीमो विव्याध कौरवम् ।
सोमदत्तोऽव्यथो भीमं शतेन प्रत्यविध्यत ॥ ५

सात्वतश्चातिसङ्क्रुद्धः पुत्राधिभिरभिप्लुतम् ।
वृद्धमिद्धं गुणैस्सर्वैर् ययातिमिव नाहुषम् ॥ ६
विव्याध दशभिस्तीक्ष्णैश् शरैर्वज्रनिपातिभिः ॥ ६॥

शक्त्या चैनमथाहत्य पुनर्विव्याध पञ्चभिः ॥ ७
ततस्तु सात्वतस्यार्थे भीमसेनो नवं दृढम् ।
मुमोच परिघं घोरं सोमदत्तस्य मूर्धनि ॥ ८
सात्यकिश्चाग्निसङ्काशं मुमोच शरमुत्तमम् ।
सोमदत्तोरसि क्रुद्धस् सुपत्रं निशितं युधि ॥ ९
युगपत् पेततुरुभौ घोरौ परिघमार्गणौ ।
शरीरे सोमदत्तस्य स पपात महारथः ॥ १०
व्यामोहिते तु तनये बाह्लीकस्समुपाद्रवन् ।
विसृजञ् छरवर्षाणि कालवर्षीव तोयदः ॥ ११
भीमोऽथ सात्वतस्यार्थे बाह्लीकं नवभिश्शरैः ।
प्रातिपेयं महात्मानं विव्याध रणमूर्धनि ॥ १२
प्रातिपेयस्तु सङ्क्रुद्धश् शक्तिं भीमस्य वक्षसि ।
[1]निजघान महाबाहुः पुरंदर इवाशनिम् ॥ १३
स तयाऽभिहतो वीरश् चकम्पे च मुमोह च ।
प्राप्य चेतश्च बलवान् गदामस्मै ससर्ज ह ॥ १४
सा पाण्डवेन प्रहिता बाह्लीकस्य शिरोऽहरत् ।
स पपात नृपः पृथ्व्यां वज्राहत इवाद्रिराट् ॥ १५
तस्मिन् विनिहते वीरे बाह्लीके पुरुषर्षभे ।

1. ख-ब—निचखान

पुत्रास्तेऽभ्यर्दयन् भीमं दश दाशरथेस्समम् ॥ १६

नाराचैर्दशभिर्भीमस् तान् निहत्य तवात्मजान् ।
कर्णस्य दयितं पुत्रं वृषसेनमवाकिरन् ॥ १७

ततो वृपरथो नाम भ्राता कर्णस्य विश्रुतः ।
जघान भीमं नाराचैस् स तमप्यवधीद्बली ॥ १८

ततस्सप्त रथान् वीरान् स्यालानां तव भारत ।
निहत्य भीमो नाराचैश् शतचन्द्रमपोथयत् ॥ १९

[1]अमर्षयन्तो निहतं शतचन्द्रं महारथम् ।
शकुनेर्भ्रातरो वीरा गजाक्षश्शरभो विभुः ॥ २०

अभिद्रुत्य शरैस्तीक्ष्णैर् भीमसेनमताडयन् ॥ २०॥

स तुद्यमानो नाराचैर् वृष्टिवेगैरिवर्षभः ।
जघान पञ्चभिर्बाणैः पञ्चैवातिबलान् रथान् ॥ २१॥

तान् दृष्ट्वा निहतान् वीरान् विचेलुर्नृपसत्तमाः ॥ २२

ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धस् तवानीकमशातयन् ।
मिषतः कुम्भयोनेश्च पुत्राणां तव चानघ ॥ २३

अम्बष्ठान् मालवाञ् छूरांस् त्रिगर्तान् सशिबीनपि ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय गणान् युद्धे युधिष्ठिरः ॥ २४

अभीषाहाञ् छूरसेनान् वसातींश्च सबाह्लिकान् ।

---

1 ङ—अर्धपञ्चकं नास्ति

निहत्य पृथिवीं राजा चक्रे शोणितकर्दमाम् ॥ २५

यौधेयारट्टराजन्यान् मद्रकांश्च गणान् युधि ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय शूरान् बाणैर्युधिष्ठिरः ॥ २६

घ्नताहरत गृह्णीत विध्यध्वमवकृन्तत ।
इत्यभूत् तुमुलश्शब्दो युधिष्ठिररथं प्रति ॥ २७

सैन्यानि द्रावयन्तं तं द्रोणो दृष्ट्वा युधिष्ठिरम् ।
चोदितस्तव पुत्रेण सायकैरभ्यवाकिरत् ॥ २८

द्रोणस्तु परमक्रुद्धो वायव्यास्त्रेण पार्थिवम् ।
विव्याध सोऽस्य तद्दिव्यम् अस्त्रमस्त्रेण जघ्निवान् ॥ २९

तस्मिन् विनिहते चास्त्रे भारद्वाजो युधिष्ठिरे ।
वारुणं याम्यमाग्नेयं त्वाष्ट्रं सावित्रमेव च ॥ ३०

दिव्यास्त्राणि च चिक्षेप जिघांसुः पाण्डुनन्दनम् ॥ ३०॥

क्षिप्तान्याक्षिप्यमाणानि तानि चास्त्राणि धर्मजः ।
जघानास्त्रैर्महाबाहुः कुम्भयोनेरवित्रसन् ॥ ३१॥

सत्यां चिकीर्षमाणस्तु प्रतिज्ञां कुम्भसम्भवः ।
[1]प्रादुश्चक्रेऽस्त्रमैन्द्रं वै प्राजापत्यं च भारत ॥ ३२॥

जिघांसुर्धर्मतनयं तव पुत्रहिते रतः ॥ ३३

---

1. अ—अर्धचतुष्टयं नास्ति

पतिः कुरूणां गजसिंहगामी
　　विशालवक्षाः पृथुलोहिताक्षः ।
प्रादुश्चकारास्त्रमदीनतेजा
　　माहेन्द्रमस्त्रं स जघान तेन ॥ ३४

विहन्यमानेष्वस्त्रेषु द्रोणः क्रोधसमन्वितः ।
युधिष्ठिरवधं प्रेप्सुर् ब्राह्ममस्त्रमुदैरयत् ॥ ३५

भीतो नाज्ञासिषं किञ्चिद् घोरेण तमसाऽऽवृते ।
सर्वभूतानि च परं त्रासं जग्मुर्विशां पते ॥ ३६

ब्रह्मास्त्रमुद्यतं दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥ ३७

ततस्सैनिकमुख्यास्ते प्रशशंसुर्नरर्षभौ ।
गुरुशिष्यौ महेष्वासौ सर्वयुद्धविशारदौ ॥ ३८

ततः प्रमुच्य कौन्तेयं द्रोणो द्रुपदवाहिनीम् ।
वायव्यास्त्रेण व्यधमद् द्रोणः पर्याकुलेक्षणः ॥ ३९

ते हन्यमाना द्रोणेन पाञ्चालाः प्राद्रवन् भयात् ।
पश्यतो भीमसेनस्य पार्थस्य च महात्मनः ॥ ४०

ततः किरीटी भीमश्च सहसा सन्न्यवर्तताम् ।
महद्भ्यां शरवर्षाभ्यां परिगृह्य बलं तव ॥ ४१

वीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वम् उत्तरं तु वृकोदरः ।
भारद्वाजं शरौघाभ्यां महद्भ्यामभिवर्षताम् ॥ ४२

ते तदा सृञ्जयाश्चैव पाञ्चालाश्च महौजसः ।
अन्वागमन् महाराज मात्स्याश्च सह सात्वताः ॥ ४३

ततस्तां भारतीं सेनां वध्यमानां किरीटिना ।
द्रोणेन वार्यमाणास्ते स्वयं तव सुतेन च ॥ ४४

नाशक्नुवन् महाराज योधा वारयितुं तव ॥ ४४॥

उदीर्यमाणं तद्दृष्ट्वा पाण्डवानां महद्बलम् ।
अविषह्यं च मन्वानः कर्णं दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ४५॥

दुर्योधन—

अयं स कालस्सम्प्राप्तो मित्राणां मित्रवत्सल ।
त्रायस्व समरे कर्ण सर्वान् योधान् महाबलान् ॥ ४६॥

पाञ्चालैर्मत्स्यकैकेयैः पाण्डवैश्च महारथैः ।
वृतान् समन्तात् सङ्क्रुद्धैर् निश्श्वसद्भिरिवोरगैः ॥ ४७॥

एते नदन्ति संरब्धाः पाण्डवा जितकाशिनः ।
शक्रोपमाश्च बहवः पाञ्चालानां रथव्रजाः ॥ ४८॥

कर्णः—

परित्रातुमिह प्राप्तो यदि पार्थं पुरन्दरः ।
तमप्याशु पराजित्य ततो हन्तास्मि पाण्डवम् ॥ ४९॥

सत्यं ते प्रतिजानामि समाश्वसिहि भारत ।
हन्तास्मि पाण्डुतनयान् पाञ्चालांश्च समागतान् ॥ ५०॥

जयं ते प्रतिजानामि वासवस्येव पावकिः ।
प्रियं तव मया कार्यम् इति जीवामि पार्थिव ॥ ५१॥

सर्वेषामेव पार्थानां फल्गुनो बलवत्तरः ।
तस्याममोघां विमोक्ष्यामि शक्तिं शक्रविनिर्मिताम् ॥ ५२॥

तस्मिन् हते महेष्वासे भ्रातरस्तस्य मानद ।
तव वश्या भविष्यन्ति यास्यन्ते वा वनं पुनः ॥ ५३॥

मयि जीवति कौरव्य विषादं मा कृथाः क्वचित् ।
अहं जेष्यामि समरे सहितान् सर्वपाण्डवान् ॥ ५४॥

पाञ्चालान् केकयांश्चैव वृष्णींश्चैव समागतान् ।
बाणौघैश्शकलीकृत्य तव दास्यामि मेदिनीम् ॥ ५५॥

सञ्जयः—

एवं कर्णे ब्रुवत्येव कृपश्शारद्वतोऽब्रवीत् ।
स्मयन्निव महाबाहुस् सूतपुत्रमिदं वचः ॥ ५६॥

कृपः—

शोभनं शोभनं कर्ण सनाथः कुरुपुङ्गवः ।
त्वया नाथेन राधेय वचसा यदि सिध्यति ॥ ५७॥

बहुशः कत्थसे कर्ण कौरवस्य समीपतः ।

न तु ते विक्रमः कश्चिद् दृश्यते फलमेव वा ॥ ५८॥

समागमः पाण्डुपुत्रैर् दृष्टस्ते बहुशो युधि ।
सर्वत्र निर्जितश्चासि पाण्डवैस्सूतनन्दन ॥ ५९॥

ह्रियमाणे पुरा कर्ण गन्धर्वैर्धृतराष्ट्रजे ।
तदाऽयुध्यन्त सैन्यानि त्वमेकश्च पलायथाः ॥ ६०॥

विराटनगरे चापि समेतास्सर्वकौरवाः ।
पार्थेन निर्जिता युद्धे त्वं च कर्ण सहानुजः ॥ ६१॥

एकस्याप्यसमर्थस्त्वं फल्गुनस्य रणाजिरे ।
कथमुत्सहसे जेतुं सकृष्णान् सर्वपाण्डवान् ॥ ६२॥

अब्रुवन् कर्ण युध्यस्व बहु कत्थसि सूतज ।
अनुक्त्वा विक्रमेद्यत्तु तद्वै सत्पुरुषव्रतम् ॥ ६३॥

गर्जित्वा सूतपुत्र त्वं शारदाभ्र इवाजलः ।
निष्फलो दृश्यसे कर्ण तच्च राजा न बुध्यते ॥ ६४॥

तावद्गर्जस्व राधेय यावत् पार्थं न पश्यसि ।
पुरा दृष्ट्वैव पार्थं हि गर्जितं दुर्लभं भवेत् ॥ ६५॥

त्वमनासादयन् बाणान् फल्गुनस्य विगर्जसि ।
पार्थसायकविद्धस्य गर्जितं दुर्लभं तव ॥ ६६॥

बाहुभिः क्षत्रियाश्शूरा वाग्भिश्शूरा द्विजातयः ।
धनुषा फल्गुनश्शूरः कर्णश्शूरो मनोरथैः ॥ ६७॥

सञ्जयः—

एवं परुषितस्तेन तदा शारद्वतेन सः ।
कर्णः प्रहरतां श्रेष्ठः कृपं वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ६८॥

कर्णः—

शूरा गर्जन्ति सततं प्रावृषीव बलाहकाः ।
फलं चाशु प्रयच्छन्ति बीजमुप्तमृतौ यथा ॥ ६९॥

दोषमत्र न पश्यामि शूराणां रणमूर्धनि ।
तत्तद्विकत्थमानानां भारमुद्वहतां हृदा ॥ ७०॥

यं भारं पुरुषो वोढुं मनसाऽभिव्यवस्यति ।
दैवमस्य ध्रुवं तत्र साहाय्यायोपपद्यते ॥ ७१॥

व्यवसायद्वितीयश्च मनसा भारमुद्वहन् ।
गर्जामि यद्यहं विप्र न किञ्चित् तत्र पश्यसि ॥ ७२॥

वृथा शूरा न गर्जन्ति सजला इव तोयदाः ।
सामर्थ्यमात्मनो ज्ञात्वा ततो गर्जन्ति पण्डिताः ॥ ७३॥

सोऽहमद्य रणे यत्तैस् सहितौ कृष्णपाण्डवौ ।
उत्सहामि रणे जेतुं ततो गर्जामि गौतम ॥ ७४॥

पश्य त्वं गर्जितस्याद्य फलं मे विप्र सानुगः ॥ ७५

हत्वा पाण्डुसुतानाजौ सहकृष्णान् सहानुगान् ।
दुर्योधनाय दास्यामि पृथिवीं हतकण्टकाम् ॥ ७६

कृपः—

मनोरथप्रलापा मे न ग्राह्यास्तव सूतज ॥ ७६॥

यदा क्षिपसि वै कृष्णं धर्मराजं च पाण्डवम् ।
ध्रुवस्तत्र जयः कर्ण यत्र युद्धविशारदौ ॥ ७७॥

देवगन्धर्वयक्षाणां मनुष्योरगरक्षसाम् ।
दंशितानामपि रणे अजय्यौ कृष्णपाण्डवौ ॥ ७८॥

ब्रह्मण्यस्सत्यवाग्दान्तो गुरुदैवतपूजकः ।
नित्यं धर्मरतश्चैव कृतास्त्रश्च विशेषतः ॥ ७९॥
धृतिमांश्च कृतज्ञश्च धर्मपुत्रो युधिष्टिरः ॥ ८०

भ्रातरश्चास्य बलिनस् सर्वास्त्रेषु कृतश्रमाः ।
गुरुवृत्तिरताः प्राज्ञा धर्मनित्या यशस्विनः ॥ ८१

सम्बन्धिनश्चेन्द्रवीर्यास् स्वनुरक्ताः प्रहारिणः ।
धृष्टद्युम्नश्शिखण्डी च दौर्मुखिर्जनमेजयः ॥ ८२

चन्द्रसेनो भद्रसेनः कीर्तिवर्मा वृकोदरः ।
वसुचन्द्रो दानचन्द्रस् सिंहचन्द्रसुवेधसौ ॥ ८३

द्रुपदस्य तथा पुत्रा द्रुपदश्च महास्त्रवित् ।
येषामर्थाय संसक्तो मत्स्यराजः प्रतापवान् ॥ ८४

गजानीकस्सुदर्शनश् शतानीकश्शतध्वजः ।
बलानीको जयानीको जयाश्वो रथवाहनः ॥ ८५

चन्द्रोदयः कामरथो विराटभ्रातरश्शुभाः ।
यमौ च द्रौपदेयाश्च राक्षसश्च घटोत्कचः ॥　　८६

येषामर्थाय युध्यन्ते न तेषां विद्यते क्षयः ॥　　८६॥

कामं खलु जगत् सर्वं सदेवासुरमानवम् ।
सयक्षराक्षसगणं सभूतभुजगद्विजम् ॥　　८७॥

निश्शेषमस्त्रवीर्येण कुर्यातां भीमफल्गुनौ ॥　　८८

युधिष्ठिरश्च पृथिवीं निर्दहेद्घोरचक्षुषा ॥　　८८॥

अप्रमेयबलश्शौरिर् येषामर्थे च दंशितः ।
कथं तान् संयुगे कर्ण जेतुमुत्सहसे परान् ॥　　८९॥

महानपनयस्त्वेष नित्यं हि तव सूतज ।
यस्त्वमुत्सहसे योद्धुं समरे शौरिणा सह ॥　　९०॥

सञ्जयः—

एवमुक्तस्तु राधेयः प्रहसन् भरतर्षभ ।
अब्रवीच्च तदा कर्णो गुरुं शारद्वतं कृपम् ॥　　९१॥

कर्ण.—

सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मन् पाण्डवान् प्रति यद्वचः ।
एते चान्ये च बहवो गुणाः पाण्डुसुतेषु वै ॥　　९२॥

अजेयाश्च रणे पार्था देवैरपि सवासवैः ।
सदैत्ययक्षगन्धर्वैः पिशाचोरगराक्षसैः ॥　　९३॥

तथाऽपि पार्थाञ् जेष्यामि शक्त्या वासवदत्तया ।
ममाप्यमोघा दत्तेयं शक्तिश्शक्रेण वै द्विज ॥ ९४॥
एतया निहनिष्यामि सव्यसाचिनमाहवे ॥ ९५

हते तु पाण्डवे जिष्णौ भ्रातरश्चास्य सोदराः ।
अनर्जुना न शक्ष्यन्ति महीं भोक्तुं कथञ्चन ॥ ९६

तेषु नष्टेषु सर्वेषु पृथिवीयं ससागरा ।
अयत्नात् कौरवेयस्य वशे स्थास्यति गौतम ॥ ९७

सुनीतैरिह सर्वार्थास् सिध्यन्ते नात्र संशयः ।
एतमर्थमहं ज्ञात्वा ततो गर्जामि गौतम ॥ ९८

त्वं तु वृद्धश्च विप्रश्च अशक्तश्चापि संयुगे ।
कृतस्नेहश्च पार्थेषु मोहान्मामवमन्यसे ॥ ९९

यद्येवं वक्ष्यसे भूयो मां विप्रियमिह द्विज ।
ततस्ते खङ्गमुद्धृत्य जिह्वां छेत्स्यामि दुर्मते ॥ १००

यच्चापि पाण्डवान् विप्र स्तोतुमिच्छसि संयुगे ।
भीषयन् सर्वसैन्यानि कौरवेयांश्च दुर्मते ॥ १०१

अत्रापि ब्रुवतो वाक्यं यथावच्छृणु गौतम ॥ १०१॥
दुर्योधनश्च द्रोणश्च शकुनिर्दुर्मुखो जयः ।
दुश्शासनो वृषसेनो मद्रराजोऽहमेव च ॥ १०२॥

सोमदत्तश्च भूरिश्च तथा द्रौणिर्विविंशतिः ।

तिष्ठेयुर्दंशिता यत्र सर्वे युद्धविशारदाः ॥ १०३॥
जयेदेतान् नरः को हि शक्रतुल्यबलोऽप्यरिः ॥ १०४

शूराश्च हि कृतास्त्राश्च बलिनस्स्वर्गलिप्सवः ।
धर्मज्ञा युद्धकुशला हन्युर्युद्धे सुरानपि ॥ १०५

एते स्थास्यन्ति सङ्ग्रामे पाण्डवानां वधार्थिनः ।
जयमाकाङ्क्षमाणा हि कौरवेयस्य दंशिताः ॥ १०६

दैवायत्तमहं मन्ये जयं सुबलिनामपि ।
यत्र भीष्मो महाबाहुश् शेते शरशताचितः ॥ १०७

विकर्णश्चित्रसेनश्च बाह्लीकोऽथ जयद्रथः ।
भूरिश्रवा जयश्चैव जलसन्धस्सुदक्षिणः ॥ १०८

शलश्च रथिनां श्रेष्ठो भगदत्तश्च वीर्यवान् ।
एते चान्ये च राजानो देवैरपि सुदुर्जयाः ॥ १०९

निहतास्समरे शूराः पाण्डवैर्बलवत्तराः ।
किमन्यद् दैवसंयोगान्मन्यसे पुरुषाधम ॥ ११०

यांश्च तांस्तौपि सततं दुर्योधनरिपून् द्विज ।
तेषामपि हताश्शूराश् शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १११

क्षीयन्ते सर्वसैन्यानि कुरूणां पाण्डवैस्सह ।
प्रभावं नानुपश्यामि पाण्डवानां कथञ्चन ॥ ११२

यांस्तान् बलवतो नित्यं मन्यसे त्वं द्विजाधम ।

यतिष्येऽहं यथाशक्ति योद्धुं तैस्सह संयुगे ॥ ११२

दुर्योधनहितार्थाय जयो दैवे प्रतिष्ठितः ॥ ११३॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥
॥ ७० ॥ घटोत्कचवधपर्वणि चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ११३॥ श्लोकाः ]

---

## ॥ त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

कृपगर्हणातितिक्षया कर्णवधायाभ्युत्तिष्ठमानस्याश्वत्थाम्नः कृपदुर्योधनाभ्यां निवारणम् ॥ १ ॥ अर्जुनेन कर्णपराजयो दुर्योधनेन रणाय द्रौणिचोदना च ॥ २ ॥

---

सञ्जयः—

तथा परुषितं दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मातुलम् ।
खड्गमुद्धृत्य वेगेन द्रौणिरभ्यपतद्द्रुतम् ॥ १

अश्वत्थामा—

कर्ण पश्य सुदुर्बुद्धे तिष्ठेदानीं नराधम ।
एष तेऽद्य शिरः कायाद् उद्धरिष्यामि संयुगे ॥ २

सञ्जयः—

तमुत्पतन्तं वेगेन राजा दुर्योधनस्स्वयम् ।
न्यवारयन्महाराज कृपश्च रथिनां वरः ॥ ३

कर्णः—

शूरोऽयं समरश्लाघी दुर्मतिश्च नराधमः ।
आसादयतु मद्वीर्यं मुञ्चैनं कुरुसत्तम ॥ ४

कृपः—

तवैतत् क्षम्यतेऽस्माभिस् सूतात्मज सुदुर्मते ।
दर्पमुत्सिक्तमेतत् ते नाशयिष्यति फल्गुनः ॥ ५

दुर्योधनः—

अश्वत्थामन् प्रसीदस्व क्षन्तुमर्हसि मानद ।
कोपः खलु न कर्तव्यस् सूतपुत्रे कथञ्चन ॥ ६

त्वयि कर्णे कृपे द्रोणे मद्रराजे च सौबले ।
महत् कार्यं समायत्तं प्रसीद द्विजसत्तम ॥ ७

एते ह्यभिमुखास्सर्वे राधेयेन युयुत्सया ।
आयान्ति पाण्डवा ब्रह्मन्नाह्वयन्तस्समन्ततः ॥ ८

सञ्जयः—

दुर्योधनवचश्श्रुत्वा अश्वत्थामा महाबलः ।
प्रसादमगमद्राजन् सूतपुत्रस्य मानद ॥ ९

कर्णोऽपि रथिनां श्रेष्ठश् चापमुद्यम्य वीर्यवान् ।
कौरवाग्र्यैः परिवृतश् शक्रो देवगणैरिव ॥ १०

पर्यतिष्ठत तेजस्वी स्वबाहुबलमाश्रितः ॥ १०॥

ततः प्रववृते युद्धं कर्णस्य सह पाण्डवैः ।
संरब्धस्य महाराज सिंहरावविरावितम् ॥ ११॥

ततस्ते पाण्डवा राजन् पाञ्चालाश्च यशस्विनः ।
दृष्ट्वा कर्णं महाबाहुम् उच्चैश्शब्दमथानदन् ॥ १२॥

सैनिकाः—

अयं कर्णः कुतः कर्णस् तिष्ठ कर्ण महाहवे ।
युध्यस्व सहितोऽस्माभिर् दुरात्मन् पुरुषाधम ॥ १३॥

सञ्जयः—

अन्ये तु दृष्ट्वा राधेयं क्रोधदीप्तेक्षणा ब्रुवन् ।
हन्यतामयमुद्रिक्तस् सूतपुत्रोऽल्पचेतनः ॥ १४॥
सर्वैः पार्थिवशार्दूलैर् नानेनार्थोऽस्ति जीवता ॥ १५

अत्यन्तवैरी पार्थानां सततं पापपूरुषः ।
एष मूलं ह्यनर्थानां दुर्योधनमते स्थितः ॥ १६

घ्नतैनमिति जल्पन्तः क्षत्रियास्समुपाद्रवन् ।
महता शरवर्षेण च्छादयन्तो महारथाः ॥ १७
वधार्थं सूतपुत्रस्य पाण्डवेयेन चोदिताः ॥ १७॥

तांस्तु सर्वांस्ततो दृष्ट्वा धावमानान् महारथान् ।
न विव्यथे सूतपुत्रो न च त्रासमगच्छत ॥ १८॥

दृष्ट्वा सागरकल्पं तम् उद्धूतं सैन्यसागरम् ।

पिप्रीपुस्तव पुत्राणां समरेष्वपराजितः ॥ १९॥

सायकौघेन महता क्षिप्रकारी महारथः ।
वारयामास तत् सैन्यम् उदीर्णं भरतर्षभ ॥ २०॥

ततस्तु शरवर्षेण पार्थिवास्तमवारयन् ।
धनूंषि ते विधून्वानाश् शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २१॥
अयोधयन्त राधेयं शक्रं दैत्यगणा इव ॥ २२

शरवर्षं तु तत् कर्णः पार्थिवैस्समुदीरितम् ।
शरवर्षेण महता समन्ताद्व्यकिरत् प्रभो ॥ २३

तद्युद्धमभवत् तेषां कृतप्रतिकृतैषिणाम् ।
यथा देवासुरे युद्धे शक्रस्य सह दानवैः ॥ २४

तत्राद्भुतमपश्याम सूतपुत्रस्य लाघवम् ।
येनेमं सर्वतो यत्ता नाप्नुवन्ति नराधिपाः ॥ २५

निवार्य च शरौघांस्तान् पार्थिवानां महारथः ।
युगेष्वीषासु छत्रेषु हयेषु च गजेषु च ॥ २६
आत्मनामाङ्कितान् घोरान् राधेयः प्राहिणोच्छरान् ॥ २६॥

ततस्ते व्याकुलीभूता राजानः कर्णपीडिताः ।
बभ्रमुस्तत्र तत्रैव गावश्शीतार्दिता इव ॥ २७॥

हयानां वध्यमानानां गजानां रथिनां तथा ।
तत्र तत्राभ्यवेक्षाम सङ्घान् कर्णेन पातितान् ॥ २८॥

शिरोभिः पतितै राजन् बाहुभिश्च समन्ततः ।
आस्तीर्णा वसुधा कृत्स्ना शूराणामनिवर्तिनाम् ॥ २९॥

हतैश्च हन्यमानैश्च निष्टनद्भिश्च सर्वतः ।
बभूवायोधनं घोरं वैवस्वतपुरोपमम् ॥ ३०॥

ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ।
अश्वत्थामानमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ३१॥

दुर्योधनः—

युध्यतेऽसौ रणे कर्णो [1]दंशितस्सर्वपार्थिवैः ॥ ३२

पश्यैतां द्रवतीं सेनां कर्णसायकपीडिताम् ।
कार्तिकेयेन विध्वस्ताम् आसुरीं पृतनामिव ॥ ३३

दृष्ट्वैनां निर्जितां सेनां रणे कर्णेन धीमता ।
अभियात्येष बीभत्सुस् सूतपुत्रजिघांसया ॥ ३४

तद्यथा पश्यमानानां सूतपुत्रं महारथम् ।
न हन्यात् पाण्डवस्सङ्ख्ये तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ३५

सञ्जयः—

ततो द्रौणिः कृपश्शल्यो हार्दिक्यश्च महारथः ।
प्रत्युद्ययुस्तदा पार्थं सूतपुत्रपरीप्सया ॥ ३६

आयान्तं दृश्य कौन्तेयं वृत्रं देवचमूरिव ।
प्रत्युद्ययौ तदा कर्णो यथा शक्रः प्रतापवान् ॥ ३७

1. ख—इतो विंशतिः पादा न सन्ति

धृतराष्ट्रः—

संरब्धं फल्गुनं दृष्ट्वा कालान्तकयमोपमम् ।
कर्णो वैकर्तनस्सूत प्रत्यपद्यन् किमुत्तरम् ॥　　३८

[1]स्पर्धते स हि पार्थेन नित्यकालं महारथः ।
आशंसते च वीभत्सुं युद्धे जेतुं सुदारुणम् ॥　　३९

स तु तं सहसा प्राप्तं नित्यमत्यन्तवैरिणम् ।
कर्णो वैकर्तनस्सूत किमुत्तरममन्यत ॥　　४०

सञ्जयः—

[2]आयान्तं पाण्डवं दृष्ट्वा गजं प्रतिगजो यथा ।
असम्भ्रान्ततरः कर्णः प्रत्युदीयाद्धनञ्जयम् ॥　　४१

तमापतन्तं वेगेन वैकर्तनमजिह्मगैः ।
[3]वारयामास तेजस्वी पाण्डवश्शत्रुसूदनः ॥　　४२

तं कर्णश्शरजालेन छादयामास मारिष ।
विव्याध स सुसङ्क्रुद्धश् शरैस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥　　४३

तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा नामृष्यत महारथः ॥　　४३॥

तस्मै प्रसन्नान नाराचाञ् शिलाधौतानजिह्मगान् ॥
प्राहिणोत् सूतपुत्राय त्रिशतं शत्रुतापनः ॥　　४४॥

---

1 अ-ख—नास्त्यर्धचतुष्टयम्
2 ङ—अर्धद्वयं नास्ति
3 अ-क-घ-ङ—अर्धद्वयं नास्ति

विव्याध चैनं सङ्क्रुद्धो बाणेनैकेन वीर्यवान् ।
सव्ये भुजाग्रे बलवान् नाराचेन हसन्निव ॥ ४५॥
तस्य विद्धस्य वेगेन कराच्चापं पपात ह ॥ ४६
पुनरादाय तच्चापं निमेषार्धान्महाबलः ।
छादयामास बाणौघैः फल्गुनं कृतहस्तवत् ॥ ४७
शरवृष्टिं च तां मुक्तां सूतपुत्रेण भारत ।
व्यधमच्छरवर्षेण स्मयन्निव धनञ्जयः ॥ ४८
तौ परस्परमासाद्य शरजालेन पार्थिव ।
छादयेतां महेष्वासौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ॥ ४९
तदद्भुतमभूद्युद्धं कर्णपाण्डवयोर्मृधे ।
क्रुद्धयोर्वाशिताहेतोर् वन्ययोर्दन्तिनोरिव ॥ ५०
ततः पार्थो महेष्वासो दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ।
मुष्टिदेशे धनुस्तस्य चिच्छेद त्वरयाऽन्वितः ॥ ५१
हयांश्च चतुरो भल्लैर् अनयद्यमसादनम् ।
सारथेस्तु शिरः कायाद् अहरच्छत्रुसूदनः ॥ ५२
अथैनं छिन्नधन्वानं हताश्वं हतसारथिम् ।
विव्याध सायकैः पार्थश् चतुर्भिस्सूतनन्दनम् ॥ ५३
हताश्वात् तु रथात् तूर्णम् [1]अवप्लुत्य महारथः ।

1. ख—अयं पादः अनन्तरश्च न स्तः

आरुरोह रथं तूर्णं कृपस्य शरपीडितः ॥　　५४

राधेयं निर्जितं दृष्ट्वा तावका भरतर्षभ ।
धनञ्जयशरैर्नुन्नाः प्राद्रवन्ति दिशो दश ॥　　५५

द्रवतस्तान् समालोक्य राजा दुर्योधनो नृप ।
निवर्तयामास तदा वाक्यं चेदमुवाच ह ॥　　५६

दुर्योधनः—

अलं द्रुतेन वरशूरास् तिष्ठध्व क्षत्रियर्षभाः ।
एष पार्थवधायाहं स्वयं गच्छामि संयुगे ॥　　५७

अहं पार्थान् हनिष्यामि सपाञ्चालान् ससोमकान् ॥　　५७॥

अद्य मे युध्यमानस्य सह गाण्डीवधन्वना ।
द्रक्ष्यन्ति विक्रमं पार्थाः कालस्येव युगक्षये ॥　　५८॥

अद्य मद्बाणजालानि विमुक्तानि सहस्रशः ।
द्रक्ष्यन्ति समरे योधाश् शलभानामिवायतिम् ॥　　५९॥

अद्य बाणमयं वर्षं सृजतो मम धन्विनः ।
जीमूतस्येव घर्मान्ते द्रक्ष्यन्ति मम सैनिकाः ॥　　६०॥

जेष्याम्यद्य रणे पार्थं सायकैर्नतपर्वभिः ।
तिष्ठध्वं समरे वीरा भयं त्यजत फल्गुनात् ॥　　६१॥

न हि मद्वीर्यमासाद्य फल्गुनः प्रसहिष्यति ।
यथा वेलां समासाद्य सागरो मकरालयः ॥　　६२॥

सञ्जयः—

[1]इत्युक्त्वा प्रययौ राजा सैन्येन महता वृतः ।
फल्गुनं प्रति संरब्धः क्रोधेन महता वृतः ॥ ६३॥

तं प्रयान्तं महाबाहुं दृष्ट्वा शारद्वतस्तदा ।
अश्वत्थामानमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ६४॥

कृपः—

एष राजा महाबाहुर् अमर्षात् क्रोधमूर्च्छितः ।
पतङ्गवृत्तिमास्थाय फल्गुनं योद्धुमिच्छति ॥ ६५॥

यावन्नः पश्यमानानां प्राणान् पार्थेन सङ्गतः ।
न जह्यात् पुरुषव्याघ्रस् तावत् पालय कौरवम् ॥ ६६॥

यावत् फल्गुनबाणानां गौरवं नाधिगच्छति ।
कौरवः पार्थिवो वीरस् तावद्युद्धान्निवर्त्यताम् ॥ ६७॥

यावत् पार्थशरैर्घोरैर् निर्मुक्तोरगसन्निभैः ।
न भस्मीक्रियते राजा तावद्युद्धान्निवर्त्यताम् ॥ ६८॥

अयुक्तमिव पश्यामि तिष्ठत्स्वस्मासु मानद ।
स्वयं युद्धाय यद्राजा रणं यात्यसहायवान् ॥ ६९॥

दुर्लभं जीवितं मन्ये कौरव्यस्य किरीटिना ।
युध्यमानस्य समरे शार्दूलेनेव हस्तिनः ॥ ७०॥

1. ख—अर्धदशकं नास्ति

सञ्जयः—

मातुलेनैवमुक्तस्तु द्रौणिश्शस्त्रभृतां वरः ।
दुर्योधनमिदं वाक्यं जगाद रथिनां वरः ॥ ७१॥

अश्वत्थामा—

मयि जीवति गान्धारे न युद्धं गन्तुमर्हसि ।
मामनादृत्य कौरव्य तव नित्यं हितैषिणम् ॥ ७२॥

न हि ते सम्भ्रमः कार्यः पार्थस्य विजयं प्रति ।
अहमावारयिष्यामि पार्थं तिष्ठ सुयोधन ॥ ७३॥

दुर्योधन—

आचार्यः पाण्डुपुत्रान् वै शिष्यत्वान् परिरक्षति ।
त्वमप्युपेक्षां कुरुषे तेषु नित्यं द्विजोत्तम ॥ ७४॥

मम वा मन्दभाग्यत्वान्मन्दस्ते विक्रमो युधि ।
धर्मराजप्रियार्थं वा द्रौपद्या वा न विद्म तत् ॥ ७५॥

धिगस्तु मम लुब्धस्य यत्कृते सर्वबान्धवाः ।
सुखार्हाः परमं दुःखं प्राप्नुवन्त्यपराजिताः ॥ ७६॥

त्वं हि शस्त्रविदां मुख्यो महेश्वरसमो युधि ।
[1]शत्रुं न क्षपयेच्छक्त्या यो न स्याद्गौतमीसुतः ॥ ७७॥

अश्वत्थामन् प्रसीदस्व नाशयैतान ममाहितान ।
तवास्त्रगोचरे शक्तास् स्थातुं देवा न दानवाः ॥ ७८॥

1 अ—अर्धत्रयं नास्ति

पाञ्चालान् सोमकांश्चैव जहि द्रौणे सहानुगान् ।
वयं शेषान् हनिष्यामस् त्वयैव परिरक्षिताः ॥ ७९॥

एते हि सोमका विप्र पाञ्चालाश्च यशस्विनः ।
मम सैन्येषु संरब्धा विचरन्ति दवाग्निवत् ॥ ८०॥

तान् वारय महाबाहो केकयांश्च महारथान् ।
पुरा कुर्वन्ति निश्शेषं रक्ष्यमाणाः किरीटिना ॥ ८१॥

[1]अश्वत्थामंस्त्वरायुक्तो याहि शीघ्रमरिन्दम ।
आदौ वा यदि वा पश्चात् तवैतन् कर्म मारिष ॥ ८२॥

त्वमुत्पन्नो महाबाहो पाञ्चालानां वधं प्रति ।
करिष्यसि जगत् सर्वम् अपाञ्चालं किलाच्युतः ॥ ८३॥

एवं सिद्धाऽब्रुवन् वाचो भविष्यति हि तत् तथा ॥ ८४
न तेऽस्त्रगोचरे शक्तास् स्थातुं देवास्सवासवाः ।
किमु पार्थास्सपाञ्चालास् सत्यमेतद्वचो मम ॥ ८५

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥
॥ ७० ॥ घटोत्कचवधपर्वणि पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ८५ श्लोकाः ]

---

1. ख-घ-ङ—नास्तीदमर्धम्

## ॥ चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

द्रौणिधृष्टद्युम्नयोर्युद्धम् । द्रौणिपराक्रमः ॥

सञ्जय:—

दुर्योधनेनैवमुक्तो द्रौणिराहवदुर्मदः ।
प्रत्युवाच महाबाहो यथा वदसि कौरव ॥ १

प्रिया हि पाण्डवा राजन् मम चैव पितुश्च मे ।
तथैवाहं प्रियस्तेषां न तु युद्धे कुरूद्वह ॥ २

शक्तितस्तात युध्यामस् त्यक्त्वा प्राणानभीतवन् ॥ २॥

अहं कर्णश्च शल्यश्च कृपो हार्दिक्य एव च ।
निमेषात् पाण्डवीं सेनां क्षपयेम नृपोत्तम ॥ ३॥

ते चापि कौरवीं सेनां निमेषार्धात् कुरूद्वह ।
क्षपयेयुर्महाबाहो न स्याम यदि संयुगे ॥ ४॥

युध्याम पाण्डवाञ् छक्त्या ते चाप्यस्मान् यथाबलम् ।
तेजस्तु तेज आसाद्य प्रशमं यातु भारत ॥ ५॥

अशक्या तरसा जेतुं पाण्डवानामनीकिनी ।
जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु विद्धि सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ६॥

आत्मार्थं युध्यमानास्ते समर्थाः पाण्डुनन्दनाः ।

किमर्थं तव सैन्यानि न हनिष्यन्ति भारत ॥ ७॥

[1]त्वं तु लुब्धतमो राजन् निकृतिज्ञश्च भारत ।
सर्वातिशङ्की मानी च ततोऽस्मानतिशङ्कसे ॥ ८॥

अहं तु यत्नमास्थाय त्वदर्थं त्यक्तजीवितः ।
एष गच्छामि सङ्ग्रामं त्वत्कृते कुरुनन्दन ॥ ९॥

योत्स्येऽहं शत्रुभिस्सार्धं जेष्यामि च वरान् वरान् ॥ १०

पाञ्चालैस्सह योत्स्यामि सोमकैः केकयैस्तथा ।
पाण्डवेयैश्च सङ्ग्रामे त्वत्प्रियार्थमरिन्दम ॥ ११

अद्य मद्बाणनिर्दग्धाः पाञ्चालास्सोमकास्तथा ।
सिंहेनेवार्दिता गावो वित्रसिष्यन्ति सर्वतः ॥ १२

अद्य धर्मसुतो राजा दृष्ट्वा मम पराक्रमम् ।
अश्वत्थाममयं लोकं मंस्यते स सुयोधन ॥ १३

आगमिष्यति निर्वेदं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
दृष्ट्वा विनिहतान् सङ्ख्ये पाञ्चालान् सह सोमकैः ॥ १४

ये मां युद्धेऽभियास्यन्ति निहनिष्यामि तानहम् ।
न हि ते वीर मुच्येरन् मद्बाणबलपीडिताः ॥ १५

एवमुक्त्वा महाबाहुः पुत्रं दुर्योधनं तव ।
अभ्यवर्तत युद्धाय द्रावयन् सर्वधन्विनः ॥ १६

---

1 ख—अर्धचतुष्टयं नास्ति

चिकीर्षुस्तव पुत्राणां प्रियं प्राणभृतां वरः ।
ततोऽब्रवीत् सकैकेयान् पाञ्चालान् गौतमीसुतः ॥ १७

अश्वत्थामा—

प्रहरध्वमितस्सर्वे मम गात्रे महारथाः ।
स्थिरीभूताश्च युध्यध्वं दर्शयन्तः कृतास्त्रताम् ॥ १८

सञ्जयः—

एवमुक्तास्ततस्सर्वे शस्त्रवृष्टीरपातयन् ।
द्रौणिं प्रति महाराज जलं जलधरा इव ॥ १९

सन्निहत्य शरैर्द्रौणिस् ततो वीरानपातयन् ।
प्रमुखे पाण्डुपुत्राणां धृष्टद्युम्नस्य चाभि भो ॥ २०

ते हन्यमानास्समरे पाञ्चालास्सृञ्जयास्तथा ।
परित्यज्य रणे द्रौणिं प्राद्रवन्ति दिशो दश ॥ २१

तान् दृष्ट्वा द्रवतश्शूरान् पाञ्चालान् सह सोमकैः ।
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रौणिमभ्यद्रवद्युधि ॥ २२

ततः काञ्चनचित्राणां सजलाम्बुदनादिनाम् ।
वृतश्शतेन शूराणां रथानामनिवर्तिनाम् ॥ २३

पुत्रः पाञ्चालराजस्य धृष्टद्युम्नो महारथः ।
द्रौणिमित्यब्रवीद्वाक्यं दृष्ट्वा योधान् निपातितान् ॥ २४

धृष्टद्युम्नः—

आचार्यपुत्र भद्रं ते किमन्यैर्निहतैस्तव ।
समागच्छ मया सार्धं यदि शूरोऽसि संयुगे ॥ २५

अहं त्वाऽद्य हनिष्यामि तिष्ठेदानीं ममाग्रतः ॥ २५॥

सञ्जयः—

ततस्तमाचार्यसुतं धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
मर्मभिद्भिश्शरैस्तीक्ष्णैर् जघान भरतर्षभ ॥ २६॥

ते तु पङ्क्तीकृता द्रौणिं शरा विविशुराशुगाः ।
रुक्मपुङ्खाः प्रसन्नाग्रास् सर्वकायावदारणाः ॥ २७॥

मध्वर्थिन इवोद्दामा भ्रमराः पुष्पितं द्रुमम् ॥ २८

सोऽतिविद्धो भृशं क्रुद्धः पदाक्रान्त इवोरगः ।
मानी द्रौणिरसम्भ्रान्तो बाणपाणिरभाषत ॥ २९

अश्वत्थामा—

धृष्टद्युम्न स्थिरो भूत्वा मुहूर्तं प्रतिपालय ।
यावत् त्वां निशितैर्बाणैः प्रेषयामि यमक्षयम् ॥ ३०

सञ्जयः—

द्रौणिरेवं समाभाष्य पार्षतं परवीरहा ।
छादयामास बाणौघैस् समन्ताल्लघुहस्तवत् ॥ ३१

सञ्छाद्यमानस्समरे द्रौणिना युद्धदुर्मदः ।

द्रौणिं पाञ्चालतनयो वाग्भिरातर्जयन् तदा ॥ ३२

धृष्टद्युम्नः—

न जानीषे प्रतिज्ञां मे विप्रोत्पत्तिं तथैव च ।
द्रोणं हत्वा किल मया हन्तव्यस्त्वं सुदुर्मते ॥ ३३

ततस्त्वाऽहं न हन्म्यद्य द्रोणे तिष्ठति संयुगे ।
इमां तु रजनीं प्राप्ताम् अप्रभाता सुदुर्मते ॥ ३४

निहत्य पितरं तुभ्यं ततस्त्वामपि संयुगे ।
नेष्यामि प्रेतलोकाय ह्येवं मे मनसि स्थितम् ॥ ३५

यस्ते पार्थेषु विद्वेषो या भक्तिः कौरवेषु च ।
तां दर्शय स्थिरो भूत्वा न मे जीवन् विमोक्ष्यसे ॥ ३६

यो हि ब्राह्मण्यमुत्सृज्य क्षत्रधर्मरतो द्विजः ।
स वध्यस्सर्वलोकस्य यथा त्वं पुरुषाधम ॥ ३७

सञ्जय—

इत्युक्तः परुषं वाक्यं पार्षतेन द्विजोत्तमः ।
क्रोधमाहारयत् तीव्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ३८

निर्दहन्निव चक्षुर्भ्यां पार्षतं सोऽभ्यवैक्षत ।
छादयामास च शरैर् निश्श्वसन्नुरगो यथा ॥ ३९

स च्छाद्यमानस्समरे द्रौणिना राजसत्तम ।
सर्वपाञ्चालसेनाभिस् संवृतो गिरिराडिव ॥ ४०

नाकम्पत महाबाहुस् स्ववीर्यं समुपाश्रितः ।
सायकांश्चैव विविधान् अश्वत्थाम्नि मुमोच ह ॥ ४१

[1]न पुनस्संन्यवर्तेतां प्राणद्यूतपरायणौ ।
निवारयन्तौ बाणौघैः परस्परममर्षिणौ ॥ ४२

विसृजन्तौ महेष्वासौ शरवृष्टिं समन्ततः ॥ ४२॥

द्रौणिपार्षतयोर्युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
दृष्ट्वा सम्पूजयामासुस् सिद्धचारणवादिकाः ॥ ४३॥

शरौघैः पूरयन्तौ तावाकाशं प्रदिशस्तथा ।
अलक्ष्यौ समयुध्येतां शरैः कृत्वा महत् तमः ॥ ४४॥

नृत्यमानाविव रणे मण्डलीकृतकार्मुकौ ।
परस्परवधे यत्तौ परस्परवधैषिणौ ॥ ४५॥

अयुध्येतां महाबाहू चित्रं लघु च सुष्ठु च ।
सम्पूज्यमानौ समरे योधमुख्यैस्सहस्रशः ॥ ४६॥

तौ प्रयुद्धौ तथा दृष्ट्वा वने वन्यौ गजाविव ।
उभयोस्सेनयोर्घोषस् तुमुलस्समपद्यत ॥ ४७॥

सिंहनादास्तथैवासन् दध्मुश्शङ्खांश्च मारिष ।
वादित्राण्यभ्यवाद्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४८॥

तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे भीरूणां भयवर्धने ।

---

1 ख-ङ—तौ

मुहूर्तमिव तद्युद्धं घोररूपं बभूव ह ॥ ४९॥

ततो द्रौणिर्महाराज पार्षतस्य महात्मनः ।
धनुर्ध्वजं तथा च्छत्रम् उभौ च पार्ष्णिसारथी ॥ ५०॥

सूतमश्वांश्च चतुरो निहत्याभ्यनदद्रणे ॥ ५१
पाञ्चालांश्चैव तान् सर्वान् बाणैस्सन्नतपर्वभिः ।
प्राद्रावयदमेयात्मा शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५२

ततः प्रविव्यथे सेना पाण्डवी भरतर्षभ ।
दृष्ट्वा द्रौणेर्महत् कर्म वासवस्येव संयुगे ॥ ५३

शतेन च शतं हत्वा पाञ्चालानां महारथः ।
[1]त्रिभिश्च निशितैर्बाणैर् हत्वा त्रीन् वै महारथान् ॥ ५४

द्रौणिर्द्रुपदपुत्रस्य फल्गुनस्य च पश्यतः ।
नाशयामास पाञ्चालान् भूयिष्ठं ये व्यवस्थिताः ॥ ५५

ते वध्यमानाः पाञ्चालास् समरे सह सृञ्जयैः ।
अगच्छन् द्रौणिमुत्सृज्य विप्रकीर्णरथ[2]ध्वजाः ॥ ५६

स जित्वा समरे शत्रून् द्रोणपुत्रो महारथः ।
ननाद सुमहानादं तपान्ते जलदो यथा ॥ ५७

स निहत्य बहूञ्छूरान् अश्वत्थामा व्यरोचत ।
युगान्ते सर्वभूतानि भस्म कृत्वेव पावकः ॥ ५८

---

1 अ-क-ब—नास्तीदमर्धम्    2. ङ—द्विपाः

सम्पूज्यमानो युधि कौरवेयैर्
निर्जित्य सङ्ख्येऽरिगणान सहस्रशः ।
व्यरोचत द्रोणसुतः प्रतापवान्
यथा सुरेन्द्रोऽरिगणान् निहत्य ह ॥ ५९

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥
॥ ७० ॥ घटोत्कचवधपर्वणि षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ५९ श्लोकाः ]

## ॥ पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

सङ्कुलयुद्धवर्णनम् ॥ १ ॥ सात्यकिना सोमदत्तवधः ॥ २ ॥ द्रोणयुधिष्ठिरयुद्धम् ॥ ३ ॥

सञ्जयः—

ततो युधिष्ठिरो राजा भीमसेनश्च पाण्डवाः ।
द्रोणपुत्रं महाराज समन्तात् पर्यवारयन् ॥ १

ततो दुर्योधनो राजा भारद्वाजेन संवृतः ।
अभ्ययात् पाण्डवान् सङ्ख्ये ततो युद्धमवर्तत ॥ २
घोररूपं महाराज भीरूणां भयवर्धनम् ॥ २॥

अम्बष्ठान् मालवान् वङ्गान् छिबींस्त्रैगर्तकानपि ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय गणान् क्रुद्धो वृकोदरः ॥ ३॥

अभीषाहाञ् छूरसेनान् क्षत्रियान् युद्धदुर्मदान् ।
निहत्य पृथिवीं चक्रे भीमश्शोणितकर्दमाम् ॥ ४॥

यौधेयारट्टराजन्यान् मद्रकांश्च गणान् युधि ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय किरीटी निशितैश्शरैः ॥ ५॥

प्रगाढमञ्जोगतिभिर् नाराचैरभिपीडिताः ।
निपेतुर्द्विरदा भूमौ द्विशृङ्गा इव पर्वताः ॥ ६॥

निकृत्तैर्हस्तिहस्तैश्च लुठमानैरितस्ततः ।
रराज वसुधाऽऽकीर्णा विसर्पद्भिरिवोरगैः ॥ ७॥

क्षिप्तैः कनकचक्रैश्च नृपच्छत्रैश्च भूर्बभौ ।
द्यौरिवादित्यचन्द्राद्यैर् ग्रहैः कीर्णा युगक्षये ॥ ८॥

इत्यासीत् सङ्क्षयस्तत्र शोणाश्वस्य रथं प्रति ॥ ९

द्रोणस्तु परमक्रुद्धो वायव्यास्त्रेण संयुगे ।
व्यधमत् तान् यथा वायुर् मेघानिव दुरत्ययः ॥ १०

ते हन्यमाना द्रोणेन पाञ्चालाः प्राद्रवन् भयात् ।
पश्यतो भीमसेनस्य पार्थस्य च महात्मनः ॥ ११

ततः किरीटी भीमश्च सहसा संन्यवर्तताम् ।
[1]महता [2]शरवर्षेण परिगृह्य बलं तव ॥ १२

बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वम् उत्तरं तु वृकोदरः ।

---

1 ख—अर्धत्रयं नास्ति　　2. ब-ङ—रथवंशेन

भारद्वाजं शरौघाभ्यां महद्भ्यामभ्यवर्षताम् ॥ १३

तौ तदा सृञ्जयाश्चैव पाञ्चालाश्च महारथाः ।
अन्वगच्छन् महाराज मत्स्याश्च सहसोमकाः ॥ १४

तथैव तव पुत्रस्य रथोदाराः प्रहारिणः ।
महत्या सेनया सार्धं जग्मुर्द्रोणरथं प्रति ॥ १५

ततस्सा भारती सेना हन्यमाना किरीटिना ।
तमसा निद्रया चैव पुनरेव व्यदीर्यत ॥ १६

द्रोणेन वार्यमाणास्ते स्वयं तव सुतेन च ।
न शक्यन्ते महाराज योधा वारयितुं तदा ॥ १७

सा पाण्डुपुत्रस्य शरैर् दार्यमाणा चमूस्तव ।
तमसा संवृते लोके व्यद्रवन् सर्वतोमुखी ॥ १८

उत्सृज्य शतशो वाहांस् तत्र केचिन्नराधिपाः ।
प्राद्रवन्त महाराज भयाविष्टास्समन्ततः ॥* १९

सोमदत्तं तु सम्प्रेक्ष्य विधून्वानं महद्धनुः ।
सात्यकिः प्राह यन्तारं सोमदत्ताय मां वह ॥ २०

न ह्यहत्वा रणे शत्रुं बाह्लीकं कौरवाधमम् ।
निवर्तिष्ये रणात् सूत सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ २१

ततस्सम्प्रैषयद्यन्ता सैन्धवांस्तान् मनोजवान् ।

* सर्वेषु कोशेषु अत्रैवाध्यायसमाप्तिर्दृश्यते

तुरङ्गमाञ् छङ्खवर्णान् सर्वशब्दातिगान् रणे ॥ २२

तेऽवहन् युयुधानं तु मनोमारुतरंहसः ।
यथेन्द्रं हरयो राजन् पुरा दैत्यवधोद्यतम् ॥ २३

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य सात्वतं रभसं रणे ।
सोमदत्तो महाबाहुर् असम्भ्रान्तोऽभ्यवर्तत ॥ २४

विमुञ्चञ् छरवर्षाणि पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।
छादयामास शैनेयं जलदो भास्करं यथा ॥ २५

असम्भ्रान्तश्च समरे सात्यकिः कुरुपुङ्गवम् ।
बाणैस्सञ्छादयामास समन्ताद्भरतर्षभ ॥ २६

सोमदत्तस्तु तं षष्ट्या विव्याधोरसि माधवम् ।
सात्यकिश्चापि तं राजन्नविध्यत् सायकैश्शितैः ॥ २७

तावन्योन्यशरोत्कृत्तौ चकाशाते नरर्षभौ ।
सुपुष्पौ पुष्पसमये पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ २८

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गौ कुरुवृष्णियशस्करौ ।
परस्परमवेक्षेतां दहन्ताविव लोचनैः ॥ २९

रथमण्डलमार्गेषु विचरन्तावरिन्दमौ ।
घोररूपधरावास्तां वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ॥ ३०

शरसम्भिन्नगात्रौ तौ सर्वतश्शकलीकृतौ ।

श्वाविधाविव राजेन्द्र व्यदृश्येतां शराचितौ ॥ ३१

सुवर्णपुङ्खैरिषुभिर् विक्षतौ तौ व्यराजताम् ।
खद्योतैरिव राजेन्द्र प्रावृषीव वनस्पती ॥ ३२

सम्प्रदारितसर्वाङ्गौ सायकैस्तौ महारथौ ।
अदृश्येतां रणे क्रुद्धावुल्काभिरिव कुञ्जरौ ॥ ३३

ततो युधि महाराज सोमदत्तो महाबलः ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद माधवस्य महद्धनुः ॥ ३४

अथैनं पञ्चविंशत्या सायकानां समर्पयत् ।
त्वरमाणस्त्वराकाले पुनश्च दशभिश्शरैः ॥ ३५

अथान्यद्धनुरादाय सात्यकिर्वेगवत्तरम् ।
पञ्चभिस्सायकैस्तूर्णं सोमदत्तमविध्यत ॥ ३६

ततोऽपरेण भल्लेन ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ।
बाह्लीकस्य रणे राजन् सात्यकिः प्रहसन्निव ॥ ३७

[1]पिता तव च सङ्क्रुद्धो दृष्ट्वा केतुं निपातितम् ।
शैनेयं पञ्चविंशत्या सायकानां समाचिनोत् ॥ ३८

सात्वतोऽपि रणे क्रुद्धस् सोमदत्तस्य धन्विनः ।
धनुश्चिच्छेद समरे क्षुरप्रेण शितेन ह ॥ ३९

अथैनं रुक्मपुङ्खानां शराणां नतपर्वणाम् ।

---

1 ङ—अर्धचतुष्टयं नास्ति

आचिनोद्बहुसाहस्रैर् भग्नदंष्ट्रमिव द्विपम् ॥ ४०

अथान्यद्धनुरादाय सोमदत्तो नराधिपः ।
सात्यकिं छादयामास शरवृष्ट्या महाबलः ॥ ४१

सोमदत्तं तु सङ्क्रुद्धो रणे विव्याध सात्यकिः ।
सात्यकिं चेषुजालेन सोमदत्तोऽभ्यपीडयत् ॥ ४२

दशभिस्सात्वतस्यार्थे भीमो विव्याध बाह्लिकम् ।
सोमदत्तोऽप्यसम्भ्रान्तश् शैनेयमवधीच्छरैः ॥ ४३

ततस्तु सात्वतस्यार्थे भीमसेनो नवं दृढम् ।
मुमोच परिघं घोरं सोमदत्तस्य वक्षसि ॥ ४४

तमापतन्तं सहसा घोररूपं भयावहम् ।
द्विधा चिच्छेद सहसा प्रहसन्निव कौरवः ॥ ४५

स पपात द्विधा च्छिन्न आयसः परिघो महान् ।
महीधरस्येव महच् छिखरं वज्रदारितम् ॥ ४६

ततस्तु सात्यकी राजन् सोमदत्तस्य संयुगे ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन हस्तावापं च पञ्चभिः ॥ ४७

चतुर्भिस्तु शरैस्तूर्णं चतुरस्तुरगोत्तमान् ।
समीपं प्रेषयामास प्रेतराजस्य भारत ॥ ४८

सारथेश्च शिरः कायाद् भल्लेन नतपर्वणा ।

जहार रथशार्दूलः प्रहसञ् छिनिपुङ्गवः ॥ ४९

ततश्शरं महाघोरं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
मुमोच सात्वतो राजन् स्वर्णपुङ्खं शिलाशितम् ॥ ५०

स विमुक्तो बलवता शैनेयेन [1]नरोत्तम ।
पितुस्तवोरसि विभो निपपाताशु भारत ॥ ५१

सोऽतिविद्धो बलवता सात्वतेन महारथः ।
सोमदत्तो महाबाहुर् निपपात ममार च ॥ ५२

दृष्ट्वा निपतितं तत्र सोमदत्तं महारथाः ।
महता रथवंशेन युयुधानमुपाद्रवन् ॥ ५३

छाद्यमानं शरैर्दृष्ट्वा युयुधानं युधिष्ठिरः ।
महत्या सेनया सार्धं युयुधानमुपाद्रवत् ॥ ५४

ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धस् तावकानां महद्बलम् ।
शरै[2]र्विदारयामास भारद्वाजस्य पश्यतः ॥ ५५

सैन्यं विद्रावयन्तं तं दृष्ट्वा द्रोणो युधिष्ठिरम् ।
अभिदुद्राव वेगेन क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ५६

ततस्सुनिशितैर्बाणैः पार्थं विव्याध पञ्चभिः ॥ ५६॥

स तं विध्वा महेष्वासस् सृक्किणी परिलेलिहन् ।
युधिष्ठिरस्य चिच्छेद ध्वजं कार्मुकमेव च ॥ ५७॥

---

1. ख-ङ—शरोत्तमः 2 ख—र्विद्राव

स च्छिन्नधन्वा त्वरितस् त्वराकाले नृपोत्तमः ।
अन्यदादत्त वेगेन कार्मुकं समरे दृढम् ॥　　५८॥

ततश्शरसहस्रेण द्रोणं विव्याध पार्थिवः ।
साश्वसूतध्वजरथं तदद्भुतमिवाभवत् ॥　　५९॥

ततो मुहूर्तं व्यथितश् शरपातप्रपीडितः ।
निषसाद रथोपस्थे द्रोणो भरतसत्तम ॥　　६०॥

प्रतिलभ्य ततस्संज्ञां मुहूर्ताद्द्विजसत्तमः ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो वायव्यास्त्रमवासृजत् ॥　　६१॥

असम्भ्रान्तस्ततः पार्थो वायव्येनैव वीर्यवान् ।
तदस्त्रमस्त्रेण रणे स्तम्भयामास भारत ॥　　६२॥

ततोऽब्रवीद्वासुदेवः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥　　६३

श्रीभगवान्—

युधिष्ठिर महाबाहो यत्त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु ।
उपारमस्व युद्धाच्च द्रोणाद्भरतसत्तम ॥　　६४

वर्तते हि सदा द्रोणो ग्रहणे तव संयुगे ।
नानुरूपमहं मन्ये युद्धमस्य त्वया सह ॥　　६५

योऽस्य सृष्टो विनाशाय स एनं श्वो वधिष्यति ।
परित्यज्य गुरुं याहि यत्र राजा सुयोधनः ॥　　६६

भीमश्च रथशार्दूलो युध्यते कौरवैस्सह ॥　　६६॥

सञ्जयः—

वासुदेववचश्श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
मुहूर्तं चिन्तयित्वा तु ततो दारुणमाहवम् ॥ ६७॥

प्रायाद्द्रुतममित्रघ्नो यत्र भीमो व्यवस्थितः ।
विनिघ्नंस्तावकान् योधान् व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ६८॥

रथघोषेण महता नादयन् वसुधातलम् ।
पर्जन्य इव घर्मान्ते नादयन् वै दिशो दश ॥ ६९॥

भीमस्य निघ्नतश्शत्रून् पार्ष्णिं जग्राह पाण्डवः ॥ ७०

द्रोणोऽपि पाण्डुपाञ्चालान् व्यधमद्यामिनीमुखे ।
नादयंस्तलघोषेण तव सैन्यानि मारिष ॥ ७१

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥
॥ ७० ॥ घटोत्कचवधपर्वणि सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥
[अस्मिन्नध्याये ७१ श्लोकाः]

## ॥ षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

सेनाद्वये दीपोद्योजनम् ॥ १ ॥ सङ्कुलयुद्धम् ॥ २ ॥

सञ्जयः—

वर्तमाने तथा युद्धे घोररूपे भयानके ।
तमसा संवृते लोके रजसा च महीपते ॥ १

यद्ब्राह्मणः पश्यति यत्र विद्वान्
कथंरूपं [1]तदमृतमक्षरं परम् ॥ २५

सनत्सुजातः—

नाभाति शुक्लमिव लोहितमिवाथो
[2]कृष्णमथार्जुनं काद्रवं वा ।
न पृथिव्यां तिष्ठति नान्तरिक्षे
नैतत् समुद्रे सलिलं बिभर्ति ॥ २६

न तारकासु न च विद्युदाश्रितं
न चाभ्रेषु दृश्यते रूपमस्य ।
न चापि वायौ न च देवतासु
न वै चन्द्रे दृश्यते नोत सूर्ये ॥ २७

नैवर्क्षु तन्न यजुष्षु नाप्यथर्वसु
[3]न दृश्यते वै विमलेषु सामसु ।
रथन्तरे [4]बार्हद्रथे वाऽपि राजन्
[5]महाव्रतस्यात्मनि दृश्यते तत् ॥ २८

---

1 अ-क—यात्यमृत ।
2 अ-क—कृष्णमायसमर्कवर्णम् । म-मा—कृष्णमथार्कवर्णम् ।
3. ङ-म-मा—न चापि दृश्यत्यमलेषु सामसु ।
4 ख-ग-घ-ङ-म-मा—बार्हते ।
5. अ-क-ख-घ—महाव्रते नैव दृश्येद्ध्रुवं तत् ।

सञ्जय:—

ततस्सर्वाणि सैन्यानि हतशिष्टानि यानि वै ।
सेनागोप्तृनथादिश्य पुनर्व्यूहमकल्पयन् ॥ १०॥

द्रोणः पुरस्ताज्जघने तु शल्यस्
तथा द्रौणिस्सौबलः पार्श्वतश्च ।
स्वयं तु सर्वाणि बलानि राजन्
राजाऽन्वगादभ्युदितोऽतिरात्रौ ॥ ११॥

उवाच सर्वाश्च पदातिसङ्घान्
दुर्योधनः पार्थिवान् सान्त्वपूर्वम् ॥ १२

दुर्योधनः—

उत्सृज्य सर्वे परमायुधानि
गृह्णीत हस्तैर्ज्वलितान् प्रदीपान् ॥ १२॥

सञ्जयः—

ते चोदिताः पार्थिवसत्तमेन
ततः प्रहृष्टा जगृहुः प्रदीपान् ॥ १३

सा भूय एव ध्वजिनी विभक्ता
व्यरोचताग्निप्रभया निशायाम् ।
महाधनैराभरणैश्च दिव्यैश्
शस्त्रैश्च दिव्यैरभिसम्पतद्भिः ॥ १४

क्षणेन सर्वे विहिताः प्रदीपा
　　व्यादीपयंश्च ध्वजिनीं तदाऽऽशु ॥　　१४॥

सर्वैस्तु सेना व्यतिषेव्यमाना
　　पदातिभिः पावकदीप्तहस्तैः ।
प्रकाश्यमाना ददृशे निशायां
　　यथान्तरिक्षे जलदास्तडिद्भिः ॥　　१५॥

प्रकाशितायां तु तथा ध्वजिन्यां
　　द्रोणोऽग्निकल्पः प्रतपन् सपत्नान् ।
रराज राजेन्द्र सुवर्णवर्मा
　　मध्यं गतस्सूर्य इवांशुमाली ॥　　१६॥

जाम्बूनदेष्वाभरणेषु चैव
　　निष्केषु शुद्धेषु तथाऽम्बरेषु ।
पीतेषु शस्त्रेषु च पावकस्य
　　प्रतिप्रभास्तत्र ततो बभूवुः ॥　　१७॥

[1]गदाश्च सैक्याः परिघाश्च शुभ्रा
　　रथेषु शक्त्यश्च विवर्तमानाः ।
प्रतिप्रभारश्मिभिराजमीढ
　　पुनः पुनस्सञ्जनयन्ति दीप्तिम् ॥　　१८॥

---

1. ख—श्लोकद्वयं नास्ति

छत्राणि वालव्यजनानुषङ्गाद्
दीप्ता महोल्काश्च तथैव राजन् ।
व्याघूर्णमानाश्च सुवर्णमाला
व्यायच्छतां तत्र तदा विरेजुः ॥ १९॥

शस्त्रप्रभाभिश्च विराजमानं
दीपप्रभाभिश्च बलं तवाभूत् ।
प्रभासितं चाभरणप्रभाभिर्
भृशं प्रकाशं नृपते बभूव ॥ २०॥

पीतानि शस्त्राण्यसृगुज्ज्वलानि
वीरावधूतानि [1]तनुच्छदानि ।
दीप्तां प्रभां प्राजनयन्त तत्र
तपात्यये विद्युदिवान्तरिक्षे ॥ २१॥

प्रकम्पितानामभिघातवेगैर्
अभिघ्नतां त्वापततां जवेन ।
वक्त्राण्यकाशन्त तदा नराणां
वाय्वीरितानीव महाम्बुजानि ॥ २२॥

महावने दारुमति प्रदीप्ते
यथा प्रभा भास्करस्येव दृश्येत् ।

1. ख-ङ—तनूरुहाणि

तथा तवासीद्ध्वजिनी प्रदीप्ता
　　महाहवे भारत भीमरूपा ॥　　२३॥

[1]ततः प्रदीप्तं बलमस्मदीयं
　　निशाम्य पार्थास्त्वरितास्तथैव ।
सर्वेषु सैन्येषु पदातिसङ्घान
　　अचोदयंस्ते जगृहुः प्रदीपान् ॥　　२४॥

गजे गजे सप्त कृताः प्रदीपा
　　रथे रथे चैव तथा प्रदीपाः ।
द्वावश्वपृष्ठे परिपार्श्वतोऽन्ये
　　ध्वजेषु चान्ये जघनेषु चान्ये ॥　　२५॥

सेनासु सर्वासु च पार्श्वतोऽन्ये
　　पश्चात् पुरस्ताच्च समन्ततश्च ।
मध्ये तथाऽन्ये ज्वलिताग्रहस्तास्
　　[2]सेनाद्वयेऽपि स्म नरा विचेरुः ॥　　२६॥

[3]सर्वेषु सैन्येषु पदातिसङ्घा
　　व्यामिश्रिता हस्तिरथाश्ववृन्दैः ।

---

1. ख—इदमर्धं नास्ति
2. ङ—व्यदीपयन्पाण्डुसुतस्य सैन्ये　　[अधिकः पाठः]
3. ङ—अर्धद्वयं नास्ति

मध्ये तथाऽग्रे विशिखाग्रहस्ता
व्यदीपयन् पाण्डुसुतस्य सेनाम् ॥ २७॥

तेन प्रदीप्तेन तथा प्रदीप्तं
बलं बभौ तस्य महाबलेन ।
भाः कुर्वता भानुमता गतेन
[1]दिवाकरेणाग्निरिवाभितप्तः ॥ २८॥

तयोः प्रभा भूमिमथान्तरिक्षं
सर्वं व्यतिक्रम्य दिवं प्रविष्टा ।
तेन प्रकाशेन भृशं प्रकाशं
बभूव तेषां तव चैव सैन्यम् ॥ २९॥

तेन प्रकाशेन दिवं गतेन
सम्बोधिता देवगणास्स्म राजन् ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घास्
समागमन्नप्सरसश्च सर्वाः ॥ ३०॥

तद्देवगन्धर्वसमाकुलं च
यक्षासुरेन्द्राप्सरसां गणैश्च ।
हतैश्च योधैर्दिवमारुहद्भिर्
आयोधनं दिव्यकल्पं बभूव ॥ ३१॥

1. ख—एतदादि षट् पादा न सन्ति

रथाश्वनागाकुलदीपदीप्तं
　　संरब्धयोधं हतविद्रुताश्वम ।
महद्बलं व्यूढरथाश्वनागं
　　सुरासुरव्यूहसमं बभूव ॥　　३२॥

तच्छक्तिसङ्घाकुलचण्डवातं
　　महारथाभ्रं रथवाजिघोषम् ।
अस्त्रौघवर्षं रुधिराम्बुधारं
　　निशि प्रवृद्धं नरदेव युद्धम् ॥　　३३॥

तस्मिन् महाग्निप्रतिमो महात्मा
　　सन्तापयन् पाण्डवान् विप्रमुख्यः ।
गभस्तिभिर्मध्यगतो यथाऽर्को
　　वर्षात्यये तद्वदभून्नरेन्द्र ॥　　३४॥

प्रकाशिते तथा लोके रजसा च समावृते ।
समाजग्मुरथो वीराः परस्परवधैषिणः ॥　　३५॥

ते समेत्य रणे राजञ् शस्त्रप्रासासिपाणयः ।
परस्परमुदैक्षन्त परस्परकृतागसः ॥　　३६॥

प्रदीपानां सहस्रैश्च दीप्यमानैस्समन्ततः ।
विरराज तदा भूमिर् ग्रहैर्द्यौरिव भारत ॥　　३७॥

---

* सर्वेषु कोशेषु अत्रैवाध्यायसमाप्तिर्दृश्यते

उल्काशतैः प्रज्वलितै रणभूमिर्व्यराजत ।
दह्यमानेव लोकानाम् अभावे वै वसुन्धरा ॥ ३८॥

प्रादीप्यन्त दिशस्सर्वाः प्रदीपैस्तैस्समन्ततः ।
वर्षाप्रदोषे खद्योतैर् वृता वृक्षा यथैव हि ॥ ३९॥

असज्जन्त ततो वीरा वीरेष्वेव पृथक् पृथक् ।
नागा नागैस्समाजग्मुस् तुरङ्गाश्च तुरङ्गिभिः ॥ ४०॥

रथा रथवरैरेव समाजग्मू रुषाऽन्विताः ।
तस्मिन् रात्रिमुखे घोरे पुत्रस्य तव शासनात् ॥ ४१॥

ततोऽर्जुनो महाराज कौरवाणामनीकिनीम् ।
व्यधमत् त्वरया युक्तः क्षपयन् सर्वपार्थिवान् ॥ ४२॥

धृतराष्ट्रः—

तस्मिन् प्रविष्टे संरब्धे मम पुत्रस्य वाहिनीम् ।
अमृष्यमाणे संरब्धे किं व आसीत् तदा मनः ॥ ४३॥

किममन्यन्त सैन्यानि दारुणे परमाहवे ।
दुर्योधनश्च किं कृत्यं प्राप्तकालममन्यत ॥ ४४॥

के चैनं वरदं घोरम् अन्वयासुररिन्दमम् ।
केऽरक्षन् दक्षिणं चक्रं के च द्रोणस्य सव्यतः ॥ ४५॥

के पृष्ठं तस्य रक्षन्त वीरा वीरस्य युध्यतः ।

के पुरस्तादगच्छन्त निघ्नतश्शात्रवान रणे ॥ ४६॥

यः प्राविशन्महाबाहुः पाञ्चालानपराजितः ।

नृत्यन्निव रथव्याघ्रो रथमार्गेषु वीर्यवान ॥ ४७॥

ददाह च शरैश्शूरः पाञ्चालाना रथव्रजान ।

धूमकेतुरिव क्रुद्धः कथं मृत्युमुपेयिवान ॥ ४८॥

अव्यग्रानेव हि परान कथयस्यपराजितान ।

हतांश्चैव विषण्णांश्च विप्रकीर्णांश्च शंससि ॥ ४९॥

रथिनो विरथांश्चैव कृतान युद्धेषु मामकान ॥ ५०

सञ्जयः—

द्रोणस्य मतमाज्ञाय योद्धुकामस्य तां निशाम् ।

दुर्योधनो महाराज वश्यान् भ्रातॄनथाब्रवीत् ॥ ५१

विकर्णं चित्रसेनं च महाबाहुं च कौरवम् ।

दुर्धर्षं दीर्घबाहुं च ये च तेषां पदानुगाः ॥ ५२

दुर्योधन —

द्रोणं यत्ताः पराक्रान्तास् सर्वे रक्षत पृष्ठतः ॥ ५२॥

सञ्जय.—

हार्दिक्यो दक्षिणं चक्रं शल्यश्चैवोत्तरं तथा ।

त्रिगर्तानां च ये शूरा हतशिष्टा महारथाः ॥ ५३॥

तांश्चैव सर्वान पुत्रस्ते समचूचुददग्रतः ॥ ५४

दुर्योधन —

आचार्यो हि भृशं यत्तो भृशं यत्ताश्च पाण्डवाः ।
तं रक्षत सुसंयत्ता निघ्नन्तं शात्रवान मम ॥ ५५

द्रोणो हि बलवान युद्धे क्षिप्रहस्तः पराक्रमी ।
निर्जयेत् त्रिदशान युद्धे किमु पार्थान ससोमकान ॥ ५६

ते यूयं सहितास्सर्वे भृशं यत्ता महारथाः ।
द्रोणं रक्षत पाञ्चालाद् धृष्टद्युम्नान्महारथात् ॥ ५७

पाण्डवेयेषु सैन्येषु योधं पश्याम्यहं न तम् ।
यो जयेत रणे द्रोणं धृष्टद्युम्नादृते पुमान ॥ ५८

तत्र सर्वात्मना मन्ये भारद्वाजस्य रक्षणम् ।
स गुप्तस्सृञ्जयान हन्यात् सोमकांश्च सराजकान् ॥ ५९

सृञ्जयेष्वथ सर्वेषु निहतेषु चमूमुखे ।
धृष्टद्युम्नं रणे द्रौणिर् नाशयिष्यत्यसंशयम् ॥ ६०

तथाऽर्जुनं रणे कर्णो विजेष्यति महारथम् ।
भीमसेनमहं चापि युद्धे जेष्यामि दंशितम् ॥ ६१

सोऽयं मम जयो व्यक्तं दीर्घकालं भविष्यति ।
तस्माद्रक्षत सङ्ग्रामे द्रोणमेव महारथाः ॥ ६२

सञ्जयः—

इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठ पुत्रो दुर्योधनस्तव ।

व्यादिदेश ततस्सैन्यं तस्मिंस्तमसि दारुणे ॥ ६३

ततः प्रववृते युद्धं रात्रौ तद्भरतर्षभ ।
उभयोस्सेनयोर्घोरं विजयं प्रतिकाङ्क्षिणोः ॥ ६४

अर्जुनः कौरवं सैन्यम् अर्जुनं चापि कौरवाः ।
नानाशस्त्रसमावापैर् अन्योन्यं समपीडयन ॥ ६५

द्रौणिः पाञ्चालराजानं भारद्वाजश्च सृञ्जयान ।
छादयामासतुस्सङ्ख्ये शरैस्सन्नतपर्वभिः ॥ ६६

पाण्डुपाञ्चालसैन्यानां कौरवाणा च भारत ।
आसीन्निष्टानको घोरो निघ्नतामितरेतरम् ॥ ६७

नैवास्माभिर्नरैर्वाऽन्यैर् दृष्टपूर्वं तथाविधम् ।
युद्धं यादृशमेवासीत् तां रात्रि सुभयावहम् ॥ ६८

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥
॥ ७० ॥ घटोत्कचवधपर्वणि अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ६८ श्लोकाः ]

---

## ॥ सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

कृतवर्मणा युधिष्ठिरपराजयः ॥ १ ॥ सङ्कुलयुद्धम् ॥ २ ॥

सञ्जयः—

वर्तमाने तथा रौद्रे रात्रियुद्धे सुदारुणे ।
सर्वभूतक्षयकरे धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १

अब्रवीत् पाण्डवांश्चैव पाञ्चालानथ सोमकान् ॥ १॥

युधिष्ठिरः—

अभिद्रवत गच्छध्वं द्रोणमेव जिघांसवः ॥ २

सञ्जयः—

राज्ञस्ते वचनाद्राजन् पाञ्चालाः सहसृञ्जयाः ।
द्रोणमेवाभ्यवर्तन्त नदन्तो भैरवान् रवान् ॥ ३

तान् वयं प्रतिगर्जन्तः प्रत्युद्यातास्स्म हर्षिताः ।
यथाशक्ति यथोत्साहं यथावीर्यं च संयुगे ॥ ४

कृतवर्मा तु हार्दिक्यो युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ।
द्रोणं प्रति जिघांसन्तं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ५

शैनेयं शरवर्षाणि विसृजन्तं समन्ततः ।
अभ्ययात् कौरवो राजन् भूरिस्सङ्ग्राममूर्धनि ॥ ६

सहदेवं तथा यान्तं द्रोणप्रेप्सुं महारथम् ।

कर्णो वैकर्तनो राजन वारयामास पाण्डवम् ॥ ७

भीमसेनं समायान्तं व्यादितास्यमिवान्तकम् ।
स्वयं दुर्योधनो युद्धे प्रतीपं मृत्युमाव्रजन् ॥ ८

नकुलस्तु युधां श्रेष्ठं सर्वयुद्धविशारदम् ।
शकुनिस्सौबलो राजन् वारयामास भारत ॥ ९

शिखण्डिनमथायान्तं रथेन रथिनां वरम् ।
कृपश्शारद्वतो राजन् वारयामास धन्विनाम् ॥ १०

प्रतिविन्ध्यमथायान्तं मयूरसदृशैर्हयैः ।
दुश्शासनो महाराज यत्तो यत्तमवारयन् ॥ ११

भैमसेनिमथायान्तं मायाशतविशारदम् ।
अश्वत्थामा पितुर्मानं कुर्वाणः प्रत्यपेधयन् ॥ १२

द्रुपदं वृषसेनस्तु ससैन्यं सपदानुगम् ।
वारयामास समरे द्रोणप्रेप्सुं महारथम् ॥ १३

विराटं द्रुतमायान्तं द्रोणस्य निधनं प्रति ।
मद्रराजस्सुसङ्क्रुद्धो वारयामास संयुगे ॥ १४

शतानीकमथायान्तं नाकुलिं रभसं रणे ।
चित्रसेनो रुरोधाशु [1]शरैर्द्रोणाभिकाङ्क्षया ॥ १५

अर्जुनं च युधां श्रेष्ठं प्राद्रवन्तं महारथम् ।

1. ब—इतोऽर्धद्वयं नास्ति

अलायुधो रुरोधाशु राक्षसेन्द्रो महाबलः ॥ १६

तथा द्रोणं महेष्वासं निघ्नन्तं सर्वसोमकान् ।
धृष्टद्युम्नोऽथ पाञ्चाल्यो धृष्टरूपमवारयत् ॥ १७

तथाऽन्यान् पाण्डवेयांश्च समायातान् महारथान् ।
तावका रथिनो राजन् वारयामासुरोजसा ॥ १८

गजारोहा गजैस्तूर्णं सन्निपत्य महामृधे ।
योधयन्तस्स्म दृश्यन्ते शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १९

निशीथे तुरगा राजन्नाद्रवन्तः परस्परम् ।
समदृश्यन्त वेगेन पक्षवन्तो यथाऽद्रयः ॥ २०

सादिनस्सादिभिस्सार्धं प्रासशक्त्यृष्टिपाणयः ।
समागच्छन् महाराज विनदन्तः पृथक् पृथक् ॥ २१

नरास्तु न्यधमंस्तत्र समासाद्य परस्परम् ।
गदाभिर्मुसलैश्चैव नानाशस्त्रैश्च सङ्घशः ॥ २२

कृतवर्मा तु हार्दिक्यो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
वारयामास सङ्क्रुद्धो वेलेवोद्वृत्तमर्णवम् ॥ २३

युधिष्ठिरस्तु हार्दिक्यं विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
पुनर्विव्याध विंशत्या तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २४

कृतवर्मा तु सङ्क्रुद्धो धर्मपुत्रस्य मारिष ।

धनुश्चिच्छेद भल्लेन तं च विव्याध सप्तभिः ॥ २५

अथान्यद्धनुरादाय धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
हार्दिक्यं दशभिर्बाणैर् बाह्वोरुरसि चार्पयन् ॥ २६

हार्दिक्यस्तु रणे विद्धो धर्मपुत्रेण मारिष ।
प्राकम्पत च रोषेण सप्तभिश्चार्दयच्छरैः ॥ २७

तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा हस्तावापं निकृत्य च ।
प्राहिणोन्निशितान बाणान पञ्च राजञ् छिलाशितान् ॥ २८

ते तस्य कवचं भित्त्वा हेमपृष्ठं महाधनम् ।
प्राविशन धरणीमुग्रा वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ २९

अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण सोऽन्यदादाय कार्मुकम् ।
विव्याध पाण्डवं षष्ट्या सूतं च नवभिश्शरैः ॥ ३०

तस्य शक्तिममेयात्मा चिक्षेप भुजगोपमाम् ।
पाण्डवो भरतश्रेष्ठ रथे न्यस्य महद्धनुः ॥ ३१

सा हेमचित्रा महती पाण्डवेयेन प्रेरिता ।
निर्भिद्य दक्षिणं बाहुं प्राविशद्धरणीतलम ॥ ३२

एतस्मिन्नेव काले तु गृह्य पार्थः पुनर्धनुः ।
हार्दिक्यं छादयामास शरैस्सन्नतपर्वभिः ॥ ३३

ततस्तु समरे शूराः कुरूणां प्रवरं युधि ।
व्यश्वसूतरथं चक्रे निमेषार्धाद् युधिष्ठिरम् ॥ ३४

ततस्तु पाण्डवज्येष्ठः खड्गं चर्म समाददे ।
तदस्य निशितैर्बाणैर् व्यधमन्माधवो रणे ॥ ३५

तोमरं तु ततो गृह्य स्वर्णदण्डं दुरासदम् ।
प्रैषयत् समरे तूर्णं हार्दिक्यस्य महात्मनः ॥ ३६

तमापतन्तं सहसा धर्मराजकराच्च्युतम् ।
द्विधा चिच्छेद हार्दिक्यः कृतहस्तस्स्मयन्निव ॥ ३७

ततश्शरशतेनाजौ धर्मपुत्रमवाकिरत् ।
कवचं चास्य सङ्क्रुद्धो बाणजालैरवाकिरत् ॥ ३८

हार्दिक्यशरसङ्कृत्तं कवचं तन्महाधनम् ।
व्यशीर्यत रणे राजंस् ताराजालमिवाम्बरात् ॥ ३९

स च्छिन्नधन्वा विरथश् शीर्णवर्मा शराचितः ।
अपायासीद्रणात् तूर्णं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ४०

कृतवर्मा तु निर्जित्य धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
पुनर्द्रोणस्य जुगुपे चक्रमेव महाबलः ॥ ४१

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १३७ ॥
॥ ७० ॥ घटोत्कचवधपर्वणि नवमोऽध्याय ॥ ९ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ४१ श्लोकाः ]

## ॥ अष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

सात्यकिना भूरिनाम्नो राज्ञो वधः ॥ १ ॥ द्रौणिना घटोत्कचपराजयः ॥ २ ॥ भीमेन दुर्योधनपराभवः ॥ ३ ॥

सञ्जयः—

भूरिस्तु समरे राजन् शैनेयं रथिनां वरम् ।
आपतन्तमपामेधत् प्रपातादिव कुञ्जरम् ॥ १

अथैनं सात्यकिः क्रुद्धः पञ्चभिर्निशितैश्शरैः ।
विव्याध समरे तूर्णं तेऽपिबंस्तस्य शोणितम् ॥ २

तथैव कौरवो युद्धे शैनेयं युद्धदुर्मदम् ।
दशभिर्विशिखैस्तीक्ष्णैर् अविध्यत भुजान्तरे ॥ ३

तावन्योन्यं महाराज ततक्षाते शरैर्भृशम् ।
क्रोधसंरक्तनयनौ क्रोधाद्विस्फार्य कार्मुके ॥ ४

तयोरासीन्महाराज शस्त्रवृष्टिस्सुदारुणा ।
क्रुद्धयोस्सायकमुचोर् यमान्तकनिकाशयोः ॥ ५

तावन्योन्यं शरव्रातैः प्रच्छाद्य समरे स्थितौ ।
मुहूर्तं चैव तद्युद्धं समरूपमिवाभवत् ॥ ६

ततः क्रुद्धो महाराज शैनेयः प्रहसन्निव ।
धनुश्चिच्छेद समरे कौरव्यस्य महात्मनः ॥ ७

अथैनं छिन्नधन्वानं नवभिर्निशितैश्शरैः ।
विव्याध हृदये तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ८

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुतापनः ।
धनुरन्यत् समादाय सात्वतं प्रत्यविध्यत ॥ ९

स विद्ध्वा सात्वतं बाणैस् त्रिभिरेव विशां पते ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सुतीक्ष्णेन हसन्निव ॥ १०

छिन्नधन्वा महाराज सात्वतः क्रोधमूर्च्छितः ।
प्रजहार महावेगां शक्तिं तस्य महोरसि ॥ ११

स तु शक्त्या विभिन्नाङ्गो निपपात रथोत्तमात् ।
लोहिताङ्ग इवाकाशाद् दीप्तरश्मिर्यदृच्छया ॥ १२

तं तु दृष्ट्वा हतं शूरम् अश्वत्थामा महारथः ।
अभ्यधावत वेगेन शैनेयं प्रति संयुगे ॥ १३

अभ्यवर्षच्छरौघेण मेरुं वृष्ट्येव तोयदः ॥ १३॥

तमापतन्तं वेगेन शैनेयस्य रथं प्रति ।
घटोत्कचोऽब्रवीद्राजन् नादं मुक्त्वा महारथः ॥ १४॥

घटोत्कच.—

तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन् द्रोणपुत्र गमिष्यसि ।
एष त्वां निहनिष्यामि महिषं मृगराडिव ॥ १५॥

युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे ॥ १६

सञ्जयः—

इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षो राक्षसः परवीरहा ।
द्रौणिमभ्यद्रवन् क्रुद्धो गजेन्द्रमिव केसरी ॥　१७

रथाक्षमात्रैरिषुभिर् अभ्यवर्षद्घटोत्कचः ।
रथिनामृषभं द्रौणिं धाराभिरिव तोयदः ॥　१८

शरवृष्टिं शरैर्द्रौणिर् अप्राप्तामन्वशातयन् ॥　१८॥

ततश्शरशतैस्तीक्ष्णैर् मर्मभेदिभिराशुगैः ।
समाचिनोद्राक्षसेन्द्रं घटोत्कचमरिन्दमम् ॥　१९॥

स शरैराचितस्तेन राक्षसो रणमूर्धनि ।
व्यराजत महाराज श्वाविद् छललतो यथा ॥　२०॥

ततः कोपसमाविष्टो भैमसेनिः प्रतापवान ।
शरैरवचकर्तोग्रैर् द्रौणिं वज्राशनिस्वनैः ॥　२१॥

क्षुरप्रैरर्धचन्द्रैश्च नाराचैस्सशिलीमुखैः ।
वराहकर्णैरन्यैश्च विकर्णैश्चाप्यपीडयन् ॥　२२॥

तां शस्त्रवृष्टिं तुमुलां वज्राशनिसमस्वनाम् ।
पतन्तीमुपरि क्रुद्धो द्रौणिरव्यथितेन्द्रियः ॥　२३॥

सुदुस्सहां शरैर्घोरैर् दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रितैः ।
व्यधमन् सुमहातेजा महाभ्राणीव मारुतः ॥　२४॥

ततोऽन्तरिक्षे बाणानां सङ्ग्रामोऽन्य इवाभवन् ।

घोररूपो महाराज योधानां प्रीतिवर्धनः ॥ २५॥

ततोऽस्त्रसङ्घर्षकृतैर् विष्फुलिङ्गैरितस्ततः ।
बभौ निशामुखे व्योम खद्योतैरिव संवृतम् ॥ २६॥

स मार्गणगणैर्द्रौणिर् दिशः प्रच्छाद्य सर्वतः ।
प्रियार्थं तव पुत्राणां राक्षसं समवाकिरत् ॥ २७॥

ततः प्रववृते युद्धं द्रौणिराक्षसयोर्मृधे ।
विगाढे रजनीमध्ये शक्रप्रह्लादयोरिव ॥ २८॥

ततो घटोत्कचो बाणैर् दशभिर्गौतमीसुतम् ।
जघानोरसि सङ्क्रुद्धः कालज्वलनसन्निभैः ॥ २९॥

स तैरत्यायतैर्विद्धो राक्षसेन महाबलः ।
चचाल समरे द्रौणिर् वातनुन्न इव द्रुमः ॥ ३०॥

स मोहं समरे प्राप्तो ध्वजयष्टिं समाश्रितः ॥ ३१

ततो हाहाकृतं सर्वं तव सैन्यं जनाधिप ।
हतं सम्मेनिरे सर्वे द्रोणसूनुं जनाधिपाः ॥ ३२

तं तु दृष्ट्वा तथावस्थम् अश्वत्थामानमाहवे ।
पाञ्चालास्सृञ्जयाश्चैव सिंहनादं प्रचक्रिरे ॥ ३३

प्रतिलभ्य ततस्संज्ञाम् अश्वत्थामा महाबलः ।
धनुः प्रपीड्य वामेन करेणामित्रकर्शनः ॥ ३४

मुमोचाकर्णपूर्णेन धनुषा शरमुत्तमम् ।
यमदण्डोपमं घोरम् उद्दिश्याशु घटोत्कचम् ॥ ३५

स भित्त्वा हृदयं तस्य राक्षसस्य शरोत्तमः ।
विवेश वसुधामुग्रम् सपुङ्खः पृथिवीपते ॥ ३६

सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् ।
राक्षसेन्द्रस्स बलवान् द्रौणिना रणमानिना ॥ ३७

दृष्ट्वा विमूढं हैडिम्बं राक्षसं तं रणाजिरात् ।
द्रौणेस्सकाशात् सम्भ्रान्तम् त्वपनिन्येऽथ सारथिः ॥ ३८

तथा तु समरे विद्ध्वा राक्षसेन्द्रं घटोत्कचम् ।
ननाद सुमहानादं द्रोणपुत्रो महाबलः ॥ ३९

पूजितस्तव पुत्रैश्च सर्वयोधैश्च भारत ।
वपुषाऽभिप्रजज्वाल मध्याह्न इव भास्करः ॥ ४०

भीमसेनं तु युध्यन्तं भारद्वाजरथं प्रति ।
स्वयं दुर्योधनो राजा प्रत्यविध्यच्छितैश्शरैः ॥ ४१

तं भीमसेनो नवभिश् शरैर्विव्याध भारत ।
दुर्योधनोऽपि विंशत्या शराणां प्रत्यविध्यत ॥ ४२

तौ सायकैरवच्छिन्नावदृश्येतां रणाजिरे ।
मेघजालसमाच्छन्नौ नभसीवेन्दुभास्करौ ॥ ४३

ततो दुर्योधनो राजा भीमं विव्याध पत्रिभिः ।

पञ्चभिर्भरतश्रेष्ठ तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ४४

तस्य भीमो धनुश्छित्त्वा ध्वजं च नवभिश्शरैः ।
विव्याध कौरवश्रेष्ठं नवत्या नतपर्वणाम् ॥ ४५

ततो दुर्योधनः क्रुद्धो भीमसेनं शितैश्शरैः ।
अपीडयद्रणमुखे पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥ ४६

निहत्य तु शरान् भीमो दुर्योधनधनुश्च्युतान् ।
कौरवं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समर्पयत् ॥ ४७

दुर्योधनस्तु सङ्क्रुद्धो भीमसेनस्य मारिष ।
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा दशभिः प्रत्यविध्यत ॥ ४८

अथान्यद्धनुरादाय भीमसेनो महाबलः ।
विव्याध नृपतिं तूर्णं सप्तभिर्निशितैश्शरैः ॥ ४९
तदप्यस्य धनुः क्षिप्रं चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ ४९॥

[1]द्वितीयं च तृतीयं च चतुर्थं पञ्चमं तथा ।
आत्तमात्तं महाराज जितकाशी मदोत्कटः ॥ ५०॥

तथा सञ्छिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनः पुनः ।
शक्तिं चिक्षेप समरे सर्वपारशवीं शुभाम् ॥ ५१॥

अप्राप्तामेव तां शक्तिं द्विधा चिच्छेद कौरवः ।
पश्यतस्सर्वलोकस्य भीमस्य च महात्मनः ॥ ५२॥

1. ख—इदमर्धं नास्ति

ततः क्रुद्धो भीमसेनस् तव पुत्रं महारथम् ।
[1-2]गदां गुर्वीं महाराज महाबलपराक्रमः ॥ ५३॥

चिक्षेपाविध्य वेगेन दुर्योधनरथं प्रति ॥ ५४

ततस्सा सहसा वाहांस् तव पुत्रस्य संयुगे ।
सारथिं च महागुर्वी ममर्द भरतर्षभ ॥ ५५

पुत्रस्य तव राजेन्द्र रथं हेमपरिष्कृतम् ।
आप्लुतस्सहसा राजन् नन्दकस्य महात्मनः ॥ ५६

ततो भीमो हतं मत्वा तव पुत्रं महारथम् ।
सिंहनादं महच्चक्रे तर्जयन् निशि कौरवान् ॥ ५७

तावकास्सैनिकाश्चैव मेनिरे निहतं नृपम् ।
ततो विचुक्रुशुस्सर्वे हा हा हेति समन्ततः ॥ ५८

तेषां तु निनदं श्रुत्वा त्रस्ताना सर्वयोधिनाम् ।
भीमसेनस्य नादं च श्रुत्वा राजन् महात्मनः ॥ ५९

ततो युधिष्ठिरो राजा हतं मत्वा सुयोधनम् ।
अभ्यवर्तत वेगेन यत्र पार्थो वृकोदरः ॥ ६०

पाञ्चालाः केकया मात्स्यास् सृञ्जयाश्च विशां पते ।
सर्वोद्योगेनाभिजग्मुर् द्रोणमेव युयुत्सया ॥ ६१

---

1. अ-ङ—सहार्धानि न सन्ति
2. ख—नास्तीदमर्धम्

तत्रासीन् सुमहद्युद्धं द्रोणस्याथ परैस्सह ।
घोरे तमसि मग्नानां निघ्नतामितरेतरम् ॥ ६२

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि अष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥
॥ ७० ॥ घटोत्कचवधपर्वणि दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥
[अस्मिन्नध्याये ६२ श्लोका:]

## ॥ एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

कर्णेन सहदेवस्य पराजयपूर्वकमवहेलनम् ॥ १ ॥ शल्येन विराटपराजयः ॥ २ ॥ अर्जुनेनालायुधपराजयः ॥ ३ ॥

सञ्जय:—

सहदेवं तथा यान्तं द्रोणप्रेप्सुं विशां पते ।
[1]कर्णो वैकर्तनो युद्धे वारयामास वीर्यवान् ॥ १

सहदेवस्तु राधेयं विद्ध्वा नवभिराशुगैः ।
पुनर्विव्याध दशभिर् निशितैर्नतपर्वभिः ॥ २

तं कर्णः प्रतिविव्याध शतेन नतपर्वणाम् ।
सज्यं चास्य धनुश्शीघ्रं चिच्छेद लघुहस्तवत् ॥ ३

ततोऽन्यद्धनुरादाय माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ।
कर्णं विव्याध विंशत्या तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४

1. ख—अर्धद्वयं नास्ति

तस्य कर्णो हयान् हत्वा शरैस्सन्नतपर्वभिः ।
सारथिं चास्य भल्लेन द्रुतं निन्ये यमक्षयम् ॥ ५

विरथस्सहदेवस्तु खड्गं चर्म समाददे ।
तदप्यस्य शरैः कर्णो व्यधमत् प्रहसन्निव ॥ ६

ततो गुर्वीं गदां घोरां हेमचित्रामयस्मयीम् ।
प्रेषयामास समरे वैकर्तनरथं प्रति ॥ ७

तामापतन्तीं सहसा सहदेवप्रचोदिताम् ।
व्यष्टम्भयच्छरैः कर्णो भूमौ चैनामपातयत् ॥ ८

गदां विनिहतां दृष्ट्वा सहदेवस्त्वरान्वितः ।
शक्तिं चिक्षेप कर्णाय तामप्यस्याच्छिनच्छरैः ॥ ९

असम्भ्रान्तस्ततस्तूर्णम् अवप्लुत्य रथोत्तमात् ।
सहदेवो महाराज दृष्ट्वा कर्णमवस्थितम् ॥ १०

रथचक्रं ततो गृह्य मुमोचातिरथं प्रति ॥ १०॥

तमापतन्तं सहसा कालचक्रमिवोद्यतम् ।
शरैरनेकसाहस्रैर् आच्छिनत् सूतनन्दनः ॥ ११॥

तस्मिंस्तु वितथे चक्रे कृतेऽनेन महात्मना ।
वार्यमाणस्तु विशिखैस् सहदेवो रणं जहौ ॥ १२॥

तमभिद्रुत्य राधेयो मुहूर्ताद्भरतर्षभ ।
अब्रवीत् प्रहसन् वाक्यं सहदेवं विशां पते ॥ १३॥

कर्ण —

मा युध्यस्व रणे वीर विशिष्टैररिभिस्सह ।
सदृशैर्युध्य माद्रेय वचो मे मा विशङ्कथाः ॥ १४॥

सञ्जयः—

अथैनं धनुषोग्रेण तुदन् भूयोऽब्रवीद्वचः ॥ १५

कर्णः—

एषोऽर्जुनो रणे शूरो युध्यते कुरुभिस्सह ।
तत्र त्वं गच्छ माद्रेय गृहं वा यदि मन्यसे ॥ १६

सञ्जयः—

एवमुक्त्वा तु तं कर्णो रथेन रथिनां वरः ।
प्रायात् पाञ्चालपाण्डूनां बलानि प्रमथन्निव ॥ १७
वधं प्राप्तं तु माद्रेयं नावधीत् समरेऽरिहा ।
स्मृत्वा कुन्त्या वचो राजन् सत्यसन्धो महारथः ॥ १८
सहदेवस्ततो राजन् विमनाश्शरपीडितः ।
कर्णवाक्शल्यतप्तश्च जीविताग्निरविद्यत ॥ १९
आरुरोह रथं तूर्ण पाञ्चाल्यस्य महात्मनः ।
जनमेजयस्य समरे त्वरायुक्तो महारथः ॥ २०
विराटं सहसेनं तु द्रोणार्थे द्रुतमागतम् ।
मद्रराजश्शरौघेण च्छादयामास धन्विनम् ॥ २१
तयोस्समभवद्युद्धं समरे दृढधन्विनोः ।

[1]यादृशं ह्यभवद्युद्धं जम्भवासवयोः पुरा ॥ २२

मद्रराजो महाराज विराटं पृतनापतिम् ।
आजघ्ने त्वरितस्तूर्णं शतेन नतपर्वणाम् ॥ २३

प्रतिविव्याध तं राजन् नवभिर्निशितैश्शरैः ।
पुनश्चान्यैस्त्रिसप्तत्या भूयश्चैव शतेन तु ॥ २४

तस्य मद्राधिपो हत्वा चतुरो रथवाजिनः ।
सूतं ध्वजं च समरे शराभ्यां संन्यपातयन् ॥ २५

हताश्वात् तु रथात् तूर्णम् अवप्लुत्य महीपतिः ।
तस्थौ विस्फारयंश्चापं विमुञ्चंश्च शिताञ् छरान् ॥ २६

शतानीकस्ततो दृष्ट्वा भ्रातरं हतवाहनम् ।
रथेनाभ्यपतन् तूर्णं सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ २७

शतानीकमथायान्तं मद्रराजो महामृधे ।
विशिखैर्बहुभिर्विद्ध्वा ततो निन्ये यमक्षयम् ॥ २८

तस्मिंस्तु निहते वीरे विराटो रथसत्तमः ।
आरुरोह रथं तूर्णं तमेव ध्वजमालिनम् ॥ २९

ततो विस्फार्य नयने क्रोधाद्द्विगुणविक्रमः ।
मद्रराजरथं तूर्णं छादयामास पार्थिवः ॥ ३०

ततो मद्राधिपश्शूरश् शतेन नतपर्वणाम् ।

---

1. ख—अर्धचतुष्टयं नास्ति

आजघानोरसि दृढं विराटं वाहिनीपतिम् ॥ ३१

सोऽतिविद्धो बलवता रथोपस्थ उपाविशत् ।
कश्मलं चाविशत् तूर्णं विराटो भरतर्षभ ॥ ३२
सारथिस्तमपोवाह समरे शरविक्षतम् ॥ ३२॥

ततस्तु पाण्डवी सेना प्राद्रवन्निशि भारत ।
वध्यमाना शरशतैश् शल्येनाहवशोभिना ॥ ३३॥

तां दृष्ट्वा विद्रुतां सेना वासुदेवधनञ्जयौ ।
प्रायाता तत्र राजेन्द्र यत्र शल्यो व्यवस्थितः ॥ ३४॥

तौ तु प्रत्युद्ययौ राजन् राक्षसेन्द्रो ह्यलायुधः ।
अष्टचक्रसमायुक्तम् आस्थाय प्रवरं रथम् ॥ ३५॥

तुरङ्गममुखैर्युक्तं पिशाचैर्घोरदर्शनैः ।
लोहितार्द्रपताकं तं चित्रमाल्यविभूषितम् ॥ ३६॥

कृष्णायसमयं घोरम् ऋक्षचर्मावृतं महत् ॥ ३७

रौद्रेण चित्रपक्षेण विवृताक्षेण कूजता ।
ध्वजेनोच्छ्रितदण्डेन गृध्ररूपेण पक्षिणा ॥ ३८

स बली राक्षसो राजन् भिन्नाञ्जनचयोपमः ।
रुरोधार्जुनमायान्तं प्रभञ्जनमिवाद्रिराट् ॥ ३९

किरन् बाणगणान् राजञ् शतशोऽर्जुनमूर्धनि ॥ ३९॥

अतितीव्रमभूद्युद्धं नरराक्षसयोर्मृधे ।

[1]ईक्षितृप्रीतिजननं सर्वेषामेव भारत ॥ ४०॥

गृध्रकाकबलोलूककङ्कगोमायुहर्षणम् ।
तमर्जुनश्शतेनैव पत्रिणामभ्यताडयत् ॥ ४१॥

नवभिश्च शितैर्बाणैश् चिच्छेद ध्वजमुच्छ्रितम् ॥ ४२

सारथिं च त्रिभिर्बाणैस् त्रिभिरेव त्रिवेणुकम् ।
धनुरेकेन चिच्छेद चतुर्भिश्चतुरो हयान ॥ ४३

विरथस्योद्यतं खड्गं शरेणास्य द्विधाऽच्छिनत् ॥ ४३॥

अथैनं निशितैर्बाणैश् चतुर्भिर्भरतर्षभ ।
पार्थोऽर्दयद्राक्षसेन्द्रं स विद्धः प्राद्रवद्भयात् ॥ ४४॥

तं विजित्यार्जुनस्सङ्ख्ये द्रोणान्तिकमुपाययौ ।
किरन्निषुगणान राजन रथवारणवाजिषु ॥ ४५॥

वध्यमाना महाराज पाण्डवेन यशस्विना ।
सैनिका न्यपतन्नुर्व्यां वातनुन्ना इव द्रुमाः ॥ ४६॥

तेषु नूत्साद्यमानेषु पाण्डवेन महात्मना ।
सम्प्राद्रवद्बलं सर्वं पुत्राणां ते विशां पते ॥ ४७॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥
॥ ७० ॥ घटोत्कचवधपर्वणि एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥
[अस्मिन्नध्याये ४७॥ श्लोका ]

---

1 क-ख-ङ—नास्तीदमर्धम्

## ॥ चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

नकुलयुद्धम् ॥ १ ॥ नकुलकृपाभ्यां शकुनिशिखण्डिपराजयः ॥ २ ॥

सञ्जय —

शतानीकं शरैस्तूर्णं निर्दहन्तं चमूं तव ।
चित्रसेनस्तव सुतो वारयामास भारत ॥ १

नाकुलिश्चित्रसेनं तु नाराचैरर्दयत्कृशम् ।
स च तं प्रतिविव्याध नवभिर्निशितैश्शरैः ॥ २

चित्रसेनो महाराज शतानीकं पुनर्युधि ।
नवभिर्निशितैर्बाणैर् आजघान स्तनान्तरे ॥ ३

नाकुलिस्तस्य विशिखैर् वर्म सन्नतपर्वभिः ।
गात्रात् प्रच्यावयामास तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४

सोऽपेतवर्मा पुत्रस्ते विरराज भृशं नृप ।
उत्सृज्य काले राजेन्द्र निर्मोकमिव पन्नगः ॥ ५

ततोऽस्य निशितैर्बाणैर् ध्वजं चिच्छेद नाकुलिः ।
धनुश्चैव महाराज यतमानस्य संयुगे ॥ ६

स च्छिन्नधन्वा समरे विवर्मा च महारथः ।
धनुरन्यन्महाराज जग्राहारिविदारणम् ॥ ७

ततस्तूर्णं चित्रसेनो नाकुलिं निशितैश्शरैः ।

विव्याध समरे क्रुद्धो भरतानां महारथः ॥ ८

शतानीकोऽपि सङ्क्रुद्धश् चित्रसेनस्य मारिष ।
व्यधमच्चतुरो वाहान सारथिं च शरोत्तमैः ॥ ९

अवप्लुत्य रथात् तस्माच् चित्रसेनो महाबलः ।
नाकुलिं पञ्चविंशत्या शराणामार्दयद्बली ॥ १०

तस्य तत् कुर्वतः कर्म नकुलस्य सुतो रणे ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद चापं रुक्मविभूषितम् ॥ ११

स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
आरुरोह रथं तूर्णं हार्दिक्यस्य महात्मनः ॥ १२

द्रुपदं तु सहानीकं द्रोणप्रेप्सुं महारथम् ।
वृषसेनोऽभ्ययाद्राजन [1]किरन्निपुणैस्तथा ॥ १३

यज्ञसेनस्तु समरे कर्णपुत्रं महारथम् ।
[2]षष्ट्या शराणां विव्याध बाह्वोरुरसि चानघ ॥ १४

वृषसेनस्तु सङ्क्रुद्धो यज्ञसेनं महारथम् ।
बहुभिस्सायकैस्तीक्ष्णैर् आजघान स्तनान्तरे ॥ १५

तावुभौ शरनुन्नाङ्गौ शरकण्टकिनौ रणे ।
व्यभ्राजेतां महाराज श्वाविधौ शललैरिव ॥ १६

---

1. घ—निशीथे भैरवे सति-मध्ये सार्धश्लोकाष्टकं नास्ति
2. ख—इदमर्धद्वयं नास्ति

रुक्मपुङ्खैरजिह्माग्रैश् शरैश्छिन्नतनुच्छदौ ।
रुधिरौघपरिक्लिन्नौ व्यभ्राजेतां महामृधे ॥ १७

तपनीयनिभौ चित्रौ कल्पवृक्षाविवाद्भुतौ ।
किंशुकाविव चोत्फुल्लौ [1]चकाशाते रणाजिरे ॥ १८

वृषसेनस्ततो राजन् नवभिर्द्रुपदं रणे ।
विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या पुनश्चान्यैस्त्रिभिश्शरैः ॥ १९
[2]वृषसेनशरैर्नुन्नो व्यपायासीन्महीपतिः ॥ १९॥

ततश्शरसहस्राणि विमुञ्चन विबभौ तदा ।
कर्णपुत्रो महाराज वर्षमाण इवाम्बुदः ॥ २०॥

ततस्तद्द्रुपदानीकं शरैश्छिन्नतनुच्छदम् ।
सम्प्राद्रवद्रणाद्राजन निशीथे भैरवे सति ॥ २१॥

प्रदीपैर्हि परित्यक्ता ज्वलद्भिस्तैस्समन्ततः ।
व्यराजद्वसुधा तत्र वीताभ्रा द्यौरिव ग्रहैः ॥ २२॥

तथाऽङ्गदैर्निपतितैर् व्यराजत वसुन्धरा ।
प्रावृषीव महाराज विद्युद्भिर्जलदावली ॥ २३॥

तत्र कर्णसुतत्रस्तास् सोमका विप्रदुद्रुवुः ।
यथेन्द्रभयवित्रस्ता दानवास्तारकामये ॥ २४॥

तेनार्द्यमानास्समरे द्रवमाणाश्च सोमकाः ।

---

1. ख—चकाशेते 2. ख—इदमर्धं नास्ति

व्यकाशन्त महाराज प्रदीपैरवभासिताः ॥ २५॥

तांस्तु निर्जित्य समरे कर्णपुत्रो व्यरोचत ।
मध्यन्दिनमनुप्राप्तो घर्मांशुरिव भारत ॥ २६॥

तेषु राजसहस्रेषु तावकेषु परेषु च ।
एष एव ज्वलंस्तस्थौ वृषसेनः प्रतापवान् ॥ २७॥

स विजित्य रणे शूरान् सोमकाना महारथान् ।
जगाम त्वरितो राजन् यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ २८॥

प्रतिविन्ध्यमथ क्रुद्धं प्रदहन्तं रणे रिपून् ।
दुश्शासनस्तव सुतः प्रत्युद्गच्छन्महारथः ॥ २९॥

तयोस्समागमो राजंश् चित्ररूपो बभूव ह ।
व्यपेतजलदे व्योम्नि बुधभास्करयोरिव ॥ ३०॥

प्रतिविन्ध्यं तु समरे कुर्वाणं कर्म दुष्करम् ।
अपूजयन् महाराज तव सैन्ये महारथाः ॥ ३१॥

दुश्शासनं त्रिभिर्बाणैर् ललाटे प्रत्यविध्यत ॥ ३२

सोऽतिविद्धो बलवता तव पौत्रेण धन्विना ।
विरराज महाबाहुस् त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ॥ ३३

दुश्शासनस्तु समरे प्रतिविन्ध्यं महारथः ।
नवभिस्सायकैर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ ३४

तत्र भारत पुत्रस्ते कृतवान कर्म दुष्करम् ॥ ३४॥

प्रतिविन्ध्यं यदत्युग्रैः प्रासतोमरसायकैः ।
सारथिं चास्य भल्लेन ध्वजं च समपातयत् ॥ ३५॥

[1]रथं च तिलशो राजन व्यधमत् तस्य धन्विनः ॥ ३६

पताकाश्च सतूणीरा रश्मीन योक्त्राणि चाभि भो ।
चिच्छेद तिलशः क्रुद्धश् शरैस्सन्नतपर्वभिः ॥ ३७

विरथस्स तु धर्मात्मा धनुष्पाणिरवस्थितः ।
अयोधयत् तव सुतं किरञ् शरशतान बहून ॥ ३८

क्षुरप्रेण धनुस्तस्य चिच्छेद तनयस्तव ।
अथैनं दशभिर्बाणैश् छिन्नधन्वानमार्दयत् ॥ ३९

तं दृष्ट्वा विरथं तूर्णं भ्रातरोऽस्य महारथाः ।
अन्ववर्तन्त वेगेन महत्या सेनया वृताः ॥ ४०

सोऽवप्लुतस्ततो यानं सुतसोमस्य भास्वरम् ।
धनुर्गृह्य महाराज विव्याध तनयं तव ॥ ४१

ततस्तु तावकास्सर्वे परिवार्य सुतं तव ।
अभ्यवर्तन्त समरे महत्या सेनया वृताः ॥ ४२

ततः प्रववृते युद्धं तव तेषां च भारत ।
निशीथे दारुणे काले यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ ४३

1 ङ—अर्धपञ्चकं नास्ति

* ख—कोशातिरिक्तेषु सर्वेषु कोशेषु अत्राध्यायसमाप्तिर्दृश्यते

नकुलं रभसं युद्धे निघ्नन्तं वाहिनीं तव ।
अभ्ययात् सौबलः क्रुद्धस् तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ४४

[1]कृतवैरौ तु तौ वीरौ परस्परवधैषिणौ ।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैर् अन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ ४५

यथैव नकुलो राजञ् शरवर्षाण्यमुञ्चत ।
तथैव सौबलोऽप्यस्मिन् शिक्षां सन्दर्शयन् युधि ॥ ४६

तावुभौ समरे शूरौ शरकण्टकिनौ तदा ।
व्यराजेतां महाराज कण्टकैरिव शाल्मली ॥ ४७

सजिह्मं प्रेक्षमाणौ च राजन् विवृतलोचनौ ।
क्रोधसंरक्तनयनौ निर्दहन्तौ परस्परम् ॥ ४८

स्यालस्तु तव सङ्क्रुद्धो माद्रीपुत्रं हसन्निव ।
कर्णिनैकेन विव्याध हृदये निशितेन च ॥ ४९

नकुलस्तु भृशं विद्धस् स्यालेन तव धन्विना ।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं चैनमाविशत् ॥ ५०

अत्यन्तवैरिणं दृप्तं दृष्ट्वा शत्रुं तथागतम् ।
ननाद शकुनी राजंस् तपान्ते जलदो यथा ॥ ५१

---

* ङ—कोशे इत. अध्यायसमाप्तिपर्यन्तश्लोका न सन्ति

1 क-घ—कृतवैरौ रणे शूरौ
ख—कृतवैरौ तु तौ शूरौ अन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ ।

प्रतिलभ्य ततस्संज्ञां नकुलः पाण्डुनन्दनः ।
अभ्ययात् सौबलं भूयो व्यात्तानन इवान्तकः ॥ ५२

सङ्क्रुद्धश्शकुनिं षष्ट्या विव्याध भरतर्षभ ।
पुनश्चैव शतेनैव नाराचानां समाचिनोत् ॥ ५३

ततोऽस्य सशरं चापं मुष्टिदेशेऽच्छिनद्द्विधा ।
ध्वजं च त्वरितं छित्त्वा रथाद्भूमावपातयत् ॥ ५४

सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् ॥ ५४॥

तं विसंज्ञं निपतितं दृष्ट्वा स्यालं तवानघ ।
अपोवाह रथेनाशु सारथिर्ध्वजिनीमुखात् ॥ ५५॥

ततस्सञ्चुक्रुशुः पार्था ये च तेषां पदानुगाः ॥ ५६

निर्जित्य तु रणे शत्रून् नकुलश्शत्रुतापनः ।
अब्रवीत् सारथिं क्रुद्धो द्रोणानीकाय मा वह ॥ ५७

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा यन्ता तस्य महात्मनः ।
प्रायात् तस्य रणे राजन् येन द्रोणोऽभ्ययुध्यत ॥ ५८

शिखण्डिनं तु समरे द्रोणप्रेप्सुं विशां पते ।
कृपश्शारद्वतो यत्तः प्रत्युद्गच्छत् सुवेगितः ॥ ५९

गौतमं तु तथा यान्तं द्रोणस्यार्थचिकीर्षया ।
विव्याध नवभिर्भल्लैश् शिखण्डी प्रहसन्निव ॥ ६०

तमाचार्यो महाराज विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः ।

पुनर्विव्याध विशत्या पुत्राणा प्रियकृन् तव ॥ ६१

महद्युद्धं तयोरासीद् घोररूपं भयानकम ।
यथा देवासुरे युद्धे शम्बरामरराजयोः ॥ ६२

शरजालावृतं व्योम चक्रतुस्तौ महारथौ ।
प्रकृत्या घोररूपं तद् आसीद्घोरतरं पुनः ॥ ६३

रात्रिश्च भरतश्रेष्ठ योधाना युद्धशालिनाम् ।
कालरात्रिनिभा ह्यासीद् घोररूपा भयावहा ॥ ६४

शिखण्डी तु महाराज गौतमस्य महद्धनुः ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद सशरं निशितेन च ॥ ६५

तस्य क्रुद्धः कृपो राजन् शक्ति चिक्षेप दारुणाम् ।
स्वर्णदण्डामकुण्ठाग्रां कर्मारपरिमार्जिनाम् ॥ ६६

तामापतन्तीं चिच्छेद शिखण्डी बहुभिश्शरैः ।
साऽपतन्मेदिनीं कृत्वा भासयन्ती महाप्रभाम् ॥ ६७

अथान्यद्धनुरादाय गौतमो रथिनां वरः ।
प्राच्छादयच्छितैर्बाणैर् महाराज शिखण्डिनम् ॥ ६८

स च्छाद्यमानस्समरे गौतमेन यशस्विना ।
न्यषीदत रथोपस्थे शिखण्डी बहुभिश्शरैः ॥ ६९

सीदन्तं चैनमालोक्य कृपश्शारद्वतो युधि ।
आजघ्ने बहुभिर्बाणैर् जिघांसन्निव भारत ॥ ७०

विमुखं तु रणे दृष्ट्वा याज्ञसेनिं महारथम् ।
पाञ्चालास्सोमकाश्चैव परिवव्रुस्समन्ततः ॥ ७१

तथैव तव पुत्राश्च परिवव्रुर्द्विजोत्तमम् ।
महत्या सेनया सार्धं ततो युद्धमभूत् पुनः ॥ ७२

रथानां च रणे राजन्नन्योन्यमभिधावताम् ।
बभूव तुमुलश्शब्दो मेघानां स्तनतामिव ॥ ७३

द्रवतां सादिनां चैव गजानां च विशां पते ।
अन्योन्यमभितो राजन् क्रूरमायोधनं बभौ ॥ ७४

पत्तीना द्रवतां चैव पदशब्देन मेदिनी ।
अकम्पत महाराज योषेव भय[1]विह्वला ॥ ७५

रथा रथं समासाद्य प्रद्रुताः खगवद्द्रुतम् ।
व्यगृह्णन् बहवो राजञ् शलभान खगमा इव ॥ ७६

तथा गजान् प्रभिन्नांस्तु सुप्रभिन्ना महागजाः ।
तस्मिन्नेव पदे [2]यत्तास् सुनिगृह्णन्ति भारत ॥ ७७

सादी सादिनमासाद्य पदातींश्चापि पत्तयः ।
समासाद्य रणेऽन्योन्यं संरब्धा नातिचक्रमुः ॥ ७८

धावतां द्रवतां चैव पुनरावर्ततामपि ।
बभूव तव सैन्यानां शब्दस्सुतुमुलो निशि ॥ ७९

---

1 क-ख—विक्लबा

2. क-ब—यातास्सुनिगृह्णन्ति ख—यात निगृह्णन्ति स्म भारत

दीप्यमानास्सुदीपाश्च रथवारणवाजिषु ।
अदृश्यन्त महाराज महोल्का इव खाच्च्युताः ॥ ८०

सा निशा भरतश्रेष्ठ प्रदीपैरवभासिता ।
दिवसप्रतिमा राजन् बभूव रणमूर्धनि ॥ ८१

आदित्येन यथा व्याप्तं तमो लोके प्रणश्यति ।
तथा नष्टं तमो घोरं दीप्तैर्दीपैरलङ्कृतम् ॥ ८२

शस्त्राणां कवचाना च मणीना च महात्मनाम् ।
अन्तर्दधुः प्रभास्सर्वा दीपैस्तैरवभासिताः ॥ ८३

[1]तस्मिँल्लोकोत्तमे युद्धे वर्तमाने निशामुखे ।
अवधीत् समरे पुत्रं पिता भरतसत्तम ॥ ८४

पुत्रश्च पितरं मोहात् सखायं च सखा तथा ।
सम्बन्धिनं च सम्बन्धी स्वस्त्रीयं चापि मातुलः ॥ ८५

स्वे स्वान परे परांश्चापि निजघ्नुस्तत्र भारत ।
निर्मर्यादमभूद्युद्धं रात्रौ घोरं भयावहम् ॥ ८६

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥
॥ ७० ॥ घटोत्कचवधपर्वणि द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥
[अस्मिन्नध्याये ८६ श्लोकाः]

---

1 ख-घ—तस्मिन् कालोपमे

## ॥ एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

द्रोणधृष्टद्युम्नादीनां सङ्कुलयुद्धम् ॥

सञ्जयः—

[1]तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे वर्तमाने भयावहे ।
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणमेवाभ्यवर्तत ॥ १

सम्मृशानो धनुश्श्रेष्ठं विकर्षंश्च पुनः पुनः ।
अभ्यवर्तत द्रोणस्य रथं रुक्मविभूषितम् ॥ २

धृष्टद्युम्नं द्रुतं यान्तं द्रोणस्यान्तचिकीर्षया ।
परिवव्रुर्महाराज पाञ्चालाः पाण्डवैस्सह ॥ ३

तथा परिवृतं दृष्ट्वा द्रोणमाचार्यसत्तमम् ।
पुत्रास्ते सर्वतो यत्ता ररक्षुर्द्रोणमाहवे ॥ ४

बलार्णवौ ततस्तौ तु समेयातां निशामुखे ।
वातोद्धूतौ क्षुब्धसत्त्वौ भैरवौ सागराविव ॥ ५

ततो द्रोणं महाराज पाञ्चाल्यः पञ्चभिश्शरैः ।
विव्याध हृदये तूर्णं सिंहनादं ननाद च ॥ ६

तं द्रोणः पञ्चविंशत्या विद्ध्वा भारत संयुगे ।
चिच्छेदान्येन भल्लेन धनुरस्य महाप्रभम् ॥ ७

---

1 ङ—कोशे १-३१ पर्यन्ता ३१ श्लोका नोपलभ्यन्ते

धृष्टद्युम्नस्तु निर्विद्धो रणे द्रोणेन भारत ।
उत्ससर्ज धनुस्तूर्णं सन्दष्टदशनच्छदः ॥ ८

ततः क्रुद्धो महाराज धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
आदायान्यद्धनुर्दिव्यं द्रोणस्यान्तचिकीर्षया ॥ ९

विकृष्य च धनुश्श्रेष्ठम् आकर्णान् परवीरहा ।
द्रोणस्यान्तकरं घोरं व्यसृजन् सायकं ततः ॥ १०

स चोत्सृष्टो बलवता शरो घोरो महामृधे ।
भासयामास तत् सैन्यं दिवाकर इवोदितः ॥ ११

तं दृष्ट्वा तु शरं घोरं देवगन्धर्व[1]मानवाः ।
स्वस्त्यस्तु समरे राजन् द्रोणस्येत्यब्रुवन् वचः ॥ १२

तं तु सायकमप्राप्तम् आचार्यस्य रथं प्रति ।
कर्णो द्वादशधा राजश् चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ १३

स च्छिन्नो बहुधा राजन् सूतपुत्रेण मारिष ।
निपपात शरस्तूर्णं निकृत्तः कर्णसायकैः ॥ १४

छित्त्वा तु समरे बाणं शरैस्संनतपर्वभिः ।
धृष्टद्युम्नं ततः कर्णो विव्याध दशभिश्शरैः ॥ १५

पञ्चभिर्द्रोणपुत्रस्तु स्वयं द्रोणश्च सप्तभिः ।
शल्यश्च नवभिर्बाणैस् त्रिभिर्दुश्शासनस्तथा ॥ १६

---

1. क-ख-घ—दानवाः

दुर्योधनश्च विशल्या शकुनिश्चापि पञ्चभिः ।
पाञ्चाल्यं त्वरिता विध्यन सर्वं एव महारथाः ॥ १७

स विद्धस्सप्तभिर्वीरैर् द्रोणत्राणार्थमाहवे ।
सर्वानसम्भ्रमाद्राजन प्रत्यविद्ध्यन् त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १८

द्रोणं कर्णं च द्रौणिं च विव्याध तव चात्मजम् ॥ १८॥

ते भिन्ना धन्विना तेन धृष्टद्युम्नं पुनर्मृधे ।
विव्यधुश्चैनमेकैकः पञ्चभी रथिनां वरम् ॥ १९॥

द्युमत्सेनस्तु सङ्क्रुद्धः कर्णं विव्याध पत्रिणा ।
त्रिभिश्चान्यैश्शरैस्तूर्णं तिष्ट तिष्टेति चाब्रवीत् ॥ २०॥

स च तं प्रतिविव्याध त्रिभिस्तीक्ष्णैरजिह्मगैः ।
स्वर्णपुङ्खैश्शिलाधौतैः प्राणान्तकरणैर्युधि ॥ २१॥

भल्लेनान्येन स पुनस् सुवर्णोज्ज्वलकुण्डलम् ।
उन्ममाथ शिरः कायाद् द्युमत्सेनस्य वीर्यवान ॥ २२॥

तच्छिरो न्यपतद्भूमौ सन्दष्टौष्टपुटं रणे ।
महावातसमुद्धूतं पक्वं तालफलं यथा ॥ २३॥

द्युमत्सेनं हतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नः प्रतापवान ।
कर्णमभ्यर्दयद्राजन् सायकैर्बहुभिश्शितैः ॥ २४॥

तांश्च विद्ध्वा पुनर्वीरान वीरस्सुनिशितैश्शरैः ।
राधेयस्याच्छिनद्भल्लैः कार्मुकं चित्रयोधिनः ॥ २५॥

न च तन्ममृषे कर्णो धनुषश्छेदनं तथा ।
निकर्तनमिवात्युग्रो लाङ्गूलस्य यथा हरिः ॥　　२६॥

सोऽन्यद्धनुस्समादाय क्रोधाद्रक्तेक्षणश्श्वसन् ।
अभ्यवर्षच्छरौघैस्तं धृष्टद्युम्नं महाबलम् ॥　　२७॥

दृष्ट्वा तु कर्णं संरब्धं ते वीराष्षण्महारथाः ।
पाञ्चालपुत्रं त्वरिताः परिवव्रुर्जिघांसया ॥　　२८॥

षण्णां योधप्रवीराणां तावकानां पुरस्कृतम् ।
धृष्टद्युम्नमनुप्राप्तं मृत्युराष्ट्रममंस्महि ॥　　२९॥

एतस्मिन्नेव काले तु दाशार्हो विसृजञ् छरान् ।
धृष्टद्युम्नं पराक्रान्तं सात्यकिः प्रत्यपद्यत ॥　　३०॥

तमायान्तं महेष्वासं सात्यकिं युद्धदुर्मदम् ।
राधेयो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदजिह्मगैः ॥　　३१॥

तं सात्यकिर्महाराज विव्याध दशभिश्शरैः ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां मा गास्तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥　　३२॥

[1]स सात्यकेस्तु बलिनः कर्णस्य च महात्मनः ।

---

1. ङ—सञ्जयः—

नकुलं रभसं युद्धे निघ्नन्तं वाहिनीं तव ।
अभ्ययात्सौबलः क्रुद्धस् तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥
गान्धारेर्नकुलस्यापि वर्तमाने रणाजिरे ।
आयान्तं सात्यकिं कर्णश् शरैरावारयद्बली ॥　　[अधिकः पाठ.]

आसीत् समागमो राजन् बलिवासवयोरिव ॥ ३३॥

त्रासयंस्तलघोषेण क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः ।
राजीवलोचनः कर्ण सात्यकिः प्रत्यविध्यत ॥ ३४॥

[1]कम्पयन्निव घोषेण धनुषो वसुधा बली ।
सूतपुत्रो महाराज सात्यकि प्रत्ययोधयत् ॥ ३५॥

विपाठकर्णिनाराचैर् वत्सदन्तैः क्षुरैरपि ।
कर्णश्शरशतैश्चित्रैश् शैनेयं प्रत्यविद्ध्यत ॥ ३६॥

तथैव युयुधानोऽपि वृष्णीनां प्रवरो रथी ।
अभ्यवर्षच्छरैः कर्ण तद्युद्धमभवत् समम् ॥ ३७॥

तावकाश्च महाराज कर्णपुत्राश्च दंशिताः ।
सात्यकि विव्यधुस्तूर्णं समन्तान्निशितैश्शरैः ॥ ३८॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य तेषां कर्णस्य चाभि भो ।
अविद्ध्यत् सात्यकिः क्रुद्धो वृषसेनं स्तनान्तरे ॥ ३९॥

तेन बाणेन निर्विद्धो वृषसेनो विशा पते ।
न्यपीदत् समरे वीरो धनुरुत्सृज्य वीर्यवान् ॥ ४०॥

ततः कर्णो हतं मत्वा वृषसेनं महारथम् ।
पुत्रशोकाभिसन्तप्तस् सात्यकिं प्रत्यपीडयत् ॥ ४१॥

पीड्यमानस्तु कर्णेन युयुधानो महारथः ।

1. घ—अर्धचतुष्टयं नास्ति

विव्याध बहुभिः कर्ण त्वरन बाणैः पुनः पुनः ॥　　४२॥

स कर्णं दशभिर्विद्धा वृषसेनं च पञ्चभिः ।
हस्तावापे च धनुषी तयोश्चिच्छेद सात्वतः ॥　　४३॥

तावन्ये धनुषी सज्ये कृत्वा शत्रुभयङ्करे ।
युयुधानमविध्येतां समन्तान्निशितैश्शरैः ॥　　४४॥

वर्तमाने तु सङ्ग्रामे तस्मिन वीरवरक्षये ।
अतीव शुश्रुवे राजन् गाण्डीवस्य महास्वनः ॥　　४५॥

श्रुत्वा तु रथनिर्घोषं गाण्डीवस्य च निस्स्वनम् ।
सूतपुत्रोऽब्रवीद्राजन दुर्योधनमिदं वचः ॥　　४६॥

कर्णः—

एष सर्वां चमूं हत्वा मुख्यशश्च नरर्षभान ।
कौरवांश्च महेष्वासान् गाण्डीवनिनदो महान ॥　　४७॥
श्रूयते रथनिर्घोषो वासवस्येव नर्दतः ॥　　४८

करोति पाण्डवो नित्यं कर्मौपयिकमात्मनः ।
एषा विदीर्यते राजन बहुधा भारती चमूः ॥　　४९

विप्रकीर्णान्यनीकानि नावतिष्ठन्ति कर्हिचित ।
वातेनेव समुद्धूतं मेघजालं विदीर्यते ॥　　५०

सव्यसाचिनमालोक्य भिन्ना नौरिव सागरे ॥　　५०॥

हाहाकाररवांश्चैव सिंहनादांश्च पुष्कलान् ।

शृणु शब्दान् बहुविधान अर्जुनस्य रथं प्रति ॥ ५१॥

अयं मध्ये स्थितोऽस्माकं सात्यकिस्सात्वताधमः ।
इह चेल्लभ्यते लक्ष्यं कृत्स्नाञ्जेष्यामहे परान् ॥ ५२॥

एष पाञ्चालराजस्य पुत्रो द्रोणेन सङ्गतः ।
सर्वतस्संवृतश्शूरै राजन पुरुषसत्तम ॥ ५३॥

सात्यकिं यदि हन्याम धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ।
असंशयं महाराज ध्रुवो नो विजयो भवेत् ॥ ५४॥

सौभद्र[1]वदिमौ वीरौ परिवार्य महारथौ ।
प्रयातौ तु महाराज निहन्तुं वृष्णिपार्षतौ ॥ ५५॥

सव्यसाची पुरोऽभ्येति द्रोणानीकाय भारत ।
संसक्तं सात्यकिं ज्ञात्वा बहुभिः कुरुपुङ्गवैः ॥ ५६॥

तत्र गच्छन्तु बहवः प्रवीरा रथसत्तमाः ।
यावत् पार्थो न चायाति सात्यकिं बहुभिर्वृतम् ॥ ५७॥

ते त्वरध्वं यथा शूराश् शराणा मोक्षणे भृशम् ।
यथा तूर्णं व्रजत्येष परलोकाय माधवः ॥ ५८॥

सञ्जयः—

कर्णस्य मतमास्थाय पुत्रस्ते प्राह सौबलम् ।
यथेन्द्रस्समरे राजन् प्राह विष्णुं यशस्विनम् ॥ ५९॥

---

1 क-ख—प्रतिमौ

दुर्योधनः—

वृतस्सहस्रैर्दशभिर् गजानामनिवर्तिनाम् ।
रथैश्च दशसाहस्रैर् वृतो याहि धनञ्जयम् ॥　　६०॥

दुश्शासनो दुर्विषहस् सुबाहुर्दुष्प्रधर्षणः ।
एते त्वामनुयास्यन्ति पत्तिभिर्बहुभिर्वृताः ॥　　६१॥

जहि कृष्णौ महाबाहो धर्मराजं च मातुल ।
नकुलं सहदेवं च भीमसेनं च [1]पाण्डवम् ॥　　६२॥

देवानामिव देवेन्द्रे जयाशा मे त्वयि स्थिता ।
जहि मातुल कौन्तेयान असुरानिव पावकिः ॥　　६३॥

सञ्जयः—

एवमुक्तो ययौ पार्थान पुत्रेण तव सौबलः ।
महत्या सेनया सार्धं तव पुत्रैश्च दंशिनैः ॥　　६४॥

प्रियार्थं तव पुत्राणां दिधक्षुः पाण्डवान् रणे ।
ततः प्रववृते युद्धं तावकानां परैस्सह ॥　　६५॥

प्रयाते सौबले राजन पाण्डवानामनीकिनीम् ।
बलेन महता युक्तस् सूतपुत्रस्तु सात्वतम् ॥　　६६॥

अभ्ययात् त्वरितं युद्धे किरञ् शरशतान बहून ।
तथैव पाण्डवास्सर्वे सात्यकि पर्यवारयन ॥　　६७॥

---

1. क-ब—मातुल

महद्युद्धं तदा ह्यासीद् द्रोणस्य निशि भारत ।
धृष्टद्युम्नेन शूरेण पाञ्चालैश्च महाद्भुतम् ॥ ६८॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥
॥ ७० ॥ घटोत्कचवधपर्वणि त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥
[अस्मिन्नध्याये ६८॥ श्लोकाः]

## ॥ द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

सङ्कुलयुद्धम् ॥ १ ॥ धृष्टद्युम्नादीनां हर्षात्सिंहनादः ॥ २ ॥ द्रोणकर्णयोः सात्यकिधृष्टद्युम्नाभ्यां युद्धम् ॥ ३ ॥ कर्णं युयुत्सोरर्जुनस्य कृष्णेन सहेतुकथनं तेन युद्धनिषेधः ॥ ४ ॥

सञ्जयः—

ततस्ते प्राद्रवन् सर्वे त्वरिता युद्धदुर्मदाः ।
अमृष्यमाणास्संरब्धा युयुधानरथं प्रति ॥ १

ते रथैः कल्पितै राजन् हेमरूप्यविभूषितैः ।
सादिभिश्च गजैश्चैव परिवव्रुस्स सात्वतम् ॥ २

अथैनं कोष्ठकीकृत्य सर्वतस्ते महारथाः ।
सिंहनादांस्तदा चक्रुस् तर्जयन्तश्च सात्यकिम् ॥ ३

तेऽवाकिरञ् छरैस्तीक्ष्णैस् सात्यकिं सत्यविक्रमम् ।
त्वरमाणा महावीर्या माधवस्य वधैषिणः ॥ ४

तान दृष्ट्वाऽऽपततस्तूर्णं शैनेयः परवीरहा ।
प्रत्यगृह्णान्महाबाहुर् विमुञ्चन विशिखान बहून ॥ ५

तत्र वीरो महेष्वासस् मायाविर्युद्धदुर्मदः ।
निचकर्त शिरांस्युग्रैश् शरैस्सन्नतपर्वभिः ॥ ६

हस्तिहस्तान हयग्रीवान बाहूनपि च सायुधान ।
क्षुरप्रैरर्धचन्द्रैश्च तावकानां स माधवः ॥ ७

पताकैश्चामरैश्चैव श्वेतच्छत्रैश्च भारत ।
बभूव वसुधा कीर्णा नक्षत्रैर्द्यौरिव प्रभो ॥ ८

तेषां तु युयुधानेन युध्यतां निशि भारत ।
बभूव तुमुलश्शब्दः प्रेतानां क्रन्दतामिव ॥ ९

तेन शब्देन महता पूरिताऽभूद्वसुन्धरा ।
रात्रिस्समभवच्चैव तीव्ररूपा भयावहा ॥ १०

दीर्यमाणं बलं दृष्ट्वा युयुधानशरार्दितम् ॥ १०॥

तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे निशायां रोमहर्षणे ।
दुर्योधनोऽब्रवीद्वाक्यं सारथिं रथिनां वरः ॥ ११॥
यत्रैष शब्दस्तत्राश्वांश् चोदयेति पुनः पुनः ॥ १२

तेनैव चोद्यमानस्तु ततस्तांस्तुरगोत्तमान ।
सूतस्सञ्चोदयामास युयुधानरथं प्रति ॥ १३

ततो दुर्योधनः क्रुद्धो दृढधन्वा जितक्लमः ।

शीघ्रहस्तश्चित्रयोधी युयुधानमुपाद्रवन् ॥ १४

ततः कार्मुकनिर्मुक्तैर् निर्मुक्तोरगसंनिभैः ।
दुर्योधनं द्वादशभिर् माधवः प्रत्यविध्यत ॥ १५

दुर्योधनस्तेन तथा पूर्वमेवार्दितश्शरैः ।
शैनेयं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत मारिष ॥ १६

ततस्समभवद्युद्धम् आकुलं भरतर्षभ ।
पाञ्चालानां च सर्वेषां भारतानां च दारुणम् ॥ १७

शैनेयस्तु रणे क्रुद्धस् तव पुत्रं महारथम् ।
सायकानामशीत्याऽऽशु विव्याधोरसि भारत ॥ १८

ततोऽस्य वाहान् समरे शरैर्निन्ये यमक्षयम् ।
सारथिं च रथात् तूर्णं पातयामास पत्रिणा ॥ १९

हताश्वे तु रथे तिष्ठन् पुत्रस्तव विशां पते ।
मुमोच निशितान् बाणाञ् शैनेयस्य रथं प्रति ॥ २०

शरान् पञ्चशतांस्तस्मै शैनेयः कृतहस्तवत् ।
चिच्छेद समरे राजन् प्रेषितांस्तनयेन ते ॥ २१

अथापरेण भल्लेन मुष्टिदेशे महद्धनुः ।
चिच्छेद सहसा क्रुद्धः पुत्रस्य तव मारिष ॥ २२

विरथो विधनुष्कश्च सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ।
आरुरोह रथं तूर्णं भास्वरं कृतवर्मणः ॥ २३

दुर्योधने परावृत्ते शैनेयस्तव वाहिनीम् ।
विद्रावयामास शरैर् निशामध्ये विशां पते ॥　२४

शकुनिश्चार्जुनं राजन परिवार्य समन्ततः ।
रथैरनेकसाहस्रैर् गजैश्चापि सहस्रशः ॥　२५

तथा हयसहस्रैश्च तुमुलस्सर्वतोऽभवन् ॥　२५॥

ते महास्त्राणि दिव्यानि विकिरन्तो महाबलाः ।
अर्जुनं योधयन्ति स्म क्षत्रियाः कालचोदिताः ॥　२६॥

तान्यर्जुनस्सहस्राणि रथवारणवाजिनाम् ।
प्रत्यवारयदायत्तः प्रकुर्वन विपुलं क्षयम् ॥　२७॥

ततस्तु समरे शूरश् शकुनिस्सौबलस्तदा ।
विव्याध निशितैर्बाणैर् अर्जुनं प्रहसन्निव ॥　२८॥

पुनश्चैव शतेनास्य संरुरोध महारथम् ॥　२९

तमर्जुनस्तु विंशत्या विव्याध युधि भारत ।
तथेतरान महेष्वासांस् त्रिभिस्त्रिभिरविध्यत ॥　३०

संवार्य तान् बाणगणैर् युधि राजन धनञ्जयः ।
न्यहनत् तावकान योधान वज्रपाणिरिवासुरान ॥　३१

भुजैश्छिन्नैर्महाराज शरीरैश्च सहस्रशः ।
संस्तीर्णा वसुधा तत्र बभौ पुष्पैरिवावृता ॥　३२

स विद्ध्वा शकुनिं भूयः पञ्चभिर्नतपर्वभिः ।

उलूकं पुनराजघ्ने त्रिभिरेव महायशाः ॥ ३३

स तु तेन समाविद्धः क्रोधाद्द्विगुणविक्रमः ।
शरैरनेकसाहस्रैस् सोऽर्जुनं प्रत्यविध्यत ॥ ३४

तमुलूकस्तथा विद्ध्वा वासुदेवमताडयत् ।
ननाद च महानादं पूरयन् वसुधातलम् ॥ ३५

अर्जुनस्सारथिं हत्वा शकुनेर्धनुरच्छिनत् ।
निन्ये च चतुरो वाहान् यमस्य सदनं प्रति ॥ ३६

ततो रथादवप्लुत्य सौबलो भरतर्षभ ।
उलूकस्य रथं तूर्णम् आरुरोह विशां पते ॥ ३७

तावेकरथमारूढौ पितापुत्रौ महारथौ ।
पार्थं सिषिचतुर्बाणैर् गिरिं मेघावि[1]वाम्बुभिः ॥ ३८

तौ तु रुद्ध्वा महाराज पाण्डवो निशितैश्शरैः ।
[2]न्यवारयत् तव चमूं शतशो व्यधमच्छरैः ॥ ३९

अनिलेन यथाऽभ्राणि विच्छिन्नानि समन्ततः ।
विच्छिन्नानि तथा राजन् बलान्यासन् विशां पते ॥ ४०

तद्बलं भरतश्रेष्ठ वध्यमानं तदा निशि ।
प्रदुद्राव दिशस्सर्वा वीक्षमाणं भयार्दितम् ॥ ४१

---

1. क-घ-ङ—वोन्नतौ ख—वोत्थितौ
2. क—निवारयं ख—विदारयंस्तव

उत्सृज्य समरे वाहांश्च चोदयन्तस्तथाऽपरे ।
सम्भ्रान्ताः पर्यधावन्त तस्मिन्तमसि दारुणे ॥ ४२

विजित्य समरे योधास् तावकान भरतर्षभ ।
दध्मतुर्मुदितौ शङ्खौ वासुदेवधनञ्जयौ ॥ ४३

धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणं विद्ध्वा त्रिभिश्शरैः ।
चिच्छेद धनुषस्तस्य ज्यां शरेण शितेन ह ॥ ४४

तन्निधाय धनुर्विज्यं द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ।
आददेऽन्यद्धनुश्शूरो वेगवत् सारवत्तरम् ॥ ४५

धृष्टद्युम्नं ततो द्रोणो विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः ।
सारथिं पञ्चभिर्बाणै राजन विव्याध संयुगे ॥ ४६

तं निवार्य शरैस्तूर्णं धृष्टद्युम्नो महारथः ।
व्यधमत् कौरवीं सेनां शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४७

वध्यमाने बले तस्मिस् तव पुत्रस्य मारिष ।
प्रावर्तत नदी घोरा शोणितौघतरङ्गिणी ॥ ४८

उभयोस्सेनयोर्मध्ये नराश्वद्विपवाहिनी ।
यथा वैतरणी राजन यमराष्ट्रपुरं प्रति ॥ ४९

द्रावयित्वा तु तत् सैन्यं धृष्टद्युम्नः प्रतापवान ।
अत्यराजत तेजस्वी शक्रो देवगणेष्विव ॥ ५०

अथ दध्मुर् महाशङ्खान धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।

यमौ च युयुधानश्च पाण्डवश्च वृकोदरः ॥ ५१

[1]जित्वा रथसहस्राणि तावकानां महारथाः ।
सिंहनादरवांश्चक्रुः पाण्डवा जितकाशिनः ॥ ५२

पश्यतस्तव पुत्रस्य कर्णस्य च मदोत्कटाः ।
तथा द्रोणस्य शूरस्य द्रौणेश्चैव विशां पते ॥ ५३

विद्रुतं स्वबलं दृष्ट्वा वध्यमानं महात्मभिः ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टः पुत्रस्तव विशां पते ॥ ५४

अभ्येत्य सहसा कर्णं द्रोणं च जयतां वरम् ।
अमर्षवशमापन्नो वाक्यज्ञो वाक्यमब्रवीन् ॥ ५५

दुर्योधनः—

भवद्भ्यामेव सङ्ग्रामः क्रुद्धाभ्यां सम्प्रवर्तितः ।
आयोधने हतं दृष्ट्वा सैन्धवं सव्यसाचिना ॥ ५६

निहन्यमानां पाण्डूनां बलेन मम वाहिनीम् ।
दृष्ट्वा तद्विजये शक्तावशक्ताविव दृश्यतः ॥ ५७

भवद्भ्यां यद्यहं त्याज्यो निवार्योऽस्मि तदैव हि ।
आवां पाण्डुसुतान् सङ्ख्ये जेष्याव इति मानदौ ॥ ५८

तदेवाहं वचश्श्रुत्वा भवतोर्मनुजर्षभौ ।

---

1 ख—'जित्वा रथसहस्राणि' इत्यारभ्य 992 पृष्ठे 105 श्लोकपर्यन्तं नास्ति

कृतवान पाण्डवैस्सार्धं वैरं योधविनाशनम् ॥ ५९

यदि नाहं परित्याज्यो भवद्भ्यां पुरुषर्षभौ ।
युध्येतामनुरूपेण विक्रमेण सुविक्रमौ ॥ ६०

सञ्जय—

वाक्प्रतोदेन तौ वीरौ प्रणुन्नौ तनयेन ते ।
प्रावर्तयेतां तौ युद्धं गरुडाविव पन्नगैः ॥ ६१

ततस्तौ रथिनां श्रेष्ठौ सर्वलोकधनुर्धरौ ।
शैनेयप्रमुखान पार्थान अभिदुद्रुवतू रणे ॥ ६२

तथैव सहिताः पार्थास् स्वेन वीर्येण सर्वशः ।
अभ्यवर्तन्त तौ वीरौ नर्दमानौ मुहुर्मुहुः ॥ ६३

अथ द्रोणो महेष्वासो दशभिश्शिनिपुङ्गवम् ।
अविध्यन् त्वरितं क्रुद्धस् सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ६४

कर्णश्च दशभिर्बाणैः पुत्रश्च तव सप्तभिः ।
दशभिर्वृषसेनश्च सौबलश्चापि सप्तभिः ॥ ६५

एते कौरव सक्रन्दे शैनेयं पर्यवारयन ॥ ६५॥

दृष्ट्वा तु समरे द्रोणं निघ्नन्तं पाण्डवीं चमूम् ।
विव्यधुस्सोमकास्तूर्णं समन्ताच्छरवृष्टिभिः ॥ ६६॥

तत्र द्रोणोऽहरन् प्राणान योधानां तु विशां पते ।
रश्मिभिर्भास्करो राजंस् तेजोऽन्यदिव भारत ॥ ६७॥

द्रोणेन वध्यमानानां पाञ्चालानां विशां पते ।
शुश्रुवे तुमुलश्शब्दः क्रोशतामितरेतरम् ॥ ६८॥

पुत्रानन्ये पितॄनन्ये भ्रातॄनन्ये च मातुलान् ।
भागिनेयान् वयस्यांश्च तथा सम्वन्धिवान्धवान् ॥ ६९॥

उत्सृज्योत्सृज्य गच्छन्ति त्वरिता जीवितेप्सवः ॥ ७०

अपरे मोहिता मोहात् तमेवाभिमुखा ययुः ।
पाण्डवानां रणे योधाः परलोकं तथा परे ॥ ७१

सा तथा पाण्डवी सेना [1]पीड्यमाना महात्मना ।
निशि सम्प्राद्रवद्राजन्नुत्सृज्योल्कास्सहस्रशः ॥ ७२

पश्यतो भीमसेनस्य विजयस्याच्युतस्य च ।
यमयोर्धर्मपुत्रस्य पार्षतस्य च पश्यतः ॥ ७३

तमसा संवृते लोके न प्रज्ञायत किञ्चन ।
कौरवाणां प्रकाशेन दृश्यन्ते प्रद्रुताः परे ॥ ७४

द्रवमाणं तु तत् सैन्यं द्रोणकर्णौ महारथौ ।
जघ्नतुः पृष्ठतो राजन् निघ्नन्तौ सायकैर्बहून् ॥ ७५

पाञ्चालेषु प्रभग्नेषु क्षीयमाणेषु सर्वतः ।
जनार्दनो दीनमनाः प्रत्यभाषत फल्गुनम् ॥ ७६

---

1. क-ख—वध्यमाना महात्मभि.

श्रीभगवान्—

द्रोणकर्णौ महेष्वासावेतौ पार्षतसात्यकी ।
पाञ्चालांश्चैव सहितौ जघ्नतुस्सायकैर्भृशम् ॥ ७७

एतयोश्शरवर्षेण प्रभग्ना नो महारथाः ।
वार्यमाणाऽपि कौन्तेय पृतना नावतिष्ठते ॥ ७८

सञ्जयः—

[1]ता तु विद्रवतीं दृष्ट्वा ऊचतुः केशवार्जुनौ ॥ ७८॥

श्रीभगवदर्जुनौ—

मा विद्रवत वित्रस्ता भयं त्यजत पाण्डवाः ॥ ७९

[2]एतावावां सर्वसैन्यैर् व्यूहैस्सम्यगुदायुधैः ।
द्रोणं च सूतपुत्रं च [3]प्रयतावः प्रबाधितुम् ॥ ८०

एतौ हि बलिनौ शूरौ कृतास्त्रौ जितकाशिनौ ।
उपेक्षितौ बलं क्रुद्धौ नाशयेतां निशामिमाम् ॥ ८१

एष भीमोऽभियात्युग्रः पुनरावर्त्य वाहिनीम् ॥ ८१॥

सञ्जयः—

वृकोदरं तथाऽऽयान्तं दृष्ट्वा तत्र जनार्दनः ।
पुनरेवाब्रवीद्राजन् दर्शयन्निव पाण्डवम् ॥ ८२॥

---

1. क-घ—अर्धद्वयं नास्ति
2. क-घ—त्वया वा सर्वसैन्यैर्वा
3. क-घ—प्रयत्तौ च

श्रीभगवान्—

एष भीमो रणश्लाघी वृतस्सोमकपाण्डवैः ।
रुषितोऽभ्येति वेगेन द्रोणकर्णौ महाबलौ ॥ ८३॥

एतेन सहितो युद्धे पाञ्चालैश्च महारथैः ।
आश्वासनार्थं सर्वेषां सैन्यानां पाण्डुनन्दन ॥ ८४॥

सञ्जयः—

एतौ हि पुरुषव्याघ्रावुभौ माधवपाण्डवौ ।
द्रोणकर्णौ समासाद्य विष्ठितौ रणमूर्धनि ॥ ८५॥

ततस्तत् पुनरावृत्तं युधिष्ठिरबलं महत् ।
ततो द्रोणश्च कर्णश्च परान् ममृदतुर्युधि ॥ ८६॥

स सम्प्रहारस्तुमुलो निशि प्रत्यभवन्महान् ।
यथा सागरयो राजंश् चन्द्रोदयविवृद्धयोः ॥ ८७॥

तत उत्सृज्य पाणिभ्यः प्रदीपांस्तव वाहिनी ।
युयुधे पाण्डवैस्सार्धम् उन्मत्तवदहःक्षये ॥ ८८॥

रजसा तमसा चैव संवृते भृशदारुणे ।
केवलं नामगोत्रेण प्रायुध्यन्त जयैषिणः ॥ ८९॥

अश्रूयन्त हि नामानि श्राव्यमाणानि पार्थिवैः ।
प्रहरद्भिर्महाराज स्वयंवर इवाहवे ॥ ९०॥

निश्शब्दमासीत् सहसा पुनश्शब्दो महानभूत् ।

क्रुद्धानां युध्यमानानां जयनां जीर्यतामपि ॥ ९१॥

यत्र यत्र प्रदृश्यन्ते प्रदीपाः कुरुसत्तम ।
तत्र तत्र स्म ते शूरा निपतन्ति पतङ्गवत् ॥ ९२॥

तथा संयुध्यमानानां विगाढाऽभून्महानिशा ।
पाण्डवाना च राजेन्द्र कौरवाणां च मारिष ॥ ९३॥

ततः कर्णो रणे दृष्ट्वा पार्षतं परवीरहा ।
आजघानोरसि शरैर् दशभिर्मर्मभेदिभिः ॥ ९४॥

प्रतिविव्याध तं तूर्णं धृष्टद्युम्नोऽपि मारिष ।
पञ्चभिस्सायकैर्हृष्टस् तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ९५॥

तावन्योन्यं शरैस्सङ्ख्ये सञ्छाद्य सुमहारथौ ।
पुनः पूर्णायतोत्सृष्टैर् विव्यधाते परस्परम् ॥ ९६॥

ततः पाञ्चालमुख्यस्य धृष्टद्युम्नस्य संयुगे ।
सारथिं चतुरश्चाश्वान् कर्णो विव्याध सायकैः ॥ ९७॥

कार्मुकप्रवरं चास्य प्रचिच्छेद शितैश्शरैः ।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपाहरत् ॥ ९८॥

धृष्टद्युम्नस्तु विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
गृहीत्वा परिघं घोरं कर्णस्याश्वानपीडयत् ॥ ९९॥

विद्धश्च बहुभिस्तेन शरैराशीविषोपमैः ॥ १००

ततो युधिष्ठिरानीकं पद्भ्यामेवान्ववर्तत ।

आरुरोह रथं चापि सहदेवस्य मारिष ॥ १०१

कर्णस्यापि रथे वाहान् अन्यान सूतोऽप्ययोजयत् ।
शङ्खवर्णान् महावेगान सैन्धवान् साधुवाहिनः ॥ १०२

लब्धलक्षस्तु राधेयः पाञ्चालानां महारथान ।
अभ्यपीडयदायस्तश् शरैर्मेघ इवाचलान ॥ १०३

सा पीड्यमाना कर्णेन पाञ्चालानां महाचमूः ।
सम्प्राद्रवत् सुसंत्रस्ता सिंहेनेवार्दिता मृगी ॥ १०४

पतितास्तुरगेभ्यश्च गजेभ्यश्च महीतले ।
रथेभ्यश्च भयात् तूर्णम् अदृश्यन्त ततस्ततः ॥ १०५

एतस्मिन्नेव काले तु सूतपुत्रो महारथः ।
चकार कदनं घोरं पाण्डुसैन्येषु भारत ॥ १०६

धावमानस्य योधस्य क्षुरप्रैस्स महामृधे ।
बाहू चिच्छेद वै कर्णश् शिरश्चैव सकुण्डलम् ॥ १०७

ऊरू चिच्छेद चान्यस्य गजस्थस्य विशां पते ।
वाजिपृष्ठगतस्यापि भूमिष्ठस्य च मारिष ॥ १०८

सञ्छिन्नानि तु गात्राणि वाहनानि च संयुगे ॥ १०८॥

ते वध्यमानास्समरे पाञ्चालास्सृञ्जयैस्सह ।
तृणप्रस्पन्दनाच्चापि सूतपुत्रं स्म मेनिरे ॥ १०९॥

अपि ये समरे योधा धावमाना विचेतसः ।

[1]कर्णमेवाभ्यमन्यन्त ततो भीता द्रवन्ति ते ॥ ११०॥

तान्यनीकानि भग्नानि द्रवमाणानि भारत ।
अभ्यद्रवद्द्रुतं कर्णः पृष्ठतो विकिरञ् छरान् ॥ १११॥

अवेक्षमाणास्त्वन्योन्यं सुसम्मूढा विचेतसः ।
नाशक्नुवन्नवस्थातुं काल्यमाना महात्मना ॥ ११२॥

कर्णेनाभ्याहता राजन् पाञ्चालाः परमेषुभिः ।
द्रोणेन च दिशस्सर्वा वीक्षमाणाः प्रदुद्रुवुः ॥ ११३॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥
॥ ७० ॥ घटोत्कचवधपर्वणि चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ११३॥ श्लोकाः ]

## ॥ त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

कृष्णार्जुनचोदनया घटोत्कचस्य कर्णेन सह रणारम्भः ॥ १ ॥ घटोत्कचेन जटासुरसुतवधः ॥ २ ॥

सञ्जयः—

ततो युधिष्ठिरो राजा स्वसैन्यं वीक्ष्य विद्रुतम् ।
अपयाने मनः कृत्वा फल्गुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ १

1 अ-ङ—अर्धचतुष्टयं नास्ति
* ख-ङ—कोशयो' नास्त्यध्यायसमाप्तिः

युधिष्ठिरः—

पश्य कर्णं महेष्वासं धनुष्पाणिमवस्थितम् ।
निशीथे दारुणे काले तपन्तमिव भास्करम् ॥ २

कर्णसायकनुन्नानां क्रोशतामेष निस्स्वनः ।
अनिशं श्रूयते पार्थ त्वद्बन्धूनामबन्धुवन् ॥ ३

यथा विसृजतश्चास्य सन्दधानस्य चाशुगान् ।
पश्यामि जयविक्रान्तं क्षपयिष्यति नो ध्रुवम् ॥ ४

यदत्रानन्तरं कार्यं प्राप्तकालं प्रपश्यसि ।
कर्णस्य वधसंयुक्तं तत् कुरुष्व धनञ्जय ॥ ५

सञ्जयः—

एवमुक्तो महाराज पार्थः कृष्णमथाब्रवीत् ॥ ५॥

अर्जुनः—

भीतः कुन्तीसुतो राजा राधेयस्याद्य विक्रमात् ॥ ६

[1]एवं गते प्राप्तकालं कर्णानीके पुनः पुनः ।
भवान् व्यवस्यते किं वा द्रवते हि वरूथिनी ॥ ७

द्रोणसायकनुन्नानां भग्नानां मधुसूदन ।
कर्णेन त्रास्यमानानाम् अवस्थानं न विद्यते ॥ ८

पश्यामि च यथा कर्णं विचरन्तमभीतवत् ।

1 ङ—बिभेद परमोदारो धर्मराजो युधिष्ठिरः। [अधिकः पाठः]

द्रवमाणान् रथोदारान् किरन्तं निशितैश्शरैः ॥ ९

नैतदस्योत्सहे सोढुं चरितं रणमूर्धनि ।
प्रत्यक्षं वृष्णिशार्दूल पादस्पर्शमिवोरगः ॥ १०

स भवानत्र यात्वाशु यत्र कर्णो महारथः ।
अहमेनं हनिष्यामि मा वेप मधुसूदन ॥ ११

श्रीभगवान्—

पश्यामि कर्णं कौन्तेय देवराजमिवाहवे ।
विचरन्तं नरव्याघ्रम् अतिमानुषविक्रमम् ॥ १२

नैतस्यान्योऽस्ति समरे [1]प्रत्युद्याता धनञ्जय ।
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र राक्षसाद्वा घटोत्कचात् ॥ १३

न तु तावदहं मन्ये प्राप्तकालं तवानघ ।
समागमं महाबाहो सूतपुत्रेण संयुगे ॥ १४

दीप्यमाना महोल्केव शक्तिस्तिष्ठति वासवी ।
त्वदर्थं हि महाबाहो रौद्ररूपं बिभर्ति च ॥ १५

घटोत्कचस्तु राधेयं प्रत्युद्यातु महाबलः ॥ १५॥

स तु भीमेन बलिना जातस्सुरपराक्रमः ।
यस्मिन्नस्त्राणि दिव्यानि राक्षसान्यासुराणि च ॥ १६॥

---

1. क-घ-ङ—प्रत्युद्यातुं

[1]अस्माकं जीवितस्यापि हितैषी च घटोत्कचः ।
विजेष्यति रणे कर्णम् इति मे नास्ति संशयः ॥ १७॥

सञ्जयः—

एवमुक्त्वा महाबाहुः पार्थः पुष्करलोचनः ।
आजुहावाथ तद्रक्षस् तच्चासीत् प्रादुरग्रतः ॥ १८॥

कवची सरथी खड्गी सधन्वी च विशां पते ।
अभिगम्य ततः कृष्णं पाण्डवं च धनञ्जयम् ॥ १९॥

अब्रवीच्च तदाऽमर्षाद् अयमस्म्यनुशाधि माम् ॥ २०

ततस्तं मेघसङ्काशं दीप्तास्यं दीप्तकुण्डलम् ।
अभ्यभाषत हैडिम्बि दाशार्हः प्रहसन्निव ॥ २१

श्रीभगवान्—

घटोत्कच विजानीहि यथा वक्ष्यामि पुत्रक ।
प्राप्तो विक्रमकालोऽयं तव नान्यस्य कस्यचित् ॥ २२

स त्वं निमज्जतां युद्धे बन्धूनां बान्धवो भव ।
विविधानि तवास्त्राणि सन्ति माया तु राक्षसी ॥ २३

पश्य कर्णेन हैडिम्ब पाण्डवानामनीकिनीम् ।
काल्यमानां रणे तात सिंहेनेवेतरान् मृगान् ॥ २४

एष कर्णो महेष्वासो मतिमान् दृढविक्रमः ।

---

1. ख—सततं चानुरक्तो वै ङ—सततं त्वाऽनुरक्तो वो

पाण्डवानामनीकेषु निहन्ति क्षत्रियर्षभान् ॥　　२५

किरन्तश्शरवर्षाणि महान्ति दृढधन्विनः ।
नाशक्नुवन्नवस्थातुं पीड्यमानाश्शरार्चिषा ॥　　२६

निशीथे सूतपुत्रेण शरवर्षेण पीडिताः ।
एते द्रवन्ति पाञ्चालाम् सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥　　२७

एतस्यैव प्रवृत्तस्य सूतपुत्रस्य संयुगे ।
निषेद्धा विद्यते नान्यस् त्वदृते भीमविक्रम ॥　　२८

स त्वं कुरु महाबाहो कर्म युक्तमिहात्मनः ।
मातुलानां पितॄणां च तेजसाऽस्त्रबलेन च ॥　　२९

एतदर्थं हि हैडिम्ब पुत्रानिच्छन्ति मानवाः ।
तारयेयुः कथं दुःखात् तत् त्वं तारय बान्धवान् ॥　　३०

त्वयि ह्यस्त्रबलं भीमं मायाश्च तव दुस्तराः ।
सङ्ग्रामे युध्यमानस्य सततं भीमनन्दन ॥　　३१

पाण्डवानां प्रभग्नानां कर्णेन निशि सायकैः ।
मज्जता धार्तराष्ट्रेषु भव पारं महाबल ॥　　३२

रात्रौ हि राक्षसा भूयो भवन्त्यमितविक्रमाः ।
बलवन्तस्सुदुर्धर्षाश् शूरा विक्रान्तचारिणः ॥　　३३

जहि कर्णं महेष्वासं निशीथे मायया रणे ।
पार्था द्रोणं वधिष्यन्ति धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥　　३४

सञ्जय:—

केशवस्य वचश्श्रुत्वा बीभत्सुरपि राक्षसम् ।
अभ्यभाषत कौरव्य घटोत्कचमरिन्दमम् ॥ ३५

अर्जुनः—

घटोत्कच भवांश्चैव दीर्घबाहुश्च सात्यकिः ।
मतौ मे सर्वसैन्येषु भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ ३६

स भवान् यातु कर्णेन द्वैरथं निशि युध्यताम् ।
सात्यकिः पृष्ठगोपस्ते भविष्यति महारथः ॥ ३७

जहि कर्णं महाबाहो [1]सात्वतेन सहायवान् ।
यथेन्द्रस्तारकं पूर्वं स्कन्देन सह जघ्निवान् ॥ ३८

घटोत्कचः—

एवमेव महाबाहो यथा वदसि मां प्रभो ।
त्वया नियुक्तो गच्छामि कर्णस्य वधकाङ्क्षया ॥ ३९

अलमेवास्मि कर्णाय द्रोणायालं च सत्तम ।
अन्येषां क्षत्रियाणां च कृतास्त्राणां महात्मनाम् ॥ ४०

अद्य दास्यामि सङ्ग्रामं सूतपुत्राय तं निशि ।
यं जनास्सम्प्रवक्ष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥ ४१

न चात्र शूरान् मोक्ष्यामि न भीतान् न कृताञ्जलीन् ।

1 क—इतोऽर्धद्वयं नास्ति

सर्वानेव वधिष्यामि राक्षसं धर्ममास्थितः ॥ ४२

सञ्जय —

[1]एवमुक्त्वा महाबाहुर् हैडिम्बः परवीरहा ।
अभ्ययान् तुमुले कर्णं तव सैन्यं विभीषयन ॥ ४३

तमापतन्तं सङ्कुद्धं दीप्तास्यमिव पन्नगम् ।
अभिघ्नन परमेष्वासः प्रतिजग्राह सूतजः ॥ ४४

ततस्समभवद्युद्धं कर्णराक्षसयोर्निशि ।
गर्जतो राजशार्दूल शक्रप्रह्लादयोरिव ॥ ४५

दृष्ट्वा घटोत्कचं राजन सूतपुत्ररथं प्रति ।
प्रयान्तं त्वरया युक्तं जिघांसुं कर्णमाहवे ॥ ४६

अब्रवीत् तत्र पुत्रस्ते दुश्शासनमिदं वचः ॥ ४६॥

दुर्योधन —

एष पार्थो रणे तूर्णं दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ।
अभियाति द्रुतं कर्ण तं वारय महारथम् ॥ ४७॥

वृतस्सैन्येन महता याहि यत्र महाबलः ।
कर्णो वैकर्तनो युद्धे राक्षसेन युयुत्सति ॥ ४८॥

रक्ष तूर्णं रणे यत्तो वृतस्सैन्येन मानद ॥ ४९

---

1. ख—अर्धपद्‌कं नास्ति

* ख—कोशं विना सर्वेषु कोशेषु अत्रैवाध्यायसमाप्तिर्दृश्यते

सञ्जयः—

एतस्मिन्नन्तरे राजञ् जटासुरसुतो बली ।
दुर्योधनमुपागम्य प्राह प्रहरतां वरः ॥ ५०

जटासुरसुतः—

दुर्योधन तवामित्रान् विख्यातान् युद्धदुर्मदान् ।
पाण्डवान् हन्तुमिच्छामि त्वयाऽऽज्ञप्तस्समागतान् ॥ ५१

जटासुरो मम पिता रक्षसां ग्रामणीः पुरा ।
प्रयुज्य कर्म रक्षोघ्नं क्षुद्रैः पार्थैर्निपातितः ॥ ५२

तस्यापचितिमिच्छामि त्वदिष्टो गन्तुमीश्वर ॥ ५२॥

सञ्जयः—

तमब्रवीत् ततो राजा प्रीयमाणः पुनः पुनः ।
द्रोणकर्णादिभिस्सार्धं पर्याप्तं च द्विषज्जये ॥ ५३॥

दुर्योधनः—

त्वं तु गच्छ मयाऽऽज्ञप्तो जहि युद्धे घटोत्कचम् ॥ ५४

सञ्जयः—

तथेत्युक्त्वा महाकायस् समाहूय घटोत्कचम् ।
जाटासुरिर्भैमसेनिं नानाशस्त्रैरवाकिरत् ॥ ५५

अलम्बलं च कर्णं च कुरुसैन्यं च दुस्तरम् ।
हैडिम्बः प्रममाथैको विष्वग्वातोऽम्बुदानिव ॥ ५६

मायामयं समास्थाय रथं तूर्णमलम्बलः ।

[1]घटोत्कचं शरव्रातैर् नानालिङ्गैस्समर्पयन ॥ ५७

विद्ध्वा च बहुभिर्बाणैर् भैमसेनिमलम्बलः ।
व्यद्रावयच्छरै राजन् पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ ५८

तेन विद्राव्यमाणानि पाण्डुसैन्यानि मारिष ।
निशीथे विप्रकीर्यन्त वातनुन्ना इव द्रुमाः ॥ ५९

घटोत्कचशरैर्नुन्ना तथैव तव वाहिनी ।
निशीथे प्राद्रवद्राजन्नुत्सृज्योल्कास्समन्ततः ॥ ६०

अलम्बलं ततः क्रुद्धो भैमसेनिर्महामृधे ।
आजघ्ने बहुभिर्बाणैस् तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ ६१

तिलशस्तस्य तद्यानं सूतं सर्वायुधानि च ।
घटोत्कचः प्रचिच्छेद व्यनदच्चापि भैरवम् ॥ ६२

ततः कर्णं शरशतैः कुरूंश्चापि सहस्रशः ।
अलम्बलं चाभ्यवर्षन्मेघो मेरुमिवाचलम् ॥ ६३

ततस्सञ्चुक्षुभे सैन्यं कुरूणां राक्षसार्दितम् ।
उपर्युपरि चान्योन्यं चतुरङ्गं ममर्द ह ॥ ६४

जाटासुरिर्महाराज विरथो हतसारथिः ।
घटोत्कचं रणे क्रुद्धं मुष्टिनाऽभ्यहनद्दृढम् ॥ ६५

मुष्टिनाऽभिहतस्तेन प्रचचाल घटोत्कचः ।

1. ब—अर्धद्वयं नास्ति

क्षितिकम्पे यथा शैलस् सवृक्षस्तृणगुल्मवान् ॥ ६६

ततस्स परिघाभेन द्विषद्घ्नेन च बाहुना ।
जाटासुरिं भैमसेनिर् अवधीन्मुष्टिना भृशम् ॥ ६७

तं प्रमथ्य ततः क्रुद्धस् तूर्णं हैडिम्बिराक्षिपत् ।
दोर्भ्यामिन्द्रध्वजाभाभ्यां निष्पिपेष च भूतले ॥ ६८

[1]जाटासुरिर्मोक्षयित्वा आत्मानं च घटोत्कचात् ।
पुनरुत्थाय वेगेन घटोत्कचमुपाद्रवत् ॥ ६९

[2]अलम्बलोऽप्यथाक्षिप्य समुत्पाट्य च राक्षसम् ।
घटोत्कचं बलात् क्रोधान्निष्पिपेष महीतले ॥ ७०

तयोस्समभवद्युद्धं गर्जतोरतिकाययोः ।
घटोत्कचालम्बलयोस् तुमुलं रोमहर्षणम् ॥ ७१

[3]विशेषयेतामन्योन्यं मायाभिरतिमायिनौ ।
युयुधाते महावीर्याविन्द्रवैरोचनाविव ॥ ७२

पावकाम्बुनिधी भूत्वा पुनर्गरुडपन्नगौ ।
पुनर्मेघमहावातौ पुनर्वज्रमहाचलौ ॥ ७३

पुनः कुञ्जरशार्दूलौ पुनस्स्वर्भानुभास्करौ ।
एवं मायाशतसृजावन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ ॥ ७४

---

1. अ-क-ब-ङ—अर्धद्वयं नास्ति
2. ख—अर्धद्वयं नास्ति 3. क-ब—व्यशेषयेतां

भृशं चित्रमयुध्येताम् अलम्बलघटोत्कचौ ॥ ७४॥

परिघैश्च गदाभिश्च प्रासतोमरपट्टिसैः ।
मुसलैः पर्वतैश्चैव तावन्योन्यं निजघ्नतुः ॥ ७५॥

हयाभ्यां च गजाभ्यां च रथाभ्यां पत्तिभिस्सह ।
[1]युयुधाते महामायौ राक्षसप्रवरौ युधि ॥ ७६॥

ततो घटोत्कचो राजन्नलम्बलवधेप्सया ।
उत्पपात भृशं क्रुद्धश् श्येनवन्निपपात ह ॥ ७७॥

गृहीत्वा च महाकायं राक्षसेन्द्रमलम्बलम् ।
उद्यम्य न्यवधीद्भूमौ मयं विष्णुरिवाहवे ॥ ७८॥

ततो घटोत्कचः खड्गम् उद्गृह्याद्भुतदर्शनम् ।
[2]विचकर्त शिरः कायाद् भीमं विकृतदर्शनम् ॥ ७९॥

तच्छिरो रुधिराभ्यक्तं गृह्य केशेषु राक्षसः ।
घटोत्कचो ययावाशु दुर्योधनरथं प्रति ॥ ८०॥

अभ्येत्य च महाबाहुस् स्मयमानो घटोत्कचः ।
रथेऽस्य निक्षिप्य शिरो विकृताननमूर्धजम् ॥ ८१॥

प्रणदन् भैरवं नादं प्रावृषीव बलाहकः ।
अब्रवीन् स ततो राजन् दुर्योधनमिदं वचः ॥ ८२॥

---

1 अ—अर्धद्वयं नास्ति     2. अ—नास्तीदमर्धम्

घटोत्कचः—

एष ते निहतो बन्धुस् त्वया दृष्टोऽस्य विक्रमः ।
पुनर्द्रक्ष्यासि कर्णस्य निष्ठामेतां तथाऽऽत्मनः ॥ ८३॥

सञ्जयः—

एवमुक्त्वा ततः प्रायान् कर्णं प्रति स राक्षसः ।
किरञ् छरशतांस्तीक्ष्णान् विमुञ्चन् कर्णमूर्धनि ॥ ८४॥

ततस्समभवद्युद्धं घोररूपं भयावहम् ।
अत्यद्भुतं महाराज नरराक्षसयोर्मृधे ॥ ८५॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥
॥ ७० ॥ घटोत्कचवधपर्वणि पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ८५॥ श्लोकाः ]

---

## ॥ चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

कर्णघटोत्कचयोर्युद्धम् ॥

---

धृतराष्ट्रः—

यत् तद्वैकर्तनः कर्णो राक्षसश्च घटोत्कचः ।
निशीथे समसज्जेतां तद्युद्धमभवत् कथम् ॥ १

कीदृशं चाभवद्रूपं तस्य घोरस्य रक्षसः ।
येन वैकर्तनः कर्णस् सङ्ग्रामे तेन निर्जितः ॥ २

रथश्च कीदृशस्तस्य मायास्सर्वायुधानि च ।
किम्प्रमाणा हयास्तस्य रथः केतुर्धनुस्तथा ॥ ३

कीदृशं वर्म चैवास्य कर्णत्राणं च कीदृशम् ।
पृष्टस्तन्मे ममाचक्ष्व सर्वमेतद्यथातथम ॥ ४

सञ्जय—

लोहिताक्षो महाबाहुस् ताम्रास्यो निर्णतोदरः ।
ऊर्ध्वरोमा हरिश्मश्रुश् शङ्कुकर्णो महाहनुः ॥ ५

आकर्णाद्दारितास्यश्च तीक्ष्णदंष्ट्रः करालवान ।
सुदीर्घताम्रजिह्वोष्टो लम्बभ्रूस्स्थूलनासिकः ॥ ६

नीलाङ्गो लोहितग्रीवो गिरिवर्ष्मा भयङ्करः ।
महाकायो महाबाहुर् महाशीर्षो महाबलः ॥ ७

विकटो विषमो भीमो विनतोद्बद्धपिण्डकः ।
स्थूलस्फिग्गण्डनासश्च शिथिलोपचयो महान ॥ ८

तथैव हस्ताभरणी महामायोऽङ्गदी तथा ।
उरसा धारयन निष्कम् अग्निमालां यथाऽचलः ॥ ९

तस्य हेममयं छत्रं बहुरूपाङ्कशोभितम् ।
तोरणप्रतिमं शुभ्रं किरीटं मूर्ध्नि शोभते ॥ १०

कुण्डले बालसूर्याभे मालां हेममयीं शुभाम् ।
धारयन विपुलं कांस्यं कवचं च महाप्रभम् ॥ ११

ताराजालनिभं राजन पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ।
[1]कण्ठसूत्रं महच्चापि तापनीयमधारयत् ॥ १२

स तेन विभ्राजत वै सविद्युदिव तोयदः ॥ १२॥

किङ्किणीशतनिर्घोषं रक्तध्वजपताकिनम् ।
ऋक्षचर्मावनद्धाङ्गं नल्वमात्रं महारथम् ॥ १३॥

सर्वायुधवरोपेतम् आस्थितो ध्वजमालिनम् ।
अष्टचक्रसमायुक्तं मेघगम्भीरनिस्स्वनम् ॥ १४॥

तत्र मातङ्गसङ्काशा लोहिताक्षा विभीषणाः ।
कालवर्णसमायुक्ता बलवन्तश्शतं हयाः ॥ १५॥

मुखैर्नानाविधाकारैर् वेगवन्तो हयोत्तमाः ।
रथेऽस्य युक्ता गर्जन्तोऽवहंस्ते राक्षसाधिपम् ॥ १६॥

राक्षसोऽस्य विरूपाक्षस् सखा दीप्तास्यकुण्डलः ।
घोररूपो महाकायः करालो विकृताननः ॥ १७॥

रश्मिभिस्सूर्यरश्म्याभैस् सञ्जग्राह हयान् रणे ॥ १८

स तेन सहितस्तस्थावरुणेन यथा रविः ।
संसक्त इव चाभ्रेण यथाऽद्रिर्महता महान् ॥ १९

दिविस्पृक् सुमहान् केतुस् स्यन्दनस्य समुच्छ्रितः ।
रक्तोत्तमाङ्गः क्रव्यादो गृध्रः परमभीषणः ॥ २०

1. अ—कर्ण

वासवाशनिनिर्घोषं दृढज्यमधिविक्षिपन् ।
व्यक्तं किष्कुपरीणाहं द्वादशारत्नि कार्मुकम् ॥ २१

रथाक्षमात्रैरिषुभिस् सर्वाः प्रच्छादयन् दिशः ।
तस्यां वीरापहारिण्यां निशाया कर्णमभ्ययात् ॥ २२

तस्य विक्षिपतश्चापं रथे विष्टभ्य तिष्ठतः ।
अश्रूयत धनुर्घोषो विस्फूर्जितमिवाशनेः ॥ २३

तेन वित्रास्यमानानि सैन्यानि भरतर्षभ ।
समकम्पन्त सर्वाणि सिन्धोरिव महोर्मयः ॥ २४

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य विरूपाक्षं विभीषणम् ।
उत्स्मयन्निव राधेयस् त्वरमाणोऽभ्यवारयत् ॥ २५

ततः कर्णोऽभ्ययादेनम् अस्यन्नस्यन्तमन्तिकात् ।
मातङ्ग इव मातङ्गं यूथर्षभ इवर्षभम् ॥ २६

स सन्निपातस्तुमुलस् तयोरासीद्विशां पते ।
कर्णराक्षसयोर्नक्तम् इन्द्रशम्बरयोरिव ॥ २७

तौ प्रगृह्य महावेगे धनुषी भीमनिस्स्वने ।
प्राच्छादयेतामन्योन्यं तक्षमाणौ महेषुभिः ॥ २८

ततः पूर्णायतोत्सृष्टैश् शरैस्सन्नतपर्वभिः ।
व्यदारयेतामन्योन्यं कांस्ये निर्भिद्य वर्मणी ॥ २९

तौ नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपौ ।

रथशक्तिभिरन्योन्यं समरे सन्ततक्षतुः ॥ ३०

सञ्छिन्दन्तौ तु गात्राणि सन्दधानौ च सायकान् ।
तक्षमाणौ शरव्रातैर् नोदीक्षितुमशक्नुवन् ॥ ३१

तौ हि विक्षतसर्वाङ्गौ शोणितौघपरिप्लुतौ ।
व्यभ्राजेतां यथा वारि प्रसृतौ गैरिकाचलौ ॥ ३२

तौ शराग्र[1]वितुन्नाङ्गौ विनदन्तौ परस्परम् ।
नाकम्पयेतामन्योन्यं यतमानौ महाद्युती ॥ ३३

तत् प्रवृद्धं निशायुद्धं चिरं सममिवाभवत् ।
प्राणयोर्दीव्यतो राजन् कर्णराक्षसयोर्निशि ॥ ३४

तस्य सन्दधतस्तीक्ष्णाञ् छरांश्चासक्तमस्यतः ।
धनुर्घोषेण वित्रस्तास् स्वे परे च तदाऽभवन् ॥ ३५

घटोत्कचं यदा कर्णो न विशेषयते नृप ।
ततः प्रादुष्करोदैन्द्रम् अस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥ ३६

कर्णेन विहितं दृष्ट्वा दिव्यमस्त्रं घटोत्कचः ।
प्रादुश्चक्रे महामाया राक्षसः पाण्डुनन्दनः ॥ ३७

शूलमुद्गरधारिण्या शैलपादपहस्तया ।
रक्षसां घोररूपाणां महत्या सेनया वृतः ॥ ३८

तमुद्यतमहाचापं निशाम्य व्यथिता नृपाः ।

---

1 घ—वितुन्नाङ्गौ

भूतान्तकमिवायान्तं कालदण्डोग्रधारिणम् ॥ ३९

घटोत्कचप्रयुक्तेन सिंहनादेन भीषिताः ।
प्रसुस्रुवुर्गजा मूत्रं विव्यथुश्च तदा भृशम् ॥ ४०

ततोऽश्मवृष्टिरत्युग्रा महत्यासीत् समन्ततः ।
अर्धरात्रेऽधिकबलैर् विमुक्ता राक्षसैर्भृशम् ॥ ४१

आयसानि च चक्राणि भुसुण्ड्यश्शक्तितोमराः ।
पतन्त्यविरलाश्शूलाश् शतघ्न्यः पट्टसास्तथा ॥ ४२

तदुग्रमतिरौद्रं च दृष्ट्वा युद्धं नराधिपाः ।
पुत्राश्च तव योधाश्च व्यथिता विप्रदुद्रुवुः ॥ ४३

तत्रैकोऽस्त्रबलश्लाघी कर्णो मानी न विव्यथे ।
व्यधमच्च शरैर्मायां तां घटोत्कचनिर्मिताम् ॥ ४४

मायायां तु प्रहीणायाम् अमर्षात् स घटोत्कचः ।
विससर्ज शरान् घोरान् सूतपुत्रं त आविशन् ॥ ४५

ततस्ते रुधिराभ्यक्ता भित्त्वा कर्णं महाहवे ।
विविशुर्धरणीं बाणास् सङ्क्रुद्धा इव पन्नगाः ॥ ४६

सूतपुत्रस्तु सङ्क्रुद्धो लघुहस्तः प्रतापवान् ।
घटोत्कचमतिक्रम्य बिभेद दशभिश्शरैः ॥ ४७

घटोत्कचो विनिर्भिन्नस् सूतपुत्रेण मर्मसु ।

चक्रं दिव्यं सहस्रारम् अगृह्णाद्व्यथितो भृशम् ॥ ४८

क्षुरान्तं बालसूर्याभं मणिरत्नविभूषितम् ।
चिक्षेपाधिरथेः क्रुद्धो भैमसेनिर्जिघांसया ॥ ४९

प्रविद्धमतिवेगेन विक्षिप्तं कर्णसायकैः ।
अभाग्यस्येव सङ्कल्पस् तन्मोघमपतद्भुवि ॥ ५०

घटोत्कचस्तु सङ्क्रुद्धो दृष्ट्वा चक्रं निपातितम् ।
कर्णं प्राच्छादयद्बाणैस् स्वर्भानुरिव भास्करम् ॥ ५१

सूतपुत्रस्त्वसम्भ्रान्तो रुद्रोपेन्द्रेन्द्रविक्रमः ।
घटोत्कचरथं तूर्णं छादयामास पत्रिभिः ॥ ५२

घटोत्कचेन क्रुद्धेन तदा हेमाङ्गदा गदा ।
क्षिप्ता भ्राम्य शरैस्साऽपि कर्णेनाभ्याहताऽपतत् ॥ ५३

ततोऽन्तरिक्षमुत्पत्य कालमेघ इवोन्नदन् ।
ववर्ष सुमहाकायो द्रुमवर्षं नभस्स्थलात् ॥ ५४

ततो मायावृतं कर्णो भीमसेनसुतं दिवि ।
मार्गणैरभिविव्याध घनं सूर्य इवांशुभिः ॥ ५५

तस्य सर्वान् हयान् हत्वा सञ्छिद्य शतधा रथम् ।
अभ्यवर्षच्छरैः कर्णः पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ ५६

न चास्यासीदनिर्भिन्नं गात्रे द्व्यङ्गुलमन्तरम् ।

सोऽदृश्यत मुहूर्तेन श्वाविन्छललनो यथा ॥ ५७

न हयान्न रथं तस्य न ध्वजं न घटोत्कचम् ।
दृष्टवन्तस्स समरे शरौघैरभिसम्प्लुतैः ॥ ५८

स तु कर्णस्य तद्दिव्यम् अस्त्रमस्त्रेण शातयन् ।
मायायुद्धेन मायावी सूतपुत्रमयोधयत ॥ ५९

सोऽयोधयत् तदा कर्णं मायया लाघवेन च ।
अलक्ष्यमाणोऽथ दिवि शरजालेषु सम्पतन ॥ ६०

भैमसेनिर्महामायो मायया कुरुसत्तम ।
विचचार महामायो मोहयन्निव भारत ॥ ६१

स स्म कृत्वा विरूपाणि वदनान्यशुभाननः ।
अग्रसत् सूतपुत्रस्य दिव्यान्यस्त्राणि मायया ॥ ६२

पुनश्चापि महाकायस् सञ्छिन्नश्शतधा रणे ।
गतसत्त्वो निरुत्साहः पतितो दिव्यदृश्यत ॥ ६३

तं हतं मन्यमानास्स प्राणदन् कुरुपुङ्गवाः ।
अथ देहैर्नवैरन्यैर् दिक्षु सर्वास्वदृश्यत ॥ ६४

पुनश्चापि महाकायश् शतशीर्षश्शतोदरः ।
व्यदृश्यत महाकायो मैनाक इव पर्वतः ॥ ६५

अङ्गुष्ठमात्रो भूत्वा च पुनरेव स राक्षसः ।
सागरोर्मिरिवोद्भूतस् तिर्यगूर्ध्वमदृश्यत ॥ ६६

वसुधां नादयित्वा च पुनरप्सु ममज्ज च ।
अदृश्यत पुनस्तत्र पुनरुन्मज्जतेऽन्यतः ॥ ६७

सोऽतिवीर्यो रथे तस्थौ पुनर्हेमपरिष्कृते ।
क्षितिं द्यां च दिशश्चैव माययाऽऽवृत्य दंशितः ॥ ६८

गत्वा कर्णरथाभ्याशं प्रचलत्कुण्डलाननः ।
प्राह वाक्यमसम्भ्रान्तस् सूतपुत्रं विशां पते ॥ ६९

घटोत्कचः—

तिष्ठेदानीं न मे जीवन् सूतपुत्र गमिष्यसि ।
युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे ॥ ७०

सञ्जयः—

इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षं रक्षः क्रूरपराक्रमम् ।
उत्पपातान्तरिक्षं च जहास च सुविस्तरम् ॥ ७१
कर्णमभ्यहनच्चैव गजेन्द्रमिव केसरी ॥ ७१॥

रथाक्षमात्रैरिषुभिर् अभ्यवर्षद्घटोत्कचः ।
रथिनामृषभं कर्णं धाराभिरिव तोयदः ॥ ७२॥

शरवृष्टिं तु तां कर्णो दूरात् प्राप्तामशातयत् ॥ ७३

दृष्ट्वा तु विहतां मायां कर्णेन भरतर्षभ ।
घटोत्कचस्ततो मायां ससर्जान्तर्हितः पुनः ॥ ७४

गिरिरत्युच्चशिखरैर् महद्भिस्तरुसङ्कटैः ।

शूलप्रासासिमुसलजलप्रस्रवणो महान् ॥ ७५

तमञ्जनचयप्रख्यं कर्णो दृष्ट्वा महीधरम् ।
शस्त्रप्रतापमत्युग्रं विक्षिपन्तं न चुक्षुभे ॥ ७६

स्मयन्निव ततः कर्णो वज्रमस्त्रमुदैरयत् ।
ततस्सोऽस्त्रेण शैलेन्द्रो विक्षिप्तो वै व्यनश्यत ॥ ७७

ततस्स तोयदो भूत्वा नीलस्सेन्द्रायुधो दिवि ।
अश्मवृष्टिभिरुग्राभिस् सूतपुत्रमवाकिरत् ॥ ७८

अथ सन्धाय वायव्यम् अस्त्रमस्त्रविदां वरः ।
व्यधमत् कालमेघं तं कर्णो वैकर्तनो वृषा ॥ ७९

स मार्गणगणैः कर्णो दिशः प्रच्छाद्य सर्वशः ।
जघानास्त्रं महाराज घटोत्कचसमीरितम् ॥ ८०

ततः प्रहस्य समरे भैमसेनिर्महाबलः ।
प्रादुश्चक्रे महामाया कर्णं प्रति महारथम् ॥ ८१

स दृष्ट्वा पुनरायान्तं रथेनायतकार्मुकम् ।
घटोत्कचमसम्भ्रान्तं राक्षसैर्बहुभिर्वृतम् ॥ ८२

सिंहशार्दूलसदृशैर् मत्तद्विरदविक्रमैः ।
गजस्थैश्च रथस्थैश्च वाजिपृष्ठगतैस्तथा ॥ ८३

नानाशस्त्रधरैर्घोरैर् नानाकवचभूषणैः ।
वृतं घटोत्कचं क्रूरैर् मरुद्भिरिव वासवम् ॥ ८४

दृष्ट्वा कर्णो महेष्वासो योधयामास राक्षसान् ॥ ८४॥

घटोत्कचस्ततः कर्णं विद्ध्वा पञ्चभिरायसैः ।
ननाद सुमहानादं भीषयन् सर्वपार्थिवान् ॥ ८५॥

भूयश्चाञ्जलिकेनाथ समार्गणगणं महत् ।
कर्णहस्तस्थितं चापं चिच्छेद स घटोत्कचः ॥ ८६॥

अथान्यद्धनुरादाय दृढं भारसहं महत् ।
विकर्षन् बलवान् कर्णस् सेन्द्रायुधमिवोच्छ्रितम् ॥ ८७॥

ततः कर्णो महाराज प्रेषयामास सायकान् ।
सुवर्णपुङ्खाञ् छत्रुघ्नान् खचरान् खचरान् प्रति ॥ ८८॥

[1]तद्बाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम् ।
सिंहेनेवार्दितं स्विन्नं गजानामाकुलं कुलम् ॥ ८९॥

विशस्य राक्षसान् बाणैस् साश्वसूतहयान् विभुः ।
ददाह भगवान् वह्निर् भूतानीव युगक्षये ॥ ९०॥

[2]स हत्वा राक्षसीं सेनां शुशुभे सूतनन्दनः ।
पुरेव त्रिपुरं हत्वा दिवि देवो महेश्वरः ॥ ९१॥

तेषु राजसहस्रेषु पाण्डवेयेषु भारत ।
नैनं निरीक्षितुमपि कश्चिच्छक्नोति पार्थिवः ॥ ९२॥

---

1. ख—अर्धद्वयं नास्ति
2. ख—इदमादित्रयोविंशति श्लोका न सन्ति

ऋते घटोत्कचाद्राजन राक्षसेन्द्रान्महाबलान् ।
भीमवीर्यबलोपेतान् क्रुद्धाद् वैवस्वतादिव ॥　　९३॥

तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्या पावकस्समजायत ।
महोल्काभ्यां यथा राजन सार्चिषस्स्नेहबिन्दवः ॥　　९४॥

तलं तलेन संहत्य सन्दश्य दशनच्छदम् ।
रथमास्थाय च पुनर् मायया निर्मितं पुनः ॥　　९५॥

युक्तं गजनिभैर्वाहैः पिशाचवदनैः खरैः ।
स सूतमब्रवीत् क्रुद्धस् सूतपुत्राय मां वह ॥　　९६॥

स ययौ घोररूपेण रथेन रथिना वरः ।
द्वैरथं सूतपुत्रेण पुनरेव विशा पते ॥　　९७॥

स चिक्षेप पुनः क्रुद्धस् सूतपुत्राय राक्षसः ।
अष्टघण्टां महाघोराम् अशनि [1]बृत्रनिर्मिताम् ॥　　९८॥

तामाप्लुत्य च जग्राह कर्णो न्यस्य रथे धनुः ।
चिक्षेप चैनां तस्यैव स्यन्दनात् सोऽवपुप्लुवे ॥　　९९॥

साश्वसूतध्वजं यानं भस्म कृत्वा महाप्रभा ।
विवेश वसुधां भित्त्वा सुरास्तत्र विसिस्मियुः ॥　　१००॥

कर्णं तु सर्वभूतानि पूजयामासुरञ्जसा ।
यदवप्लुत्य जग्राह देवसृष्टां महाशनिम् ॥　　१०१॥

---

1 क-ख-ब—तत

एवं कृत्वा रणे कर्ण आरुरोह रथं पुनः ।
ततो मुमोच नाराचान् सूतपुत्रः परन्तपः ॥ १०२॥

अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु मानद ।
यदकार्षीत् तदा कर्णस् सङ्ग्रामे भीमदर्शने ॥ १०३॥

स हन्यमानो नाराचैर् धाराभिरिव पर्वतः ।
गन्धर्वनगराकारः पुनरन्तरधीयत ॥ १०४॥

एवं स वै महाबाहो मायया लाघवेन च ।
अस्त्राणि तानि दिव्यानि जघानारिनिपूदनः ॥ १०५॥

निहन्यमानेष्वस्त्रेषु मायया तेन रक्षसा ।
असम्भ्रान्तस्ततः कर्णस् तद्रक्षः प्रत्ययुध्यत ॥ १०६॥

ततः क्रुद्धो महाराज [1]भैमसेनिर्महाबलः ।
चकार बहुधाऽऽत्मानं भीषयाणो नराधिपान् ॥ १०७॥

ततो दिग्भ्यस्समापेतुस् सिंहव्याघ्रतरक्षवः ।
अग्निजिह्वाश्च भुजगा विहगाश्चाप्ययोमुखाः ॥ १०८॥

स कीर्यमाणो विशिखैः कर्णचापच्युतैश्शरैः ।
नगराद्रिवनप्रख्यैस् तत्रैवान्तरधीयत ॥ १०९॥

राक्षसाश्च पिशाचाश्च यातुधानास्समावृताः ।
ते कर्णं भक्षयिष्यन्तस् सर्वतस्समुपाद्रवन् ॥ ११०॥

---

1. अ-ङ—इतस्सपादार्धषट्कं नास्ति

अथैनं वाग्भिरुग्राभिस् त्रासयाञ्चक्रिरे तदा ।
उद्यतैर्बहुभिर्घोरैर् आयुधैश्शोणितोक्षितैः ॥　　१११॥

तेषामनेकैरेकैकं कर्णो विव्याध चाशुगैः ॥　　११२

प्रतिहत्य तु तां मायां दिव्येनास्त्रेण राक्षसीम् ।
आजघान हयानस्य शरैस्सन्नतपर्वभिः ॥　　११३

[1]ते भग्ना विकृताङ्गाश्च भिन्नपृष्ठाश्च सायकैः ।
वसुधामन्वपद्यन्त पश्यतस्तस्य रक्षसः ॥　　११४

सम्भग्नमायो हैडिम्बः कर्णं वैकर्तनं ततः ।
एष ते विदधे मृत्युम् इत्युक्त्वान्तरधीयत ॥　　११५

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥
॥ ७० ॥ घटोत्कचवधपर्वणि षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ११५ श्लोकाः ]

---

1. ख—ततः कर्णो महाराज राक्षसान् व्यधमच्छरैः ।
स स्म कृत्वा विरूपाणि व्यात्तानि वदनानि च ॥
राधेयस्याच्छिनद्बाणैरस्त्राणि विविधानि च ।
छादयामास च शरैर्धाराभिरिव पर्वतम् ॥
गन्धर्वनगराकारं पुनरन्तरधीयत ।　　[अधिक. पाठ.]

## ॥ पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

बकादिबन्धुवधाद्भीमे चिरवैरिणा अलायुधराक्षसेन सुयोधनादायोधनाभ्यनुज्ञामुपलभ्य घटोत्कचं प्रत्यभिगमनम् ॥ १ ॥ भीमालायुधयोर्युद्धम् ॥ २ ॥

सञ्जयः—

तस्मिंस्तथा वर्तमाने कर्णराक्षसयोर्मृधे ।
अलायुधो राक्षसेन्द्रो वीर्यवानभ्यवर्तत ॥ १

महत्या सेनया युक्तस् सुयोधनमुपागमत् ।
राक्षसानां विरूपाणां सहस्रैः परिवारितः ॥ २

नानारूपधरैर्वीरैः पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २॥

तस्य ज्ञातिर्हि विक्रान्तो ब्राह्मणादो बको हतः ।
किम्मीरश्च महातेजा हिडिम्बश्च सखा तदा ॥ ३॥

स दीर्घकालाध्युषितं पूर्ववैरमनुस्मरन् ।
विज्ञायैतन्निशायुद्धं जिघांसुर्भीममाहवे ॥ ४॥

स मत्त इव मातङ्गस् सङ्क्रुद्ध इव चोरगः ।
दुर्योधनमिदं वाक्यम् अब्रवीद्युद्धलालसः ॥ ५॥

अलायुधः—

विदितं ते महाराज यथा भीमेन राक्षसाः ।

तस्याप्यतुलनिर्घोषो [1]बहुतोरणचित्रितः ।
ऋक्षचर्मावनद्धाङ्गो नल्वमात्रो महारथः ॥ १५

तस्यापि तुरगाश्शीघ्रा हस्तिकायाः खरस्वनाः ।
शतं युक्ता महाकाया मांसशोणितभोजनाः ॥ १६

तस्यापि रथनिर्घोषो महामेघरवोपमः ।
तस्यापि सुमहच्चापं दृढज्यं बलवद्दृढम् ॥ १७

तस्याप्यक्षसमा बाणा रुक्मपुङ्खाश्शिलाशिताः ।
सोऽपि वीरो महाबाहुर् यथैव स घटोत्कचः ॥ १८

तस्यापि गोमायुबलाभिगुप्तो
बभूव केतुर्ज्वलनार्कतुल्यः ।
स चापि रूपेण घटोत्कचस्य
श्रीमत्तमो ह्यन्तकसन्निकाशः ॥ १९

दीप्ताङ्गदो दीप्तकिरीटमाली
बद्धस्रगुष्णीषनिबद्धखङ्गः ।
गदी भुसुण्ठी मुसली हली च
शरासनी वारणतुल्यवर्ष्मा ॥ २०

---

1. ख—महामेघरवोपमम् ।
मध्ये अर्धचतुष्टयं नास्ति

रथेन तेनानलवर्चसा च
 विद्रावयन् पाण्डवयोधवीरान् ।
रराज मध्ये परिवर्तमानो
 विद्युन्माली मेघ इवान्तरिक्षे ॥ २१

ते चास्य सर्वे खचरा नरेन्द्रा
 महाबला वर्मिणश्छत्रिणश्च ।
हर्षान्विता युयुधुस्तस्य योधास्
 समन्ततः पाण्डवयोधवीरान् ॥ २२

तमागतमभिप्रेक्ष्य भीमकर्माणमाहवे ।
हर्षमाहारयाञ्चक्रुः कुरवस्सर्व एव ते ॥ २३

तथैव तव पुत्राश्च दुर्योधनपुरोगमाः ।
अप्लवाः प्लवमासाद्य तर्तुकामा इवार्णवम् ॥ २४

पुनर्जातमिवात्मानं मन्वानाः पार्थिवास्तदा ।
अलायुधं राक्षसेन्द्रं स्वागतेनाभ्यपूजयन् ॥ २५

तस्मिंस्त्वमानुषे युद्धे वर्तमाने महाभये ।
कर्णराक्षसयोर्नक्तं दारुणप्रतिदर्शने ॥ २६

न द्रौणिर्न कृपो द्रोणो न शल्यो न च माधवः ।

---

* सर्वेषु कोशेषु अत्रैवाध्यायसमाप्तिर्दृश्यते

एक एव तु तेनासीद् योद्धा कर्णो रणे वृषा ॥ २७

उपप्रैक्षन्त पाञ्चालास् स्मयमानास्सराजकाः ।
व्यभ्रमंस्तावकाश्चापि घूर्णमानास्ततस्ततः ॥ २८

चुक्रुशुर्नेदमस्तीति द्रोणद्रौणिकृपादयः ।
तत् कर्म दृष्ट्वा सम्भ्रान्ता हैडिम्बस्य रणाजिरे ॥ २९

सर्वमाविग्नमभवद्धाहाभूतमचेतनम् ।
ततस्सैन्यं महाराज निराशं कर्णजीविते ॥ ३०

दुर्योधनस्तु सम्प्रेक्ष्य कर्णमार्तिं परां गतम् ।
अलायुधं राक्षसेन्द्रम् आहूयेदमथाब्रवीत् ॥ ३१

दुर्योधन —

एष वैकर्तनः कर्णो हैडिम्बेन समागतः ।
कुरुते सुमहन् कर्म यदस्यौपयिकं मृधे ॥ ३२

पश्यैतान् पार्थिवाञ् शूरान् निहतान् भैमसेनिना ।
नानाशस्त्रैरभिहतान् पादपानिव दन्तिना ॥ ३३

तवैष भारस्समरे ज्ञातिमध्ये मया कृतः ।
तवैवानुमते वीर तं विक्रम्य निबर्हय ॥ ३४

पुरा वैकर्तनं कर्णम् एष पापो घटोत्कचः ।
मायाबलमुपाश्रित्य कर्शयत्यरिकर्शनः ॥ ३५

सञ्जयः—

एवमुक्तस्स राजा तु राक्षसस्तीव्रविक्रमः ।
तथेत्युक्त्वा महाबाहुर् घटोत्कचमुपाद्रवत् ॥ ३६

ततः कर्णं समुत्सृज्य भैमसेनिरपि प्रभो ।
प्रत्यमित्रमुपायान्तम् अर्दयामास मार्गणैः ॥ ३७

तयोस्समभवद्युद्धं क्रुद्धयो राक्षसेन्द्रयोः ।
मत्तयोर्वाशिताहेतोर् द्विपयोरिव कानने ॥ ३८

रक्षसा विप्रमुक्तस्तु कर्णोऽपि बलिना वरः ।
अभ्यद्रवद्भीमसेनं रथेनादित्यवर्चसा ॥ ३९

तमायान्तमनादृत्य ग्रस्तं दृष्ट्वा घटोत्कचम् ।
अलायुधेन समरे सिंहेनेव गवां पतिम् ॥ ४०

रथेनादित्यवपुषा भीमः प्रहरतां वरः ।
किरञ् छरौघान् प्रययावलायुधरथं प्रति ॥ ४१

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य स तदाऽलायुधः प्रभो ।
घटोत्कचं समुत्सृज्य भीमसेनं समाह्वयत् ॥ ४२

तं भीमस्सहसाऽभ्येत्य राक्षसान्तकरः प्रभो ।
सगणं राक्षसेन्द्रं तं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ४३

[1]तथैवालायुधो राजञ् शिलाधौतैरजिह्मगैः ।

1. अ—अष्टादशार्धानि न सन्ति

अभ्यवर्षत कौन्तेयं पुनः पुनररिन्दमः ॥ ४४

तथा ते राक्षसास्सर्वे भीमसेनमुपाद्रवन् ।
नानाप्रहरणा भीमास् त्वत्सुतानां जयैषिणः ॥ ४५

स ताड्यमानो बहुभिर् भीमसेनो महाबलः ।
पञ्चभिः पञ्चभिस्सर्वांस् तानविध्यच्छितैश्शरैः ॥ ४६

ते वध्यमाना भीमेन राक्षसाः खेचरा रणे ।
विनेदुस्तुमुलान् नादान् दुद्रुवुस्ते दिशो दश ॥ ४७

तांस्त्रास्यमानान् भीमेन दृष्ट्वा रक्षो महाबलम् ।
अभिदुद्राव वेगेन शरैश्चैनमवाकिरन् ॥ ४८

तं भीमसेनस्समरे तीक्ष्णाग्रैरक्षिणोच्छरैः ॥ ४८॥

अलायुधस्तु तानस्तान् भीमेन विशिखान् रणे ।
चिच्छेद कांश्चित् समरे उरसा कांश्चिदग्रहीन् ॥ ४९॥

स तं दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रं भीमो भीमपराक्रमः ।
गदां चिक्षेप वेगेन वज्रपातसमां तदा ॥ ५०॥

तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य गदां ज्वालाकुलां ततः ।
गदया ताडयामास सा गदा भीममाव्रजत् ॥ ५१॥

स राक्षसेन्द्रं कौन्तेयश् शरवर्षैरवाकिरन् ।
तानप्यस्याकरोन्मोघान् राक्षसो निशितैश्शरैः ॥ ५२॥

ते चापि राक्षसास्सर्वे सैनिका भीमरूपिणः ।
शासनाद्राक्षसेन्द्रस्य निजघ्नू रथकुञ्जरान ॥ ५३॥

पाञ्चालास्सृञ्जयाश्चैव सवाजिरथकुञ्जराः ।
न शान्ति लेभिरे तत्र राक्षसैर्भृशपीडिताः ॥ ५४॥

तं तु दृष्ट्वा महाघोरं वर्तमानं महाहवम् ।
अब्रवीत् पुण्डरीकाक्षो धनञ्जयमिदं वचः ॥ ५५॥

श्रीभगवान्—

पश्य भीमं महाबाहो राक्षसेन्द्रवशं गतम् ।
पदवीमस्य गच्छ त्वं मा विचारय पाण्डव ॥ ५६॥

धृष्टद्युम्नश्शिखण्डी च युधामन्यूत्तमौजसौ ।
सहितौ द्रौपदेयाश्च कर्णं यान्तु महारथाः ॥ ५७॥

नकुलस्सहदेवश्च युयुधानश्च वीर्यवान ।
इतरान राक्षसान हन्तुं शासनात् तव पार्थिवाः ॥ ५८॥

त्वमपीमां महाबाहो चमूं द्रोणपुरस्कृताम् ।
धारयस्व नरव्याघ्र महद्धि भयमागतम् ॥ ५९॥

सञ्जयः—

एवमुक्ते तु कृष्णेन यथोदिष्टा महारथाः ।
जग्मुर्वैकर्तनं कर्णं राक्षसांश्चेतरान् रणे ॥ ६०॥

अथ पूर्णायतोत्सृष्टैश् शरैराशीविषोपमैः ।

धनुश्चिच्छेद भीमस्य राक्षसेन्द्रः प्रतापवान ॥ ६१॥

हयांश्चास्य महावाणैस् सारथिं च महावलः ।
जघान मिपतस्सङ्ख्ये भीमसेनस्य [1]भारत ॥ ६२॥

सोऽवतीर्य रथोपस्थाद्धताश्वो हतसारथिः ।
तस्मिन् गुर्वीं गदां घोरां विनदन वै ससर्ज च ॥ ६३॥

ततस्तां भीमनिर्घोषाम् आपतन्तीं महागदाम् ।
गदया राक्षसो घोरो निजघान ननाद च ॥ ६४॥

तद्दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रस्य घोरं कर्म भयावहम् ।
भीमसेनः प्रहृष्टात्मा गदामाशु परामृशन् ॥ ६५॥

तयोस्समभवद्युद्धं तुमुलं [2]नररक्षसोः ।
गदानिपातसंह्रादैर् भुवं कम्पयतोर्भृशम् ॥ ६६॥

गदां विमुच्य तौ भूयस् समासाद्येतरेतरम् ।
[3]मुष्टिभिर्वज्रसङ्घातैर् अन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ ६७॥

रथचक्रैर्युगैरक्षैर् अधिष्ठानैरवस्करैः ।
यथासन्नमुपादाय निजघ्नतुररिन्दमौ ॥ ६८॥

तौ विक्षरन्तौ रुधिरं समासाद्येतरेतरम् ।
मत्ताविव महानागौ चकृषाते पुनः पुनः ॥ ६९॥

---

1 ख—मारिष 2. घ—रोमहर्षणम् ख—नरराक्षसयोस्तदा
3. ङ—अर्धचतुष्टयं नास्ति

तावपश्यद्धृषीकेशः पाण्डवानां हिते रतः ।
स भीमसेनरक्षार्थं हैडिम्बं पर्यचोदयत ॥ ७०॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १४५ ॥
॥ ७० ॥ घटोत्कचवधपर्वणि सप्तदशोऽध्याय. ॥ १७ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ७०॥ श्लोका. ]

---

## ॥ षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

घटोत्कचेनालायुधवध ॥

---

सञ्जय —

सम्प्रेक्ष्य भीमं समरे रक्षसा ग्रस्तमन्तिकात ।
वासुदेवोऽब्रवीद्वाक्यं घटोत्कचमिदं तदा ॥ १

श्रीभगवान्—

पश्य भीमं महाबाहो रक्षसा ग्रस्तमन्तिकात ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां तव चैव महाद्युते ॥ २

स कर्णं तु समुत्सृज्य राक्षसेन्द्रमलायुधम ।
जहि क्षिप्रं महाबाहो पश्चात् कर्णं हनिष्यसि ॥ ३

सञ्जयः—

स वार्ष्णेयवचश्श्रुत्वा कर्णमुत्सृज्य वीर्यवान ।
युयुधे राक्षसेन्द्रेण बकभ्रात्रा घटोत्कचः ॥ ४

तयोस्तु तुमुलं युद्धं बभूव निशि रक्षसोः ॥ ४॥

अलायुधस्य योधांस्तु राक्षसान भीमदर्शनान् ।
वेगेनापततश्शूरान् प्रगृहीतशरासनान् ॥ ५॥

आत्तायुधस्तु सङ्क्रुद्धो युयुधानो महारथः ।
नकुलस्सहदेवश्च चिच्छिदुर्निशितैश्शरैः ॥ ६॥

सर्वांश्च समरे राजन किरीटी क्षत्रियर्षभान ।
परिचिक्षेप बीभत्सुस् सर्वतः प्रकिरञ् छरान् ॥ ७॥

कर्णश्च समरे राजन व्यद्रावयत पार्थिवान् ।
धृष्टद्युम्नशिखण्ड्यादीन पाञ्चालानां महारथान् ॥ ८॥

तान् वध्यमानान् दृष्ट्वा तु भीमो भीमपराक्रमः ।
अभ्ययात् त्वरितः कर्णं विशिखान विकिरन रणे ॥ ९॥

ततस्तेऽभ्याययुर्हत्वा राक्षसान् यत्र सूतजः ।
नकुलस्सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ १०॥

ते कर्णं योधयामासुः पाञ्चाला द्रोणमेव च ॥ ११

अलायुधस्तु सङ्क्रुद्धो घटोत्कचमरिन्दमम् ।
परिघेणाद्रिकायेन ताडयामास मूर्धनि ॥ १२

स तु तेन प्रहारेण भैमसेनिर्महाबलः ।
ईषन्मूर्च्छान्वितोऽऽत्मानम् संस्तम्भयत वीर्यवान ॥ १३

ततो दीप्ताग्निसङ्काशां शतघण्टामलङ्कृताम् ।
चिक्षेप तस्मै समरे गदां काञ्चनभूषिताम् ॥ १४

सा हयांश्चतुरश्चास्य सारथिं च महास्वना ।
चूर्णयामास वेगेन विसृष्टा भीमकर्मणा ॥ १५

स भग्नहयचक्राक्षो विशीर्णध्वजकूबरः ।
उत्पपात रथात् तूर्णं मायामास्थाय राक्षसीम् ॥ १६

स समास्थाय मायां तु ववर्ष रुधिरं बहु ।
विद्युद्भिर्भ्राजितं चासीत् तुमुलाभ्राकुलं नभः ॥ १७

ततो वज्रनिपातश्च साशनिस्तनयित्नुमान् ।
महांश्चटचटाशब्दस् तत्रासीच्च महाहवे ॥ १८

तां प्रेक्ष्य विहितां मायां राक्षसो राक्षसेन तु ।
ऊर्ध्वमुत्पत्य हैडिम्बस् तां मायां माययाऽवधीत् ॥ १९

सोऽभिवीक्ष्य हतां मायां मायावी माययैव हि ।
अश्मवर्षं सुतुमुलं विससर्ज घटोत्कचे ॥ २०

अश्मवर्षं स तद् घोरं शरवर्षेण वीर्यवान् ।
दिशो विध्वंसयामास तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २१

ततो नानाप्रहरणैर् अन्योन्यं समाभ्यवर्तताम् ।
आयसैः परिघैः शूलैर् गदामुसलमुद्गरैः ॥ २२

पिनाकैः करवालैश्च तोमरैः प्रासकम्पनैः ।

नाराचैर्निशितैर्भल्लैश् शरै[1]रस्त्रैः परश्वथैः ॥ २३

अयोहुलैर्भिण्डिपालैर् गोशीर्षोलूखलैरपि ।
उत्पाट्य च महाशाखैर् विविधैर्जगतीरुहैः ॥ २४

शमी[2]बिल्वशिरीषैश्च शम्याकैश्चैव भारत ।
इङ्गुदैर्बदरीभिश्च कोविदारैस्सुपुष्पितैः ॥ २५

पलाशैररिमन्दैश्च प्लक्षन्यग्रोधपिप्पलैः ।
महद्भिस्समरे तस्मिन् अन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ २६

विविधैः पर्वताना च शृङ्गैर्धातुविचित्रितैः ।
तेषां शब्दो महानासीद् वज्रेणाहन्यतामिव ॥ २७

तद्युद्धमभवद्धोरं भैम्यलायुधयोर्भृशम् ।
हरीन्द्रयोर्यथा राजन् वालिसुग्रीवयोः पुरा ॥ २८

तौ युद्ध्वा विशिखैर्घोरैर् आयुधैर्विविधैस्तदा ।
उत्सृज्य निशितौ खड्गावन्योन्यमभिपेततुः ॥ २९

तावन्योन्यमभिद्रुत्य केशेपु सुमहाबलौ ।
बाहुभिः परिगृह्णीतां महामायौ महाबलौ ॥ ३०

तौ स्विन्नगात्रौ प्रस्वेदं सुस्रुवाते जनाधिप ।
रुधिरं च महाकायावभिवृष्टाविवाचलौ ॥ ३१

---

1 क—इशस्त्रै ख—श्चक्रै.
2. ख—पीलुकरीरैश्च

अथाभिपत्य वेगेन समुद्भ्राम्य च राक्षसम् ।
बलेनाक्षिप्य हैडिम्बिश् चकर्तास्य शिरो महत् ॥　　३२

सोऽपहृत्य शिरस्तस्य कुण्डलाभ्यां विभूषितम् ।
तदा सुतुमुलं नादं ननाद सुमहाबलः ॥　　३३

हतं दृष्ट्वा महाकायं बकज्ञातिमरिन्दमम् ।
पाञ्चालाः पाण्डवाश्चैव सिंहनादान् विनेदिरे ॥　　३४

ततो भेरीसहस्राणि शङ्खानामयुतानि च ।
अवादयन् पाण्डवेयास् तस्मिन् रक्षसि पातिते ॥　　३५

अतीव सा निशा तेषां बभूव विजयावहा ।
विद्योतमाना विबभौ समन्ताद्दीपमालिनी ॥　　३६

अलायुधस्य तु शिरो भैमसेनिर्महाबलः ।
दुर्योधनस्य प्रमुखे चिक्षेप गतचेतनम् ॥　　३७

अथ दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा हतमलायुधम् ।
बभूव परमोद्विग्नस् सह सैन्येन भारत ॥　　३८

तेन ह्यस्य प्रतिज्ञातं भीमसेनमहं युधि ।
हन्मीति स समागम्य स्मरता वैरमुत्तमम् ॥　　३९

ध्रुवं स तेन हन्तव्य इत्यमन्यत पार्थिवः ।
जीवितं चिरकालाय भ्रातॄणां चाप्यमन्यत ॥　　४०

स तं दृष्ट्वा विनिहतं भीमसेनात्मजेन वै ।
प्रतिज्ञां भीमसेनस्य पूर्णामेवाभ्यमन्यत ॥ ४१

इति श्रीमहाभारते शतसहस्त्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥
॥ ७० ॥ घटोत्कचवधपर्वणि अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ४१ श्लोकाः ]

## ॥ सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

कर्णेन घटोत्कचवधः ॥

सञ्जयः—

निहत्यालायुधं वीरः प्रहृष्टात्मा घटोत्कचः ।
ननाद विविधान् नादान् वाहिन्याः प्रमुखे तव ॥ १

तस्य तं तुमुलं शब्दं श्रुत्वा हृदयकम्पनम् ।
तावकानां महाराज भयमासीत् सुदारुणम् ॥ २

अलायुधविषक्तं तु भैमसेनि महाबलम् ।
दृष्ट्वा कर्णो महाबाहुः पाञ्चालान समुपाद्रवत् ॥ ३

दशभिर्दशभिर्बाणैर् धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।
दृढैः पूर्णायतोत्सृष्टैर् बिभेद नतपर्वभिः ॥ ४

ततः परमनाराचैर् युधामन्यूत्तमौजसौ ।

सात्यकिं च रथोदारं कम्पयामास मार्गणैः ॥ ५

तेषामभ्यस्यतां तत्र सर्वेषां सव्यदक्षिणम् ।
मण्डलान्येव चापेषु व्यदृश्यन्त जनाधिप ॥ ६

तेषां ज्यातलनिर्घोषो रथनेमिस्वनश्च ह ।
मेघानामिव घर्मान्ते बभूव तुमुलो निशि ॥ ७

ज्यानेमिघोषस्तनयित्नुमान् वै
धनुस्तटिन्मण्डलकेतुशृङ्गः ।
शरौघवाताकुलवृष्टिमांश्च
सङ्ग्राममेघस्स बभूव राजन् ॥ ८

तमुद्धतं शैल इवाप्रकम्प्यो
वर्षन् महाशैलसमानसारः ।
विध्वंसयामास रणे नरेन्द्र
वैकर्तनश्शत्रुगणावमर्दी ॥ ९

ततोऽतुलैर्वज्रनिपातकल्पैश्
शितैश्शरैः काञ्चनचित्रपुङ्खैः ।
शत्रून् व्यपोहत् समरे महात्मा
वैकर्तनः पुत्रहिते रतस्ते ॥ १०

सञ्छिन्नभिन्नध्वजिनश्च केचित्
केचिच्छरैस्त्वर्दितभिन्नदेहाः ।

केचिद्विसूता विहयाश्च केचिद्
वैकर्तनेनाशु कृता बभूवुः ॥ ११

अविन्दमानास्त्वथ शर्म सङ्ख्ये
यौधिष्ठिरं तद्बलमन्वगच्छन् ।
तान् प्रेक्ष्य भग्नान् विमुखीकृतांश्च
घटोत्कचो रोषमतीव चक्रे ॥ १२

आस्थाय वै काञ्चनरत्नचित्रं
रथोत्तमं सिंह इवोन्ननाद ।
वैकर्तनं कर्णमुपेत्य सोऽपि
विव्याध वज्रप्रतिमैः पृषत्कैः ॥ १३

तौ कर्णिनाराचशिलीमुखैश्च
सभल्लदण्डासनवत्सदन्तैः ।
वराहकर्णैस्सविपाठशृङ्गैः
क्षुरप्रवर्षैश्च विरेदतुः खम् ॥ १४

तद्बाणधाराभिरथान्तरिक्षं
तिर्यग्गताभिस्समरे रराज ।
सुवर्णपुङ्खज्वलितप्रभाभिर्
विचित्रपुष्पाभिरिव प्रजाभिः ॥ १५

समाहितावप्रतिमप्रभावा-
वन्योन्यमाजघ्नतुरुत्तमास्त्रैः ।
तयोर्हि वीरोत्तमयोर्न कश्चिद्
ददर्श तस्मिन समरे विशेषम् ॥ १६

अतीव तच्चित्रमतुल्यरूपं
बभूव युद्धं रविभीमसून्वोः ।
समाकुलं शस्त्रनिपातघोरं
दिवीव राह्वंशुमतोः प्रसक्तम् ॥ १७

घटोत्कचं यदा कर्णो न विशेषयते नृप ।
ततः प्रादुश्चकारोग्रम् अस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥ १८

तेनास्त्रेण हयान् पूर्वं जघ्ने कर्णोऽथ रक्षसः ।
सरथश्चापि हैडिम्बः क्षिप्रमन्तरधीयत ॥ १९

धृतराष्ट्रः—

तस्मिन्नन्तर्हिते तूर्णं कूटयोधिनि राक्षसे ।
मामकैः प्रतिपन्नं यत् तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ २०

सञ्जयः—

अन्तर्हितं राक्षसं तं विदित्वा
सम्प्राक्रोशन् कुरवस्सर्व एव ।
कथं नायं राक्षसः कूटयोधी
हन्यात् कर्णं समरेऽदृश्यमानः ॥ २१

ततः कर्णो लघुचित्रास्त्रयोधी
सर्वा दिशो व्यावृणोद्बाणजालैः ।
न वै किञ्चिद्व्यावृतं तत्र भूतं
तमोभूते सायकैरन्तरिक्षे ॥ २२

नैवाददानो न च सन्दधानो
न चेषुधीं स्पृशमानः कराग्रैः ।
अदृश्यद्वै लाघवात् सूतपुत्रस्
सर्वं बाणैश्छादयानोऽन्तरिक्षम् ॥ २३

ततो माया विहितामन्तरिक्षे
मेघावलीमञ्जनचूर्णवर्णाम् ।
[1]अपश्याम लोहिताभ्रप्रकाशा
प्रदीप्यन्तीमग्निशिखामिवोग्राम् ॥ २४

[2]ततस्तस्यां विद्युतः प्रादुरास-
न्नुल्काश्चापि ज्वलिताः कौरवेन्द्र ।
घोषश्चापि प्रादुरासीत् सुघोरस्
सहस्रस्येवोन्नदतो दुन्दुभीनाम् ॥ २५

ततश्शराः प्रापतन्नुग्ररूपाश्
शक्त्यः प्रासा मुसलान्यायुधानि ।

---

1 ख—घोरां रूपां विहितां राक्षसेन [अधिकः पाठः]
2 ख—अयं पादो नास्ति

परश्वधास्तैलधौताश्च खड्गाः
　　प्रदीप्ताग्राः पट्टिशास्तोमराश्च ॥　　२६

मयूखिनः परिघा लोहबद्धा
　　गदाश्चित्राश्शितधाराश्च शूलाः ।
गुर्व्यो गदा हेमपट्टावनद्धाश्
　　शतघ्न्यश्च प्रादुरासन समन्तात ॥　　२७

महाशिलाश्चाप्यपतंस्तत्र तत्र
　　सहस्रशश्चाशनयस्सवज्राः ।
चक्राणि चानेकशतक्षुराणि
　　प्रादुर्वभूवुर्ज्वलनप्रभाणि ॥　　२८

[1]तां शक्तिपाषाणपरश्वधानां
　　प्रासासिवज्राशनिमुद्गराणाम् ।
वृष्टिं विशालां पतितां ज्वलन्तीं
　　कर्णश्शरौघैर्न शशाक हन्तुम ॥　　२९

शराहतानां पततां हयाना
　　वज्राहतानां च महागजानाम् ।
शिलाहताना च महारथानां
　　महान निनादः पततां वभूव ॥　　३०

---

1. ख—घोराणि नागाश्वरथान्तकानि　　[अधिकः पाठः]

सुभीमनानाविधशस्त्रपातैर्
घटोत्कचेनाभिहतं समन्तात् ।
दौर्योधनं वै बलमार्तरूपम्
आवर्तमानं ददृशे भृशं तत् ॥ ३१

हाहाकृतं तत् परिवर्तमानं
संलीयमानं च विपण्णरूपम् ।
ते त्वार्यभावाः पुरुषेन्द्रयोधाः
पराङ्मुखा न बभूवुस्तदानीम् ॥ ३२

तां राक्षसीं घोरतमां सुभीमां
वृष्टिं महाशस्त्रमयीं पतन्तीम् ।
दृष्ट्वा बलौघांश्च निपात्यमानान्
महद्भयं तव पुत्रान् विवेश ॥ ३३

शिवाश्च वैश्वानरदीप्तजिह्वास्
सुभीमनादाश्शतशो नदन्तीः ।
रक्षोगणान् नर्दतश्चापि वीक्ष्य
नरेन्द्र योधा व्यथिता बभूवुः ॥ ३४

ते दीप्तजिह्वाननदीप्तदंष्ट्रा
विभीषणाश्शैलनिकाशकायाः ।

नभोगताश्शक्तिविपक्तहस्तास्
　　सृजन्ति मेघा इव शस्त्रवृष्टिम् ॥　　३५

तैराहतास्ते शरशक्तिशूलैर्
　　गदाभिरुग्रैः परिघैश्च दीर्घैः ।
वज्रैः पिनाकैरशनिप्रहारैश्
　　चक्रैश्शतघ्न्युन्मथिताश्च पेतुः ॥　　३६

तथा भुसुण्ड्यश्च हुलाश्शतघ्न्यस्
　　स्थूणाश्च कार्ष्णायसपट्टनद्धाः ।
अवाकिरंस्ते तव पुत्रसेनां
　　तथा रौद्रं कश्मलं प्रादुरासीत् ॥　　३७

विकीर्णान्त्रा विकृतैरुत्तमाङ्गैस्
　　सम्भग्नाङ्गाश्शेरते तत्र शूराः ।
छिन्ना हयाः कुञ्जराश्चापि भग्ना
　　न मुच्यन्ते याचमानास्सुभीताः ॥　　३८

ते वै भग्नास्सहसा व्यद्रवन्त
　　प्राक्रोशन्तः कुरवस्सर्व एव ॥　　३८॥

पलायध्वं कुरवो नैतदस्ति
　　सेन्द्रा देवा घ्नन्ति नः पाण्डवार्थे ।

तस्मिन् घोरे कुरुवीरावमर्दे
कालोत्सृष्टे क्षत्रियाणामभावे ॥ ३९॥
तथा तेषां भज्यतां भारतानां
अस्मद्वीपस्तत्र कश्चिद् बभूव ॥ ४०
तस्मिन् क्रन्दे तुमुले वर्तमाने
सैन्ये भग्ने लीयमाने कुरूणाम् ।
अनीकाना प्रविभागप्रणाशे
न ज्ञायन्ते कुरवो नेतरे च ॥ ४१
निर्मर्यादे विद्रवे घोररूपे
सर्वा दिशस्सम्पतन्ति स्म शूराः ।
तां शस्त्रवृष्टिमुरसा गाहमान
कर्ण स्मैक तत्र राजन्नपश्यम् ॥ ४२
ततो बाणैरावृणोदन्तरिक्षं
दिव्या मायां योधयन् राक्षसस्य ।
ह्रीमान् कुर्वन् दुष्करमार्यकर्म
नैवामुह्यत् संयुगे सूतपुत्रः ॥ ४३
ततो भीतास्समुदैक्षन्त कर्ण
राजन् सर्वे सैनिका बान्धवाश्च ।
असम्मोहं पूजयन्तोऽस्य सङ्ख्ये
नापश्यन् वै विजयं राक्षसस्य ॥ ४४

तेनोत्सृष्टा चक्रयुक्ता शतघ्नी
　समं सर्वांश्चतुरोऽश्वाञ्जघान ।
ते जानुभिर्जगतीमन्वपद्यन
　गतासवो निर्दशनाक्षिजिह्वाः ॥　४५

ततो हताश्वादवरुह्य वाहाद्
　अन्तर्मनाः कुरुषु प्राद्रवत्सु ।
दिव्ये चास्त्रे मायया वध्यमाने
　नैवामुह्यच्चिन्तयन प्राप्तकालम् ॥　४६

ततोऽब्रुवन कुरवस्सर्व एव
　कर्णं दृष्ट्वा घोररूपां च मायाम् ॥　४६॥

कुरवः—

शक्त्या रक्षो जहि कर्णाद्य तूर्णं
　नश्यन्त्येते कुरवो धार्तराष्ट्राः ।
[1]करिष्यतः किञ्च तौ भीमपार्थौ
　तपन्तमेनं जहि राक्षसेन्द्रम् ॥　४७॥

यो नस्सङ्ग्रामा[2]द्घोररूपाद्विमुच्येत्
　स तान् पार्थान योत्स्यते संयुगेषु ।

---

1 ख—किं कुर्यातां भीमपार्थौ तवेमौ

2. ख—न्मोक्ष्यते घोररूपात् स नः प्रार्थ्यत् परमो योधमुख्य.

तस्मादेनं राक्षसं घोररूपं
जहि शक्त्या दत्तया वासवेन ॥ ४८॥
[1]मा कौरवास्सर्व एवेन्द्रकल्पा
रात्रौ नश्येरन् कर्ण एते सयोधाः ॥ ४९

सञ्जय.—

स वध्यमानो रक्षसा वै निशीथे
दृष्ट्वा राजन् वध्यमानं बलं च ।
महच्च श्रुत्वा निनदं कौरवाणा
मति दधे शक्तिमोक्षाय कर्णः ॥ ५०

स वै क्रुद्धस्सिंह इवाभिनर्दन्
नामर्षयत् प्रतियान्तं रणे तम् ।
[2]शक्ति श्रेष्ठां वर्मणाऽऽदाय राजन्
समाददे तस्य वधं चिकीर्षन् ॥ ५१

याऽसौ राजन् निहिता वर्षपूगान्
वधायाजौ सत्कृता पाण्डवस्य ।
यां वै प्रादात् सूतपुत्राय शक्रश्
शक्ति श्रेष्ठां कुण्डलाभ्यां निमाय ॥ ५२

---

1 ख—अर्धद्वयं नास्ति
2 अ—सपादार्धद्वयं नास्ति

[1]तां वै शक्तिं लेलिहाना प्रदीप्तां
पाशैर्युक्तामन्तकस्येव रात्रिम् ।
मृत्योस्स्वसारं प्रज्वलितामिवोग्रां
वैकर्तनः प्राहिणोद्राक्षसस्य ॥　　५३

तामुत्तमां परकायावहन्त्रीं
दृष्ट्वा भीतैर्बाहुसंस्था तपन्तीम् ।
भीतं रक्षो विप्रदुद्राव राजन्
कृत्वाऽऽत्मानं विन्ध्यपादप्रमाणम् ॥　　५४

दृष्ट्वा शक्तिं कर्णबाह्वन्तरस्थां
नेदुर्भूतान्यन्तरिक्षे नरेन्द्र ।
ववुर्वातास्तुमुलाश्चापि राजन्
सनिर्घाता साशनिर्गां जगाम ॥　　५५

सा तां मायां भस्म कृत्वा ज्वलन्ती
भित्त्वा गाढं हृदयं राक्षसस्य ।
ऊर्ध्वं ययौ दीप्यमाना निशायां
नक्षत्राणामन्तराण्याविशन्ती ॥　　५६

---

1 ख—अयं पादो नास्ति

अ—शक्तिं श्रेष्ठां कुण्डलाभ्यां गृहीतां पुरन्दराद्धर्मणाऽऽदाय राजन् ।

[अधिकः पाठः]

युद्ध्वा चित्रं विविधैश्शस्त्रपूगैर्
दिव्यैर्वीरो मानुषै राक्षसैश्च ।
नदन् नादान् विविधान् भैरवांश्च
प्राणानिष्टांस्त्याजितश्शक्रशक्त्या ॥ ५७

इदं चान्यच्चित्रमाश्चर्यरूपं
चकारासौ कर्म शत्रुक्षयाय ।
तस्मिन् काले शक्तिनिर्भिन्नवक्षा
बभौ राजञ् शैलमेघप्रकाशः ॥ ५८

ततोऽन्तरिक्षादपतद्गतासुस्
स राक्षसेन्द्रोऽपि विभिन्नकायः ।
अवाक्शिरास्स्तब्धगात्रो विजिह्वो
घटोत्कचो महदास्थाय रूपम् ॥ ५९

स तद्रूपं भैरवं भीमकर्मा
भीमं कृत्वा भैमसेनिः पपात ।
हतोऽप्येवं तव सैन्येष्वनीकम्
अपोथयत् कौरवान् भीषयाणः ॥ ६०

ततो मिश्राः प्राणदन् सिंहनादैर्
भेर्यश्शङ्खा मुरवा ह्यानकाश्च ।

दग्ध्वा मायां निहत राक्षसेन्द्रं
    दृष्ट्वा हृष्टाः प्राणदन कौरवेयाः ॥ ६१

ततः कर्णः कुरुभिः पूज्यमानो
    यथा शक्रो वृत्रवधे मरुद्भिः ।
अन्वारूढस्तव पुत्रं रथस्थं
    हृष्टश्चासौ प्राविशत स्वं स सैन्यम ॥ ६२

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १४७ ॥ ॥ ३० ॥ घटोत्कचवधपर्वणि एकोनविंशोऽध्याय ॥ १९ ॥

[ अस्मिन्नध्याये ६२ श्लोका. ]

---

## ॥ अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

घटोत्कचनिधनात् सर्वेषु शोचत्सु हर्षादात्मानं परिष्वजमानं कृष्णं प्रत्यर्जुनेन हर्षहेतुप्रश्न ॥ १ ॥ कृष्णेन तदभिधानपूर्वकं कर्णप्रभावप्रशंसनम् ॥ २ ॥

---

धृतराष्ट्रः—

तस्मिन हते महामाये महातेजसि राक्षसे ।
अमर्षिताः पाण्डवेयाः किमकुर्वन महारणे ॥ १

[1]मर्दिताश्च भृशं युद्धे किमकुर्वत सञ्जय ॥ १॥

---

1 अ—नास्तीदमर्धम्

ये च तेऽभ्यद्रवन् द्रोणं व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
सृञ्जयास्सह पाञ्चालैस् तेऽकुर्वन् किं महारणे ॥ २॥

सौमदत्तेर्वधाद्द्रोणम् आयत्तं सैन्धवस्य च ।
अमर्षाज्जीवितं त्यक्त्वा गाहमानं वरूथिनीम् ॥ ३॥

जृम्भमाणमिव व्याघ्रं व्यात्ताननमिवान्तकम् ।
कथं प्रत्युद्ययुर्द्रोणम् अजय्यं कुरुसृञ्जयाः ॥ ४॥

आचार्यं ये च रक्षन्ति दुर्योधनपुरोगमाः ।
द्रौणिकर्णकृपास्तात ते ह्यकुर्वन् किमाहवे ॥ ५॥

भारद्वाजं जिघांसन्तौ सव्यसाचिवृकोदरौ ।
आर्च्छतां मामकान् युद्धे कथं सञ्जय शंस मे ॥ ६॥

सिन्धुराजवधेनेमे घटोत्कचवधेन ते ।
अमर्षिताश्च सङ्क्रुद्धा रणं चक्रुः कथं युधि ॥ ७॥

सञ्जय—

हैडिम्बं निहतं दृष्ट्वा वि[1]शीर्णमिव पर्वतम् ।
पाण्डवा दीनमनसस् सर्वे बाष्पाकुलेक्षणाः ॥ ८॥

वासुदेवस्तु हर्षेण महताऽभिपरिप्लुतः ।
ननाद सिंहवन्नादं [2]व्यथयन्निव भारत ॥ ९॥

हतं घटोत्कचं ज्ञात्वा वासुदेवः प्रतापवान् ।

---

1 ख—कीर्णं 2. अ—इतोऽर्धद्वयं नास्ति

[1]विनद्य च महानादं पर्यष्वजत फल्गुनम् ॥ १०॥

[2]स विनद्य महानादम् अभीशून् सन्नियम्य च ।
ननर्त हर्षसंवीतो वातोद्धत इव द्रुमः ॥ ११॥

ततो विनद्य च पुनः पार्थमास्फाल्य चासकृत ।
रथोपस्थगतो धीमान प्राणदत् पुनरच्युतः ॥ १२॥

प्रहृष्टमनसं ज्ञात्वा वासुदेवं महाबलम् ।
अब्रवीदर्जुनो राजन नातिहृष्टमना इव ॥ १३॥

अर्जुन:—

अतिहर्षोऽयमस्थाने तवाद्य मधुसूदन ।
शोकस्थाने परे प्राप्ते हैडिम्बस्य वधेन वै ॥ १४॥

विमुखानि च सैन्यानि हतं दृष्ट्वा घटोत्कचम् ।
वयं च भृशसंविग्ना हैडिम्बस्य निपातनात ॥ १५॥

नैतत् कारणमल्पं वै भविष्यति जनार्दन ।
तदद्य शंस मे पृष्टस् सत्यं सत्यभृतां वर ॥ १६॥

यद्येतन्न रहस्यं ते वक्तुमर्हस्यरिन्दम ।
धैर्यस्य विकृतिं ब्रूहि त्वमद्य मधुसूदन ॥ १७॥

समुद्रस्येव विक्षोभं मेरोरिव विसर्पणम् ।

---

1. ख—धीमान् शङ्खं पाञ्चजन्यं प्राणदत्पुनरच्युतः ।    [ पाठान्तरम् ]
2 ख—अर्धचतुष्टयं नास्ति

तदेतल्लाघवं मन्ये तव देवकिनन्दन ॥ १८॥

वासुदेवः—

अतिहर्षमिमं प्राप्तं शृणु मेऽत्र धनञ्जय ।
अतीव मनसस्सद्यः प्रसादकरमुत्तमम् ॥ १९॥

शक्तिं घटोत्कचेनेमां व्यंसयित्वा महाद्युते ।
कर्णं निहतमेवाजौ विद्धि सद्यो धनञ्जय ॥ २०॥

शक्तिहस्तं पुनः कर्णं को लोकेऽस्ति पुमानिह ।
य एनमभितस्तिष्ठेत् कार्तिकेयमिवाहवे ॥ २१॥

दिष्ट्याऽपनीतकवचो दिष्ट्याऽपहृतकुण्डलः ।
[1]दिष्ट्या च व्यंसिता शक्तिर् अमोघाऽस्य घटोत्कचे ॥ २२॥

यदि हि स्यात् सकवचस् तथैव स्यात् सकुण्डलः ।
सामरानपि लोकांस्त्रीन् एकः कर्णो जयेद्बली ॥ २३॥

वासवो वा कुबेरो वा वरुणो वा जलेश्वरः ।
यमो वा नोत्सहेत् कर्णं रणे प्रतिसमासितुम् ॥ २४॥

गाण्डीवमादाय भवांश् चक्रं चाहं सुदर्शनम् ।
न शक्तौ स्वो रणे जेतुं तथाभूतं नरर्षभम् ॥ २५॥

त्वद्धितार्थं हि शक्रेण मायया हृतकुण्डलः ।
विहीनकवचश्चायं कृतः परपुरञ्जयः ॥ २६॥

---

1. ख—अर्धद्वयं नास्ति

उत्कृत्य कवचं यस्मात् कुण्डले विमले च ते ।
प्रादाच्छक्राय वै कर्णस् तस्माद्वैकर्तनस्स्मृतः ॥ २७॥

आशीविष इव क्रुद्धस् स्तम्भितो मन्त्रतेजसा ।
तथाऽद्य भाति कर्णो मे शान्तज्वाल इवानलः ॥ २८॥

यदाप्रभृति कर्णाय शक्तिर्दत्ता महात्मना ।
वासवेन महाबाहो या सा प्राप्ता घटोत्कचे ॥ २९॥

कुण्डलाभ्यां निमायाथ दिव्येन कवचेन च ।
तां प्राप्यामन्यत वृषा सततं त्वां हतं रणे ॥ ३०॥

एवं गतोऽपि शक्योऽयं हन्तुं नान्येन केन चित् ।
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र शपे सत्येन ते प्रभो ॥ ३१॥

ब्रह्मण्यस्सत्यवादी च तपस्वी नियतव्रतः ।
रिपुष्वपि कृपां चक्रे तस्मात् कर्णो वृषा स्मृतः ॥ ३२॥

युद्धशौण्डो महाबाहुर् नित्योद्यतशरासनः ।
केसरीव वने नर्दन् मत्तमातङ्गयूथपान् ॥ ३३॥

विमर्दन् रथशार्दूलान् राजते रणमूर्धनि ॥ ३४

मध्यं गत इवादित्यो न स शक्य उदीक्षितुम् ।
त्वदीयैः पुरुषव्याघ्र योधमुख्यैर्महात्मभिः ॥ ३५

शरजालसहस्रांशुश् शरदीव दिवाकरः ।
तपान्ते सर्वतोधारः क्षरञ् शरशतान् बहून् ॥ ३६

दिव्यास्त्रजलदः कर्णः पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ ३६॥

नेता नेतृभिरस्याङ्क्षि [1]शरवर्षाणि वर्षताम् ।

सोऽद्य मानुषतां प्राप्तो विमुक्तश्शक्रदत्तया ॥ ३७॥

एको हि योगोऽस्य भवेद्वधाय
[2]च्छिद्रे ह्येनं स्वप्रमत्तः प्रमत्तम् ।
कृच्छ्रं प्राप्तं रथचक्रे विमग्ने
हन्याः पूर्वं त्वं च [3]शक्तिं निवार्य ॥ ३८॥

जरासन्धश्चेदिराजो महात्मा
महाबाहुश्चैकलव्यो [4]नरेन्द्र ।
एकैकशो निहतास्सर्व एव
योगैस्तैस्तैस्त्वद्धितार्थं मयैव ॥ ३९॥

अथापरे निहता राक्षसेन्द्रा
हिडिम्बकिम्मीरबकप्रधानाः ।
अलायुधः परसैन्यप्रमाथी
घटोत्कचश्चोग्रकर्मा तरस्वी ॥ ४०॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥
॥ ७० ॥ घटोत्कचवधपर्वणि विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥
[ अस्मिन्नध्याये ४०॥ श्लोकाः ]

---

1. ख—शतं वर्षं इववर्षभम् 2 ख—पञ्च पादा न सन्ति
3. क-घ—सर्वं 4. क—नरेन्द्रः

## ॥ एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

श्रीकृष्णेनार्जुनं प्रति जरासन्धादिपराक्रमकथनपूर्वकं तेषां दुर्जयतया पूर्वमेव स्वेनोपायैर्हननकथनम् ॥

अर्जुन —

कथमस्मद्धितार्थं ते कैश्चोपायैर्जनार्दन ।
जरासन्धप्रभृतयो [1]घातिताः पृथिवीश्वराः ॥ १

श्रीभगवान्—

जरासन्धश्चेदिराजो नैषादिश्च महाबलः ।
यदि स्युर्न हताः पूर्वम् इदानीं स्युर्भयङ्कराः ॥ २

सुयोधनस्तानवश्यं वृणुयाद्रथसत्तमान ।
तेऽस्माभिर्नित्यसङ्क्रुद्धास् संश्रयेयुश्च कौरवान ॥ ३

ते हि वीरा महात्मानः कृतास्त्रा दृढयोधिनः ।
धार्तराष्ट्रचमूं कृत्स्नां रक्षेयुरमरा इव ॥ ४

सूतपुत्रो जरासन्धश् चेदिराजनिषादजौ ।
सुयोधनं समाश्रित्य तपेरन पृथिवीमिमाम ॥ ५

योगैरभिहतास्तैस्तैस् तन्मे शृणु धनञ्जय ।
अजय्या हि विना योगं मृधे ते दैवतैरपि ॥ ६

1. क-ङ—पातिता.

एकैको हि पृथक् तेषां समस्तां रिपुवाहिनीम् ।
योधयेन् समरे तात लोकपालाभिपालिताम् ॥ ७

जरासन्धो हि रुषितो रौक्मिणेयप्रधर्षितः ।
अस्मद्वधार्थं चिक्षेप गदा वै लोहिता मुखे ॥ ८

सीमन्तमिव कुर्वाणा नभसः पावकप्रभा ।
व्यदृश्यत पतन्ती सा शक्रमुक्ता यथाऽशनिः ॥ ९

तामापतन्तीं दृष्ट्वैव तदा रुक्मिणिनन्दनः ।
प्रतिघातार्थमस्त्रं वै स्थूणाकर्णमवासृजत् ॥ १०

अस्त्रवेगप्रतिहता सा गदा प्रापतद्भुवि ।
दारयन्ती धरां देवीं कम्पयन्ती च पर्वतान् ॥ ११

तत्र स्म राक्षसी घोरा जरा नामाशुविक्रमा ।
सन्धयामास तं जातं जरासन्धमरिन्दमम् ॥ १२

द्वाभ्यां जातो हि मातृभ्याम् अर्धदेहः पृथक् पृथक् ।
तया स संधितो यस्माज् जरासन्धस्ततस्स्मृतः ॥ १३

सा तु भूमिगता पार्थ हता ससुतबान्धवा ।
गदया तेन चास्त्रेण स्थूणाकर्णेन राक्षसी ॥ १४

[1]विनाभूतस्स गदया जरासन्धो महामृधे ।
निहतो भीमसेनेन पश्यतस्ते धनञ्जय ॥ १५

---

1. क-घ—अर्धचतुष्टयं नास्ति

यदि हि स्याद्गदापाणिर् जरासन्धः प्रतापवान् ।
सेन्द्रा देवा न तं हन्तुं रणे शक्ता नरोत्तम ॥ १६

त्वद्धितार्थं च नैषादिर् अङ्गुष्ठाभ्यां वियोजितः ।
द्रोणेनाचार्यकं कृत्वा छद्मना सत्यविक्रमः ॥ १७

[1]स हि बद्धाङ्गुलित्राणो नैषादिर्दृढविक्रमः ।
आसीदेको वनचरो बभौ राम इवापरः ॥ १८

एकलव्यं हि साङ्गुष्ठम् अशक्ता देवदानवाः ।
सराक्षसोरगाः पार्थ विजेतुं युधि कर्हि चित् ॥ १९

किमु मानुषमात्रेण शक्यस्स्यात् प्रतिवीक्षितुम् ।
दृढमुष्टिः कृती नित्यम् अस्यमानो दिवानिशम् ॥ २०

त्वद्धितार्थं तु समरे हतस्सङ्ग्राममूर्धनि ॥ २०॥

चेदिराजश्च विक्रान्तः प्रत्यक्षं निहतस्तव ।
स चाप्यशक्यस्सङ्ग्रामे जेतुं सर्वैस्सुरासुरैः ॥ २१॥

वधार्थं तस्य जातोऽहम् अन्येषां च सुरद्विषाम् ।
त्वद्धितार्थं नरव्याघ्र लोकानां हितकाम्यया ॥ २२॥

हिडिम्बबककिर्म्मीरा भीमसेनेन पातिताः ।
रावणेन समप्राणा ब्रह्मयज्ञविनाशनाः ॥ २३॥

हतस्तथैव मायावी हैडिम्बेनाप्यलायुधः ।

1. ख—इदमर्धं नास्ति

हैडिम्बश्चाप्युपायेन शक्त्या कर्णेन पातितः ॥ २४॥

यदि ह्येनं नाहनिष्यत् कर्णश्शक्त्या महामृधे ।
मया वध्योऽभविष्यत् स भैमसेनिर्घटोत्कचः ॥ २५॥
[1]मया न निहतः पूर्वम् एष युष्मत्प्रियेप्सया ॥ २६

एष हि ब्राह्मणद्वेषी यज्ञद्वेषी च राक्षसः ।
[2]धर्मस्य लोप्ता पापात्मा तस्मादेष निपातितः ॥ २७

व्यंसिता चाप्युपायेन शक्रदत्ता मयाऽनघ ।
ये हि धर्मविलोप्तारो वध्यास्ते मम पाण्डव ॥ २८
धर्मसंस्थापनार्थं हि प्रतिज्ञैषा [3]मयोद्यता ॥ २८॥

ब्रह्म सत्यं दमश्शौचं धर्मो ह्रीश् श्रीर्धृतिः क्षमा ।
यत्र तत्रारमे नित्यम् अहं सत्येन ते शपे ॥ २९॥

न विषादस्त्वया कार्यः कर्णं वैकर्तनं प्रति ।
उपदेक्ष्याम्युपायं ते येन तं प्रसहिष्यसि ॥ ३०॥

सुयोधनं चापि रणे हनिष्यति वृकोदरः ।
तस्यापि च वधोपायं वक्ष्यामि तव पाण्डव ॥ ३१॥

वर्धते तुमुलस्त्वेष शब्दः परचमूं प्रति ।
विद्रवन्ति च सैन्यानि त्वदीयानि दिशो दश ॥ ३२॥

---

1. क-घ-ङ—मायावी न हत.
2. ख—इदमर्धद्वयं नास्ति
3 क-घ—मया कृता

लब्धलक्ष्या हि कौरव्या विधमन्ति चमूं तव ।
दहत्येष च वस्सैन्यं द्रोणः प्रहरतां वरः ॥　　३३॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥
॥ ७० ॥ घटोत्कचवधपर्वणि एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥
[अस्मिन्नध्याये ३३॥ श्लोकाः]

---

## ॥ पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

धृतराष्ट्रेण सञ्जयं प्रति कर्णेन अर्जुने शक्तेरमोक्षणकारणप्रश्ने सञ्जयेन सात्यकिं प्रति कृष्णोक्ततदुत्तरकथनम् ॥ १ ॥ कर्णशक्तेर्घटोत्कचवधेन वैफल्याद्धृतराष्ट्रेण शोचनम् ॥ २ ॥

---

धृतराष्ट्रः—

एकवीरवधे मोघां शक्तिं सूतात्मजो यदा ।
कस्माद्भीमे समुत्सृज्य स तां पार्थे न मुक्तवान् ॥　　१

तस्मिन् हते हता हि स्युस् सर्वे पाण्डवसृञ्जयाः ।
एकवीरवधे कस्माद् युद्धे न जयमादधात् ॥　　२

आहूतो न निवर्तेयम् इति तस्य महाव्रतम् ।
स्वयमाह्वयितव्यस्तु सूतपुत्रेण फल्गुनः ॥　　३

ततो द्वैरथमानीय फल्गुनं शक्रदत्तया ।
जघान न वृषा कस्मात् तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥　　४

नूनं बुद्धिविहीनाश्च अनुपायाश्च मे सुताः ।
शत्रुभिर्व्यंसितोपाया विजयेरन् कथं रिपून् ॥ ५

साऽप्यस्य परमा शक्तिर् जयस्य च परायणम् ।
सा शक्तिर्वासुदेवेन व्यंसिता च घटोत्कचे ॥ ६

[1]कुणेर्यथा हस्तगतं हरेद्बिल्वं बली यथा ।
तथा शक्तिरमोघा सा मोघीभूता घटोत्कचे ॥ ७

यथा वराहस्य शुनश्च युध्यतोस्
तयोरभावे श्वपचस्य लाभः ।
मन्ये विद्वन् वासुदेवस्य तद्वद्
युद्धे लाभः कर्णहैडिम्बयोर्वै ॥ ८

घटोत्कचो यदि हन्याद्धि कर्णं
परो लाभस्स भवेत्पाण्डवानाम् ।
घटोत्कचं यदि कर्णो निहन्यात्
तथाऽपि कृत्यं शक्तिनाशात् कृतं स्यात् ॥ ९

इति प्राज्ञः प्रज्ञयैतद्विचिन्त्य
घटोत्कचं सूतपुत्रेण युद्धे ।
अघातयद्वासुदेवो निगृह्य
प्रियं कुर्वन् पाण्डवानां हितं च ॥* १०

1. ख—कर्णस्य सा हस्तगता जयेद्विश्वं बली ह्यसौ
* सर्वेषु कोशेषु अत्रैवाध्यायसमाप्तिर्दृश्यते

सञ्जय:—

एतच्चिकीर्षितं ज्ञात्वा कर्णे मधुनिहा हरिः ।
नियोजयामास तदा द्वैरथे राक्षसेश्वरम् ॥ ११

घटोत्कचं महावीर्यं महाबुद्धिर्जनार्दनः ।
अमोघाया विनाशार्थं राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ १२

तदैव कृतकार्या हि वयं स्याम कुरूद्वह ।
न रक्षेद्यदि कृष्णस्तं पार्थं कर्णान्महारथात् ॥ १३

साश्वध्वजरथस्सङ्ख्ये धृतराष्ट्र पतेद्भुवि ।
विना जनार्दनं पार्थो योगानामीश्वरं प्रभुम् ॥ १४

तैस्तैरुपायैर्बहुभी रक्ष्यमाणस्स पार्थिव ।
जयत्यभिमुखश्शत्रून् पार्थः कृष्णेन वीर्यवान् ॥ १५

सविशेषं त्वमेयात्मा कृष्णो रक्षेन्न फल्गुनम् ।
हन्यात् क्षिप्ता हि कौन्तेयं शक्तिर्वृक्षमिवाशनिः ॥ १६

धृतराष्ट्र—

[1]विरोधी च कुमन्त्री च प्राज्ञमानी ममात्मजः ।
यस्यैष समतिक्रान्तो वधोपायो जयं प्रति ॥ १७

तवापि समतिक्रान्तम् एतद्गावल्गणे कथम् ।
एतदर्थं महाबुद्धे यत् त्वया नावबोधितः ॥ १८

---

1 ख—विरोधी वक्रमन्त्री च

सञ्जयः—

दुर्योधनस्य शकुनेर् मम दुश्शासनस्य च ।
रात्रौ रात्रौ भवत्येषा [1]नित्यमेषा विकत्थना ॥ १९

श्वस्सर्वसैन्यानुत्सृज्य जहि कर्ण धनञ्जयम् ।
प्रेष्यवत् पाण्डुपाञ्चालान् उपभोक्ष्यामहे ततः ॥ २०

अथवा निहते पार्थे पाण्डुष्वन्यतमं पुनः ।
स्थापयेद्युधि वार्ष्णेयस् तस्मात् कृष्णो निहन्यताम् ॥ २१

कृष्णो मूलमनर्थानां पार्थस्स्कन्ध इवोद्गतः ।
शाखा इवेतरे पार्थाः पाञ्चालाः पत्रसंज्ञिताः ॥ २२

कृष्णाश्रयाः कृष्णबलाः कृष्णनाथाश्च पाण्डवाः ।
कृष्णः परायणं तेषां ज्योतिषामिव चन्द्रमाः ॥ २३

तस्मात् पर्णानि शाखाश्च स्कन्धं चोत्सृज्य सूतज ।
कृष्णं निकृन्धि पाण्डूना मूलं सर्वत्र सर्वदा ॥ २४

हन्याद्यदि हि दाशार्हं कर्णो यादवनन्दनम् ।
कृत्स्ना वसुमती राजन् वशे ते स्यान्न संशयः ॥ २५

[2]यदि हि स निहतश्शयीत भूमौ
यदुकुलपाण्डवनन्दनो महात्मा ।
ननु तव वसुधा नरेन्द्र सर्वा
सगिरिसमुद्रवना वशं व्रजेत ॥ २६

---

1. क-ब—नित्यमेव 2. अ—पद्यार्धानि न सन्ति

सा तु बुद्धिः [1]कृताऽप्येवम् अर्जुने जगदीश्वरे ।
केशवे च यदुश्रेष्ठे युद्धकाले त्वमुह्यत ॥　　२७

अर्जुनं चापि राधेयान् सदा रक्षति केशवः ।
न ह्येनमैच्छत् प्रमुखे सौतेस्स्थापयितुं रणे ॥　　२८

अन्यांश्चास्मै रथोदारान् उपस्थापयदच्युतः ।
अमोघां तां कथं शक्तिं मोघां कुर्यामिति प्रभो ॥　　२९

ततः कृष्णं महाबाहुस् सात्यकिस्सत्यविक्रमः ।
पप्रच्छ कुरुशार्दूल कर्णं प्रति महाबलः ॥　　३०

सात्यकिः—

अयं च प्रत्ययः कर्णश् शक्त्या चामितविक्रमः ।
किमर्थं सूतपुत्रेण न मुक्ता फल्गुने हि सा ॥　　३१

श्रीभगवान्—

दुश्शासनश्च कर्णश्च शकुनिश्च [2]महाबलः ।
सततं मन्त्रयन्ति स्म दुर्योधनपुरोगमाः ॥　　३२

कर्ण कर्ण महेष्वास रणेऽमितपराक्रम ।
नान्यस्य शक्तिरेषा ते मोक्तव्या जयतां वर ॥　　३३

ऋते महारथाद्वीरात् कुन्तीपुत्राद् धनञ्जयात् ।
स हि तेषामतियशा देवानामिव वासवः ॥　　३४

---

1. ख—कृताऽप्येवं जाग्रति त्रिदशेश्वरे
2. क—ससैन्धवः

तस्मिन् विनिहते सर्वे पाण्डवास्सृञ्जयैस्सह ।
भविष्यन्ति गतात्मानस् सुरा इव [1]निरग्नयः ॥ ३५

तथेति च प्रतिज्ञातं कर्णेन शिनिपुङ्गव ।
हृदि नित्यं हि कर्णस्य वधो गाण्डीवधन्वनः ॥ ३६

अहमेव तु राधेयं मोहयामि युधा वरम् ।
यथा नावसृजेच्छक्ति पाण्डवे श्वेतवाहने ॥ ३७

फल्गुनस्य हि तं मृत्युम् अवगम्य युयुत्सतः ।
न निद्रा न च मे हर्षो मनसोऽस्ति युधां वर ॥ ३८

घटोत्कचे तां व्यंसिता दृष्ट्वा तु शिनिपुङ्गव ।
मृत्योरास्यान्तरान्मुक्तं पश्याम्यद्य धनञ्जयम् ॥ ३९

न पिता न च मे माता न यूयं भ्रातरस्तथा ।
न च प्राणास्तथा रक्ष्या यथा बीभत्सुराहवे ॥ ४०

त्रैलोक्यराज्याद्यत्किञ्चिद् भवेदन्यत् सुदुर्लभम् ।
नेच्छेयं सात्वताहं तु विना पार्थं धनञ्जयम् ॥ ४१

अतः प्रहर्षस्सुमहान युयुधानाद्य मेऽभवत् ।
मृत्योः प्रत्यागतमिव दृष्ट्वा पार्थं धनञ्जयम् ॥ ४२

अतश्च प्रहितो युद्धे मया कर्णाय राक्षसः ।
न ह्यन्यस्समरे रात्रौ शक्तः कर्णप्रबाधने ॥ ४३

1. क-घ—निराशयाः ख—तमाहवनिरामयाः

सञ्जय—

इति सात्यकये प्राह तदा देवकिनन्दनः ।
धनञ्जयहिते युक्तस् तत्प्रिये सततं धृतः ॥ ४४

धृतराष्ट्र—

कर्णदुर्योधनादीनां शकुनेस्सौबलस्य च ।
अपनीतं महत् तात तव चैव विशेषतः ॥ ४५

यदा जानीथ तां शक्तिम् एकघ्नीं सततं रणे ।
अनिवार्यामसह्यां च देवैरपि सवासवैः ॥ ४६

सा किमर्थं च कर्णेन प्रवृत्ते समरे पुरा ।
न देवकीसुते मुक्ता फल्गुने [1]नापि सञ्जय ॥ ४७

सञ्जय—

सङ्ग्रामाद्विनिवृत्तानां सर्वेषां च विशां पते ।
रात्रौ रात्रौ कुरुश्रेष्ठ मन्त्रो नस्समजायत ॥ ४८

प्रभातमात्रे श्वोभूते केशवायार्जुनाय वा ।
शक्तिरेषा विमोक्तव्या कर्ण कर्णेति नित्यशः ॥ ४९

ततः प्रभातसमये राजन् कर्णस्य दैवतैः ।
अन्येषां चैव वीराणां सा बुद्धिर्नाश्यते नृप ॥ ५०

दैवमेव परं मन्ये यत् कर्णो हस्तसंस्थया ।

---

1 ख—वाऽपि

न जघान रणे पार्थं कृष्णं वा देवकीसुतम् ॥ ५१

यस्य हस्ते स्थिता शक्तिः कालरात्रिरिवोद्यता ।
दैवोपहतबुद्धित्वान्न तां कर्णो विमुक्तवान् ॥ ५२

क्रुद्धे वा देवकीपुत्रे मोहितो दैवमायया ।
पार्थे वा शक्रकल्पे वै वधार्थं वासवीं प्रभो ॥ ५३

धृतराष्ट्र—

दैवेनोपहता यूयं सुबुद्ध्या केशवस्य च ।
गता हि वासवी भित्त्वा तृणभूतं घटोत्कचम् ॥ ५४

कर्णश्च मम पुत्राश्च सर्वे चान्ये च पार्थिवाः ।
अनेन दुष्प्रणीतेन गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ५५

भूय एव तु मे शंस यथा युद्धमवर्तत ।
कुरूणां पाण्डवानां च हैडिम्बे निहते तदा ॥ ५६

ये चान्येऽभ्यद्रवन् द्रोणं व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
सृञ्जयास्सहपाञ्चालास् तेऽप्यकुर्वन् कथं रणे ॥ ५७

सौमदत्तेर्वधाद्द्रोणम् आयत्तं सैन्धवस्य च ।
अमर्षाज्जीवितं त्यक्त्वा गाहमानं वरूथिनीम् ॥ ५८

जृम्भमाणमिव व्याघ्रं व्यात्ताननमिवान्तकम् ।
कथं प्रत्युद्ययुर्द्रोणम् अस्यन्तं पाण्डुसृञ्जयाः ॥ ५९

आचार्यं ये च मेऽरक्षन् दुर्योधनपुरोगमाः ।

कर्णद्रौणिकृपास्तात तेऽप्यकुर्वन किमाहवे ॥ ६०

भारद्वाजं जिघांसन्तौ सव्यसाचिवृकोदरौ ।
समाच्छैन्मामका युद्धे कथं सञ्जय शंस मे ॥ ६१

सिन्धुराजवधेनेमे घटोत्कचवधेन ते ।
अमर्षितास्सुसंरब्धा रणं चक्रुः कथं निशि ॥ ६२

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि पञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १५० ॥
॥ ३० ॥ घटोत्कचवधपर्वणि द्वाविंशोऽध्याय ॥ २२ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ६२ श्लोका ]

---

## ॥ एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

युधिष्ठिरेण कृष्णे घटोत्कचकृतोपकारनिवेदनपूर्वकं शोचनम् ॥ १ ॥ व्यासेन क्रोधात् कर्णजिघांसया गच्छन्तं युधिष्ठिरमेत्य समाश्वासनेन त निवर्त्य पुनरन्तर्धानम् ॥ २ ॥

---

सञ्जय.—

हते घटोत्कचे शूरे कर्णेन निशि राक्षसे ।
प्रणदत्सु च हृष्टेषु तावकेषु युयुत्सुषु ॥ १

आपतत्सु च वेगेन वध्यमाने बलेऽपि च ।
विगाढायां रजन्यां च दैन्यं राजा परं गतः ॥ २

अब्रवीच्च महाबाहुर् भीमसेनं परन्तपम ॥ ३॥

युधिष्ठिर—

आवारय महाबाहो धार्तराष्ट्रस्य वाहिनीम् ।
हैडिम्बस्य विघातेन मोहो मामाविशन्महान् ॥ ३॥

सञ्जय—

एवं भीमं समादिश्य स्वरथं समुपाविशत् ॥ ४

अश्रुपूर्णमुखो राजा निश्श्वसंश्च पुनः पुनः ।
कश्मलं प्राविशद्घोरं दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ ५

तं तथा व्यथितं दृष्ट्वा कृष्णो वचनमब्रवीत् ॥ ५॥

श्रीभगवान्—

मा व्यथां कुरु कौन्तेय नैतत् त्वय्युपपद्यते ।
वैक्लब्यं पुरुषश्रेष्ठ यथा प्राकृतपूरुषे ॥ ६॥

उत्तिष्ठ राजन् युध्यस्व वह गुर्वी धुरं प्रभो ।
त्वयि वैक्लब्यमापन्ने संशयो विजये भवेत् ॥ ७॥

सञ्जय—

श्रुत्वा कृष्णस्य वचनं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
विमृज्य नेत्रे पाणिभ्यां कृष्णं वचनमब्रवीत् ॥ ८॥

युधिष्ठिरः—

विदिता [1]नो महाबाहो धर्माणां परमा गतिः ।
ब्रह्महत्याफलं तस्य यः कृतं नानुरुध्यते ॥ ९॥

---

1. क-ख-घ—ते

अस्माकं हि वनस्थाना हैडिम्बेन महात्मना ।
[1]बालेनापि सता तेन कृतं साह्यं महात्मना ॥　　१०॥

अस्त्रहेतोर्गतं ज्ञात्वा पाण्डवं श्वेतवाहनम् ।
असौ कृष्ण महेष्वासः काम्यके मामुपस्थितः ॥　　११॥

उषितश्च महास्माभिर् यावन्नागाद् धनञ्जयः ।
गन्धमादनयात्रायां दुर्गेभ्यश्च स्म तारिताः ॥　　१२॥

पाञ्चाली च परिश्रान्ता पृष्ठेनोढा महात्मना ॥　　१३

आरम्भांश्चैव युद्धाना यदेष कृतवान् प्रभुः ।
मदर्थं दुष्कृतं तेन कृतं कर्म महात्मना ॥　　१४

स्वभावाद्या च मे प्रीतिस् सहदेवे जनार्दन ।
सैव मे द्विगुणा प्रीती राक्षसेन्द्रे घटोत्कचे ॥　　१५

भक्तश्च मे महाबाहुः प्रियोऽस्याहं प्रियस्स मे ।
तेन विन्दामि वार्ष्णेय कश्मलं शोकतापितः ॥　　१६

पश्य सैन्यानि वार्ष्णेय द्राव्यमाणानि कौरवैः ।
द्रोणकर्णौ च संयत्तौ पश्य युद्धे महारथौ ॥　　१७

निशीथे पाण्डवं सैन्यम् आभ्यां माधव मर्दितम् ।
गजाभ्यामिव मत्ताभ्यां यथा नलवनं महत् ॥　　१८

---

1 अ—नास्तीदमर्धम्

अना[1]दृत्य बलं बाह्वोर् भीमसेनस्य माधव ।
चित्रास्त्रतां च पार्थस्य विक्रमन्ते स्म कौरवाः ॥ १९

एष द्रोणश्च कर्णश्च राजा चैव सुयोधनः ।
निहत्य राक्षसं युद्धे हृष्टा नर्दन्ति संयुगे ॥ २०

कथमस्मासु जीवत्सु त्वयि चैव जनार्दन ।
हैडिम्बः प्राप्तवान् मृत्युं सूतपुत्रेण सङ्गतः ॥ २१

कदर्थीकृत्य नस्सर्वान् पश्यतस्सव्यसाचिनः ।
निहतो राक्षसश्रेष्ठो भैमसेनिर्महाबलः ॥ २२

यदाऽभिमन्युर्निहतो धार्तराष्ट्रैर्दुरात्मभिः ।
नासीत् तत्र तदा कृष्ण सव्यसाची महारथः ॥ २३

निरुद्धाश्च वयं सर्वे सैन्धवेन दुरात्मना ।
निमित्तमभवद्द्रोणस् सपुत्रस्तत्र कर्मणि ॥ २४

उपदिष्टो वधोपायः कर्णस्य गुरुणा स्वयम् ।
व्यायच्छतश्च खड्गेन द्विधा खड्गं चकार सः ॥ २५

व्यसने वर्तमानस्य कृतवर्मा नृशंसवत् ।
अश्वाञ्जघान सहसा तथोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ २६

अथेतरे महेष्वासास् सौभद्रं युध्यपातयन् ॥ २६॥

अल्पे च कारणे कृष्ण हतो गाण्डीवधन्वना ।

---

1 ख—धृष्यं अ—धृष्य

सैन्धवो यादवश्रेष्ठ तच्च नातिप्रियं मम ॥ २७॥

यदि शत्रुवधो न्याय्यो भवेत कर्तुं स्म पाण्डवैः ।
कर्णद्रोणौ रणे पूर्वं हन्तव्याविति मे मतिः ॥ २८॥

एतौ मूलं हि दुःखानाम् अस्माकं पुरुषर्षभ ।
एतौ रणे समासाद्य पराश्वस्तसुयोधनः ॥ २९॥

यत्र वध्यो भवेद्द्रोणस् सूतपुत्रश्च सानुगः ।
तत्रावधीन्महाबाहुम् सैन्धवं दूरवासिनम् ॥ ३०॥

अवश्यं तु मया कार्यस् सूतपुत्रस्य निग्रहः ।
ततो यास्याम्यहं वीर स्वयं कर्णजिघांसया ॥ ३१॥

भीमसेनो महाबाहुर् द्रोणानीकेन सङ्गतः ॥ ३२

सञ्जय—

एवमुक्त्वा ययौ तूर्णं यतमानो युधिष्ठिरः ।
सुविस्फार्य महच्चापं शङ्खं प्रध्माप्य भैरवम् ॥ ३३

ततो रथसहस्रेण गजानां च शतैस्त्रिभिः ।
वाजिभिः पञ्चसाहस्रैः केकयैश्च प्रभद्रकैः ॥ ३४

वृतश्शिखण्डी त्वरितो राजानं पृष्ठतोऽन्वयात् ॥ ३४॥

ततो भेरीस्समाजघ्नुः पणवानकगोमुखान् ।
शङ्खशब्दरवांश्चैव [1]पाणिशब्दांश्च दंशिताः ॥ ३५॥

---

1. क-ख-घ—बाण

पाञ्चालाः पाण्डवाश्चैव युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ ३६

ततोऽब्रवीन्महाबाहुर् वासुदेवो धनञ्जयम् ॥ ३६॥

श्रीभगवान्—

एष प्रयाति त्वरितः क्रोधाविष्टो युधिष्ठिरः ।
जिघांसुस्सूतपुत्रस्य तस्योपेक्षा न युज्यते ॥ ३७॥

सञ्जयः—

एवमुक्त्वा हृषीकेशश् शीघ्रमश्वानचोदयन् ।
दूरं च यातं राजानम् अन्वगच्छज्जनार्दनः ॥ ३८॥

तं दृष्ट्वा सहसा यान्तं सूतपुत्रजिघांसया ।
शोकोपहतसन्तप्तं दह्यमानमिवाग्निना ॥ ३९॥

अभिगम्याब्रवीद्व्यासो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ४०

व्यासः—

कर्णमासाद्य सङ्ग्रामे दिष्ट्या जीवति फल्गुनः ।
सव्यसाचिवधाकाङ्क्षी शक्तिं रक्षितवान् हि सः ॥ ४१

न चागाद्द्वैरथं जिष्णुर् दिष्ट्या तेन नरर्षभः ।
सृजेतां स्पर्धिनावेतौ दिव्यान्यस्त्राणि सर्वशः ॥ ४२

वध्यमानेषु चास्त्रेषु पीडितस्सूतनन्दनः ।
वासवीं समरे शक्तिं ध्रुवं मुञ्चेद्युधिष्ठिर ॥ ४३

ततो भवेत् ते व्यसनं घोरं भरतसत्तम ॥ ४३॥

दिष्ट्या रक्षो हतं युद्धे सूतपुत्रेण मानद ।
वासवीं कारणं कृत्वा कालेनोपहतो ह्यसौ ॥ ४४॥

तवैव कारणाद्रक्षो निहतं तात संयुगे ॥ ४५

[1]पार्थं पार्थसमं वाऽपि हन्यादिति पुरोदितम् ।
शक्रेणोक्तं तथा कृत्वा सा गता च त्रिविष्टपम् ॥ ४६

मा क्रुधो भरतश्रेष्ठ मा च शोके मनः कृथाः ।
प्राणिनामिह सर्वेषाम् एषा निष्ठा युधिष्ठिर ॥ ४७

भ्रातृभिस्सहितस्सर्वैः पार्थिवैश्च महात्मभिः ।
कौरवान् समरे राजन्नभियुध्यस्व भारत ॥ ४८

पञ्चमे दिवसे चैव पृथिवी ते भविष्यति ॥ ४८॥

नित्यं च पुरुषव्याघ्र धर्ममेव विचिन्तय ॥ ४९

आनृशंस्यं तपो दानं क्षमां सत्यं च पाण्डव ।
सेवेथाः परमप्रीतो यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ५०

सञ्जयः—

इत्युक्त्वा पाण्डवं व्यासस् तत्रैवान्तरधीयत ॥ ५०॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥
॥ ७० ॥ घटोत्कचवधपर्वणि त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ५०॥ श्लोकाः ]

घटोत्कचवधपर्व समाप्तम्

1. क-ख-ब-ड—अर्धद्वयं नास्ति

## ॥ द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

निद्रोपद्रुतानां सैन्यानामर्जुनाज्ञया स्वापेन श्रान्तिमपनीय चन्द्रोदयानन्तरं युद्धारम्भः ॥

(द्रोणवधपर्व)

सञ्जयः—

घटोत्कचे च निहते सूतपुत्रेण तां निशाम् ।
दुःखामर्षवशं प्राप्तो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १

दृष्ट्वा भीमेन महतीं वार्यमाणां चमूं तव ।
धृष्टद्युम्नमुवाचेदं कुम्भयोनिं निवारय ॥ २

त्वं हि द्रोणविनाशाय समुत्पन्नो हुताशनात् ।
सशरः कवची खड्गी धन्वी च [1]परतापनः ॥ ३

[2]अभिद्रव रणे द्रोणं मा च ते भीः कथञ्चन ॥ ३॥

जनमेजयशिखण्डी च दौर्मुखिश्च यशोधरः ।
अभिद्रवत संरब्धाः कुम्भयोनिं समन्ततः ॥ ४॥

नकुलस्सहदेवश्च द्रौपदेयाश्च दंशिताः ।
द्रुपदश्च विराटश्च पुत्रभ्रातृसमन्वितौ ॥ ५॥

सात्यकिः केकयाश्चैव पाण्डवश्च धनञ्जयः ।

1. क-ख—सरथः पुमान्  2. अ—अर्धद्वयं नास्ति

अभिद्रवन्तु वेगेन भारद्वाजवधेप्सया । ६॥
तथैव रथिनस्सर्वे हस्त्यश्वं यच्च किञ्चन ।
पदाताश्च रणे द्रोणं वारयन्तु महारथम् ॥ ७॥
तथाऽऽज्ञप्तास्तु ते सर्वे पाण्डवेन महात्मना ।
अभ्यद्रवन्त वेगेन कुम्भयोनिं युयुत्सया ॥ ८॥
आगच्छतस्तान् सहसा सर्वोद्योगेन पाण्डवान् ।
प्रतिजग्राह समरे द्रोणश्शस्त्रभृतां वरः ॥ ९॥
ततो दुर्योधनो राजा सर्वोद्योगेन पाण्डवान् ।
अभ्यद्रवत सङ्क्रुद्ध इच्छन् द्रोणस्य जीवितम् ॥ १०॥
ततः प्रववृते युद्धं श्रान्तवाहनसैनिकम् ।
कुरूणां पाण्डवानां च गर्जतामितरेतरम् ॥ ११॥
निद्रान्धास्ते महाराज परिश्रान्ताश्च संयुगे ।
नाभ्यपद्यन्त समरे काञ्चिच्चेष्टां महारथाः ॥ १२॥
त्रियामा रजनी चैषा घोररूपा भयावहा ।
सहस्रयामप्रतिमा बभूव प्राणहारिणी ॥ १३॥
वध्यतां च तथा तेषां क्षतानां च विशां पते ।
[1]घोरा रात्रिस्समाजज्ञे निद्रान्धानां तदा विभो ॥ १४॥
सर्वे ह्यासन् निरुत्साहाः क्षत्रिया दीनचेतसः ।

---

1. ख—अर्धरात्रि

तव चैव परेषां च गतास्त्रा विगतेषवः ॥ १५॥

[1]ते तदा वारयन्तश्च भ्रमन्तश्च विशेषतः ।
स्वधर्ममनुपश्यन्तो न जहुस्स्वामनीकिनीम् ॥ १६॥

शस्त्राण्यन्ये समुत्सृज्य निद्रान्धाश्शेरते जनाः ।
रथेष्वन्ये गजेष्वन्ये हयेष्वन्ये च मारिष ॥ १७॥

निद्रान्धा न व्यजानन्त काश्चिच्चेष्टां नराधिपाः ।
तेऽन्योन्यं समरे योधाः प्रेषयन्ति यमक्षयम् ॥ १८॥

स्वप्नायमानांश्च परे परानपि विचेतसः ।
आत्मानं समरे जघ्नुः परान् स्वानेव चापरे ॥ १९॥

नानावाचो विमुञ्चन्तो निद्रान्धास्ते महारथाः ।
योद्धव्यमिति तिष्ठन्ति निद्रासंरक्तलोचनाः ॥ २०॥

प्रामुह्यन्त रणे केचित् निद्रान्धाश्च परस्परम् ।
जघ्नुश्शूरा रणे राजंस् तस्मिंस्तमसि दारुणे ॥ २१॥

हन्यमानं तदाऽऽत्मानं परैश्च बहवो जनाः ।
न हि जानन्ति समरे निद्रया मोहिता भृशम् ॥ २२॥

तेषामेतादृशीं चेष्टां विदित्वा पुरुषर्षभः ।
उवाच वाक्यं बीभत्सुर् उच्चैस्सन्नादयन् दिशः ॥ २३॥

---

1 ख—इदमर्धं नास्ति

अर्जुनः—

श्रान्ता भवन्तो निद्रान्धास् सर्वे एव सवाहनाः ।
तमसा चावृते सैन्ये रजसा बहुलेन च ॥ २४॥

ते यूयं यदि मन्यध्वम् उपारमत भारताः ।
निमीलयत चात्रैव रणभूमौ मुहूर्तकम् ॥ २५॥

ततो विनिद्रा विश्रान्ताश् चन्द्रमस्युदिते पुनः ।
संसाधयिष्यथान्योन्यं स्वर्गाय कुरुपुङ्गवाः ॥ २६॥

सञ्जयः—

तद्वचस्सर्वधर्मज्ञा धार्मिकस्य निशम्य ते ।
अरोचयन्त सैन्यास्ते तथा चान्योन्यमब्रुवन् ॥ २७॥

कर्ण कर्णेति चाक्रन्द्य [1]राजन् दुर्योधनेति च ।
[2]उपारमत् कौरवाणां विरता हि वरूथिनी ॥ २८॥

तदा विक्रोशमानस्य फल्गुनस्य ततस्ततः ।
उपारमत पाण्डूनां सेना तव च भारत ॥ २९॥

तामस्य वाचं देवाश्च ऋषयश्च महात्मनः ।
सर्वसैन्यानि चाक्षुद्राः प्रहृष्टाः प्रत्यपूजयन् ॥ ३०॥

तान् सम्पूज्य वचस्सौम्यं सर्वसैन्यानि भारत ।
मुहूर्तमस्वपन् राजञ् श्रान्तानि भरतर्षभ ॥ ३१॥

---

1. क-ख—तथा दुश्शासनेति च 2. क-ख—अर्धद्वयं नास्ति

सा तु सम्प्राप्य विश्रान्तिं ध्वजिनी तव भारत ।
सुखमाप्तवती वीरम् अर्जुनं प्रत्यपूजयत् ॥ ३२॥

सैनिकाः—

त्वयि वेदास्तथाऽस्त्राणि त्वयि बुद्धिपराक्रमौ ।
धर्मस्त्वयि महाबाहो दया भूतेषु चानघ ॥ ३३॥

[1]यच्चाश्वस्तास्तवेच्छामश् शर्म पार्थ तदस्तु ते ।
[2]मानसांश्च प्रियानर्थान् वीर क्षिप्रमवाप्नुहि ॥ ३४॥

सञ्जयः—

इति ते तं नरव्याघ्रं प्रशंसन्तो महारथाः ।
निद्रया समवाक्षिप्तास् तूष्णीमासन् विशां पते ॥ ३५॥

वीरा वारणकुम्भेषु सुषुपुर्युद्धकर्शिताः ।
रात्रौ रतिपरिश्रान्ताः कामिनीनां कुचेष्विव ॥ ३६॥

अश्वपृष्ठेषु चाप्यन्ये रथनीडेष्वथापरे ।
गजस्कन्धगताश्चान्ये [3]शेरते च तथा क्षितौ ॥ ३७॥

सायुधास्सगदाश्चान्ये सखड्गास्सपरश्वथाः ।
सप्रासकवचाश्चान्ये नरास्सुप्ताः पृथक् पृथक् ॥ ३८॥

ते गजा भोगिभोगाभैर् हस्तैर्भूरेणुकुण्ठितैः ।
निद्रान्धा वसुधां चक्रुर् घ्राणनिश्श्वासशीतलाम् ॥ ३९॥

---

1. ख—इदमर्धद्वयं नास्ति 2 क-घ—मनसश्च
3. घ—इतः पादचतुष्टयं नास्ति

[1]गजाश्चुश्रुभिरे तत्र निश्श्वसन्तो महीतले ।
विशीर्णा गिरयो यद्वन्निश्श्वसद्भिरिवोरगैः ॥ ४०॥

समा च विषमा चक्रुः खुराग्रैर्विक्षता महीम् ।
हयाः काञ्चनयोक्त्रास्ते केसरालम्बिभिर्युगैः ॥ ४१॥

सुषुपुस्तत्र राजेन्द्र युक्ता वाहेषु सर्वतः ॥ ४२

तत् तथा निद्रया भग्नं तद्वभौ निस्स्वनं बलम् ।
कुशलैश्शिल्पिभिर्न्यस्तं पटे चित्रमिवार्पितम् ॥ ४३

ततः कुमुदनाथेन कामिनीगण्डपाण्डुना ।
नेत्रानन्देन चन्द्रेण माहेन्द्री दिगलङ्कृता ॥ ४४

ततो मुहूर्ताद्भगवान पुरस्ताच्छशलक्षणः ।
आरुण्यं दर्शयामास ग्रसञ्ज्योतिःप्रभां प्रभुः ॥ ४५

[2]अरुणस्य तु तस्यासीज् जातरूपसमप्रभम् ।
रश्मिजालं महच्चन्द्रो मन्दं मन्दमिवासृजत् ॥ ४६

उत्सारयन्तः प्रभया तमस्ते चन्द्ररश्मयः ।
पर्यगच्छन्त शनकैर् दिशः खं च क्षितिं तथा ॥ ४७

ततो मुहूर्ताद्भुवनं ज्योतिर्भूतमिवाभवन् ।
अप्रख्यमप्रकाशं च जगामाशु तमस्तथा ॥ ४८

प्रतिप्रकाशिते लोक उदिते च निशाकरे ।

---

1 ख--इदमर्धद्वयं नास्ति 2 ङ—अर्धत्रयं नास्ति

[1]विचेरुर्न विचेरुश्च रणे नक्तञ्चरास्ततः ॥ ४९

बोध्यमानं तु तद्राजन् सैन्यं चन्द्रस्य रश्मिभिः ।
बुबुधे शतपत्राणां वनं महद्दिवाम्भसि ॥ ५०

यथा चन्द्रोदयोद्धूतः क्षुभितस्सागरो भवेत् ।
तथा चन्द्रोदयोद्धूतः क्षुभितस्स बलार्णवः ॥ ५१

[2]ततः प्रववृते युद्धं पुनरेव विशां पते ।
लोके लोकविनाशाय परलोकमभीप्सताम् ॥ ५२

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥
॥ ७१ ॥ द्रोणवधपर्वणि प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥
[अस्मिन्नध्याये ५२ श्लोकाः]

---

1 ख—इदमर्धं नास्ति

2 ख—तदा कुमुदनाथेन कामिनीगण्डपाण्डुना ।
नेत्रानन्देन चन्द्रेण माहेन्द्री दिगलङ्कृता ॥

[अधिकः पाठः]

## ॥ त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

दुर्योधनोपालम्भकोपितेन द्रोणेन पार्थदुर्योधनप्रशंसाधिक्षेपपूर्वकं रणाय निस्सरणम् ॥

सञ्जयः—

ततो दुर्योधनो द्रोणम् अभिगम्येदमब्रवीत् ।
अमर्षवशमापन्नो जनयन् हर्षतेजसी ॥ १

दुर्योधनः—

न मर्षणीयास्सङ्ग्रामे विश्राम्यन्तश्श्रमान्विताः ।
सपत्ना ग्लानमनसो लब्धलक्षा विशेषतः ॥ २

तत् तु मर्षितमस्माभिर् भवतः प्रियकाम्यया ।
त एते परिविश्रान्ताः पाण्डवा बलवत्तराः ॥ ३

सर्वथा परिहीनास्तु तेजसा च बलेन च ।
[1]भवता पाल्यमानास्तु मामका दीनचेतसः ॥ ४

दिव्यास्त्राणि च सर्वाणि ब्राह्मास्त्रादीनि यानि च ।
तानि सर्वाणि तिष्ठन्ति भवत्येव विशेषतः ॥ ५

न पाण्डवेया न वयं नान्ये लोके धनुर्धराः ।
युध्यमानस्य ते तुल्यास् सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ६

1 ख—इदमर्धद्वयं नास्ति

[1]ससुरासुरगन्धर्वान् इमाँल्लोकान् द्विजोत्तम ।
सर्वास्त्रविद्भवान् हन्याद् दिव्यैरस्त्रैर्न संशयः ॥ ७

स भवान् मर्षयत्येनांस् तव तुल्यानवेत्य च ।
शिष्यत्वं वा पुरस्कृत्य मम वा मन्दभाग्यताम् ॥ ८

सञ्जयः—

एवमुक्तस्ततो द्रोणः कोपितश्च सुतेन ते ।
समन्युरब्रवीद्राजन् दुर्योधनमिदं वचः ॥ ९

द्रोणः—

स्थविरस्सन् परं शक्त्या घटे दुर्योधनाहवे ।
अतः परं मया कार्यं क्षुद्रं विजयकाङ्क्षिणा ॥ १०

अनस्त्रविदयं सर्वो हन्तव्योऽस्त्रविदा जनः ॥ १०॥

यद्भवान् मन्यते चापि शुभं वा यदि वाऽशुभम् ।
तद्वै कर्ताऽस्मि कौरव्य वचनात् तव नान्यथा ॥ ११॥

[2]निहत्य सर्वपाञ्चालान् युद्धे कृत्वा पराक्रमम् ।
विमोक्ष्ये कवचं राजन् सत्येनायुधमालभे ॥ १२॥

मन्यसे यच्च कौन्तेयम् अर्जुनं श्रान्तमाहवे ।
तस्य वीर्यं महाबाहो शृणु सत्येन कौरव ॥ १३॥

तं न देवा न गन्धर्वा न सुरा न च पन्नगाः ।
उत्सहन्ते रणे सोढुं कुपितं सव्यसाचिनम् ॥ १४॥

---

1 ख—इदमर्धद्वयं नास्ति  2 ख—इदमर्धद्वयं नास्ति

खाण्डवे येन भगवान प्रत्युद्यातस्सुरेश्वरः ।
सायकैर्वारितश्चापि वर्षमाणो महात्मना ॥　　१५॥

यक्षा नागास्तथा दैत्या ये चान्ये बलगर्विताः ।
निहताः पुरुषेन्द्रेण तच्चापि विदितं तव ॥　　१६॥

गन्धर्वा घोषयात्रायां चित्रसेनादयो जिताः ।
यूयं तैर्ह्रियमाणाश्च मोक्षिता दृढ[1]धन्विना ॥　　१७॥

प्रत्यक्षं चापि ते सर्वं यथाबलमिदं तव ।
क्षपितं पाण्डुपुत्रेण चेष्टतां नो यथाबलम् ॥　　१८॥

निवातकवचाश्चैव देवानां शत्रवस्तथा ।
सुरैरवध्यास्सङ्ग्रामे पाण्डवेन विनिर्जिताः ॥　　१९॥

दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम् ।
जितान्येकेन वीरेण स शक्यो मानुषैः कथम् ॥　　२०॥

सञ्जयः—

तं तथाऽतिप्रशंसन्तम् अर्जुनं कुपितस्तदा ।
द्रोणं तव सुतो राजन पुनरेवेदमब्रवीत् ॥　　२१॥

दुर्योधनः—

अहं दुश्शासनः कर्णश् शकुनिर्मातुलश्च मे ।
हनिष्यामोऽर्जुनं सङ्ख्ये द्विधी कृत्वाऽद्य वाहिनीम् ॥　２२॥

---

1 क-ख—धन्वना

तिष्ठ स त्वं महाबाहो नित्यं शिष्यः प्रियस्तव ॥ २३

सञ्जयः—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भारद्वाजो हसन्निव ।
अन्ववर्तत राजानं स्वस्ति तेऽस्त्विति चाब्रवीत् ॥ २४

द्रोणः—

को हि गाण्डीवधन्वानं ज्वलन्तमिव तेजसा ।
अक्षयं क्षपयेत् कश्चित् क्षत्रियः क्षत्रियर्षभ ॥ २५

तं न वित्तपतिर्नेन्द्रो न यमो न जलेश्वरः ।
नासुरोरगरक्षांसि क्षपयेयुश्च सायुधाः ॥ २६

मूर्खास्त्वेतानि भाषन्ते यानीमान्यात्थ भारत ।
युद्धे ह्यर्जुनमासाद्य स्वस्तिमान् को व्रजेद्गृहान् ॥ २७

त्वं तु सर्वातिशङ्कित्वान्निष्ठुरः पापनिश्चयः ।
श्रेयसस्त्वद्धिते युक्तांस्तत्तद्वक्तुमिहेच्छसि ॥ २८

गच्छ त्वमपि कौन्तेयम् आत्मार्थे युध्य मा चिरम् ।
त्वमप्याशंससे योद्धुं कुलजः क्षत्रियो ह्यसि ॥ २९

इमान् हि पार्थिवान् सर्वान् घातयित्वा ह्यनागसः ।
त्वमस्य मूलं वैरस्य तस्मादासादयार्जुनम् ॥ ३०

एष ते मातुलः प्राज्ञः क्षत्रधर्ममनुव्रतः ।
दुर्द्यूतदेवी गान्धारिः प्रयात्वर्जुनमाहवे ॥ ३१

एषोऽक्षकितवो जिह्मो द्यूतविच्छकुनिश्शठः ।
देविता निकृतिप्रज्ञो युधि जेष्यति पाण्डवान् ॥　३२

त्वया तु कथितं नित्यं कर्णेन सह हृष्टवन् ।
असकृच्चैव यन्मोहाद् धृतराष्ट्रस्य शृण्वतः ॥　३३

अहं च तान् कर्णश्च भ्राता दुश्शासनश्च तान् ।
पाण्डुपुत्रान् हनिष्यामस् समेतान् समरे त्रयः ॥　३४

इति ते कत्थमानस्य श्रुतं संसदि संसदि ।
अनुतिष्ठ प्रतिज्ञां तां सत्यवाग् भव तैस्सह ॥　३५

एष ते पाण्डवश्शत्रुर् अविषह्योऽग्रतस्स्थितः ।
क्षत्रधर्ममवेक्षस्व श्लाघ्यस्तव वधो जयात् ॥　३६

दत्तं भुक्तमधीतं ते प्राप्तमैश्वर्यमुत्तमम् ।
कृतकृत्यो[1] नृणां चासि मा भैर्युध्यस्व पाण्डवम् ॥　३७

सञ्जयः—

इत्युक्त्वा समरे द्रोणो न्यवर्तत यतः परे ।
द्वैधीकृत्य ततस्सेनां युद्धं समभवत् तदा ॥　३८

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥
॥ ७१ ॥ द्रोणवधपर्वणि द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥
[अस्मिन्नध्याये ३८ श्लोकाः]

---

1 ख-ङ—नृणश्चासि

## ॥ चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

द्रोणेन द्रुपदविराटादीनां वध ॥ १ ॥ भीमेन निष्ठुरभाषणेन धृष्टद्युम्नमुद्योज्य द्रोणानीकाभिगमनम् ॥ २ ॥ चतुर्दशरात्रियुद्धसमाप्ति ॥ ३ ॥

सञ्जयः—

त्रिभागमात्रशेषायां रात्र्यां युद्धमवर्तत ।
कुरूणां पाण्डवानां च संहृष्टानां विशां पते ॥ १

अथ चन्द्रप्रभां मुष्णन् आदित्यस्य पुरस्सरः ।
[1]अरुणोऽभ्युदयाञ्चक्रे ताम्रीकुर्वन्निदं जगत् ॥ २

प्रकाशमकरोद्व्योम जगत् संरञ्जयन्निव ॥ २॥

ततो द्वैधीकृते सैन्ये द्रोणः पाञ्चालसोमकान् ।
अभ्यद्रवत् तथा पाण्डून् दुर्योधनपुरोगमाः ॥ ३॥
द्वैधीकृतान् कुरून् दृष्ट्वा माधवोऽर्जुनमब्रवीत् ॥ ४

श्रीभगवान्—

सपत्नान् सव्यतः [2]कुर्मि सव्यसाचिन्निमान् कुरून् ॥ ४॥

सञ्जयः—

स माधवमनुज्ञाय कुरुष्वेति धनञ्जयः ।
द्रोणकर्णौ महेष्वासौ सव्यतः पर्यवर्तत ॥ ५॥

---

1. ङ—कोश एकस्मिन्नेवेदमर्धं वर्तते
2. क-ख-घ—कुर्याः

अभिप्रायं तु कृष्णस्य ज्ञात्वा परपुरञ्जयः ।
आजिशीर्षगतं दृष्ट्वा भीमः फल्गुनमब्रवीत् ॥ ६॥

भीमसेन —

अर्जुनार्जुन बीभत्सो [1]शृणु मे तत्त्वतो वचः ।
यदर्थं क्षत्रियस्सूते तस्य कालोऽयमागतः ॥ ७॥

अस्मिंश्चेदागते काले श्रेयो न प्रतिपत्स्यसे ।
असम्भावितरूपस्सन् सुनृशंसं करिष्यसि ॥ ८॥

धर्मं श्रियं यशो लोके सत्येनानृण्यमाप्नुहि ।
भिन्ध्यनीकं युधां श्रेष्ठ प्रतिज्ञां सफलां कुरु ॥ ९॥

सञ्जय—

स सव्यसाची भीमेन चोदितः केशवेन च ।
कर्णद्रोणावतिक्रम्य समन्तात् पर्यवारयत् ॥ १०॥

तमाजिशीर्षादायान्तं दहन्तं क्षत्रियर्षभान् ।
[2]पराक्रान्तं पराक्रान्ता यतन्तः क्षत्रियर्षभाः ॥ ११॥

नाशक्नुवन् वारयितुं वर्धमानमिवानलम् ॥ १२

अथ दुर्योधनः कर्णश्च शकुनिश्चापि सौबलः ।
अभ्यवर्षन् नरव्याघ्र दशभिर्दशभिश्शरैः ॥ १३

[3]तेषामस्त्राणि सर्वेषाम् उत्तमास्त्रविदाहवे ।

1. क-ग—शृणुष्वैतद्वचो मम  2 अ—नास्तीदमर्धम्
3 ख—अर्धचतुष्टयं नास्ति

कदर्थीकृत्य राजेन्द्र शरवर्षैरवाकिरन् ॥ १४

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य लघुहस्तो धनञ्जयः ।
सर्वानविध्यन्निशितैर् दशभिर्दशभिश्शरैः ॥ १५

उद्धूता रजसो वृष्टिश् शरवृष्टिस्तथैव च ।
ततोऽन्धकारश्शब्दश्च तदा समभवन्महान् ॥ १६

न द्यौर्न भूमिर्न दिशः प्राज्ञायन्त तथा गते ।
सैन्येन रजसा मूढं सर्वमन्धमिवाभवन् ॥ १७

नैव ते न वयं राजन् प्रज्ञासिष्म परस्परम् ।
[1]शब्दमात्रेण जानीमो वयं ते च परस्परम् ॥ १८
उद्देशेन हि ते तस्मिन् समयुध्यन्त [2]पार्थिवाः ॥ १८॥

विरथा धन्विनो राजन् समासाद्य परस्परम् ।
केशेषु समसज्जन्त कवचेषु भुजेषु च ॥ १९॥

हताश्वा हतसूताश्च निश्चेष्टा रथिनो हताः ।
[3]जीवन्त इव तत्र स्म व्यतिष्ठन्त भयार्दिताः ॥ २०॥

हतान् गजान् समाश्लिष्य पर्वतानिव वाजिनः ।
गतसत्त्वा व्यदृश्यन्त तथैव सह सादिभिः ॥ २१॥

---

1 ख—इदमर्धं नास्ति
2 क-ख—पार्थिवाः ग—पाण्डवा·
3 क—इदमर्धं नास्ति

ततस्त्वभ्यवसृत्यैव सङ्ग्रामादुत्तरां दिशम् ।
अतिष्ठदाहवे द्रोणो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन ॥ २२॥

तमाजिशीर्षादेकान्तम् अपक्रान्तं निशम्य तु ।
समकम्पन्त सैन्यानि पाण्डवाना विशां पते ॥ २३॥

भ्राजमानं श्रिया जुष्टं ज्वलन्तमिव तेजसा ।
द्रोणं दृष्ट्वाऽरयस्त्रेसुश् चेलुः [1]पेतुश्च मारिष ॥ २४॥

आह्वयन्तं परानीकं प्रभिन्नमिव वारणम् ।
तं नाशशंसिरे जेतुं दानवा वासवं यथा ॥ २५॥

केचिदासन निरुत्साहाः केचित् क्रुद्धा मनस्विनः ।
विस्मिताश्चाभवन केचित् केचिद्धृष्टा भवन युधि ॥ २६॥

हस्तैर्हस्ताग्रमपरे प्रत्यपिपन नराधिपाः ।
अपरे दशनैरोष्ठान अदशन् क्रोधमूर्च्छिताः ॥ २७॥

व्याक्षिपन्नायुधान्यन्ये ममृदुश्चापरे भुजान ।
अन्ये चाभ्यपतन् द्रोणं त्यक्तात्मानो महौजसः ॥ २८॥

पाञ्चालास्तु विशेषेण द्रोणसायकपीडिताः ।
समतप्यन्त तेनाजौ रणे राजन् विराजता ॥ २९॥

ततो विराटद्रुपदौ द्रोणं प्रत्युद्गतौ रणे ।
तथा चरन्तं सङ्ग्रामे भृशं समरदुर्जयम् ॥ ३०॥

---

1 क-ब—मभ्याश्च मारिष

द्रुपदस्य ततः पौत्रास् त्रय एव विशां पते ।
चेदयश्च महेष्वासा द्रोणमेवाभ्ययुर्युधि ॥ ३१॥

तेषां द्रुपदपौत्राणां त्रयाणां निशितैश्शरैः ।
त्रिभिर्द्रोणोऽहरत् प्राणांस् ते हता न्यपतन भुवि ॥ ३२॥

ततो द्रोणोऽजयद्युद्धे चेदिकेकयसृञ्जयान् ।
मात्स्यांश्चैवाजयत् सर्वान भारद्वाजो महारथः ॥ ३३॥

ततस्तु द्रुपदः क्रोधाच् छरवर्षमवासृजत् ।
द्रोणं प्रति महाराज विराटश्चैव संयुगे ॥ ३४॥

ततो द्रोणस्सुतीक्ष्णाभ्यां भल्लाभ्यामरिमर्दनः ।
अप्रेषयद्विराटं च द्रुपदं च यमक्षयम् ॥ ३५॥

[1]हते विराटे द्रुपदे केकयेषु तथैव च ।
तथैव चेदिमत्स्येषु पाञ्चालेषु तथैव च ॥ ३६॥

हतेषु त्रिषु वीरेषु द्रुपदस्य च नप्तृषु ।
द्रोणस्य कर्म तद्दृष्ट्वा कोपदुःखसमन्वितः ॥ ३७॥

शशाप रथिनां मध्ये धृष्टद्युम्नो महामनाः ॥ ३८

धृष्टद्युम्नः—

इष्टापूर्तात् तथा क्षात्राद् ब्राह्मण्याच्च स नश्यतु ।
[2]द्रोणो यस्माद्विमुच्येत [3]यं वा द्रोणः पराभवेत् ॥ ३९

1 ख—अर्धत्रयं नास्ति 2 ख—इदमर्धं नास्ति
3. क—यो वा द्रोणात्

सञ्जयः—

इति तेषां प्रतिश्रुत्य मध्ये सर्वधनुष्मताम् ।
आयाद्द्रोणं महानीकः पाञ्चाल्यः परवीरहा ॥ ४०

पाञ्चालास्त्वेकतो द्रोणम् अभ्यघ्नन पाण्डवान्विताः ॥ ४०॥
दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चापि सौबलः ।
सोदर्याश्च तथा मुख्यास् तेऽरक्षन द्रोणमाहवे ॥ ४१॥
रक्ष्यमाणं तथा द्रोणं समरे तैर्महारथैः ।
यतन्तोऽपि हि पाञ्चाला न शेकुः प्रतिवीक्षितुम ॥ ४२॥
तत्राक्रुध्यद्भीमसेनो धृष्टद्युम्नस्य मारिष ।
स एनं वाग्भिरुग्राभिस् ततक्ष पुरुषर्षभ ॥ ४३॥

भीमः—

द्रुपदस्य कुले जातस् सर्वास्त्रेष्वस्त्रवित्तमः ।
कः क्षत्रियो युध्यमानः प्रेक्षेतारिमवस्थितम् ॥ ४४॥
पितृपुत्रवधं प्राप्य पुंस्त्वं को वा प्रहापयेत् ॥ ४५
विशेषतस्तथा शापं शपित्वा राजसंसदि ।
एष वैश्वानर इव समिद्धस्स्वेन तेजसा ॥ ४६
शरचापेन्धनो द्रोणः क्षत्रं दहति तेजसा ।
पुरा करोति निश्शेषां पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ ४७
स्थिताः पश्यत मे कर्म द्रोणमेव व्रजाम्यहम् ॥ ४७॥

सञ्जयः—

इत्युक्त्वा प्राविशत् क्रुद्धो द्रोणानीकं वृकोदरः ।
दृढैः पूर्णायतोत्सृष्टैर् द्रावयंस्तव वाहिनीम् ॥ ४८॥

धृष्टद्युम्नोऽपि पाञ्चाल्यः प्रविश्य महतीं चमूम् ।
आससाद रणे द्रोणं तदाऽऽसीत् तुमुलं महत् ॥ ४९॥

नैव नस्तादृशं युद्धं दृष्टपूर्वं न च श्रुतम् ।
यथा सूर्योदये राजन् समुत्पिञ्जलिको महान् ॥ ५०॥

संसक्तान्येव [1]चादृश्यन् रथबृन्दानि मारिष ।
हतानि च विशीर्णानि शरीराणि शरीरिणाम् ॥ ५१॥

केचिदन्यत्र गच्छन्तो मध्ये चान्यैरुपद्रुताः ।
विमुखाः पृष्ठतश्चान्ये ताड्यन्ते पृष्ठतोऽपरैः ॥ ५२॥

तथा संसक्तयुद्धं तद् अभवद्भृशदारुणम् ।
अथ सन्ध्यागतस्सूर्यः क्षणेन समपद्यत ॥* ५३॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि चतु पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥
॥ ७१ ॥ द्रोणवधपर्वणि तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ५३॥ श्लोकाः ]

---

1 क-ख—चापश्यं व—चापश्यन्
* रात्रियुद्धं समाप्तम्

## ॥ पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

पञ्चदशदिवसयुद्धारम्भः ॥ १ ॥ सङ्कुलयुद्धम् । नकुलेन दुर्योधनपराजयः ॥ २ ॥

सञ्जयः—

ते तथैव महाराज दंशिता रणमूर्धनि ।
सन्ध्यागतं सहस्रांशुम् आदित्यमुपतस्थिरे ॥ १

उदिते तु सहस्रांशौ तप्तकाञ्चनसप्रभे ।
प्रकाशितेषु लोकेषु पुनर्युद्धमवर्तत ॥ २

द्वन्द्वानि यानि तत्रासन् संसक्तानि पुरोदयात् ।
तान्येवाभ्युदिते सूर्ये समसज्जन्त भारत ॥ ३

नरैर्हया हयैर्नागाः पादाताश्चापि कुञ्जरैः ।
हया हयैस्समाजग्मुः पादाताश्च पदातिभिः ॥ ४

[1]रथैर्हया हयैर्नागास् तथैव भरतर्षभ ।
संसक्ताश्च वियुक्ताश्च योधास्संन्यपतन् रणे ॥ ५

ते रात्रौ कृतकर्माणश् श्रान्तास्सूर्यस्य तेजसा ।
क्षुत्पिपासापरीताङ्गा विसंज्ञा बहवोऽभवन् ॥ ६

शङ्खभेरीमृदङ्गानां कुञ्जराणां च गर्जताम् ।

1. ख—इदमर्धं नास्ति

विष्फारितविसृष्टानां कार्मुकाणां च कूजताम् ॥ ७

शब्दस्समभवद्राजन् दिविस्पृग् भरतर्षभ ॥ ७॥

द्रवतां च पदातीनां शस्त्राणां विनिपात्यताम् ।
हयानां हेषतां चैव रथानां च [1]विवर्ततताम् ॥ ८॥

क्रोशतां गर्जतां चैव तदाऽऽसीत् तुमुलं महत् ॥ ९

व्याविद्धस्तुमुलश्शब्दो द्यामगच्छन्महास्वनः ।
नानायुधनिकृत्तानां वेष्टतामातुरस्स्वरः ॥ १०

भूमावश्रूयत महांस् तदाऽऽसीत् कृपणं महत् ।
पततां पतिताना च पत्त्यश्वरथहस्तिनाम् ॥ ११

तेषु सर्वेष्वनीकेषु व्यतिषक्तेष्वनेकशः ।
स्वे स्वाञ्जघ्नुः परान् स्वे च स्वान् परे च परान् परे ॥ १२

वीरबाहुविसृष्टाश्च योधेषु च हयेषु च ।
असयः प्रपतन्ति स्म वाससां नेजनेष्विव ॥ १३

उन्मुच्य [2]प्रतिसृष्टानां खड्गानां वीरबाहुभिः ।
स एव शब्दस्तद्रूपो वाससां निज्यतामिव ॥ १४

अर्धासिभिस्तथा खड्गैस् तोमरैश्च परश्वधैः ।
निकृष्टयुद्धं संसक्तं महदासीत् सुदारुणम् ॥ १५

---

1. अ-ङ—विगर्जताम्
2. ङ—प्रति पिष्टानां क-घ—प्रविसृष्टानां ख—उदितप्रतिपिष्टानां

नरनागाश्वप्रभवां हयनागप्रवाहिनीम् ।
शस्त्रमत्स्यसुसम्पूर्णां मांसशोणितकर्दमाम् ॥ १६

आर्तनादस्वनवतीं पताकावस्त्रफेनिलाम् ।
नदीं प्रास्यन्दयन् वीराः परलोकप्रवाहिनीम् ॥ १७

शरशक्त्याऽर्दिताः क्लान्ता रात्रिखेदाल्पचेतसः ।
विष्टभ्य सर्वगात्राणि व्यतिष्ठन् गजवाजिनः ॥ १८

संशुष्कवदना वीराश् शिरोभिश्चारुकुण्डलैः ।
युद्धोपकरणैश्चान्यैस् तत्र तत्र [1]प्रशासितैः ॥ १९

क्रव्यादसङ्घैराकीर्णं मृतैरर्धमृतैरपि ।
नासीद्रथपथस्तत्र सर्वमायोधनं प्रति ॥ २०

मज्जत्सु चक्रेषु रथान् सत्त्वमास्थाय वाजिनः ।
कथञ्चिदवहन् कृच्छ्राद् वेपमानाश्शरार्दिताः ॥ २१

कुलसत्त्वबलोपेता वाजिनो वारणोपमाः ॥ २१॥

विह्वलं तूर्णविभ्रान्तं सभयं भारतातुरम् ।
बलमासीत् तदा सर्वम् ऋते द्रोणार्जुनावुभौ ॥ २२॥

तावेवास्तां निलयनं तावार्तायनमेव च ।
तावेवाश्रयमासाद्य जग्मुर्वैवस्वतक्षयम् ॥ २३॥

आविग्नमभवन् सर्वं कौरवाणां महद्बलम् ।

---

1 ख—प्रकाशितैं ङ प्रशासितैं

पाञ्चालानां च संसक्तं न प्रज्ञायत किञ्चन ॥ २४॥

अन्तकाक्रीडसदृशे भीरूणां भयवर्धने ।
पृथ्व्यां राजपिशाचानाम् उत्थिते महति क्षये ॥ २५॥

न तत्र कर्णं न द्रोणं नार्जुनं न युधिष्ठिरम् ।
न भीमसेनं न यमौ न पाञ्चाल्यं न सात्यकिम् ॥ २६॥

न च दुश्शासनं द्रौणिं न दुर्योधनसौबलौ ।
न कृपं मद्रराजं वा कृतवर्माणमेव वा ॥ २७॥

नैव चान्यं न चात्मानं न क्षितिं द्यां दिशस्तथा ।
पश्याम राजन् संसक्तान् सैन्येन रजसा वृते ॥ २८॥

सम्भ्रान्ते तुमुले घोरे रजोमेघे समुत्थिते ।
द्वितीयामिव सम्प्राप्ताम् अमन्यन्त निशां नराः ॥ २९॥

न ज्ञायन्ते कौरवेया न पाञ्चाला न पाण्डवाः ।
न दिशो न दिवं नोर्वीं न समं विषमं तथा ॥ ३०॥

हस्तसंस्पर्शमापन्नान् परान् वाऽप्यथवा स्वकान् ।
न्यपातयंस्तदा युद्धे नरास्स्म विजयैषिणः ॥ ३१॥

उद्धूतत्वात् तु रजसः प्रवेगाच्छोणितस्य च ।
प्राशाम्यत रजो घोरं शीघ्रत्वादनिलस्य च ॥ ३२॥

तत्र नागा हया योधा रथिनोऽथ पदातयः ।
पारिजातवनानीव व्यचरन् रुधिरोक्षिताः ॥ ३३॥

ततो दुर्योधनः कर्णो द्रोणो दुश्शासनस्तथा ।
पाण्डवैस्समसज्जन्त चतुर्भिश्चतुरो रथाः ॥ ३४॥

दुर्योधनस्सह भ्रात्रा यमाभ्यां समसज्जत ।
वृकोदरेण राधेयो भारद्वाजेन चार्जुनः ॥ ३५॥

तद्धोरं महदाश्चर्यं युद्धं देवासुरोपमम् ।
रथर्षभाणामुग्राणां सन्निपानममानुषम् ॥ ३६॥

रथमार्गैर्विचित्रैश्च विचित्ररथसङ्कुलम् ।
[1]अपश्यन रथिनो युद्धं विचित्रं चित्रयोधिनाम् ॥ ३७॥

यतमानाः पराक्रान्ताः परस्परजिगीषवः ।
जीमूता इव घर्मान्ते शरवर्षैरवाकिरन ॥ ३८॥

ते रथान सूर्यसङ्काशान आस्थिताः पुरुषर्षभाः ।
अशोभन्त यथा मेघास् शारदास्समवस्थिताः ॥ ३९॥

स्पर्धिनस्ते महेष्वासाः कृतयत्ना धनुर्धराः ।
अभ्यगच्छंस्तथाऽन्योन्यं मत्ता [2]वृषगजा इव ॥ ४०॥

न नूनं देहभेदोऽस्ति काले राजन्ननागते ।
यत्र सर्वे न युगपद् व्यशीर्यन्त महारथाः ॥ ४१॥

बाहुभिश्चरणैश्छिन्नैश् शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
कार्मुकैर्विशिखैः प्रासैः खड्गैः परशुपट्टसैः । ४२॥

---

1. ख—इदमर्धं नास्ति		2. ख-ङ—राजवृषा

नालीकक्षुरनाराचैर् [1]नखरैश्शक्तितोमरैः ।
अन्यैश्च विविधाकारैर् धौतैः प्रहरणोत्तमैः ॥ ४३॥

विचित्रैर्विविधाकारैश् शरीरावयवैरपि ।
विचित्रैश्च रथैर्भग्नैर् हतैश्च गजवाजिभिः ॥ ४४॥

शून्यैश्चैव नगाकारैर् हतयोधध्वजै रथैः ।
अमनुष्यैर्हयैस्त्रस्तैः कृष्यमाणैस्ततस्ततः ॥ ४५॥

वातायमानैरसकृद्धतवीरैरलङ्कृतैः ।
व्यजनैः कङ्कटैश्चैव ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥ ४६॥

शस्त्रैराभरणैर्वस्त्रैर् माल्यैश्च ससुगन्धिभिः ।
हारैः किरीटैर्मकुटैर् उष्णीषैः किङ्किणीगणैः ॥ ४७॥

उरस्थैर्मणिभिर्निष्कैश् चूडामणिभिरेव च ।
आसीदायोधनं [2]तत्र नभस्तारागणैरिव ॥ ४८॥

ततो दुर्योधनस्यासीन्नकुलेन समागमः ।
अमर्षितेन क्रुद्धस्य क्रुद्धेनामर्षितस्य च ॥ ४९॥

अपसव्यं चकाराथ माद्रीपुत्रस्तवात्मजम् ।
किरञ् छरशतैर्हृष्टस् तत्र नादो महानभूत् ॥ ५०॥

अपसव्यं कृतस्सङ्ख्ये माद्रेयेणात्यमर्षितः ।

---

1 क-घ—पादाष्टकं नास्ति

2. ख—छन्नं

सोऽमर्षितस्तमभ्याजौ प्रतिचक्रे [1]परन्तपः ॥　　　५१॥

ततः प्रतिचिकीर्षन्तम् अपसव्यं तु ते सुतम् ।
न्यवारयत तेजस्वी नकुलश्चित्रमार्गवित् ॥　　　५२॥

सर्वतो विनिवार्यैनं शरजालेन पीडयन् ।
[2]विमुखं नकुलश्चक्रे तत् सैन्यं समपूजयत् ॥　　　५३॥

तिष्ठ तिष्ठेति नकुलो बभाषे तनयं तव ।
संस्मृत्य सर्वदुःखानि तव दुर्मन्त्रितानि च ॥　　　५४॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥
॥ ७१ ॥ द्रोणवधपर्वणि चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ५४॥ श्लोकाः ]

---

## ॥ षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

द्रोणार्जुनादीनां सङ्कुलयुद्धम् ॥

---

सञ्जयः—

ततो दुश्शासनः क्रुद्धस् सहदेवमुपाद्रवत् ।
रथवेगेन तीव्रेण कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥　　　१

तस्यापतत एवाशु भल्लेनामित्रकर्शनः ।

---

1. क-ख-घ—ऽपसव्यतः
2. अ-ङ—नकुलं सर्वतो वीरास् सैन्यास्समभिपूजयन् । [अधिक. पाठ

माद्रीसुत[1]स्सूतशिरस् सशिरस्त्राणमच्छिनत् ॥ २

नैव दुश्शासनस्सूतं नैव कश्चन सैनिकः ।
हृतोत्तमाङ्गमाशुत्वात् सहदेवेन बुद्धवान् ॥ ३

यदा त्वसङ्गृहीतत्वात् प्रयान्त्यश्वा यथातथम् ।
ततो दुश्शासनस्सूतं बुबुधे गतजीवितम् ॥ ४

स हयान् सन्निगृह्याजौ स्वयं हयविशारदः ।
युयुधे रथिनां श्रेष्ठश् चित्रं लघु च सुष्ठु च ॥ ५

तदस्यापूजयन् कर्म स्वे परे चापि संयुगे ।
हतसूतरथेनाजौ व्यचरद्यदभीतवत् ॥ ६

सहदेवस्तु तानश्वांस् तीक्ष्णैर्बाणैरवाकिरत् ॥ ६॥
[2]पीड्यमानाश्शरैरश्वाः प्राद्रवंस्ते ततस्ततः ॥ ७

स रश्मिषु विषक्तत्वाद् उत्ससर्ज शरासनम् ।
धनुषा कर्म कुर्वंस्तु स रश्मीन् पुनरुत्सृजत् ॥ ८

छिद्रेष्वेतेषु तं बाणैर् माद्रीपुत्रोऽप्यवाकिरत् ।
परीप्संस्त्वत्सुतं कर्णस् तदन्तरमवापतत् ॥ ९

वृकोदरस्ततः कर्ण त्रिभिर्भल्लैस्समाहितैः ।
आकर्णमुक्तैरभ्यघ्नद् बाह्वोरुरसि चोन्नदन् ॥ १०

---

1 क-ख-घ—श्शिरो यन्तुः
2. क-ख-घ—वध्य

स निवृत्तस्ततः कर्णस् सङ्क्रुद्ध इवोरगः ।
तदभूत् तुमुलं युद्धं भीमराधेययोस्तदा ॥ ११

तौ वृषाविव सङ्क्रुद्धौ विवृत्तनयनावुभौ ।
वेगेन महताऽन्योन्यं संरब्धावभिपेततुः ॥ १२

अभिसंश्लिष्टयोस्तत्र तयोराहवशौण्डयोः ।
विच्छिन्नशरपातत्वाद् गदायुद्धमवर्तत ॥ १३

गदया भीमसेनस्तु कर्णस्य रथकूबरम ।
बिभेद शतधा राजंस् तदद्भुतमिवाभवत ॥ १४

ततो भीमस्य राधेयो गदामाविध्य वीर्यवान ।
अवासृजद्रथे तात बिभेद गदया गदाम् ॥ १५

ततो भीमो गदा गुर्वी चिक्षेपातिरथं प्रति ॥ १५॥

तां शरैर्दशभिः कर्णस् सुपुङ्खैस्सुप्रवेगितैः ।
प्रत्यविध्यन् पुनश्चान्यैस् सा भीमं पुनरगात्रजन ॥ १६॥

व्यालीव मन्त्राभिहता कर्णबाणैरभिद्रुता ॥ १७

तस्याः प्रतिनिपातेन भीमस्य विपुलो ध्वजः ।
पपात सारथिश्चास्य मुमोह गदया हतः ॥ १८

स कर्णे सायकानष्टौ व्यसृजन् क्रोधमूर्च्छितः ।
ध्वजे शरासने चैव शरावापे च भारत ॥ १९

ततः पुनस्तु राधेयो रथ्यांस्तस्य शितेषुभिः ।
ऋश्यवर्णाञ्जघानाशु तथोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ २०

स विपन्नरथो भीमो नकुलस्य रथोत्तमम् ।
हरिर्यथा गिरेश्शृङ्गं समाक्रामदरिन्दमः ॥ २१

तथा द्रोणार्जुनौ चित्रम् अयुध्येतां महारथौ ।
आचार्यशिष्यौ राजेन्द्र कृतप्रतिकृतैषिणौ ॥ २२

लघुसन्धानयोगाभ्यां रथयोश्च रणेन च ।
मोहयन्तौ मनुष्याणां चक्षूंषि च मनांसि च ॥ २३

उपारमन्त ते सर्वे योधाऽस्माकं परे तथा ।
अदृष्टपूर्वं पश्यन्तस् तद्युद्धं गुरुशिष्ययोः ॥ २४

विचित्रान् पृतनामध्ये रथमार्गानुदीर्यतोः ।
अन्योन्यमपसव्यं च कर्तुं वीरौ तदैषतुः ॥ २५

पराक्रमं तयोर्योधा ददृशुर्युधि विस्मिताः ॥ २५॥

[1]तयोस्समभवद्युद्धं द्रोणपाण्डवयोर्महत् ।
आमिषार्थे महाराज गगने श्येनयोरिव ॥ २६॥

यद्यच्चकार द्रोणस्तु कुन्तीपुत्रजिगीषया ।
तत् तत् प्रतिजघानाशु प्रहसंस्तस्य पाण्डवः ॥ २७॥

यदा द्रोणो न शक्नोति पाण्डवस्य विशेषणे ।

1. ख—इदमर्धं नास्ति

ततः प्रादुश्चकारास्त्रम् उग्रमस्त्रविदां वरः ॥ २८॥

ऐन्द्रं वैवस्वतं त्वाष्ट्रं वायव्यमथ वारुणम् ।
मुक्तं मुक्तं द्रोणचापान्निजघान धनञ्जयः ॥ २९॥

अस्त्राण्यस्त्रैर्यदा तस्य विधिवद्धन्ति पाण्डवः ।
तदाऽस्त्रैः परमैर्दिव्यैर् द्रोणः पार्थमवाकिरत् ॥ ३०॥

यद्यदस्त्रं स पार्थाय प्रयुङ्क्ते विजिगीषया ।
तस्य तस्य विघातार्थं तत्तत् स कुरुतेऽर्जुनः ॥ ३१॥

स वध्यमानेष्वस्त्रेषु दिव्येष्वथ यथाविधि ।
[1]अर्जुनेनार्जुनं द्रोणो मनसैवाभ्यपूजयत् ॥ ३२॥

मेने चात्मानमधिकं पृथिव्यामपि भारत ।
तेन शिष्येण सर्वेभ्यश् शस्त्रविद्भ्यः परन्तप ॥ ३३॥

वार्यमाणस्तु पार्थेन तथा मध्ये महात्मनाम् ।
यतमानोऽधिकं प्रीत्या प्रीयते स्मार्जुनेन सः ॥ ३४॥

ततोऽन्तरिक्षे देवाश्च गन्धर्वाश्च सहस्रशः ।
ऋषयस्सिद्धसङ्घाश्च व्यतिष्ठन्त दिदृक्षया ॥ ३५॥

तदप्सरोभिराकीर्णं यक्षराक्षससङ्कुलम् ।
श्रीमदाकाश[2]भवनं बभौ मेघाकुलं यथा ॥ ३६॥

तत्र स्मान्तर्हिता वाचो ह्युच्चरन्ति पुनः पुनः ।

---

1. क-ख—अर्जुनस्य विधि 2. क-ख-घ—मभवद्भूयो

द्रोणसंस्तवसंयुक्ताः पार्थस्य च महात्मनः ॥ ३७॥

विसृज्यमानेष्वस्त्रेषु ज्वलयत्सु दिशो दश ॥ ३८

देवादय—

नैवेदं मानुषं युद्धं नासुरं न च राक्षसम् ।
न दैवं न च गान्धर्वं ब्राह्मं ध्रुवमिदं परम् ॥ ३९

विचित्रमिदमाश्चर्यं न नो दृष्टं न च श्रुतम् ।
अति पाण्डवमाचार्यो द्रोणं चाप्यति पाण्डवः ॥ ४०

नानयोरन्तरं द्रष्टुं शक्यमन्येन केनचित् ॥ ४०॥

यदि रुद्रो द्विधाकृत्य युध्येदात्मानमात्मना ।
तत्र शक्योपमा कर्तुम् अन्यत्र तु न विद्यते ॥ ४१॥

ज्ञानमेकस्थमाचार्ये ज्ञानं योगश्च पाण्डवे ।
शौर्यमेकस्थमाचार्ये बलं शौर्यं च पाण्डवे ॥ ४२॥

नेमौ शक्यौ महेष्वासौ रणे द्रावयितुं परैः ।
इच्छमानौ पुनरिमौ हन्येतां सामरं जगत् ॥ ४३॥

सञ्जयः—

[1]इत्यब्रुवन् महाराज दृष्ट्वा तौ पुरुषर्षभौ ।
अन्तर्हितानि भूतानि प्रकाशानि च सर्वशः ॥ ४४॥

यदा द्रोणं महाराज विशेषयति पाण्डवः ।

---

1. क-घ—इत्यद्भुतं

ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं प्रादुश्चक्रे महाद्युतिः ॥ ४५॥

तदस्त्रं संहितं राजन् घोररूपं महाहवे ।
सन्तापयद्रणे पार्थं भूतान्यन्तर्हितानि च ॥ ४६॥

ततश्चचाल पृथिवी सपर्वतवनद्रुमा ।
सरितश्च प्रतिस्रोतम् समूहुर्वै क्षणान्तरम् ॥ ४७॥

ववौ च विषमो वायुस् सागराश्चापि चुक्षुभुः ॥ ४८

तत्र त्रासो महानासीत् कुरुपाण्डवसेनयोः ।
सर्वेषां चैव भूतानाम् उद्यतेऽस्त्रे महात्मना ॥ ४९

ततः पार्थोऽप्यसम्भ्रान्तस् तदस्त्रं प्रतिजघ्निवान् ।
ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र ततस्सर्वमशीशमत् ॥ ५०

यदा न गम्यते पारं तयोरन्यतरस्य वै ।
ततस्सङ्कुलयुद्धेन तद्युद्धं व्याकुलीकृतम् ॥ ५१

नाज्ञायत ततः किञ्चित् पुनरेव विशां पते ।
प्रवृत्ते तुमुले युद्धे द्रोणपाण्डवयोर्नृप ॥ ५२

द्रोणो मुक्त्वा रणे पार्थं पाञ्चालानन्वधावत ।
अर्जुनोऽपि रणे द्रोणं त्यक्त्वा प्राद्रावयत् कुरून् ॥ ५३

शरौघैरथ ताभ्यां तु छायाभूतं महामृधे ।
तुमुलं प्रबभौ राजन् सर्वस्य जगतो भयम् ॥ ५४

प्रच्छादितेऽर्जुनेनाजौ शरजालैरथाम्बरे ।
न स्म सम्पतते कश्चिद् अन्तरिक्षचरस्तदा ॥ ५५

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥
॥ ७१ ॥ द्रोणवधपर्वणि पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ५५ श्लोकाः ]

## ॥ सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

सात्यकिदुर्योधनादीनां सङ्कुलयुद्धवर्णनम् ॥

सञ्जयः—

तस्मिंस्तथा वर्तमाने गजाश्वरथसङ्क्षये ।
दुश्शासनो महाराज धृष्टद्युम्नमयोधयत् ॥ १

स तु रुक्मरथासक्तो दुश्शासनशरार्दितः ।
अमर्षात् तव पुत्रस्य शरैर्वाहानवाकिरत् ॥ २

[1]क्षणेन स रथश्चास्य सध्वजस्सहसारथिः ।
नादृश्यत महाराज पार्षतस्य शरैश्चितः ॥ ३

दुश्शासनस्तु राजेन्द्र पाञ्चाल्यस्य महात्मनः ।
नाशकत् प्रमुखे स्थातुं शरजालप्रपीडितः ॥ ४

1. ख—इदमर्धद्वयं नास्ति

स तु दुश्शासनं बाणैर् विमुखीकृत्य पार्षतः ।
किरञ् छरसहस्राणि द्रोणमेवाभ्ययाद्रणे ॥　५

प्रत्यपद्यत हार्दिक्यः कृतवर्मा तदन्तरम् ।
सोदर्याणा त्रयश्चैव सर्वतः पर्यवारयन ॥　६

तं यमौ पृष्ठतोऽन्वैतां रक्षन्तौ पुरुषर्षभौ ।
द्रोणायाभिमुखं यान्तं दीप्यमानमिवानलम् ॥　७

सम्प्रहारमकुर्वंस्ते सर्वे तत्र महारथाः ।
अमर्षितास्सत्त्ववन्तः कृत्वा मरणमग्रतः ॥　८

[1]शुद्धात्मानश्शुद्धवृत्ता राजन स्वर्गपुरस्कृताः ।
आर्यं युद्धमकुर्वन्त परस्परजिगीषवः ॥　९

शुद्धाभिजनकर्माणो मतिमन्तो जनाधिपाः ।
धर्मयुद्धमयुध्यन्त काङ्क्षन्तो गतिमुत्तमाम् ॥　१०

न तत्रासीदधर्मिष्ठम् अशास्त्रं युद्धमेव च ।
नात्र कर्णिकनालीको न लिप्तो न च बस्तकः ॥　११

न सूची कपिशो नात्र न गवास्थी गजास्थिकः ।
न चूली वलिशस्तत्र न यर्मा नापि पावकः ॥　१२

इषुरासीन्न सङ्क्लिष्टो न पूतिर्न च जिह्मगः ॥　१२॥

ऋजून्येव विशुद्धानि सर्वे शस्त्राण्यधारयन ।

1. ख—इदमर्धद्वयं नास्ति

सुयुद्धेन पराँल्लोकान् इच्छन्तः कीर्तिमेव च ॥ १३॥
तदासीत् तुमुलं युद्धं सर्वपापविवर्जितम् ।
चतुर्णां तव योधानां तैस्त्रिभिः पाण्डवैस्सह ॥ १४॥
धृष्टद्युम्नस्तु तान् दृष्ट्वा तव राजन् रथर्षभान् ।
यमाभ्यां वारितांस्तत्र शीघ्रास्त्रो द्रोणमभ्ययात् ॥ १५॥
शरार्चितास्तु ते वीरास् तयोः पुरुषसिंहयोः ।
समसज्जन्त चत्वारो वाताः पर्वतयोरिव ॥ १६॥
द्वाभ्यां द्वाभ्यां यमौ सार्धं रथिनां रथसत्तमौ ।
समासक्तौ ततो द्रोणं धृष्टद्युम्नोऽभ्यवर्तत ॥ १७॥
[1]दृष्ट्वा द्रोणाय पाञ्चाल्यं व्रजन्तं युद्धदुर्मदम् ।
यमाभ्यां तांश्च संसक्तांस् तदन्तरमुपाद्रवत् ॥ १८॥
दुर्योधनो महाराज किरञ् छोणितभोजनान् ।
तं सात्यकिश्शीघ्रतरं पुनरेवाभ्यवर्तत ॥ १९॥
तौ परस्परमासाद्य वार्ष्णेयकुरुपुङ्गवौ ।
[2]हसमानौ महावीर्यावभीतौ समसज्जताम् ॥ २०॥
बाल्ये वृत्तानि सर्वाणि प्रीयमाणौ प्रचिन्त्य तौ ।
अन्योन्यं प्रेक्षमाणौ च [3]हर्षमाणौ पुनः पुनः ॥ २१॥

---

1 अ—अर्धचतुष्टयं नास्ति
2 अ-ङ—हिंसमानौ ख—विहमानौ
3. क-ख-घ—हसमानौ

अथ दुर्योधनो राजा सात्यकिं समभाषत ।
प्रियं सखायं सततं गर्हयन् वृत्तमात्मनः ॥ २२॥

दुर्योधन.—

धिक् क्रोधं धिक् च वै लोभं धिङ्मोहं धिगमर्षितम् ।
धिगस्तु क्षात्रमाचारं धिगस्तु [1]बलमौरसम् ॥ २३॥

यत् त्वं मामभिसन्धत्से त्वां चाहं शिनिपुङ्गव ।
त्वं हि प्राणैः प्रियतरो ममाहं तव वै तथा ॥ २४॥

स्मरामि तानि सर्वाणि बाल्ये वृत्तानि यानि नौ ।
तानि सर्वाणि जीर्णानि साम्प्रतं नौ रणाजिरे ॥ २५॥

किमन्यत् क्रोधलोभाभ्यां युध्यामि त्वाऽद्य सात्वत ॥ २६

सञ्जयः—

तं तथावादिनं राजन् सात्यकिः प्रत्यभाषत ।
प्रहसन् विशिखांस्तीक्ष्णान् उद्यम्य [2]परलोकजित् ॥ २७

सात्यकिः—

नेयं सभा राजपुत्र नैवाचार्यनिवेशनम् ।
यत्र क्रीडितमस्माभिः पुरा राजन् समागतैः ॥ २८

दुर्योधनः—

[3]क सा क्रीडा गताऽस्माकं बाल्ये वै शिनिपुङ्गव ।

---

1 क-ब—बलपौरुषम्　　2. क-ब—यदुपुङ्गवः
3. ख—अर्धद्वयं नास्ति

क च युद्धमिदं भूयः कालो हि दुरतिक्रमः ॥ २९

[1]किं नु मे विद्यते कृत्यं धनेन धनलिप्सवः ।
यत्र युध्यामहे सर्वे धनलोभात् समागताः ॥ ३०

सञ्जयः—
तं तथावादिनं तत्र राजानं माधवोऽब्रवीत् ॥ ३०॥

सात्यकिः—
[2]एवं युक्तं यदा क्षात्रं युध्यते ह गुरूनपि ।
यदि तेऽहं प्रियो राजञ् जहि मां माचिरं कृथाः ॥ ३१॥
त्वत्कृते सुकृताँल्लोकान् इच्छेयं भरतर्षभ ॥ ३२
या ते शक्तिर्बलं यच्च तत् क्षिप्रं मम दर्शय ।
नेच्छाम्येवमहं द्रष्टुं मित्राणां व्यसनं महत् ॥ ३३

सञ्जयः—
इत्येवं व्यक्तमाभाष्य प्रतिभाष्य च सात्यकिः ।
अभ्ययात् तूर्णमव्यग्रो निरपेक्षो विशां पते ॥ ३४
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य प्रत्यगृह्णात् तवात्मजः ।
शरैश्चावाकिरद्राजञ् शैनेयं तनयस्तव ॥ ३५
ततः प्रववृते युद्धं कुरुमाधवसिंहयोः ।
अन्योन्यं क्रुद्धयोर्घोरं यथा द्विरदसिंहयोः ॥ ३६

---

1. इतोऽर्धत्रयं ङ—कोश एकस्मिन्नेव वर्तते
2 इतः षोडशार्धानि ख-ङ—कोशयोरेव वर्तन्ते

तत: पूर्णायतोत्सृष्टैस् सात्वतं युद्धदुर्मदम् ।
दुर्योधनः प्रत्यविध्यन् कुपितो दशभिश्शरैः ॥　　३७

तं सात्यकिः प्रत्यविध्यत् तथैवावनिपं शरैः ।
दुर्योधनस्ततः क्रुद्धो माधवं नवभिश्शरैः ॥　　३८
पञ्चाशता पुनश्चान्यैस् त्रिंशता दशभिश्च नः ॥　　३८॥

[1]तस्य सन्दधतश्चेषून संहितेषुं च कार्मुकम् ।
आच्छिनत् सात्यकिस्तूर्णं शरैश्चैवाप्यवीविधत् ॥　　३९॥

स गाढविद्धो व्यथितः प्रत्यपायाद्रथान्तरे ।
दुर्योधनो महाराज दाशार्हशरपीडितः ॥　　४०॥

समाश्वस्य तु पुत्रस्ते सात्यकिं पुनरभ्ययात् ।
विसृजन्निषुजालानि युयुधानरथं प्रति ॥　　४१॥

तथैव सात्यकिर्बाणैर् दुर्योधनरथं प्रति ।
सततं व्यसृजद्राजंस् तत् सङ्कुलमवर्तत ॥　　४२॥

तत्रेषुभिः क्षिप्यमाणैः पतद्भिश्च शरैःरिपु ।
अग्नेरिव महाकक्षे शब्दस्समभवन्महान् ॥　　४३॥

तत्राभ्यधिकमालक्ष्य माधवं रथसत्तमम् ।
क्षिप्रमभ्यपतत् कर्णः परीप्संस्तनयं तव ॥　　४४॥

न तु तं मर्षयामास भीमसेनो महाबलः ।

---

1. एतदादि त्रयस्त्रिंशदर्धानि ङ—कोश एव सन्ति

सोऽभ्ययात् त्वरितः कर्णं विसृजन् सायकान् बहून् ॥ ४५॥

तस्य कर्णश्शरैर्बाणान् प्रतिहत्य हसन्निव ।
धनुश्शरांश्च चिच्छेद सूतं चाभ्यहनच्छरैः ॥ ४६॥

भीमसेनस्तु सङ्क्रुद्धो गदामादाय वीर्यवान् ।
रथं धनुश्च सूतं च सम्ममर्दाहवे रिपोः ॥ ४७॥

अमृष्यमाणः कर्णस्तु भीमसेनमयुध्यत ।
विविधैरिषुजालैश्च नानाशस्त्रैश्च संयुगे ॥ ४८॥

सङ्कुले वर्तमाने तु राजन् धर्मसुतोऽब्रवीत् ।
पाञ्चालानां नरव्याघ्रान् मात्स्यांश्चैव नरर्षभान् ॥ ४९॥

युधिष्ठिरः—

ये नः प्राणाश्शिरो ये वै ये नो योधाः परन्तपाः ।
सर्वे ते धार्तराष्ट्रेषु विषक्ताः पुरुषर्षभाः ॥ ५०॥

किं तिष्ठत यथा मूढास् सर्वे विगतचेतसः ।
तत्र गच्छत यत्रैते युध्यन्ते मामका हताः ॥ ५१॥

क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य सर्व एव गतज्वराः ।
जयन्तो वध्यमाना वा गतिमिष्टां गमिष्यथ ॥ ५२॥

जित्वा तु बहुभिर्यज्ञैर् यजध्वं भूरिदक्षिणैः ।
हता वा देवता भूत्वा लोकान् प्राप्स्यथ पुष्कलान् ॥ ५३॥

सञ्जयः—

ते राज्ञा चोदिता वीरा योत्स्यमाना महारथाः ।
चतुर्धा वाहिनीं कृत्वा त्वरिता द्रोणमभ्ययुः ॥ ५४॥

पाञ्चालास्त्वेकतो द्रोणम् अभ्यघ्नन बहुभिश्शरैः ।
[1-2]भीमसेनपुरोगाश्चाप्येकतश्च न्यवारयन ॥ ५५॥

आसंस्तु पाण्डुपुत्राणां त्रयो जिह्मा महारथाः ।
यमौ च भीमसेनश्च व्याक्रोशंस्ते धनञ्जयम ॥ ५६॥

भीमयमाः—

अभिद्रवार्जुन क्षिप्रं कुरून द्रोणादपानुद ।
ततस्त्वेनं हनिष्यन्ति पाञ्चाला हतरक्षिणम् ॥ ५७॥

सञ्जयः—

कौरवेयांस्ततः पार्थस् सहसा समुपाद्रवन् ।
पाञ्चालानेव तु द्रोणो धृष्टद्युम्नपुरोगमान ॥ ५८॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १५७ ॥
॥ ७१ ॥ द्रोणवधपर्वणि षष्ठोऽध्याय. ॥ ६ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ५८॥ श्लोका. ]

---

1 ख-ङ—कोशयोरेव सप्तार्धानि वर्तन्ते
2. ख—सात्त्वतोऽपि तत क्रुद्ध शरवर्षैरवाकिरत् ।
दुर्योधनं महाराज तदद्भुतमिवाभवन् ॥
एतस्मिन्नन्तरे राजन् पाण्डुसैन्ये महारथा. ।　　[अधिकः पाठ ]

## ॥ अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

कृष्णेन युधिष्ठिरं प्रति द्रोणजये तस्य शस्त्रन्यासस्य तत्र चाश्वत्थामवध-श्रवणस्य हेतुत्वकथनम् ॥ १ ॥ भीमेनाश्वत्थामनाम्नि गजे निहते युधिष्ठिरेण कृष्णचोदनया द्रोणं प्रति तद्विवक्षया अश्वत्थामा हत इति कथनम् ॥ २ ॥

सञ्जयः—

[1]पाञ्चालानां रणे द्रोणश् चकार कदनं महत् ।
यथा शक्रो रणे क्रुद्धो दानवानां क्षयं पुरा ॥ १

द्रोणास्त्रेण महाराज वध्यमानाः परे युधि ।
अत्रसन्तो रणे द्रोणात् सत्त्ववन्तो महारथाः ॥ २

वध्यमाना महाराज पाञ्चालास्सृञ्जयास्तथा ।
द्रोणमेवाभ्ययुर्युद्धे मोहयन्तो महारथम् ॥ ३

तेषु तूत्साद्यमानेषु पाञ्चालेषु महात्मना ।
अभवद्भैरवो नादो वध्यतां शरशक्तिभिः ॥ ४

वध्यमानेषु सङ्ग्रामे पाञ्चालेषु महात्मना ।
उदीर्यमाणे द्रोणास्त्रे पाञ्चालान् भयमाविशत् ॥ ५

दृष्ट्वा च नरनागाश्वपत्तीनां विपुलं क्षयम् ।
पाण्डवेया महाराज नाशंसुर्विजयं तदा ॥ ६

1. अ-क-ङ—अर्धषट्कं नास्ति

पाण्डवेया —

कच्चिद्द्रोणो न नस्सर्वान् क्षपयेत् परमास्त्रवित् ।
समिद्धश्शिशिरापाये दहन् कक्षमिवानलः ॥ ७

न चैनं संयुगे कश्चित् समर्थः प्रतिवीक्षितुम् ।
न चैनमर्जुनो जातु प्रतियुध्येत[1] धर्मवित्[2] ॥ ८

सञ्जयः—

त्रस्तान् कुन्तीसुतान् दृष्ट्वा द्रोणसायकपीडितान् ।
मतिमाञ् श्रेयसे युक्तः केशवोऽर्जुनमब्रवीत् ॥ ९

श्रीभगवान्—

नैष युद्धेन सङ्ग्रामे जेतुं शक्यः कथञ्चन ।

---

1. क-ख—त् कथञ्चन

2 ख—किं तिष्ठत तथा मूढाः सर्वे वितथचेतसः ।
यत्र गच्छत यत्रैते युध्यन्ते मामका रथाः ॥
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य सर्वे वै विगतज्वराः ।
जयन्तो वध्यमाना वा गतिमिष्टां गमिष्यथ ॥
जित्वा वा बहुभिर्यज्ञैर् यक्ष्यध्वं स्वाप्तदक्षिणैः ।
हता वा देवता भूत्वा लोकान् प्राप्स्यथ पुष्कलान् ॥
उदिते चोदिता वीरा योत्स्यमाना महारथा ।
चतुर्धा वाहिनीं कृत्वा त्वरिता द्रोणमभ्ययु ॥
पाञ्चालास्त्वेकतो द्रोणमभिघ्नन् बहुभिश्शरैः ।
भीमसेनपुरोगाश्चाप्येकतस्समुपाद्रवन् ॥
पाञ्चालानेव तु द्रोणो धृष्टद्युम्नपुरोगमान् ।

[ अधिकः पाठः ]

[1]धनुर्धरो द्विजश्रेष्ठो देवैरपि सवासवैः ॥ १०

न्यस्तशस्त्रस्तु सङ्ग्रामे शक्यो हन्तुं भवेत् तु सः ।
[2]आश्रीयतां जये यत्नो धर्ममुत्सृज्य पाण्डवाः ॥ ११

यथा नस्संयुगे सर्वान् न हन्याद्रुक्मवाहनः ॥ ११॥

अश्वत्थाम्नि हते नैष युध्येतेति मतिर्मम ।
तं हतं संयुगे कश्चित् तस्मै शंसतु मानवः ॥ १२॥

सञ्जयः—

एतन्नारोचयद्वाक्यं कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
अन्ये त्वरोचयन् सर्वे कृच्छ्रेण तु युधिष्ठिरः ॥ १३॥

ततो भीमो महाबाहुर् अनीके स्म महागजम् ।
जघान गदया राजन् अश्वत्थामानमित्युत ॥ १४॥

भीमसेनस्तु सव्रीडम् उपेत्य द्रोणमाहवे ।
अश्वत्थामा हत इति शब्दमुच्चैश्चकार ह ॥ १५॥

अश्वत्थामेति हि गजः ख्यातो नाम्ना हतोऽभवत् ।
कृत्वा मनसि तद् भीमो मिथ्या व्याहृतवांस्तु सः ॥ १६॥

भीमसेनवचश्श्रुत्वा द्रोणस्तत् परमप्रियम् ।

---

1. ख—इदमर्धद्वयं नास्ति
2 ख—अपवृत्तहणा संख्ये रथयूथपयूथपः । [अधिकः पाठः]
क-ख-घ—आस्थीयतां

सहसा सन्न[1]कर्णोऽभूत्तथा सैकतमम्भसि ॥ १७॥

शङ्कमानस्तु तन्मिथ्या वीर्यज्ञस्स्वसुतस्य वै ।
हतस्स इति च श्रुत्वा नैव धैर्यादकम्पत ॥ १८॥

स लब्धचेतनो द्रोणः क्षणेनैव समाश्वसन् ।
अनुचिन्त्यात्मनः पुत्रम् अविषह्यमरातिभिः ॥ १९॥

स पार्षतमभिद्रुत्य जिघांसुं मृत्युमात्मनः ।
अवाकिरन् सहस्रेण [2]तीव्राणां कङ्कपत्रिणाम् ॥ २०॥

तं विंशतिसहस्राणि पाञ्चालानां महारथाः ।
तथा चरन्तं सङ्ग्रामे सर्वतः पर्यवारयन् ॥ २१॥

ततः प्रादुष्करोद्द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं परन्तपः ।
वधाय तेषां शूराणां पाञ्चालानाममर्षिनः ॥ २२॥
[3]ततो व्यरोचत द्रोणो न्यहनन् सर्वसोमकान् ॥ २३

शिरांस्यपातयच्चापि पाञ्चालानां महामृधे ।
तथैव परिघाकारान् बाहून् कनकभूषणान् ॥ २४

ते वध्यमानास्समरे भारद्वाजेन पार्थिवाः ।
मेदिन्यामन्वकीर्यन्त वातनुन्ना इव द्रुमाः ॥ २५

कुञ्जराणां च पततां हयौघानां च पार्थिव ।

---

1 क-ख—कण्ठो  2. क-ख-घ—तीक्ष्णानां
3. ख—अर्धसप्तकं नास्ति

अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ॥ २६

हत्वा विंशतिसाहस्रं पाञ्चालानां रथव्रजम् ।
अतिष्ठदाहवे द्रोणो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ २७

तथैव च पुनः क्रुद्धो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
वसुदानस्य भल्लेन शिरः कायादपाहरत् ॥ २८

पुनः पञ्चशतान् मात्स्यान् षट्सहस्रांश्च सृञ्जयान् ।
हस्तिनामयुतं हत्वा जघानाश्वायुतं पुनः ॥ २९

क्षत्रियाणामभावाय दृष्ट्वा द्रोणमवस्थितम् ।
ऋषयोऽभ्यागमंस्तत्र हव्यवाहपुरोगमाः ॥ ३०

विश्वामित्रो जामदग्निर् भारद्वाजोऽथ गौतमः ।
वसिष्ठः काश्यपोऽत्रिश्च ब्रह्मलोकं निनीषवः ॥ ३१

सिकताः पृश्नयो गर्गा वालखिल्या मरीचिपाः ।
भृगवोऽङ्गिरसश्चैव सूक्ष्माश्चान्ये महर्षयः ॥ ३२

त एनमब्रुवन् सर्वे द्रोणमाहवशोभिनम् ॥ ३२॥

ऋषयः—

अधर्मतः कृतं युद्धं समयो निधनस्य ते ।
न्यस्यायुधं रणे द्रोण समेह्यस्मानिह स्थितान् ॥ ३३॥

नातः क्रूरतरं कर्म पुनः कर्तुं त्वमर्हसि ॥ ३४

[1]वेदवेदाङ्गविदुषस् सत्यधर्मपरस्य ते ।

---

1 अ-क-घ—सप्तार्धानि न सन्ति

ब्राह्मणस्य विशेषेण तवैतन्नोपपद्यते ॥ ३५

न्यस्यायुधममोघेषो तिष्ठ वर्त्मनि शाश्वते ।
परिपूर्णश्च कालस्ते वस्तुं लोकेऽद्य मानुषे ॥ ३६

[1]ब्रह्मास्त्रेण त्वया दग्धा अनस्त्रज्ञा नरा भुवि ।
यदेतदीदृशं विप्र कृतं कर्म न साधु तत् ॥ ३७

न्यस्यायुधं रणे विप्र द्रोण न त्वं चिरं कृथाः ॥ ३७॥

सञ्जय—

इति तेषां वचश्श्रुत्वा भीमसेनवचश्च तत् ।
धृष्टद्युम्नं च सम्प्रेक्ष्य रणे स विमना भवत् ॥ ३८॥

स दह्यमानो व्यथितः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
अहतं वा हतं वाऽपि पप्रच्छ सुतमात्मनः ॥ ३९॥

[2]स्थिरा बुद्धिर्हि द्रोणस्य न पार्थो वक्ष्यतेऽनृतम् ।
त्रयाणामपि लोकानाम् ऐश्वर्यार्थे कथञ्चन ॥ ४०॥

तस्मात् तं परिपप्रच्छ नान्यं कञ्चिद्द्विजर्षभः ।
तस्मिंस्तस्य हि विश्वासो बाल्यात् प्रभृति पाण्डवे ॥ ४१॥

ततो निष्पाण्डवामुर्वीं करिष्यन्तं युधां पतिम् ।
द्रोणं ज्ञात्वा धर्मराजं गोविन्दो व्यथितोऽब्रवीत् ॥ ४२॥

श्रीभगवान्—

यद्यर्धदिवसं द्रोणो युध्यते मन्युमास्थितः ।

---

1 ख-ङ—अर्धत्रयं नास्ति　　2. ख—अर्धचतुष्टयं नास्ति

सत्यं ब्रवीमि [1]योधानां [2]नरकस्समुपैष्यति ॥ ४३॥

स भवांस्त्रातु नो द्रोणात् [3]सर्वज्ञादरिमर्दनात् ।
अनृतं जीवितस्यार्थे वदन्न स्पृशते त्वघम् ॥ ४४॥

सञ्जयः—

तयोस्संवदतोरेवं भीमसेनोऽब्रवीदिदम् ।
श्रुत्वा त्वेतन्महाराज वधोपायं महात्मनः ॥ ४५॥

भीमसेनः—

गाहमानस्य ते सेनां मालवस्येन्द्रवर्मणः ।
अश्वत्थामेति विख्यातो गजश्शक्रगजोपमः ॥ ४६॥

निहतो युधि विक्रम्य ततोऽहं द्रोणमब्रुवम् ।
अश्वत्थामा हतो ब्रह्मन् निवर्तस्वाहवादिति ॥ ४७॥

नूनं नाश्रद्दधद्वाक्यम् एष मे [4]पुरुषर्षभ ॥ ४८

स त्वं गोविन्दवाक्यानि मानयस्व जयैषिणः ।
द्रोणाय निहतं शंस राजञ् शारद्वतीसुतम् ॥ ४९

त्वयोक्ते नैष युध्येत जातु राजन् द्विजर्षभः ।
सत्यवागिति लोकेऽस्मिन् भवान् ख्यातो जनाधिप ॥ ५०

---

1. क-ख-घ—साधूनां न नः कोऽस्तमुपैष्यति
2. ख—नरः कस्तमुपैष्यति
3 क—सर्वथाऽप्यरि
4. ख—पुरुषर्षभः

सञ्जय:—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कृष्णवाक्यप्रचोदितः ।
भावित्वाच्च महाराज वक्तुं समुपचक्रमे ॥ ५१

सोऽप्यतथ्यभये मग्नो जये सक्तो युधिष्ठिरः ।
[1]अश्वत्थामा हत इति शब्दमुच्चैश्चकार ह ॥ ५२
अव्यक्तमब्रवीद्राजन् हतः कुञ्जर इत्युत ॥ ५२॥

तस्य पूर्वं रथः पृथ्व्याश् चतुरङ्गुलमुत्तरः ।
बभूवैवं तु तेनोक्ते तस्य [2]वाहोऽस्पृशन्महीम् ॥ ५३॥

[3]युधिष्ठिरात् तु तद्वाक्यं श्रुत्वा द्रोणो महारथः ।
पुत्रव्यसनसन्तप्तो निराशो जीवितेऽभवत् ॥ ५४॥

आगस्कृतमिवात्मानं पाण्डवाना महात्मनाम् ।
ऋषिवाक्येन मन्वानश् श्रुत्वा विनिहतं सुतम ॥ ५५॥

विचेतास्समरोद्विग्नो धृष्टद्युम्नमवेक्षत ।
योद्धुं नाशक्नुवद्राजन् यथापूर्वमरिन्दमः ॥ ५६॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥
॥ ७१ ॥ द्रोणवधपर्वणि सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ५६॥ श्लोकाः ]

---

1. ख—इदमर्धं नास्ति　　2. ख—वाहाः
3. क-ख—अर्धत्रयं नास्ति

## ॥ एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

अश्वत्थामवधश्रवणनिर्विण्णद्रोणमारणाय धृष्टद्युम्नसमुद्यमः ॥ १ ॥ द्रोणग्रस्तस्य धृष्टद्युम्नस्य सात्यकिना विमोचनम् ॥ २ ॥

सञ्जयः—

तं दृष्ट्वा परमोद्विग्नं शोकोत्तरमचेतसम् ।
पाञ्चालराजस्य सुतो धृष्टद्युम्नस्समाद्रवत् ॥ १

य इष्ट्वा मनुजेन्द्रेण द्रुपदेन महामखे ।
लब्धो द्रोणविनाशाय समिद्धेऽग्नौ परन्तपः ॥ २

स धनुर्जैत्रमादाय घोरं जलदनिस्स्वनम् ।
दृढज्यमजरं दिव्यं शरांश्चाशीविषोपमान् ॥ ३

सन्दधे कार्मुके तस्मिञ् शरमाशीविषोपमम् ।
द्रोणं जिघांसुः पाञ्चाल्यो गतज्वालमिवानलम् ॥ ४

तस्य रूपं शरस्यासीद् धनुर्ज्यामण्डलान्तरे ।
द्योततो भास्करस्येव घनान्ते [1]परिविष्यतः ॥ ५

पार्षतेन परामृष्टं ज्वलन्तमिव तद्धनुः ।
अन्तकालमनुप्राप्तं मेनिरे वीक्ष्य सैनिकाः ॥ ६

तमिषुं संहितं तेन भारद्वाजः प्रतापवान् ।

---

1. क-घ—रश्मयो यथा

दृष्ट्वाऽमन्यत देहस्य कालपर्यायमागतम् ॥　　७

ततस्स यत्नमातिष्ठद् आचार्यस्तस्य वारणे ।
न चास्यास्त्राणि राजेन्द्र प्रादुरासन महात्मनः ॥　　८

तस्य त्वहानि चत्वारि क्षपा चैकाऽस्यतो गताः ।
तस्य चाह्नस्त्रिभागेन क्षयं जग्मुः पतत्रिणः ॥　　९

स शरक्षयमासाद्य पुत्रशोकेन [1]चार्दितः ।
विविधानां च दिव्यानाम् अस्त्राणामप्र[2]सन्नताम् ॥　　१०

उत्स्रष्टुकामश्शस्त्राणि ऋषिवाक्याभिचोदितः ।
तेजसा प्रेर्यमाणश्च युयुधे सोऽतिमानुषम् ॥　　११

अथान्यत् स समादाय दिव्यमाङ्गिरसं धनुः ।
शरांश्च ब्रह्मदण्डाभान् धृष्टद्युम्नमयोधयत् ॥　　१२

ततस्तं शरवर्षेण महता समवाकिरत् ।
व्यशातयच्च सङ्क्रुद्धो धृष्टद्युम्नममर्षणः ॥　　१३

शरांश्च शतधा तस्य द्रोणश्चिच्छेद सायकैः ।
[3]रथं धनुश्च निशितैस् सारथिं चाप्यपातयत् ॥　　१४

धृष्टद्युम्नः प्रहस्यान्यत् पुनरादाय कार्मुकम् ।
शितेन चैनं बाणेन प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥　　१५

---

1 क—चोदितः　　2. क-ख—काशताम्
3 क-ख—ध्वजं

सोऽतिविद्धो महेष्वासस् सम्भ्रान्त इव संयुगे ।
भल्लेन शितधारेण चिच्छेदास्य पुनर्धनुः ॥ १६

यच्चास्य बाणविकृतं धनूंषि च विशां पते ।
सर्वं सञ्छिद्य दुर्धर्षो गदां खड्गं तथैव च ॥ १७

[1]धृष्टद्युम्नं ततोऽविध्यन्नवभिर्निशितैश्शरैः ।
जीवितान्तकरैः क्रुद्धश् शिलाधौतैः परन्तपः ॥ १८

धृष्टद्युम्नरथस्याश्वान् स्वरथाश्वैर्महारथः ।
अमिश्रयदमेयात्मा ब्राह्ममन्त्रमुदीरयन् ॥ १९

ते मिश्रा बह्वशोभन्त [2]श्वाजिनो वातरंहसः ।
पारावतसवर्णाश्च शोणाश्च भरतर्षभ ॥ २०

यथा सविद्युतो मेघा नदन्तो जलदागमे ।
तथा रेजुर्महाराज मिश्रिता रणमूर्धनि ॥ २१

ईषाबन्धं चक्रबन्धं रथबन्धं तथैव च ।
प्राणाशयदमेयात्मा धृष्टद्युम्नस्य स द्विजः ॥ २२

स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
उत्तमामापदं प्राप्य गदां वीरः परामृशत् ॥ २३

तामस्य विशिखैस्तीक्ष्णैः क्षिप्यमाणां महारथः ।
निजघान शरैर्द्रोणः क्रुद्धस्सत्यपराक्रमः ॥ २४

---

1. ख—अर्धद्वयं नास्ति 2. क-ख-घ—जवना

तां तु दृष्ट्वा नरव्याघ्रो द्रोणेन निहतां शरैः ।
विमलं खड्गमादाय शतचन्द्रं च भानुमत् ॥　　२५

असंशयं तथाभूते पाञ्चाल्यस्साध्वमन्यत ।
वधमाचार्यमुख्यस्य प्राप्तकालं [1]महामनाः ॥　　२६

तस्याश्वान् रथशक्त्या स रथान् क्रुद्धः परामृशन् ।
सर्वानेकैकशो द्रोणो रक्त[2]शोणान विसर्जयन ॥　　२७

ते हता न्यपतन भूमौ धृष्टद्युम्नस्य वाजिनः ।
शोणास्तु पर्यमुच्यन्त रथबन्धाद्विशां पते ॥　　२८

तान हयान निहतान दृष्ट्वा द्विजाग्र्येण स पार्षतः ।
नामृष्यत युधां श्रेष्ठो याज्ञसेनिर्महाबलः ॥　　२९

विरथस्स गृहीत्वाऽऽशु खड्गं खड्गभृतां वरः ।
द्रोणमभ्यद्रवद्राजन् वैनतेय इवोरगम् ॥　　३०

[3]तस्य रूपं बभौ राजन भारद्वाजं जिघांसतः ।
यथा रूपं पुरा विष्णोर् हिरण्यकशिपोर्वधे ॥　　३१

सोऽचरद् विविधान मार्गान् प्रचारानेकविंशतिम् ॥　　३१॥

भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धम आप्लुतं प्रसृतं स्थितम् ।
परिवृत्तं निवृत्तं च खड्ग चर्म च धारयन ॥　　३२॥

---

1 क-ख-व—महात्मनः　　2. क-व—शोणानवर्जयत्
3. ङ—कोश एकस्मिन्नेवार्धद्वयमिदं वर्तते

सम्पातं समुदीर्णं च दर्शयामास पार्षतः ॥ ३३

ततस्तु रथनीडं स समारुह्य रथेषया ।
अगच्छदसिमुद्यम्य शतचन्द्रं च भानुमत् ॥ ३४

चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म धृष्टद्युम्नो महारथाः ।
इयेष वक्षो भेत्तुं च भारद्वाजस्य संयुगे ॥ ३५

अतिष्ठद्युगमध्ये वै युगसन्नहनेषु च ।
शोणानां जघनार्धेषु तत् सैन्यान्यभ्यपूजयन् ॥ ३६

तिष्ठतो युगपालीषु शोणानप्यधितिष्ठतः ।
नापश्यदन्तरं द्रोणस् तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३७

क्षिप्रं श्येनस्य चरतो यथैवामिषगर्द्धिनः ।
तद्वदासीदभिसरो द्रोणं प्रार्थयतो रणे ॥ ३८

ततश्शरसहस्रेण शतचन्द्रमपातयत् ।
चर्म खड्गं च सम्बाधे धृष्टद्युम्नस्य स द्विजः ॥ ३९

ते तु वैतस्तिका नाम बाणास्तस्यामितद्युतेः ।
निकृष्टयुद्धे द्रोणस्य नान्येषां सन्ति ते शराः ॥ ४०

[1]शारद्वतस्य पार्थस्य द्रौणेर्वैकर्तनस्य च ।
प्रद्युम्नयुयुधानाभ्याम् अभिमन्योश्च ते शराः ॥ ४१

अथास्येषुं समाधत्त दृढं परमसंशितम् ।

---

1. क—अर्धद्वयं नास्ति

अन्तेवासिनमाचार्यो जिघांसुः पुत्रसम्मितम् ॥　　४२

तं शरैर्दशभिस्तीक्ष्णैश् चिच्छेद शिनिपुङ्गवः ।
पश्यतस्तव पुत्रस्य कर्णस्य च महात्मनः ॥　　४३

ग्रस्तमाचार्यमुख्येन धृष्टद्युम्नममोचयन् ।
व्यचरद्रथमार्गेषु सात्यकिस्सत्यविक्रमः ॥　　४४

द्रोणकर्णान्तरगतं कृपस्यापि च सात्यकिम् ।
अपश्येतां महात्मानौ विष्वक्सेनधनञ्जयौ ॥　　४५

अपूजयेतां वार्ष्णेयं ब्रुवाणौ साधु साध्विति ।
दिव्यान्यस्त्राणि चैतेषां युधि निघ्नन्तमच्युतम् ॥　　४६

[1]धनञ्जयस्ततः कृष्णम् अब्रवीत् पश्य केशव ।
आचार्यवरमुख्यानां मध्ये क्रीडन मधूद्वहः ॥　　४७

स नन्दयति मां भूयस् सात्यकिः परवीरहा ।
माद्रीपुत्रौ च भीमं च राजानं च युधिष्ठिरम् ॥　　४८

अनुद्धत[2]श्शिक्षितवान रथे चरति सात्यकिः ।
महारथानुपक्रीडन वृष्णीनां कीर्तिवर्धनः ॥　　४९

तमेते प्रत्यनन्दन्त सिद्धास्सैन्याश्च विस्मिताः ॥　　४९॥

---

1 ख—नातिवक्तव्यमस्तृतां विष्वक्सेनधनञ्जयौ ।　　[अधिक पाठ]

2. क-ख-घ—शिक्षितवद्

[1]अजय्यं समरे दृष्ट्वा साधु साध्विति सात्त्वतम् ।
योधाश्चोभयतस्सर्वे कर्मभिस्तमपूजयन् ॥ ५०॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥
॥ ७१ ॥ द्रोणवधपर्वणि अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ५०॥ श्लोकाः ]

## ॥ षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

द्रोणधृष्टद्युम्नयोर्युद्धम् ॥ १ ॥ द्रोणेन सोपालम्भभीमवचश्श्रवणेन शस्त्रन्यासपूर्वकं योगेन शरीरत्यागः ॥ २ ॥ शरीरान्निर्गच्छतस्तेजोरूपस्य द्रोणस्य सञ्जयादिभिः पञ्चभिरेवावलोकनम् ॥ ३ ॥ धृष्टद्युम्नेन द्रोणशिरश्छेदः ॥ ४ ॥

सञ्जयः—

ततश्चतुर्दिशं सैन्यं द्रुपदस्याभिसंवृतम् ।
निर्दहन् क्षत्रियव्रातं द्रोणः पर्यचरद्रणे ॥ १

[2]हत्वा विंशतिसाहस्रान् क्षत्रियानरिमर्दनः ।
दशायुतानि तीक्ष्णाग्रैर् अवधीद्विशिखैश्शितैः ॥ २

सोऽतिष्ठदाहवे यत्तो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ।
क्षत्रियाणामभावाय ब्राह्ममस्त्रमुपाश्रितः ॥ ३

1. ख—आश्चर्य
2 अ-क-घ—अर्धद्वयं नास्ति

पाञ्चाल्यं विरथं भूमौ हतसर्वायुधं वशी ।
अविषह्यं महात्मानं युयुधानस्समभ्ययात् ॥　　४

ततस्स्वरथमारोप्य पाञ्चाल्यमरिमर्दनः ।
अब्रवीदभिसम्प्रेक्ष्य द्रोणमस्यन्तमन्तिकात् ॥　　५

सात्यकि:—

न त्वदन्य इहाचार्यं [1]सोढुमुत्सहते पुमान् ।
त्वरस्व द्राग्वधायैव त्वयि भारस्समाहितः ॥　　६

सञ्जय —

स तथोक्तो महाबाहुस् सर्वभारसहं नवम् ।
[2]परिमृज्याददे क्षिप्रम् आयुधप्रवरं दृढम् ॥　　७

संरब्धश्च शरानस्यन् द्रोणं दुर्वारणं रणे ।
विवारयिषुराचार्यं शरवर्षैरवाकिरत् ॥　　८

तौ न्यवारयतां श्रेष्ठौ संरब्धौ रणशोभिनौ ।
उदीरयेतां ब्राह्माणि दिव्यान्यस्त्राण्यनेकशः ॥　　९

स महास्त्रैर्महाराज द्रोणमाच्छादयद्रणे ।
निहत्य सर्वाण्यस्त्राणि भारद्वाजस्य पार्षतः ॥　　१०

वसातींश्च शिबींश्चैव बाह्लीकान् कौरवानपि ।
रक्षिष्यमाणान् सङ्ग्रामे द्रोणं व्यधमदच्युतः ॥　　११

---

1 क-ख—गाढ
2 क-घ—पाञ्चाल्यस्त्वाददे ख—प्रतीत आददत् क्षिप्रमायुधम्

[1]धृष्टद्युम्नस्तथा राजन् गभस्तिभिरिवांशुमान् ।
बभौ प्रच्छादयन्नाशाश् शरजालैस्समन्ततः ॥ १२

तस्य द्रोणो धनुश्छित्त्वा विद्ध्वा चैनं शिलीमुखैः ।
मर्माण्यभ्यहनद्भूयस् स व्यथां परमामगात् ॥ १३

ततो भीमो दृढक्रोधो द्रोणस्या[2]श्लिष्य तं रथम् ।
शनकैरिव राजेन्द्र द्रोणं वचनमब्रवीत् ॥ १४

भीमः—

यदि नाम न युध्येरञ् शिक्षिता ब्रह्मबन्धवः ।
स्वकर्मभिरसन्तुष्टा न हि क्षत्रं क्षयं व्रजेत् ॥ १५

अहिंसां सर्वभूतेषु धर्मं ज्यायस्तरं विदुः ।
तस्य च ब्राह्मणो मूलं भवांश्च ब्रह्मवित्तमः ॥ १६

श्वपाकवन्म्लेच्छगणान् हत्वा प्राणान् पृथग्विधान् ।
[3]भरन्ति हि सुतान् दारांस् तद्वदज्ञानमोहिताः ॥ १७

अज्ञानान्मूढवद्ब्रह्मन् पुत्रदारधनेच्छया ॥ १७॥

एकपुत्रस्य चार्थे त्वं बहून् निघ्नञ्जनाधिपान् ।
स्वकर्मस्थान् विकर्मस्थो नैवापत्रपसे कथम् ॥ १८॥

यस्यार्थे शस्त्रमादाय यमपेक्ष्य च जीवसि ।

1 ख—अर्धपञ्चकं नास्ति 2. क-घ—कृष्य
3 ख—इदमर्धं नास्ति

स चासौ निहतश्शेते तव पुत्रस्सुमन्दधीः ॥ १९॥

धर्मराजस्य तद्वाक्यं नातिशङ्कितुमर्हसि ॥ २०

सञ्जयः—

एवमुक्तस्ततो द्रोणो भीमेनोत्सृज्य तद्धनुः ।
संन्यासाय शरीरस्य योक्ष्यमाणस्स वै द्विजः ॥ २१

सर्वाण्यस्त्राणि धर्मात्मा हातुकामोऽभ्यभाषत ।
कर्णदुर्योधनौ राजंस् त्वरमाणः पराक्रमी ॥ २२

कर्ण कर्ण महेष्वास कृप दुर्योधनेति च ॥ २२॥

द्रोणः—

[1]सङ्ग्रामे क्रियतां यत्नो ब्रवीम्येष पुनः पुनः ।
पाण्डवेभ्यश्शिवं वोऽस्तु शस्त्रमभ्युत्सृजाम्यहम् ॥ २३॥

सञ्जयः—

इति तत्र महाराज द्रोणो धीमान पुनः पुनः ।
उत्सृज्य समरे शस्त्रं रथोपस्थे निवेश्य च ॥ २४॥

अभयं सर्वभूतेभ्यः प्रययौ योगवित्तदा ॥ २५

तस्य तच्छिद्रमाज्ञाय पद्भ्यामेव स पार्षतः ।
खड्गी रथादवप्लुत्य सहसा द्रोणमभ्ययात ॥ २६

प्रद्रुते त्वथ द्रोणाय धृष्टद्युम्ने महारथे ।
हाहाकृतानि भूतानि मानुषाणीतराणि च ॥ २७

---

1 ख—कोश एवेदमर्धं वर्तते

द्रोणं विचेतसं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नवशं गतम् ॥
हाहाकारं भृशं चक्रुर् अहो धिगिति चाब्रुवन् ॥ २८

द्रोणोऽपि शस्त्रमुत्सृज्य परमं शममास्थितः ।
तथोक्त्वा योगमास्थाय ज्योतिर्भूतो महातपाः ॥ २९
दिवमाक्रामदाचार्यस् सद्भिस्सह यथाक्रमम् ॥ २९॥

मूर्धानं तस्य निर्भिद्य ज्योती राजन् महात्मनः ।
जगाम परमं स्थानं देहं न्यस्य रथोत्तमे ॥ ३०॥

द्वौ सूर्याविति नो बुद्धिर् आसीत् तस्मिंस्तथा गते ।
एकरूपमिवाभासीज् ज्योतिर्भिः पूरितं नभः ॥ ३१॥

समपद्यत चोल्काभं द्रोणस्य निधने तदा ।
निमेषमात्रेण तदा ज्योतिरन्तरधीयत ॥ ३२॥

आसीत् किलकिलाशब्दः प्रहृष्टानां दिवौकसाम् ।
ब्रह्मलोकं गते द्रोणे धृष्टद्युम्ने च मोहिते ॥ ३३॥

वयमेव तदा राजन् पञ्च मानुषयोनयः ।
योगयुक्तं महात्मानं गच्छन्तं परमां गतिम् ॥ ३४॥

अहं धनञ्जयः पार्थः कृपश्शारद्वतो द्विजः ।
वासुदेवश्च वार्ष्णेयो धर्मपुत्रश्च पाण्डवः ॥ ३५॥

अन्ये तु सर्वे नापश्यन् देवगुह्यमनुत्तमम् ।

[1]महिमानं द्विजेन्द्रस्य योगयुक्तस्य गच्छतः ॥ ३६॥

[2]गतिं परमिकां प्राप्तम् अजानन्तो नृयोनयः ।
नापश्यन गच्छमानं हि तं सार्धमृषिपुङ्गवैः ॥ ३७॥

आचार्यं योगमास्थाय ब्रह्मलोकगतं विभुम् ।
वितुन्नाङ्गं शरशतैः क्षरन्तं रुधिरं बहु ॥ ३८॥

विकृष्य पार्षतः खड्गं क्रोधामर्षवशं गतः ।
दृश्यमानस्सर्वभूतैः केशपक्षे परामृशन ॥ ३९॥

तस्य मूर्धानमालम्ब्य गतसत्त्वस्य देहिनः ।
किञ्चिदब्रुवतः कायाच् छिरोऽस्य विचकर्त ह ॥ ४०॥

[3]हर्षेण महता युक्तो भारद्वाजे निपातिते ।
सिंहनादरवं चक्रे भ्रामयन खड्गमाहवे ॥ ४१॥

आकर्णपलितश्श्यामो वयसाऽशीतिको द्विजः ।
त्वत्कृते निधनं प्राप्तस् स तु षोडशवर्षवत् ॥ ४२॥

उक्तवांश्च महाबाहुः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
जीवन्तमानयाचार्यं मा वधीर्द्रुपदात्मज ॥ ४३॥

न हन्तव्यो न हन्तव्य इति ते सैनिकाश्च ह ।
उत्क्रोशन्नर्जुनश्चैव सानुक्रोशस्तमाव्रजन् ॥ ४४॥

---

1 क-घ—माहात्म्यं तद्		2. क-ख—अर्धपञ्चकं नास्ति
3 ख—कोश एवेदमर्धद्वयं वर्तते

क्रोशमानेऽर्जुने चैव पार्थिवेषु च सर्वशः ।
धृष्टद्युम्नोऽवधीद्द्रोणं रथतल्पे नरर्षभम् ॥ ४५॥

स हि तेन परिक्षिप्तो रथाद्भूमिमरिन्दमः ।
लोहिताङ्ग इवादित्यो दुष्प्रहस्समपद्यत ॥ ४६॥

एवं तं निहतं सङ्ख्ये ददृशे सैनिको जनः ।
द्रोणस्तु योगमास्थाय नक्षत्रपथमाविशत् ॥ ४७॥

अहमेव तदाऽद्राक्षं द्रोणस्य निधनं नृप ।
ऋषेः प्रसादात् कृष्णस्य सत्यवत्यास्सुतस्य ह ॥ ४८॥

विधूमामिव संयान्तीम् उल्कां प्रज्वलितां प्रभो ।
अपश्याम दिवं स्तब्ध्वा गच्छन्तं तं महामतिम् ॥ ४९॥

हते द्रोणे निरुत्साहान् कुरून् पाण्डवसृञ्जयाः ।
अभ्यद्रवन् महावेगास् ततस्सैन्यं व्यदीर्यत ॥ ५०॥

निराशा हतभूयिष्ठास् सङ्ग्रामे निशितैश्शरैः ।
तावका निहते द्रोणे गतसत्त्वा इवाभवन् ॥ ५१॥

पराजयमवाप्याथ परत्र च महद्भयम् ।
उभयेनैव ते भीता व्यनिन्दन् मतिमात्मनः ॥ ५२॥

अन्विच्छन्तश्शरीरं तु भारद्वाजस्य संयुगे ।
नावगच्छंस्तदा राजन् [1]कबन्धायुतसङ्कुले ॥ ५३॥

1. क-घ—कबन्धव्रात

पतिते त्वेव संरब्धे सेनाया तत्र भारत ।
उद्‌तिष्ठन्नुरुण्डानां सहस्राण्येकविंशतिः ॥ ५४॥

शोणितेन परिक्लिन्ना रणभूमिश्च भारत ।
लोहितार्द्र इवादित्यो दुर्दर्शश्चाभवन् तदा ॥ ५५॥

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा परत्र च महद्यशः ।
[1]बाणशब्दरवांश्चक्रुस् सिंहनादांश्च पुष्कलान ॥ ५६॥

भीमसेनस्ततो राजन धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
वरूथिन्यामनृत्येतां परिष्वज्य परस्परम ॥ ५७॥

अब्रवीच्च तदा भीमः पार्षतं शत्रुतापनः ॥ ५८

भीमः—

भूयोऽहं त्वां परिष्वज्य परिवक्ष्यामि पार्षत ।
सूतपुत्रे हते पापे धार्तराष्ट्रे च संयुगे ॥ ५९

सञ्जयः—

एतावदुक्त्वा भीमस्तु हर्षेण महता युतः ।
बाहुशब्देन पृथिवीं कम्पयामास पाण्डवः ॥ ६०

तस्य शब्देन वित्रस्ताः प्राद्रवंस्तावका युधि ।
क्षत्रधर्मं समुत्सृज्य पलायनपरायणाः ॥ ६१

1. क-ख-ब—एकादशार्धानि न सन्ति

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा तथैव च महद्यशः ।
अरिक्षयं च सङ्ग्रामे तेन ते सुखमाप्नुवन् ॥ ६२

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥
॥ ७१ ॥ द्रोणवधपर्वणि नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ६२ श्लोका. ]
[ द्रोणवधपर्व समाप्तम् ]

## ॥ एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

दुर्योधनचोदनया कृपेण द्रोणवधं श्रावितस्याश्वत्थाम्नः कोपोदय. ॥

( नारायणास्त्रमोक्षपर्व )

सञ्जयः—

ततो द्रोणे हते राजन् कुरवश्शस्त्रविक्षताः ।
हतप्रवीरा विध्वस्ता भृशं शोकपरायणाः ॥ १

[1]विचेतसो हतोत्साहाः कश्मलाभिहतौजसः ।
आर्तस्वरेण महता पुत्रं ते पर्यवारयन् ॥ २

विषण्णवदना दीना वीक्षमाणा दिशो दश ।
अश्रुकण्ठा यथा दैत्या हिरण्याक्षे पुरा हते ॥ ३

1 ख—उदीर्णांश्च परान् दृष्ट्वा हर्षमाणान् पुनः पुनः ।
अश्रुपूर्णेक्षणास्त्रस्ता दीना ह्यासन् विशां पते ॥ [ अधिकः पाठः ]

स तैः परिवृतो राजा त्रस्तैः क्षुद्रमृगैरिव ।
[1]अशक्नुवन्नवस्थातुम् अपायात् तनयस्तव ॥ ४

क्षुत्पिपासापरिश्रान्ता योधास्ते तव भारत ।
आदित्येन च सन्तप्ता भृशं विमनसोऽभवन् ॥ ५

भास्करस्येव पतनं समुद्रस्येव शोषणम् ।
विपर्यासं यथा मेरोर् वासवस्येव निर्जयम् ॥ ६

अप्रेक्षणीयं तद्दृष्ट्वा भारद्वाजस्य पातनम् ।
त्रस्तरूपधरा राजन् कौरवाः प्राद्रवन् भयात् ॥ ७

[2]गान्धारराजश्शकुनिस् त्रस्तस्त्रस्तधरैः सैनिकैः ।
हतं रुक्मरथं दृष्ट्वा प्राद्रवन् सहितो रथैः ॥ ८

वरूथिनीं वेगवतीं विद्रुतां सपताकिनीम् ।
परिगृह्य महाबाहुस् सूतपुत्रोऽपयाद्भयात् ॥ ९

रथनागाश्वकलिला पुरस्कृत्य तु वाहिनीम् ।
मद्राणामीश्वरश्शल्यो वीक्षमाणोऽपयाद्भयात् ॥ १०

हतप्रवीरैर्भूयिष्ठैर् द्विपैर्बहुपदातिभिः ।
वृतश्शारद्वतोऽगच्छत् कष्टं कष्टमिति ब्रुवन् ॥ ११

भोजानीकेन शिष्टेन कलिङ्गारट्टबाह्लिकैः ।

---

1 ख—अर्धद्वयं नास्ति
2. अ-क-ब-ड—अर्धचतुष्टयं नास्ति

कृतवर्मा वृतो राजन् प्रायात् सुजवनैर्हयैः ॥ १२

[1]पदातिगणसंयुक्तस् त्रस्तो राजन् भयार्दितः ।
उलूकः प्राद्रवत् तत्र दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥ १३

[2]दर्शनीयो युवा चैव शौर्येण कृतलक्षणः ।
दुश्शासनो भृशोद्विग्नः प्राद्रवद्गजसंवृतः ॥ १४

गजाश्वरथसंयुक्तो वृतश्चैव पदातिभिः ।
दुर्योधनो महाराज प्राद्रवद्राजभिस्सह ॥ १५

[3]गजान् रथान् समारुह्य परस्यापि हयाञ्जनाः ॥ १५॥

प्रकीर्णकेशा विध्वस्ता न द्वावेकत्र धावतः ।
नेदमस्तीति पुरुषा हतोत्साहा हतौजसः ॥ १६॥

उत्सृज्य कवचानन्ये प्राद्रवंस्तावका विभो ।
अन्योन्यं ते समाक्रोशन् सैनिका भरतर्षभ ॥ १७॥

तिष्ठ तिष्ठेति न च ते स्वयं तत्रावतस्थिरे ॥ १८

धुर्यान् प्रमुच्य तु रथाद्धतसूतात् स्वलङ्कृतान् ।
अधिरुह्य हयान् योधाः क्षिप्रं पद्भिरचोदयन् ॥ १९

द्रवमाणे तथा सैन्ये त्रस्तरूपे हतौजसि ।

---

1 अ-क-ब-ङ—अर्धद्वयं नास्ति

2 ख-घ—अर्धद्वयं नास्ति

3. ख—संशप्तकबलं गृह्य हतशेषं किरीटिना ।
सुशर्मा प्राद्रवद्राजन् दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥ [अधिकः पाठः]

प्रतिस्रोत इव ग्राहो द्रोणपुत्रः परानियात् ॥ २०

[1]तस्यासीत् सुमहद्युद्धं शिखण्डिप्रमुखैर्गणैः ।
प्रभद्रकैश्च पाञ्चालैश्च् चेदिभिश्च सकेकयैः ॥ २१

हत्वा बहुविधास्सेनाः [2]पाण्डवीर्युद्धदुर्मदः ।
कथञ्चित् समरान्मुक्तो मत्तद्विरदविक्रमः ॥ २२

द्रवमाणं बलं दृष्ट्वा पलायनकृतक्षणम् ।
दुर्योधनं समासाद्य द्रोणपुत्रोऽब्रवीदिदम् ॥ २३

अश्वत्थामा—

किमियं द्रवते सेना त्रस्तरूपेव भारत ।
द्रवमाणां च राजेन्द्र नावस्थापयसे रणे ॥ २४

त्वं चापि न यथा पूर्वं प्रकृतिस्थो जनाधिप ।
कर्णप्रभृतयश्चेमे नावतिष्ठन्ति पार्थिवाः ॥ २५

सर्वेष्वपि हि युद्धेषु नैव सेनाऽद्रवत् तव ॥ २५॥

[3]कच्चित् क्षेमं महाबाहो तव सैन्यस्य भारत ॥ २६

कस्मिन्निदं हते राजन् रथसिंहे बलं तव ।
एतामवस्थां सम्प्राप्तं तन्ममाचक्ष्व कौरव ॥ २७

---

1. ख—कोश एकस्मिन्नेवेदमर्धद्वयं वर्तते
2. ख—पाण्डूनां युद्ध
3. क—अर्धद्वयं नास्ति

सञ्जयः—

तत् तु दुर्योधनश्श्रुत्वा द्रोणपुत्रस्य भाषितम् ।
घोरमप्रियमाख्यातुं नाशक्नोत् पार्थिवर्षभः ॥ २८

भिन्ना नौरिव ते पुत्रो मग्नश्शोकमहार्णवे ।
अप्लवे प्लवमन्विच्छन् यथाऽगाधे नरोऽम्भसि ॥ २९

बाष्पेण पिहितो दृष्ट्वा द्रोणपुत्रं रथे स्थितम् ।
ततश्शारद्वतं राजा सव्रीडमिदमब्रवीत् ॥ ३०

दुर्योधनः—

शंसात्रभवते सर्वं यथा सैन्यमभिद्रुतम् ॥ ३०॥

सञ्जयः—

अथ शारद्वतो राजन्नार्तिं गच्छन् पुनः पुनः ।
शशंस द्रोणपुत्राय यथा द्रोणो निपातितः ॥ ३१॥

कृपः—

वयं द्रोणं पुरस्कृत्य पृथिव्यां प्रवरं रथम् ।
[1]प्रावर्तयाम सङ्ग्रामं पाञ्चालैरेव केवलम् ॥ ३२॥

ततः प्रवृत्ते सङ्ग्रामे विमिश्राः कुरुसोमकाः ।
अन्योन्यमभिगर्जन्तश् शस्त्रैर्देहानपातयन् ॥ ३३॥

ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं विकुर्वाणो नरर्षभः ।
व्यहनच्छात्रवान् भल्लैश् शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३४॥

1. अ—अर्धमिदं नास्ति

पाण्डवाः केकया मात्स्याः पाञ्चालाश्च विशेषतः ।
सङ्ख्ये द्रोणरथं प्राप्य व्यनशन् कालचोदिताः ॥ ३५॥

सहस्रं नरसिंहानां द्विसाहस्रं च दन्तिनाम् ।
द्रोणो ब्रह्मास्त्रनिर्दग्धं प्रेषयामास मृत्यवे ॥ ३६॥

आकर्णपलितश्यामो वयसाऽशीतिकात् परः ।
रणे पर्यचरद्द्रोणो वृद्धष्षोडशवर्षवत् ॥ ३७॥

कृष्यमाणेषु सैन्येषु वध्यमानेषु राजसु ।
अमर्षवशमापन्नाः पाञ्चाला विमुखा भवन् ॥ ३८॥

तेषु किञ्चित् प्रभग्नेषु विमुखेषु सपत्नजित् ।
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणो बभूवार्क इवोदितः ॥ ३९॥

स मध्यं प्राप्य पाण्डूनां शररश्मिः प्रतापवान् ।
मध्यं गत इवादित्यो दुष्प्रेक्षस्ते पिताऽभवत् ॥ ४०॥

ते दह्यमाना द्रोणेन सूर्येणेव विराजता ।
दग्धवीर्या हतोत्साहा बभूवुर्गतचेतसः ॥ ४१॥

तान् दृष्ट्वा पीडितान् बाणैर् द्रोणेन मधुसूदनः ।
जयैषी पाण्डुपुत्राणाम् इदं वचनमब्रवीत् ॥ ४२॥

श्रीभगवान्—

नैष जातु नरैश्शक्यो जेतुं शस्त्रभृतां वरः ।
वृत्रहन्त्राऽपि वा सङ्ख्ये रथयूथपयूथपः ॥ ४३॥

यूयं धर्मं समुत्सृज्य जयं रक्षत पाण्डवाः ।
जये हि यतमानानां [1]श्रीर्धर्मश्च प्रवर्तते ॥ ४४॥

यथा वस्संयुगे सर्वान् न हन्याद्रुक्मवाहनः ॥ ४५

अश्वत्थाम्नि हते नैष युध्येतेति मतिर्मम ।
तं हतं संयुगे कश्चिद् आख्यात्वस्मै मृषा नरः ॥ ४६

कृप.—

एतन्नारोचयद्वाक्यं कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
अरोचयंस्तु सर्वेऽन्ये कृच्छ्रेण तु युधिष्ठिरः ॥ ४७

भीमसेनस्तु सव्रीडम् अब्रवीत् पितरं तव ।
अश्वत्थामा हत इति तच्चाबुध्यत ते पिता ॥ ४८

स शङ्कमानस्तन्मिथ्या धर्मराजं स पृच्छति ।
हतं वाऽप्यहतं वाऽऽजौ त्वां पिता पुत्रवत्सलः ॥ ४९

तमतथ्यभये मग्नो जये सक्तश्च पाण्डवः ॥ ४९॥

अश्वत्थामानमायोधे हतं दृष्ट्वा महागजम् ।
भीमेन गिरिवर्ष्माणं मालवस्येन्द्रवर्मणः ॥ ५०॥

उपसृत्य तदा द्रोणम् उच्चैरिदमुवाच ह ॥ ५१

यस्यार्थे शस्त्रमादत्से यमवेक्ष्य च जीवसि ।
पुत्रस्ते दयितो नित्यं सोऽश्वत्थामा निपातितः ॥ ५२

---

1 क-घ—अधर्मश्च

तच्छ्रुत्वा विमनास्तत्र आचार्यो महदप्रियम् ।
नियम्य सर्वाण्यस्त्राणि नायुध्यत यथा पुरा ॥ ५३

[1]तं दृष्ट्वा परमोद्विग्नं शोकोत्तरमचेतसम् ।
पाञ्चालराजस्य सुतः क्रूरकर्मा समाद्रवत् ॥ ५४

तं दृष्ट्वा विहितं मृत्युं लोकतत्त्वविचक्षणः ।
दिव्यान्यस्त्राण्यथोत्सृज्य रणे प्रायमुपाविशत् ॥ ५५

ततोऽस्य केशान् सव्येन गृहीत्वा पाणिना तदा ।
पार्षतः क्रोशमानानां वीराणामाच्छिनच्छिरः ॥ ५६

न हन्तव्यो न हन्तव्य इति ते सर्वतोऽब्रुवन् ।
तथैव चार्जुनो वाहाद् अवरुह्यैनमाद्रवत् ॥ ५७

उद्यम्य बाहू त्वरितो ब्रुवाणश्च पुनः पुनः ।
जीवन्तमानयाचार्यं मा वधीरिति धर्मवित् ॥ ५८

तथा निवार्यमाणेन कौरवैरर्जुनेन च ।
[2]हत एव नृशंसेन पिता तव नरर्षभ ॥ ५९

ततस्सेना दिशस्सर्वाः प्राद्रवन्त भयातुराः ।
वयं चापि निरुत्साहा हते पितरि तेऽनघ ॥ ६०

---

1. घ—अर्धद्वयं नास्ति 2 क-घ—इदमर्धं नास्ति

सञ्जयः—

[1]तच्छ्रुत्वा द्रोणपुत्रस्तु निधनं पितुराहवे ।

क्रोधमाहारयत् तीव्रं दण्डाहत इवोरगः ॥ ६१

इति श्रीमहाभारते शतसहस्त्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥
॥ ७२ ॥ नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥
[अस्मिन्नध्याये ६१ श्लोकाः]

---

## ॥ द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

धृतराष्ट्रेण सञ्जयं प्रति द्रोणवधश्राविणाऽश्वत्थाम्ना किमुक्तमिति प्रश्नः ॥ १ ॥ अश्वत्थाम्ना सक्रोधं युधिष्ठिराद्युपालम्भः ॥ २ ॥ तथा द्रोणस्य नारायणास्त्रलाभप्रकारादिकथनपूर्वकं तेन पाण्डवादिवधप्रतिज्ञानम् ॥ ३ ॥

---

धृतराष्ट्रः—

अधर्मेण हतं श्रुत्वा धृष्टद्युम्नेन सञ्जय ।

ब्राह्मणं पितरं वृद्धम् अश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥ १

[2]मानवं वारुणाग्नेयं ब्राह्ममस्त्रं च वीर्यवान् ।

ऐन्द्रं नारायणं चैव यस्मिन्नित्यं प्रतिष्ठितम् ॥ २

तमधर्मेण धर्मिष्ठं धृष्टद्युम्नेन संयुगे ।

---

1. क-घ—इदमर्धं नास्ति 2 अ-ङ—अर्धचतुष्टयं नास्ति

श्रुत्वा निहतमाचार्यं सोऽश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥ ३

येन रामादवाप्यैव धनुर्वेदं महात्मना ।
प्रोक्तान्यस्त्राणि दिव्यानि पुत्राय गुरुकाङ्क्षिणे ॥ ४

एकमेव हि लोकेऽस्मिन्नात्मतो गुणवत्तरम् ।
इच्छन्ति पुत्रं पुरुषा लोके नान्यं कथञ्चन ॥ ५

आचार्याणां भवन्त्येव रहस्यानि महात्मनाम् ।
तानि पुत्राय वा दद्युश् शिष्यायानुगताय वा ॥ ६

स शिष्यः प्राप्य तत् सर्वं सविशेषं च सञ्जय ।
शूरश्शारद्वतीपुत्रस् सङ्ख्ये द्रोणादनन्तरः ॥ ७

रामस्यानुसमश्शस्त्रे पुरन्दरसमो युधि ।
कार्तवीर्यसमो वीर्ये बृहस्पतिसमो मतौ ॥ ८

महीधरसमो धृत्या तेजसाऽग्निसमो युवा ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये क्रोधे सर्पविषोपमः ॥ ९

स रथप्रवरो लोके जितधन्वा जितक्लमः ।
शीघ्रोऽनिल इवाक्रन्दे वीरः क्रुद्ध इवान्तकः ॥ १०

अस्यता येन सङ्ग्रामे धरण्यतिनिपीडिता ।
मेघस्तनितनिर्घोषा कम्पते भयविक्लबा ॥ ११

यो न व्यथति सङ्ग्रामे वीरस्सत्यपराक्रमः ।
वेदस्नातो व्रतस्नातो धनुर्वेदपरङ्गतः ॥ १२

महोदधिरिवाक्षोभ्यो रामो दाशरथिर्यथा ॥ १२॥

तमधर्मेण धर्मिष्ठं धृष्टद्युम्नेन संयुगे ।
श्रुत्वा निहतमाचार्यं सोऽश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥ १३॥

धृष्टद्युम्नस्य यो मृत्युस् सृष्टस्तेन महात्मना ।
यथा द्रोणस्य पाञ्चाल्यो यज्ञसेनसुतोऽभवत् ॥ १४॥

तं नृशंसेन भावेन क्रूरेणात्यल्पदर्शिना ।
श्रुत्वा निहतमाचार्यम् अश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥* १५॥

सञ्जय:—

छद्मना निहतं श्रुत्वा पितरं पापकर्मणा ।
बाष्पेणापूर्यत द्रौणी रोषेण च नरर्षभ ॥ १६॥

तस्य क्रुद्धस्य राजेन्द्र वपुरन्यत् प्रकाशते ।
अन्तकस्येव भूतानि दिधक्षोः कालपर्यये ॥ १७॥

तोयपूर्णे ततो नेत्रे व्यपमृज्य पुनः पुनः ।
उवाच कोपान्निश्श्वस्य दुर्योधनमिदं वचः ॥ १८॥

अश्वत्थामा—

पिता मम यथा क्षुद्रैर् न्यस्तशस्त्रो निपातितः ।
धर्मध्वजवता पापं कृतं तद्विदितं तव ॥ १९॥
अनार्यं च नृशंसं च धर्मपुत्रेण मे श्रुतम् ॥ २०

* सर्वेषु कोशेषु अत्रैवाध्यायसमाप्तिर्दृश्यते

युद्धेष्वभिप्रवृत्तानां ध्रुवौ जयपराजयौ ।
द्वयमेतद्भवेद्राजन् वधस्तत्र प्रशस्यते ॥ २१

न्याययुक्तो वधो यस्य मतो मे युध्यतो भवेत् ।
न स दुःखाय भवति तथा दृष्टो हि स द्विजैः ॥ २२

गतस्स वीरलोकाय पिता मम न संशयः ।
न शोच्यः पुरुषव्याघ्रस् तदा स निधनं गतः ॥ २३

यत् तु धर्मप्रवृत्तस्सन् केशग्रहणमाप्तवान् ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां तन्मे मर्माणि कृन्तति ॥ २४

कामात् क्रोधादवज्ञानाद् दर्पाद्बाल्येन वा पुनः ।
वैधर्मिकाणि कुर्वन्ति तथा परिभवन्ति च ॥ २५

तदिदं पार्षतेनेह कृतं महदधार्मिकम् ।
अवज्ञाय च मां नूनं नृशंसेन दुरात्मना ॥ २६

तस्यैवाद्य वधः क्षुद्रो धृष्टद्युम्नस्य दारुणः ।
अनार्यं परमं कृत्वा मिथ्यावादी च पाण्डवः ॥ २७

यश्चासौ छद्मनाऽऽचार्यं शस्त्रं संन्यासयद्रणे ।
तस्याद्य धर्मराजस्य भूमिः पास्यति शोणितम् ॥ २८

यदर्थं पुरुषव्याघ्राः पुत्रानिच्छन्ति मानवाः ।
प्रेत्य चेह च सम्प्राप्तात् त्रायन्ते महतो भयात् ॥ २९

पित्रा तु मम साऽवस्था प्राप्ता निर्बन्धुना यथा ।

मयि शैलप्रतीकाशे पुत्रे शिष्ये च जीवति ॥ ३०

धिङ्ममास्त्राणि दिव्यानि धिग्बाहू धिक् पराक्रमम् ।
यन्मां द्रोणस्सुतं प्राप्य केशग्रहमवाप्तवान् ॥ ३१

स तथाऽहं करिष्यामि यथा भरतसत्तम ।
परलोकगतस्यापि भविष्याम्यनृणः पितुः ॥ ३२

आर्येण तु न वक्तव्या कदाचित् स्तुतिरात्मनः ।
पितुर्वधममृष्यंस्तु वक्ष्याम्यद्यैव पौरुषम् ॥ ३३

अद्य पश्यन्तु मे वीर्यं पाण्डवास्सहकेशवाः ।
मृद्नतस्सर्वसैन्यानि युगान्तमिव कुर्वतः ॥ ३४

न हि देवा न गन्धर्वा नासुरा न च राक्षसाः ।
अद्य शक्ता रणे जेतुं रथस्थं मां नरर्षभाः ॥ ३५

मदन्यो नास्ति लोकेऽस्मिन् नार्जुनादस्त्रवित्तमः ।
अहं हि ज्वलतां मध्ये मयूखानामिवांशुमान् ॥ ३६

प्रयोक्ता देवसृष्टानाम् अस्त्राणां पृतनागतः ॥ ३६॥

भृशाश्वतनया ह्यद्य मत्प्रयुक्ता महाहवे ।
दर्शयन्तोत्मनां रूपं प्रमथिष्यन्ति पाण्डवान् ॥ ३७॥

अद्य सर्वा दिशो राजन् धाराभिरिव सङ्कुलाः ।
भविष्यन्ति महाराज मच्छरैर्विदिशस्तथा ॥ ३८॥

विसृजञ् छरजालानि सर्वतो भैरवस्वनान् ।

शत्रून् निपातयिष्यामि महावात इव द्रुमान् ॥ ३९॥

न हि जानाति बीभत्सुस् तदस्त्रं न जनार्दनः ।

न भीमसेनो न यमौ न च राजा युधिष्ठिरः ॥ ४०॥

न पार्षतो दुरात्माऽसौ शिखण्डी न च सात्यकिः ।

तदिदं मयि कौरव्य सकलं सनिवर्तनम् ॥ ४१॥

नारायणाय मे पित्रा प्रणम्य विधिपूर्वकम् ।

उपहारस्तदा दत्तो ब्रह्मरूप उपस्थिते ॥ ४२॥

तं स्वयं प्रतिगृह्याथ भगवान् स वरं ददौ ।

वव्रे पिता मे परमम् अस्त्रं नारायणं ततः ॥ ४३॥

अथैनमब्रवीद्राजन् भगवान् देवसत्तमः ॥ ४४

श्रीभगवान् नारायणः—

भविता त्वत्समो नान्यः कश्चिद्युधि नरः क्वचित् ॥ ४४॥

न त्विदं सहसा ब्रह्मन् प्रयोक्तव्यं कथञ्चन ।

न ह्येतदस्त्रमन्यत्र वधाच्छत्रोर्निवर्तते ॥ ४५॥

न चैतच्छक्यते जेतुं को न वध्येत वै प्रभो ।

अवध्यमपि हन्याद्धि तस्मान्नैनं प्रयोजयेत् ॥ ४६॥

वधस्सङ्ख्ये द्रवश्चैव शस्त्राणां च विसर्जनम् ।

प्रयाचनं च शत्रूणां गमनं शरणस्य च ॥ ४७॥

एते प्रशमने योगा ममास्त्रस्य परन्तप ।

सर्वथा पीडितो हिंस्याद् अवध्यान् पीडयन् रणे ॥ ४८॥

अश्वत्थामा—

तं जग्राह पिता मह्यम् अब्रवीच्चैव स प्रभुः ॥ ४९

श्रीभगवान् नारायणः—

[1]त्वं धरिष्यसि दिव्यानि शस्त्रवर्षाण्यनेकशः ।
अनेनास्त्रेण सङ्ग्रामे तेजसा च ज्वलिष्यसि ॥ ५०

अश्वत्थामा—

एवमुक्त्वा स भगवान् दिवमाचक्रमे प्रभुः ।
एवं नारायणास्त्रं तत् सम्प्राप्तं मम बन्धुना ॥ ५१

तेनाहं पाण्डवांश्चैव पाञ्चालांश्चैव केकयान् ।
विद्रावयिष्यामि रणे शचीपतिरिवासुरान् ॥ ५२

यथा यथाऽहमिच्छेयं तथा भूत्वा शरा मम ।
निपतेयुस्सपत्नेषु त्वहतेष्वपि भारत ॥ ५३

यथेष्टमिषुवर्षेण प्रवर्षिष्ये रथे स्थितः ।
अयोमुखैश्च विहगैस् तापयिष्ये महारथान् ॥ ५४

परश्वथांश्च निशितान् उत्स्रक्ष्येऽहमसंशयम् ॥ ५४॥

सोऽहं नारायणास्त्रेण महता शत्रुतापिना ।
शत्रून् विध्वंसयित्वा च कदर्थीकृत्य पाण्डवान् ॥ ५५॥

---

1. अ-घ—अर्धत्रयं नास्ति

मित्रब्रह्मगुरुद्वेषी जाल्मकस्सुविगर्हितः ।
पाञ्चालापशदश्चाद्य न मे जीवन् विमोक्ष्यते ॥ ५६॥

सञ्जयः—

तच्छ्रुत्वा द्रोणपुत्रस्य पर्यवर्तत वाहिनी ॥ ५७

ततस्सर्वे महाशङ्खान् दध्मुः पुरुषसत्तमाः ।
भेरीश्चाप्यहनन् हृष्टा डिण्डिमांश्च सहस्रशः ॥ ५८

ततो ननाद वसुधा खुरनेमिप्रपीडिता ।
स शब्दस्तुमुलो जज्ञे पृथिवीं चाप्यनादयत् ॥ ५९

तं शब्दं पाण्डवाश्श्रुत्वा पर्जन्यनिनदोपमम् ।
समेत्य रथिनां श्रेष्ठास् सहिताश्चाभ्यमन्त्रयन् ॥ ६०

तथोक्त्वा द्रोणपुत्रोऽपि तत्रोपस्पृश्य भारत ।
प्रादुश्चकार तद्दिव्यम् अस्त्रं नारायणं तदा ॥ ६१

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥
॥ ७२ ॥ नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥
[अस्मिन्नध्याये ६१ श्लोकाः]

## ॥ त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

कुरुसेनारवश्रवणभीतेन युधिष्ठिरेण पलायितसेनाप्रतिनिवर्तकप्रश्ने अर्जुनेन तत्कथनपूर्वकं द्रोणवधोपेक्षणादात्मोपालम्भः ॥

सञ्जयः—

प्रादुर्भूते ततस्तस्मिन्नस्त्रे नारायणे विभो ।
प्रावात् सपृषतो वायुर् अनभ्रे स्तनयित्नुमान् ॥ १

चचाल पृथिवी चापि चुक्षुभे च महोदधिः ।
प्रतिस्रोतः प्रवृत्ताश्च गन्तुं तत्र समुद्रगाः ॥ २

शिखराणि व्यशीर्यन्त गिरीणां तत्र भारत ।
अपसव्यं मृगाश्चैव पाण्डुसेनां प्रचक्रिरे ॥ ३

तमसा चाभ्यकीर्यन्त सूर्यश्च कलुषोऽभवत् ।
सम्पतन्ति च भूतानि क्रव्यादानि प्रहृष्टवत् ॥ ४

देवदानवगन्धर्वास् त्रस्ता आसन् विशां पते ।
भयं तदभवत् तीव्रं दृष्ट्वा तद्व्याकुलं महत् ॥ ५

व्यथितास्सर्वराजानस् तदा ह्यासन् विचेतसः ।
ते दृष्ट्वा घोररूपं तद् द्रौणेरस्त्रं भयावहम् ॥ ६

धृतराष्ट्रः—

निवर्तितेषु सैन्येषु द्रोणपुत्रेण संयुगे ।
भृशं शोकाभितप्तेन पितुर्वधममृष्यता ॥ ७

कुरूनापततो दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नस्य रक्षणे ।
को मन्त्रः पाण्डवेष्वासीत् तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ८

सञ्जय—

प्रागेव विद्रुतान् दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् युधिष्ठिरः ।
पुनश्च तुमुलं शब्दं श्रुत्वाऽर्जुनमथाब्रवीत् ॥ ९

युधिष्ठिर—

आचार्ये निहते द्रोणे धृष्टद्युम्नेन संयुगे ।
निहते वज्रहस्तेन यथा वृत्रे महासुरे ॥ १०

नाशंसन्तो जयं युद्धे दीनात्मानो महारथाः ।
आत्मत्राणे मतिं कृत्वा प्राद्रवन् कुरवो यथा ॥ ११

केचिद्भ्रान्तै रथैस्तूर्णं निहतैः पार्ष्णियन्तृभिः ।
विपताकध्वजच्छत्रैः पार्थिवाश्शीर्णकूबरैः ॥ १२

भग्ननीडैराकुलाश्वैः प्रारुह्यान्ये विचेतसः ।
धीराः पादैर्हयान् केचित् त्वरयन्तस्स्वयं रथैः ॥ १३

युगचक्राक्षभग्नैश्च द्रुताः केचिद्भयार्दिताः ।
गजस्कन्धेषु संस्यूता नाराचैश्चाभिपीडिताः ॥ १४

शरार्तैर्विद्रुतैर्नागैर् द्रुताः केचिद्दिशो दश ।
विशस्त्रकवचाश्चान्ये वाहनेभ्यः क्षितिं गताः ॥ १५

सञ्छिन्ना नेमिभिश्चान्ये मृदिताश्च परे द्विपैः ।

क्रोशन्तस्तात पुत्रेति पलायंश्चापरे भयात् ॥ १६

नाभिजानन्ति चान्योन्यं कश्मलाभिहतौजसः ।
पुत्रान् पितॄन् सखीन् भ्रातॄन् समारोप्य दृढक्षतान् ॥ १७

जलेन क्लेदयन्त्यन्ये विमुच्य कवचान्यपि ।
पलायनपराश्चान्ये योधाश्शतसहस्रशः ॥ १८

अवस्थितं पुनर्दृष्ट्वा तव पुत्रस्य तद्बलम् ।
धर्मपुत्रो महाराज धनञ्जयमथाब्रवीत् ॥ १९

युधिष्ठिरः—

अवस्थामीदृशीं प्राप्तं हते द्रोणे द्रुतं बलम् ।
पुनरावर्तितं केन यदि जानासि शंस मे ॥ २०

हयानां ह्रेषतां शब्दः कुञ्जराणां च बृंहताम् ।
रथनेमिस्वनश्चात्र विमिश्रश्श्रूयते महान् ॥ २१

एताश्शब्दोर्मयस्तीव्राः प्रवृत्ताः कुरुसागरे ।
मुहुर्मुहुरुदीर्यन्ते कम्पयन्त्यपि देवताः ॥ २२

य एष तुमुलश्शब्दश् श्रूयते रोमहर्षणः ।
सेन्द्रानप्येष लोकांस्त्रीन् व्यथयेदिति मे मतिः ॥ २३

मन्ये वज्रधरस्यैष निनादो भैरवस्वनः ।
द्रोणे हते कौरवार्थं व्यक्तमभ्येति वासवः ॥ २४

प्रहृष्टरोमकूपास्स्मस् संविग्नरथकुञ्जराः ।

धनञ्जय सुसंत्रस्ताश् श्रुत्वा नादं सुभीषणम् ॥ २५

क एष कौरवान् दीनान् अवस्थाप्य महारथः ।
निवर्तयति युद्धाय मृधे देवेश्वरो यथा ॥ २६

अर्जुनः—

उद्यम्यात्मानमुग्राय कर्मणे धैर्यमास्थिताः ।
धमन्ति कौरवाश्शङ्खान् यस्य वीर्यमुपाश्रिताः ॥ २७

यत्र ते संशयो राजन् न्यस्तशस्त्रे गुरौ हते ।
धार्तराष्ट्रानवस्थाप्य क एष नदतीति ह ॥ २८

ह्रीमन्तं तं महाबाहुं मत्तमातङ्गगामिनम् ।
इन्द्रविष्णुसमं वीर्ये कोपेऽन्तकमिव स्थितम् ॥ २९

बृहस्पतिसमं बुद्ध्या नीतिमन्तं महारथम् ।
आख्यास्याम्युग्रकर्माणं कुरूणामभयङ्करम् ॥ ३०

यस्मिञ्जाते गवां द्रोणो ददौ दशशतं धनम् ।
ब्राह्मणेभ्यो महार्हेभ्यस् सोऽश्वत्थामैष गर्जति ॥ ३१

जातमात्रेण वीरेण येनोच्चैश्श्रवसा इव ।
ह्रेषता कम्पिता भूमिर् लोकाश्चैव पृथग्विधाः ॥ ३२

तच्छ्रुत्वाऽन्तर्हितं भूतं नाम चास्याकरोत् तदा ।
अश्वत्थामेति सोऽद्यैष शूरो नदति पाण्डव ॥ ३३

यो ह्यनाथ इवाक्रम्य पार्षतेन हतो मृधे ।

कर्मणा सुनृशंसेन तस्य नाथो व्यवस्थितः ॥ ३४

गुरुं मे यत्र पाञ्चाल्यः केशपक्षे परामृशत् ।
तन्न जातु क्षमेद्द्रौणिर् जानन् पौरुषमात्मनः ॥ ३५

[1]स हते तेन नस्सर्वान् क्षपयेदिति मे मतिः ॥ ३५॥

उपचीर्णो गुरुर्मिथ्या भवता राज्यकारणात् ।
धर्मज्ञेन सता नाम सोऽधर्मस्सुमहान् कृतः ॥ ३६॥

सर्वधर्मोपपन्नोऽयं मम शिष्यश्च पाण्डवः ।
नायं वक्ष्यति मिथ्येति प्रत्ययं कृतवांस्त्वयि ॥ ३७॥

स सत्यकञ्चुकं नाम प्रविष्टेन ततोऽनृतम् ।
आचार्य उक्तो भवता हतः कुञ्जर इत्युत ॥ ३८॥

ततश्शस्त्रं समुत्सृज्य निर्ममो गतचेतनः ।
आसीत् स विह्वलो राजन् यथा दृष्टस्त्वया विभुः ॥ ३९॥

स तु शोकेन चाविष्टो विमुखः पुत्रवत्सलः ।
शाश्वतं धर्ममुत्सृज्य गुरुश्शिष्येण घातितः ॥ ४०॥

न्यस्तशस्त्रमधर्मेण घातयित्वा गुरुं भवान् ।
रक्षत्विदानीं सामात्यो यदि शक्नोषि पार्षतम् ॥ ४१॥

ग्रस्तमाचार्यपुत्रेण क्रुद्धेन हतबन्धुना ।
सर्वे वयं परित्रातुं न शक्ष्यामोऽद्य पार्षतम् ॥ ४२॥

---

1. अ-ख—अर्धमिदं नास्ति

सौहार्दं सर्वभूतेषु यः करोत्यतिमात्रतः ।
सोऽद्य केशग्रहं श्रुत्वा पितुर्धक्ष्यति नो रणे ॥ ४३॥

विक्रोशमाने हि मयि भृशमाचार्यगर्धिनि ।
अवकीर्य स्वधर्मं हि शिष्येण निहतो गुरुः ॥ ४४॥

यदा गतं वयो भूयश् शिष्टमल्पतरं च नः ।
तस्येदानीं विरोधोऽयम् अधर्मोऽयं कृतो महान् ॥ ४५॥

पितेव नित्यं सौहार्दात् पिता तव हि धर्मतः ।
सोऽल्पकालस्य राज्यस्य कारणान्निहतो गुरुः ॥ ४६॥

[1]धृतराष्ट्रेण भीष्माय द्रोणाय च महात्मने ।
विसृष्टा पृथिवी सर्वा सह पुत्रैश्च तत्परैः ॥ ४७॥

सम्प्राप्य तादृशीं वृत्तिं सत्कृतस्सततं परैः ।
अब्रवीत् सततं पुत्रात् त्वामेवाभ्यधिकं गुरुः ॥ ४८॥

अवेक्षमाणस्त्वां मां च मार्दवात् सततं गुरुः ।
न त्वेनं युध्यमानं वै हन्यादपि शतक्रतुः ॥ ४९॥

तस्य द्रोणस्य वृद्धस्य द्रोहो नित्योपकारिणः ।
कृतो ह्यनार्यैरस्माभी राज्यार्थे लघुबुद्धिभिः ॥ ५०॥

पुत्रान् दारान् पितॄन् भ्रातॄन् जीवितं चैव वासविः ।
त्यजेत् सर्वं मयि प्रेम्णा जानात्येतद्धि मे गुरुः ॥ ५१॥

---

1. ख—अर्धचतुष्टयं नास्ति

स मया राज्यकामेन पात्यमानोऽप्युपेक्षितः ।
तस्मादवाक्शिरा राजन् प्राप्तोऽस्मि नरकं विभो ॥ ५२॥

ब्राह्मणं वृद्धमाचार्यं न्यस्तशस्त्रं यथामुनिम् ।
[1]घातयित्वाऽद्य राज्यार्थे मृतं श्रेयो न जीवितम् ॥ ५३॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥
॥ ७२ ॥ नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ५३॥ श्लोकाः ]

## ॥ चतुष्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

साधिक्षेपमश्वत्थामतो युधिष्ठिरं भीषयन्तं पार्थं प्रति भीमेन सामर्षमात्मबलवर्णनादिपूर्वकं स्वेनाश्वत्थामादिविजयप्रतिज्ञानम् ॥ १ ॥ धृष्टद्युम्नेनाप्यर्जुनं प्रति सक्रोधं क्षात्रधर्मादिकथनपूर्वकं स्वकृतद्रोणवधस्य धार्मिकत्वकथनम् ॥ २ ॥

सञ्जयः—

अर्जुनस्य वचश्श्रुत्वा नोचुस्तत्र महारथाः ।
अप्रियं वा प्रियं वाऽपि महाराज धनञ्जयम् ॥ १

ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनोऽभ्यभाषत ।
कुत्सयन्निव कौन्तेयम् अर्जुनं भरतर्षभ ॥ २

1. ख—अर्धमिदं नास्ति

भीमः—

मुनिर्यथाऽरण्यगतो भाषसे धर्मसंहितम् ।
न्यस्तदण्डो यथा पार्थ ब्राह्मणस्संशितव्रतः ॥ ३

क्षतत्राता क्षताज्जीर्णः क्षान्तस्त्रिष्वथ साधुषु ।
क्षत्रियः क्षितिमाप्नोति क्षिप्रं धर्मं यशश्श्रियः ॥ ४

स भवान् क्षत्रियगुणैर् मुक्तस्सर्वैः कुलोद्वहः ।
अविपश्चिद्यथा वाचं व्याहरन्नाद्य शोभसे ॥ ५

पराक्रमस्ते कौन्तेय शक्रस्येव शचीपतेः ।
न चातिवर्तसे धर्मं वेलामिव महोदधिः ॥ ६

न पूजयेत् त्वा को ह्यत्र यत् त्रयोदशवार्षिकम् ।
अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा धर्ममेवाभिकाङ्क्षसे ॥ ७

दिष्ट्या तात मनस्तेऽद्य स्वधर्ममनुवर्तते ।
आनृशंस्ये च ते बुद्धिर् दिष्ट्या सततमच्युत ॥ ८

यत् तु धर्मप्रवृत्तस्य हृतं राज्यमधर्मतः ।
द्रौपदी च परामृष्टा सभामानीय शत्रुभिः ॥ ९

वनं प्रव्राजिताश्च स्म वल्कलाजिनवाससः ।
अनर्हमाणास्तं भावं त्रयोदश समाः परैः ॥ १०

बहूनि क्षाम्य शत्रूणां सत्यधर्मरता वयम् ।
तथा तन्मर्षयित्वा तु यथा ते उत्पथे स्थिताः ॥ ११

एतान्यमर्षस्थानानि मर्षितानि त्वयाऽनघ ।
क्षत्रधर्मप्रसक्तेन सर्वमेतदनुष्ठितम् ॥ १२

तमधर्ममपाक्रष्टुम् आरब्धस्सहितस्त्वया ।
सानुबन्धान् हनिष्यामि क्षुद्रानेतान् सहस्रशः ॥ १३

त्वया तु कथितं पूर्वं युद्धायाभ्यागता वयम् ।
घटामश्च यथाशक्ति त्वं तु नोऽद्य जुगुप्ससे ॥ १४

स्वधर्मं नेच्छसे ज्ञातुं वृथा वचनमेव ते ।
भयार्दितानामस्माकं वाचा मर्माणि कृन्तसि ॥ १५

वपन् व्रणे क्षारमिव शलाकां शत्रुकर्शन ।
विदीर्यते मे हृदयं त्वया वाक्शल्यपीडितम् ॥ १६

अधर्ममेनं विपुलं धार्मिकस्सन् न बुध्यसे ।
स त्वमात्मानमस्मांश्च प्रशंस्यान् न प्रशंससि ॥ १७

यः कलां षोडशीं त्वत्तो नार्हते तं प्रशंससि ।
स्वयमेवात्मनो दोषान् ब्रुवन्नद्य न लज्जसे ॥ १८

मम नागायुतं पार्थ [1]बलं बाह्वोर्विधीयते ।
प्रवासयेयं च शरैस् सेन्द्रान् देवान् समागतान् ॥ १९

सराक्षसगणान् पार्थ सासुरोरगमानवान् ।
दारयेयं महीं क्रोधाद् विकिरेयं च पर्वतान् ॥ २०

1. क—इतः पादचतुष्टयं नास्ति

आविध्येयं गदां गुर्वीं भीमा काञ्चनमालिनीम् ।
गिरिप्रकाशान् क्षितिजान् भञ्जेयमनिलो यथा ॥　२१

स त्वमेवंविधं जानन् भ्रातरं मां नरर्षभ ।
द्रोणपुत्राद्भयं कर्तुं नार्हस्यमितविक्रम ॥　२२

अथवा तिष्ठ बीभत्सो सह सर्वैर्नरर्षभैः ।
अहमेनं गदापाणिर् जेष्याम्येको महाहवे ॥　२३

सङ्क्रुद्धमिव नर्दन्तं हिरण्यकशिपुं हरिः ॥　२३॥

सञ्जय—

ततः पाञ्चालराजस्य सुतस्तं पार्थमब्रवीत् ॥　२४

धृष्टद्युम्नः—

बीभत्सो विप्रकर्माणि विहितानि मनीषिभिः ।
याजनाध्यापने दानं तथा यज्ञप्रतिग्रहौ ॥　२५

षष्ठमध्ययनं कर्म तेषां कस्मिन् प्रतिष्ठितः ॥　२५॥

हतो द्रोणो मया यन्माम् एवं पार्थ विगर्हसे ॥　२६

अपक्रान्तस्स्वधर्माच्च बाहुवीर्यमुपाश्रितः ।
अधर्मेण हतस्तस्माद् अस्त्रेण क्षुद्रकर्मकृत् ॥　२७

तथा मायां प्रयुञ्जानम् असह्यं ब्राह्मणब्रुवम् ।
प्रतिमायी निहन्याद्यो न युक्तं पार्थ तत्र किम् ॥　२८

तस्मिंस्तथा मया शस्ते यदि द्रौणायनी रुषा ।

कुरुते भैरवं नादं तत्र किं मम हीयते ॥ २९

न चाद्भुतमिदं मन्ये यद्द्रौणिश्चात्र गर्जति ।
घातयिष्यति कौरव्यान् परित्रातुमशक्नुवन् ॥ ३०

यच्च मां धार्मिको भूत्वा ब्रवीषि गुरुघातिनम् ।
तदर्थमहमुत्पन्नः पाञ्चालस्य सुतोऽनलात् ॥ ३१

यस्य कार्यमकार्यं वा युध्यतस्स्यात् समं रणे ।
तं कथं ब्राह्मणं ब्रूयाः क्षत्रियं वा धनञ्जय ॥ ३२

यो ह्यनस्त्रविदो हन्याद् ब्रह्मास्त्रैः क्रोधमूर्च्छितः ।
सर्वोपायैर्न स कथं वध्यः पुरुषसत्तम ॥ ३३

[1]विशेषात् पितृहन्ता मे न स वध्यः कथं मया ॥ ३३॥

योऽयं पापस्सुदुर्मेधा बान्धवान् युधि जघ्निवान् ।
तस्य विप्रब्रुववधे कथं पापं भवेन्मम ॥ ३४॥

विधर्मिणं धर्मविदः प्रोक्तं ते किं विषोपमम् ।
जानन् धर्मार्थतत्त्वज्ञः किं वा पार्थ विगर्हसे ॥ ३५॥

नृशंसस्स मयाऽऽक्रम्य रथ एव निपातितः ।
तन्माऽभिनन्द्यं बीभत्सो किमर्थं नाभिनन्दसे ॥ ३६॥

कालानल[2]समे पार्थ ज्वलनार्कविषोपमे ।

---

1. ख—अर्धत्रयं नास्ति
2. क-ख-ब—समैः पार्थं ज्वलनार्कविषोपमैः [पाठान्तरम्]

भीमे द्रोणशिरश्छेदे प्रशस्यं न प्रशंससि ॥ ३७॥

योऽसौ ममैव नान्यस्य बान्धवान् युधि जघ्निवान् ।
छित्त्वाऽपि तस्य मूर्धानं नैवास्मि विगतज्वरः ॥ ३८॥

तच्च मे कृन्तते मर्म यन्न तस्य शिरो मया ।
निषादविषये क्षिप्तं जयद्रथशिरो यथा ॥ ३९॥

अवधे ह्यपि शत्रूणाम् योऽधर्मश्शिष्यतेऽर्जुन ।
क्षत्रियस्य हि धर्मोऽयं हन्याद्धन्येत वा परैः ॥ ४०॥

स शत्रुर्निहतस्सङ्ख्ये मया धर्मेण पाण्डव ।
यथा त्वया हतश्शूरो भगदत्तः पितुस्सखा ॥ ४१॥

पितामहं रणे हत्वा मन्यसे धर्ममात्मनः ।
मया शत्रौ हते कस्मात् पापे धर्मं न मन्यसे ॥ ४२॥

नानृती पाण्डव ज्येष्ठो नाहं वाऽधार्मिकोऽर्जुन ।
[1]न क्षत्रिय इति प्राहुर् यो न हन्ति रणाजिरे ॥ ४३॥

पितरं वा गुरुं वाऽपि जिघांसुं पुत्रशिष्ययोः ।
जिह्मेन वाऽप्यजिह्मेन हन्यादेवाविचारयन् ॥ ४४॥

इत्युक्तं ब्रह्मणा पूर्वं क्षत्रियाणां द्विषद्वधे ।
तस्माच्छिष्येण निहतश् शत्रुर्मे ब्राह्मणब्रुवः ॥ ४५॥

यः क्षत्रियसुतो हन्यात् पितरं वा गुरुं च वा ।

1. ख—अर्धसप्तकं नास्ति

अनिष्टं क्षत्रियो हन्यात् स वै क्षत्रिय उच्यते ॥ ४६॥

स शिष्यनिहतः पापो युध्यस्व विजयस्तव ॥ ४७

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि चतुष्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥
॥ ७२ ॥ नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ४७ श्लोका ]

---

## ॥ पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

सात्यकिनिष्ठुरभाषणरुष्टेन धृष्टद्युम्नेन सममर्मोद्घाटनं तद्गर्हणम् ॥ १ ॥ धृष्टद्युम्नजिघांसया गदामुद्यम्यापतत सात्यकेः कृष्णचोदितेन भीमेन निवारणम् ॥ २ ॥ सर्वेषां पुनर्युद्धोद्यमः ॥ ३ ॥

---

धृतराष्ट्रः—

साङ्गो वेदो यथान्यायं येनाधीतो महात्मना ।
यस्मिन् साक्षाद्धनुर्वेदो श्रीनिकेते प्रतिष्ठितः ॥ १

तस्मिन्नाक्रुश्यति द्रोणे महर्षितनये यथा ।
नीचं कर्म कृतं तेन क्षुद्रेण गुरुघातिना ॥ २

यस्य प्रसादात् कर्माणि कुर्वन्ति पुरुषर्षभाः ।
अमानुषाणि सङ्ग्रामे देवैरसुकराणि च ॥ ३

तस्मिन्नाक्रुश्यति द्रोणे समक्षं पापकर्मणा ।
नामर्षं तत्र कुर्वन्ति धिक् क्षत्रं धिगमर्षिताम् ॥ ४

पार्थास्सर्वे च राजानः पृथिव्यां ये धनुर्धराः ।
श्रुत्वा किमाहुः पाञ्चाल्यं तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ५

सञ्जयः—

श्रुत्वा द्रुपदपुत्रस्य ता वाचः क्रूरकर्मणः ।
तूष्णीं बभूवू राजानस् सर्वे एव विशां पते ॥ ६

अर्जुनस्तु कटाक्षेण जिह्मं विप्रेक्ष्य पार्षतम् ।
सबाष्पमतिनिश्श्वस्य धिग् धिग् धिगिति चाब्रवीत् ॥ ७

युधिष्ठिरश्च भीमश्च यमौ कृष्णस्तथाऽपरे ।
आसन् सुव्रीडिता राजन् सात्यकिस्त्विदमब्रवीन् ॥ ८

सात्यकिः—

नेहास्ति पुरुषः कश्चिद् य इमं पापपूरुषम् ।
भाषमाणमकल्याणं शीघ्रं हन्यान्नराधमम् ॥ ९

कथं च शतधा जिह्वा न ते मूर्धा च शीर्यते ।
गुरुमाक्रोशतः क्षुद्र न चाधर्मेण पात्यसे ॥ १०

वध्यस्त्वमसि पार्थैश्च सर्वैश्चान्धकवृष्णिभिः ।
यत् कर्म कलुषं कृत्वा श्लाघसे राजसंसदि ॥ ११

अकार्यं तादृशं कृत्वा पुनरेव गुरुं क्षिपन् ।
वध्यस्त्वं न त्वयाऽर्थोऽस्ति मुहूर्तमपि जीवता ॥ १२

कस्त्वेतद्व्यवसेदार्यस् त्वदन्यः पुरुषाधम ।

निगृह्य केशेषु वधं गुरोर्धर्मात्मनस्सतः ॥ १३

सप्तावरे तथा पूर्वे बान्धवास्ते निमज्जिताः ।
यशसा च परित्यक्तास् त्वां प्राप्य कुलपांसनम् ॥ १४

उक्तवांश्चासि यत् पार्थं भीष्मं प्रति नरर्षभ ।
तथाऽन्तो विहितस्तेन स्वयमेव महात्मना ॥ १५

तस्यापि तव सोदर्यो निहन्ता पापकृत्तमः ।
नान्यः पाञ्चालपुत्रेभ्यो लोके विद्येत पापकृत् ॥ १६

स चापि सृष्टः पित्रा ते भीष्मस्यान्तकरः किल ।
शिखण्डी रक्षितस्तेन स च मृत्युर्महात्मनः ॥ १७

पाञ्चालाश्चलिता धर्मात् [1]क्षत्रधर्मगुरुद्रुहः ।
त्वां प्राप्य सहसोदर्यं न्यक्कृतास्सर्वसाधुभिः ॥ १८

पुनश्चेदीदृशीर्वाचो मत्समीपे वदिष्यसि ।
शिरस्ते पोथयिष्यामि गदया वज्रकल्पया ॥ १९

सञ्जयः—

सात्वतेनैवमाक्षिप्तः पार्षतः परुषाक्षरम् ।
संरब्धं सात्यकिं प्राह सङ्क्रुद्धः प्रहसन्निव ॥ २०

धृष्टद्युम्नः—

श्रूयते श्रूयते चापि क्षम्यते चापि माधव ।

---

1 क-ख-घ—क्षत्रमित्रगुरु

सर्वोऽनार्यैरशुभं साधुं पुरुषं क्षेप्तुमिच्छति ॥　　२१

क्षमा प्रशस्यते लोके न तु पापोऽर्हति क्षमाम् ।
क्षमावन्तं हि पापात्मा जितोऽयमिति मन्यते ॥　　२२

स त्वं क्षुद्रसमाचारो नीचात्मा पापनिश्चयः ।
आकेशाग्रान्नखाच्चैव वक्तव्यो वक्तुमिच्छसि ॥　　२३

वरं हि ते मृतिः पाप न च ते वृत्तमीदृशम् ।
श्रोतुं वक्तव्यतामूलं नीचा वक्ष्यन्ति मानवाः ॥　　२४

[1]परान् क्षिपन्ति दोषेण स्वेषु दोषेष्वदृष्टयः ॥　　२४॥

यस्स भूरिश्रवाश्छिन्ने भुजे प्रायगतस्त्वया ।
वार्यमाणेन निहतस् ततः पापतरं नु किम् ॥　　२५॥

प्रेषमाणो मया द्रोणो दिव्यान्यस्त्राणि संयुगे ।
विसृष्टशस्त्रो निहतः कि तत्र क्रूर दुष्कृतम् ॥　　२६॥

अयुध्यमानं यस्त्वाजौ तथा प्रायगतं मुनिम् ।
छिन्नबाहुं परैर्हन्यास् सात्यके स कथं भवेत् ॥　　२७॥

निहत्य त्वां यदा भूमौ स विकर्षति वीर्यवान् ।
कि तदा न निहंस्येनं भूत्वा पुरुषसत्तमः ॥　　२८॥

त्वया पुनरनार्येण पूर्वं पार्थेन निर्जितः ।
यदा तदा हतश्शूरस् सौमदत्तिः प्रतापवान् ॥　　२९॥

---

1. ख—इदमर्धं नास्ति

यत्र यत्र तु पाण्डूनां द्रोणो द्रावयते चमूम् ।
किरञ्छरसहस्राणि तत्र तत्र प्रयाम्यहम् ॥ ३०॥

स त्वमेवंविधं कृत्वा कर्म चण्डालवत् स्वयम् ।
वक्तुमिच्छसि वक्तव्यः कस्मात् सुपरुषाण्यथ ॥ ३१॥

कर्ता त्वं कर्मणोऽस्य नाहं वृष्णिकुलाधम ।
कर्मणां च त्वमावासः पापानां मा पुनर्वद ॥ ३२॥

जोषमास्स्व न मा भूयो वक्तुमर्हस्त्वमुत्तरम् ।
अधरोत्तरमेतद्धि यन्मां त्वं वक्तुमिच्छसि ॥ ३३॥

अथ वक्ष्यसि मां मौर्ख्याद् भूयः परुषमीदृशम् ।
[1]गमयिष्यामि बाणैस्त्वां युधि वैवस्वतक्षयम् ॥ ३४॥

न चैव मूर्ख धर्मेण केवलेनैव शक्यते ।
तेषामपि ह्यधर्मेण चेष्टितं शृणु यादृशम् ॥ ३५॥

वञ्चितः पाण्डवः पूर्वम् अधर्मेण युधिष्ठिरः ।
द्रौपदी च परिक्लिष्टा तथाऽधर्मेण सात्यके ॥ ३६॥

प्रव्राजिता वनं सर्वे पाण्डवास्सह कृष्णया ।
सर्वस्वमपकृष्टं च तथाऽधर्मेण बालिश ॥ ३७॥

[2]अधर्मेणापकृष्टश्च मद्रराजः परैरितः ।
अतोऽप्यधर्मेण हतो भीष्मः परपुरञ्जयः । ३८॥

---

1. ङ—अर्धद्वयं नास्ति 2 ख—इदमर्धं नास्ति

भूरिश्रवा ह्यधर्मेण त्वया धर्मविदा हतः ॥ ३९

एवं परैराचरितं पाण्डवेयैश्च संयुगे ।
रक्षमाणैर्जयं वीरैर् धर्मज्ञैरथ सात्वत ॥ ४०

दुर्ज्ञेयः परमो धर्मस् तथाऽधर्मश्च दुर्विदः ।
युध्यस्व कौरवैस्सार्धं मा गाः पितृनिवेशनम् ॥ ४१

सञ्जयः—

एवमादीनि वाक्यानि क्रूराणि परुषाणि च ।
श्रावितस्सात्यकिश्श्रीमान् अकम्पित इवाभवत् ॥ ४२

तच्छ्रुत्वा क्रोधताम्राक्षस् सात्यकिस्त्वाददे गदाम् ।
विनिश्श्वस्य यथा सर्पः प्रणिधाय रथे धनुः ॥ ४३

ततोऽभिपत्य पाञ्चाल्यं संरम्भेणेदमब्रवीत् ॥ ४३॥

सात्यकिः—

न त्वा वक्ष्यामि परुषं हनिष्ये त्वां वधक्षमम् ॥ ४४

सञ्जयः—

तमापतन्तं सहसा महाबलममर्षणम् ।
पाञ्चाल्यायाभिसङ्क्रुद्धम् अन्तकालान्तकोपमम् ॥ ४५

चोदितो वासुदेवेन भीमसेनो महाबलः ।
अवप्लुत्य रथात् तूर्णं बाहुभ्यां समवारयत् ॥ ४६

द्रवमाणं तथा क्रुद्धः पाण्डवं सात्त्वतो बली ।

प्रस्पन्दमानमादाय जगाम बलिनं बलात् ॥ ४७

स्थित्वा विष्टभ्य चरणौ भीमेन शिनिपुङ्गवः ।
निगृहीतः पदे षष्ठे बलेन बलिनां वरः ॥ ४८

अवरुध्य बलात् तं तु ह्रियमाणं बलीयसा ।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा सहदेवो विशां पते ॥ ४९

सहदेवः—

अस्माकं पुरुषव्याघ्र मित्रमन्यन्न विद्यते ।
परमन्धकवृष्णिभ्यः पाञ्चालेभ्यश्च माधव ॥ ५०

तथैवान्धकवृष्णीनां तव चैव विशेषतः ।
कृष्णस्य च तथाऽस्मभ्यं मित्रमन्यन्न विद्यते ॥ ५१

पाञ्चालानां च वार्ष्णेय समुद्रान्तां विचित्य गाम् ।
नान्यदस्ति परं मित्रं यथा पाण्डववृष्णयः ॥ ५२

स भवानीदृशं मित्रम् अस्यैष भवतस्तथा ।
भवन्तश्च तथाऽस्माकं भवतां च तथा वयम् ॥ ५३

स एवं सर्वधर्मज्ञो मित्रधर्ममनुस्मरन् ।
नियच्छ मन्युं पाञ्चाल्यात् प्रशाम्य शिनिपुङ्गव ॥ ५४

पार्षतस्य क्षम त्वं वै क्षमतां चैव पार्षतः ।
वयं क्षमयितारश्च किमन्यत्र शमाद्भवेत् ॥ ५५

सञ्जयः—

प्रशाम्यमाने शैनेये सहदेवेन मारिष ।
पाञ्चालराजस्य सुतः प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५६

धृष्टद्युम्नः—

मुञ्च मुञ्च शिनेः पौत्रं भीम युद्धमदान्वितम् ।
आसादयतु मामेष धराधरमिवानिलः ॥ ५७

यावदस्य शितैर्बाणैस् संरम्भं विनयाम्यहम् ।
युद्धश्रद्धां च कौन्तेय जीवितस्य च संयुगे ॥ ५८

किं नु शक्यं मया कर्तुं यत् कार्यमिदमुद्यतम् ।
सुमहत् पाण्डुपुत्राणाम् आयान्त्येते हि कौरवाः ॥ ५९

अथवा फल्गुनस्सर्वान् वारयिष्यति संयुगे ।
अहमप्यस्य मूर्धानं पातयिष्यामि सायकैः ॥ ६०

मन्यते च्छिन्नबाहुं मां भूरिश्रवसमाहवे ।
उत्सृजैनमहं वैनम् एष मां वा हनिष्यति ॥ ६१

सञ्जयः—

शृण्वन् पाञ्चालवाक्यानि सात्यकिस्सर्पवच्छ्वसन् ।
भीमबाह्वन्तरे सक्तो विस्फुरत्यनिशं बलात् ॥ ६२

तौ तूर्णं वासुदेवश्च धर्मराजश्च मारिष ।
यत्नेन महता वीरौ वारयामासतुस्तदा ॥ ६३

प्रतिज्ञां श्रावयामास पुनरेव तवात्मजम् ॥ ४

अश्वत्थामा—

यस्मात् सम्मोह्य चाचार्यं धर्मकञ्चुकमास्थितः ।
[1]मुञ्च शस्त्रमिति प्राह कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ५

तस्मात् सम्पश्यतस्तस्य द्रावयिष्यामि वाहिनीम् ।
विद्राव्य सर्वान् हन्ताऽस्मि जाल्मं पाञ्चाल्यमेव च ॥ ६

सर्वानेतान् हनिष्यामि यदि योत्स्यन्ति मां रणे ।
सत्यं ते प्रतिजानामि परिवर्तय वाहिनीम् ॥ ७

सञ्जयः—

तच्छ्रुत्वा तव पुत्रस्तु वाहिनीं पर्यवर्तयत् ।
सिंहनादेन महता व्यपोह्य सुमहद्भयम् ॥ ८

ततस्समागमो राजन् कुरुपाण्डवसेनयोः ।
पुनरेवाभवत् तीव्रः पूर्णसागरयोरिव ॥ ९

संरब्धा हि स्थिरीभूता द्रोणपुत्रेण कौरवाः ।
उदग्राः पाण्डुपाञ्चाला द्रोणस्य निधनेन च ॥ १०

तेषां परमहृष्टानां जयमात्मनि पश्यताम् ।
संरब्धानां महावेगः प्रादुरासीद्रणाय वै ॥ ११

यथा शिलोच्चये शैलस् सागरैस्सागरो यथा ।

---

1. क—इदमर्धं नास्ति

प्रतिहन्येत राजेन्द्र तथाऽऽसन् कुरुपाण्डवाः ॥ १२

ततश्शङ्खसहस्राणि भेरीणामयुतानि च ।
अवादयन्त संहृष्टाः कुरुपाण्डवसैनिकाः ॥ १३

चुक्षुभे पृथिवी सर्वा दिशश्च प्रतिसस्वनुः ।
सम्भ्रान्तान्यपि भूतानि जलजान्यपि मारिष ॥ १४
ते च सर्वे तदा योधास् सम्प्रहृष्टा युयुत्सवः ॥ १४॥

वर्तमाने तथा शब्दे रौद्रे तस्मिन् भयानके ।
सम्पतत्सु रथौघेषु तव तेषां च भारत ॥ १५॥

ततो निर्मथ्यमानस्य सागरस्येव निस्स्वनः ।
अभवत् तस्य सैन्यस्य सुमहानद्भुतोपमः ॥ १६॥

प्रादुश्चक्रे ततो द्रौणिर् अस्त्रं नारायणं तदा ।
अभिसन्धाय पाण्डूनां पाञ्चालानां च वाहिनीम् ॥ १७॥

प्रादुरासंस्ततो बाणा दीप्ताग्राः खे सहस्रशः ।
पाण्डवान् भक्षयिष्यन्तो दीप्तास्या इव पन्नगाः ॥ १८॥

ते दिशः खं च सैन्यं च समावृण्वन् महाहवे ।
मुहूर्ताद्भास्करस्येव लोके राजन् गभस्तयः ॥ १९॥

तथाऽपरे द्योतमाना ज्योतींषीवामलेऽम्बरे ।
प्रादुरासन् महाराज कार्ष्णायसमया हुलाः ॥ २०॥

चतुश्चक्रा द्विचक्राश्च शतघ्न्यो बहुला गदाः ।

चक्राणि च क्षुरान्तानि मण्डलानीव भास्वतः ॥ २१॥

शस्त्राकृतिभिराकीर्णम् अतीव भरतर्षभ ।
दृष्ट्वाऽन्तरिक्षमाविग्नाः पाण्डुपाञ्चालसृञ्जयाः ॥ २२॥

यथा यथा ह्ययुध्यन्त पाण्डवानां महारथाः ।
तथा तथा तदस्त्रं वै व्यवर्धत जनाधिप ॥ २३॥

वध्यमानास्तदाऽस्त्रेण तेन नारायणेन वै ।
दह्यमानाऽनलेनेव सर्वतोऽभ्यर्दिताः परे ॥ २४॥

यथा हि शिशिरापाये दहेत् कक्षं हुताशनः ।
तथा तदस्त्रं पाण्डूना ददाह ध्वजिनीं प्रभो ॥ २५॥

आपूर्यमाणेनास्त्रेण सैन्ये क्षीयति चाभि भो ।
जगाम परमं त्रासं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २६॥

द्रवमाणं तदा सैन्यं दृष्ट्वा विगतचेतनम् ।
मध्यस्थतां च पार्थस्य धर्मराजोऽब्रवीदिदम् ॥ २७॥

युधिष्ठिरः—

धृष्टद्युम्न पलायस्व सह पाञ्चालसेनया ।
सात्यके त्वं च गच्छस्व वृष्ण्यन्धकवृतो गृहान् ॥ २८॥

वासुदेवोऽपि धर्मात्मा करिष्यत्यात्मनः क्षमम् ।
उपदेष्टुं समर्थोऽयं लोकस्य किमुतात्मनः ॥ २९॥

सङ्ग्रामो वो न कर्तव्यस् सर्वसैन्यान ब्रवीमि वः ।

अहं हि सह सोदर्यैः प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम् ॥ ३०॥

भीष्मद्रोणार्णवौ तीर्त्वा सङ्ग्रामे भीरुदुस्तरौ ।
अवसीदामि सलिले सगणो द्रौणिगोष्पदे ॥ ३१॥

कामस्सम्पद्यतामद्य बीभत्सोराशु मां प्रति ।
*कल्याणवृत्तो ह्याचार्यो मया युधि निपातितः ॥ ३२॥

येन बालस्स सौभद्रो युद्धानामविशारदः ।
समर्थैर्बहुभिः क्रूरैर् घातितो नाभिपालितः ॥ ३३॥

येन विब्रुवता प्रश्नं तथा कृष्णा सभागता ।
उपेक्षिता सपुत्रेण दासीभावं निगच्छती ॥ ३४॥

रक्षणे च महान् यत्नस् सैन्धवस्य कृतो युधि ।
अर्जुनस्य विघातार्थं प्रतिज्ञा येन रक्षिता ॥ ३५॥

व्यूहद्वारि वयं चैव धृता येन जिगीषवः ।
वारितं च महत् सैन्यं प्रविशत्तद्यथाबलम् ॥ ३६॥

जिघांसुर्धार्तराष्ट्रश्च श्रान्तेष्वश्वेषु फल्गुनम् ।
कवचेन तथा युक्तो रक्षार्थं सैन्धवस्य च ॥ ३७॥

येन ब्रह्मास्त्रविदुषा पाञ्चालास्सत्यजिन्मुखाः ।
कुर्वाणा मज्जये यत्नं समूला विनिपातिताः ॥ ३८॥

ग्रहणे च परो यत्नः कृतस्तेन यथा मम ।

विदितं सर्वमेवैतद् भवतां [1]पाण्डुनन्दनाः ॥ ३९॥

येन प्रव्राज्यमानाश्च राज्याद्वयमधर्मतः ।
निवार्यमाणेनास्माभिर् अनुगन्तुं तदेषिताः ॥ ४०॥

वनवासान्निवृत्तानां समये च तथा कृते ।
स्नेहश्च दर्शितो नित्यं प्रत्यक्षं वो महारथाः ॥ ४१॥

योऽसावत्यन्तमस्मासु कुर्वाणस्सौहृदं परम् ।
हतस्तदर्थं मरणं गमिष्यामि सबान्धवः ॥ ४२॥

सञ्जयः—

एवं ब्रुवति कौन्तेये दाशार्हस्त्वरितस्ततः ।
निवार्य सैन्यं बाहुभ्याम् इदं वचनमब्रवीत् ॥ ४३॥

श्रीभगवान्—

शीघ्रं न्यस्यत शस्त्राणि वाहेभ्यश्चावरोहत ।
[2]एष योगोऽत्र विहितः प्रतिघाते महात्मनः ॥ ४४॥

द्विपाश्वस्यन्दनेभ्यश्च क्षिप्रं सर्वेऽवरोहत ।
एवमेतन्न वो हन्याद् अस्त्रं भूमौ निरायुधान् ॥ ४५॥

यथा यथा हि युध्यन्ते योधा ह्यस्त्रमिदं प्रति ।
तथा तथा भवन्त्येते कौरवा बलवत्तराः ॥ ४६॥

निक्षेप्स्यन्ति तु शस्त्राणि वाहनेभ्योऽवरुह्य ये ।

---

1 अ-ङ—सर्वयोधिनाम्    2. ख—अर्धद्वयं नास्ति

[1]येऽञ्जलिं कुर्वते वीरा नमन्ति च विवाहनाः ।
तान् नैतदस्त्रं सङ्ग्रामे निहनिष्यति मानवान् ॥ ४७॥

ये त्वेतत् प्रतियोत्स्यन्ति मनसाऽपीह केचन ।
निहनिष्यति तान् सर्वान् रसातलगतानपि ॥ ४८॥

सञ्जयः—

ते वचस्तस्य तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य भारत ।
ईषुस्सर्वे समुत्स्रष्टुं महद्भिः कारणैश्च ह ॥ ४९॥

तत उत्स्रष्टुकामांस्तान् शस्त्राण्यालक्ष्य पाण्डवः ।
भीमसेनोऽब्रवीद्राजन्निदं संहर्षयन् वचः ॥ ५०॥

भीमः—

न कथञ्चन शस्त्राणि त्यक्तव्यानीह केनचित् ।
अहमावारयिष्यामि द्रोणपुत्रास्त्रमाशुगैः ॥ ५१॥

अथवाऽप्यनया गुर्व्या हेमविग्रहया रणे ।
कालवत् प्रचरिष्यामि द्रौणेरस्त्रं विशातयन् ॥ ५२॥

न हि मे विक्रमे तुल्यः कश्चिदस्ति पुमानिह ।
यथैव सवितुस्तुल्यं ज्योतिरन्यन्न विद्यते ॥ ५३॥

पश्यतेमौ हि मे बाहू नागराजकरोपमौ ।
समर्थौ पर्वतस्यापि शैशिरस्य विदारणे ॥ ५४॥

---

1. ख—अर्धमिदं नास्ति

नागायुतसमप्राणो ह्यहमेको नरेष्विह ।
शक्रो यथाऽप्रतिद्वन्द्वो दिवि देवेषु विश्रुतः ॥ ५५॥

अद्य पश्यत मे वीर्यं बाह्वोः पीनांसयोर्युधि ।
ज्वलमानस्य दीप्तस्य द्रौणेरस्त्रस्य वारणे ॥ ५६॥

यदि नारायणास्त्रस्य प्रतियोद्धा न विद्यते ।
अद्यैतत् प्रतियोत्स्यामि पश्यत्सु कुरुपाण्डुषु ॥ ५७॥

सञ्जय:—

एवमुक्त्वा ततो भीमो द्रोणपुत्रमरिन्दम ।
अभ्ययान्मेघघोषेण रथेनादित्यवर्चसा ॥ ५८॥

कम्पयन् मेदिनीं सर्वां त्रासयंश्च चमूं तव ।
शङ्खशब्दं महत् कृत्वा भुजशब्दं च पाण्डवः ॥ ५९॥

तस्य शङ्खस्वनं श्रुत्वा बाहुशब्दं च तावकाः ।
समन्तात् कोष्ठकीकृत्य शरव्रातैरवाकिरन् ॥ ६०॥

स एतानिषुजालेन लघुना शीघ्रविक्रमः ।
निमेषमात्रेणाच्छाद्य कुन्तीपुत्रोऽभ्यवाकिरत् ॥ ६१॥

ततो द्रौणिः प्रहस्यैनम् उन्नदन्नभिभाष्य च ।
अवाकिरत् प्रदीप्ताग्रैश् शरैस्तैरभिमन्त्रितैः ॥ ६२॥

पन्नगैरिव दीप्तास्यैर् वमद्भिरनलं रणे ।
अवकीर्णोऽभवत् पार्थस् स्फुलिङ्गैरिव काञ्चनैः ॥ ६३॥

तस्य रूपमभूद्राजन् भीमसेनस्य संयुगे ।
खद्योतैरावृतस्येव पर्वतस्य दिनक्षये ॥ ६४॥

तदस्त्रं द्रोणपुत्रस्य तस्मिन् प्रतिसमागते ।
अवर्धत महाराज यथाऽग्निरनिलोद्धतः ॥ ६५॥

विवर्धमानमालक्ष्य तदस्त्रं भीमविक्रमम् ।
पाण्डुसैन्यमृते भीमं सुमहद्भयमाविशत् ॥ ६६॥

ततश्शस्त्राणि ते सर्वे समुत्सृज्य महीतले ।
अवातरन् रथेभ्यश्च हस्त्यश्वेभ्यश्च सर्वशः ॥ ६७॥

तेषु निक्षिप्तशस्त्रेषु वाहनेभ्यश्च्युतेषु च ।
तदस्त्रवीर्यं सकलं भीममूर्धन्यवापतत् ॥ ६८॥

हाहाकृतानि भूतानि पाण्डवाश्च विशेषतः ।
भीमसेनमपश्यन्त तेजसा संवृतं तदा ॥ ६९॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥
॥ ७२ ॥ नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ६९॥ श्लोकाः ]

## ॥ सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

नारायणास्त्रेणावेष्टिते भीमे कृष्णार्जुनाभ्यां हस्ततः शस्त्रापकर्षणपूर्वकं रथादवरोपिते सत्यस्त्रस्य प्रशमनम् ॥ १ ॥ तत सङ्कुलयुद्धम् ॥ २ ॥

सञ्जयः—

भीमसेने समाकीर्णम् अस्त्रं दृष्ट्वा धनञ्जयः ।
तेजसः प्रतिघातार्थं वारुणेन समावृणोत् ॥ १

नालक्ष्यत तं कश्चिद् वारुणास्त्रेण संवृतम् ।
अर्जुनस्य लघुत्वाच्च संवृतत्वाच्च तेजसः ॥ २

साश्वसूतरथो भीमो द्रोणपुत्रास्त्रसंवृतः ।
अग्नावग्निरिव न्यस्तो ज्वालामाली सुदुर्दृशः ॥ ३

यथा रात्रिक्षये राजञ् ज्योतींष्यस्तगिरिं प्रति ।
समाजग्मुस्तथा बाणा भीमसेनरथं प्रति ॥ ४

स हि भीमो रथश्चास्य हयास्सूतश्च मारिष ।
संवृता द्रोणपुत्रेण पावकान्तर्गता इव ॥ ५

यथा दग्ध्वा जगत् सर्वं समये सचराचरम् ।
गच्छेदग्निर्विभोरास्यं तथाऽस्त्रं भीममावृणोत् ॥ ६

सूर्यमग्निः प्रविष्टस्स्याद् यथा चाग्निं दिवाकरः ।
तथा प्रविष्टं तत्तेजो न प्राज्ञायत पाण्डवः ॥ ७

[1]तदस्त्रं भीमहुङ्काराद् अपयाति पुनः पुनः ।
पुनः पुनस्तमायाति हुङ्कारात् तं विमुञ्चति ॥ ८

ततो देवास्सगन्धर्वा भीमं दृष्ट्वा सुविस्मिताः ॥ ८॥

विकीर्णमस्त्रं तद्दृष्ट्वा भीमसेनरथं प्रति ।
उदीर्यमाणं द्रौणिं च निष्प्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥ ९॥

सर्वसैन्यं च पाण्डूनां न्यस्तशस्त्रमचेतनम् ।
युधिष्ठिरपुरोगांश्च विमुखांस्तान् महारथान् ॥ १०॥

अर्जुनो वासुदेवश्च त्वरमाणौ महाद्युती ।
अवप्लुत्य रथाद्वीरौ भीममाद्रवतां ततः ॥ ११॥

ततस्तद्द्रोणपुत्रस्य तेजोऽस्त्रबलसम्भवम् ।
विगाह्य तौ सुबलिनौ माययाऽऽविशतां तदा ॥ १२॥

न्यस्तशस्त्रौ ततस्तौ तु नादहत् सोऽस्त्रजोऽनलः ।
वारुणास्त्रप्रयोगाच्च वीर्यवत्त्वाच्च कृष्णयोः ॥ १३॥

ततश्चकृषतुर्भीमं तस्य सर्वायुधानि च ।
नारायणास्त्रशान्त्यर्थं नरनारायणौ बलात् ॥ १४॥

अपकृष्यमाणः कौन्तेयो नदत्येव महारवम् ।
वर्धते चैव तद्घोरं द्रौणेरस्त्रं सुदुर्जयम् ॥ १५॥

तमब्रवीद्वासुदेवः किमिदं पाण्डुनन्दन ।

1 ख—अर्धलयं नास्ति

वार्यमाणोऽपि कौन्तेय युद्धात् त्वं निवर्तसे ॥　　१६॥

यदि युद्धेन जेयास्स्युर् इमे कौरवनन्दनाः ।
वयमप्यत्र युध्येम तथैवेमे नरर्षभाः ॥　　१७॥

अवतीर्णा रथेभ्यश्च सर्व एव स्म तावकाः ।
तथा त्वमपि कौन्तेय रथात् तूर्णमपक्रम ॥　　१८॥

एवमुक्त्वा तु तं कृष्णो रथाद्भूमिमपातयत् ।
निश्श्वसन्तं यथा नागं क्रोधसंरक्तलोचनम् ॥　　१९॥

यदाऽपकृष्टस्स रथान्न्यासितश्चायुधं युधि ।
ततो नारायणास्त्रं तत् प्रशान्तं शत्रुतापनम् ॥　　२०॥

तस्मिन् प्रशान्ते विधिना तेन तेजसि दुस्सहे ।
बभूवुर्विमलास्सर्वा दिशो विदिश एव च ॥　　२१॥

प्रववुश्च शिवा वाताश् शान्ताश्च मृगपक्षिणः ।
वाहनानि प्रहृष्टानि प्रशान्तेऽस्त्रे सुदुर्जये ॥　　२२॥

व्यपेते तु ततो घोरे तस्मिस्तमसि दारुणे ।
बभौ भीमो निशापाये धीमान् सूर्य इवोदितः ॥　　२३॥

हतशेषं बलं तत्तु पाण्डवानामतिष्ठत ।
अस्त्रं व्युपारमद्धृष्टं तव पुत्रजिघांसया ॥　　२४॥

व्यवस्थिते बले तस्मिन्नस्त्रे प्रतिहते तथा ।
दुर्योधनो महाराज द्रोणपुत्रमथाब्रवीत् ॥　　२५॥

दुर्योधनः—

अश्वत्थामन् पुनश्शीघ्रम् एतदस्त्रं प्रयोजय ।
व्यवस्थिता हि पाञ्चालाः पुनरेते जयैषिणः ॥ २६॥

सञ्जयः—

अश्वत्थामा तथोक्तस्तु तव पुत्रेण मारिष ।
सुदीनमभिनिश्श्वस्य राजानमिदमब्रवीत् ॥ २७॥

अश्वत्थामा—

नैतदावर्तते राजन्नस्त्रं द्विर्नोपदिश्यते ।
आवर्तयन् हि दह्येत प्रयोक्तैव न संशयः ॥ २८॥

एष चास्त्रप्रतीघातं वासुदेवः प्रयुक्तवान् ।
अस्य तु ह्येष वै दाता मानुषेषु न विद्यते ॥ २९॥

परावरज्ञो लोकाना न तदस्ति न वेत्ति यत् ।
तदेतदस्त्रं प्रशमं यातं कृष्णस्य मन्त्रिते ॥ ३०॥

अन्यथा विहितस्सङ्ख्ये वधश्शत्रोर्जनाधिप ।
पराजयो वा मृत्युर्वा श्रेयो मृत्युर्न निर्जयः ॥ ३१॥
निर्जिताश्चारयो ह्येते शस्त्रोत्सर्गान्मृतोपमाः ॥ ३२

दुर्योधनः—

आचार्यपुत्र यद्येतद् द्विरस्त्रं न प्रयुज्यते ।
अन्यैर्गुरुघ्ना वध्यन्ताम् अस्त्रैरस्त्रविदां वर ॥ ३३
त्वयि ह्यस्त्राणि दिव्यानि यथा स्युस्त्र्यम्बके तथा ।

जह्येतान् सुमहावीर्य शात्रवान युद्धकोविद ॥ ३४

धृतराष्ट्रः—

तस्मिन्नस्त्रे प्रतिहते द्रोणे चोपधिना हते ।
तथा दुर्योधनेनोक्तो द्रौणिः किमकरोत् पुनः ॥ ३५

दृष्ट्वा पार्थांश्च सङ्ग्रामे युद्धाय समुपस्थितान् ।
नारायणास्त्रनिर्मुक्तान विचरन्तो ह्यभीतवत् ॥ ३६

सञ्जयः—

जानन् पितुस्स निधनं सिहलाङ्गूलकेतनः ।
सङ्क्रुद्धो भयमुत्सृज्य अभिदुद्राव पार्षतम् ॥ ३७

तमाच्छैत् पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां नरर्षभ ।
तच्चाशु भुजवेगेन विचकर्त शरासनम् ॥ ३८

धृष्टद्युम्नस्ततो राजञ् ज्वलन्तमिव पावकम् ।
द्रोणपुत्रं त्रिषष्ट्या तु राजन् विव्याध पत्रिणाम् ॥ ३९

सारथिं चास्य विव्याध स्वर्णपुङ्खैश्शिलाशितैः ।
हयांश्च चतुरोऽविध्यच् चतुर्भिर्निशितैश्शरैः ॥ ४०

विद्ध्वा विद्ध्वाऽनदद्द्रौणिं कम्पयन्निव मेदिनीम् ।
आददत् सर्वलोकस्य प्राणानिव महारणे ॥ ४१

पुनश्च पार्षतो राजन् कृतास्त्रः कृतनिश्रमः ।
द्रौणिमेवाभिदुद्राव कृत्वा मृत्युं निवर्तनम् ॥ ४२

ततो बाणमयं वर्षं द्रोणपुत्रस्य मूर्धनि ।
अवासृजदमेयात्मा पाञ्चाल्यो रथिनां वरः ॥ ४३

तं द्रौणिस्समरे वीरं छादयामास पत्रिभिः ।
विव्याध चैनं दशभिर् पितुर्वधमनुस्मरन् ॥ ४४

द्वाभ्यां च सुविशुद्धाभ्यां शराभ्यां ध्वजकार्मुके ।
छित्त्वा पाञ्चालपुत्रस्य द्रौणिरन्यैस्समार्पयत् ॥ ४५

व्यश्वसूतरथं चैनं द्रौणिश्चक्रे महाहवे ।
तस्य चानुचरान् सर्वान् द्रौणिर्व्यायच्छदाशुगैः ॥ ४६

ततः प्रदुद्रुवे सैन्यं पाञ्चालानां विशां पते ।
सम्भ्रान्तमार्तरूपं च परस्परमवैक्षत ॥ ४७

दृष्ट्वा तु विमुखान् योधान् धृष्टद्युम्नं च पीडितम् ।
शैनेयश्चोदयत् तूर्णं रथं द्रौणिरथं प्रति ॥ ४८

अष्टभिर्निशितैर्बाणैर् अश्वत्थामानमार्दयत् ।
विंशत्या पुनराहत्य नानारूपैरमर्षणम् ॥ ४९

विव्याध च तथा सूतं चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ ४९॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासो नानारूपैरमर्षणः ।
युयुधानेन वै द्रौणिः प्रहसन् वाक्यमब्रवीत् ॥ ५०॥

अश्वत्थामा—

शैनेयाभ्युपपत्तिं ते जानाम्याचार्यघातिनि ।

न त्वेनं त्रास्यसि मया ग्रस्तमात्मानमेव च ॥ ५१॥

स्वयं शपेयं शैनेय सत्येन तपसा तथा ।
अहत्वा सर्वपाञ्चालान् यदि शान्तिमवाप्नुयाम् ॥ ५२॥

यद्बलं पाण्डवेयानां वृष्णीनामपि यद्बलम् ।
क्रियतां सर्वमेवेह निहनिष्यामि सोमकान् ॥ ५३॥

सञ्जयः—

एवमुक्त्वाऽर्करश्म्याभं सुपर्वाणं शरोत्तमम् ।
व्यसृजत् सात्यके द्रौणिर् वज्रं वृत्रे यथा हरिः ॥ ५४॥

स तं निर्भिद्य तेनास्तस् सायकस्सशरावरम् ।
विवेश वसुधां भित्त्वा श्वसन्निव महोरगः ॥ ५५॥

स भिन्नकवचश्शूरस् तोत्रार्दित इव द्विपः ।
विमुच्य सशरं चापं भूरिव्रणपरिश्रमः ॥ ५६॥

सीदन् रुधिरसिक्तश्च रथोपस्थ उपाविशत् ।
सूतेनापहृतो दूरं द्रोणपुत्राद्रथान्तरम् ॥ ५७॥

अथान्येन सुपुङ्खेन शरेण नतपर्वणा ।
आजघान भ्रुवोर्मध्ये धृष्टद्युम्नं परन्तपः ॥ ५८॥

पूर्वमेवानुविद्धश्च भृशं पश्चाच्च पीडितः ।
ससाद युधि पाञ्चाल्यस् सोऽपाश्रयत वै ध्वजम् ॥ ५९॥

तं नागमिव सिंहेन राजन् कुञ्जरमर्दिना ।

जवेनाभ्यद्रवन् योधाश् शूराः पाञ्चालपाण्डवाः ॥ ६०॥

किरीटी भीमसेनश्च वृद्धक्षत्रश्च पौरवः ।
युवराजश्च चेदीनां मालवश्च सुदर्शनः ॥ ६१॥

एते हाहाकृतास्सर्वे प्रगृहीतशरासनाः ।
वीरं द्रौणायनिं शूरं सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ६२॥

ते विंशतिपदे यत्ता गुरुपुत्रममर्षिणम् ।
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैर् आजघ्नुस्सर्वतस्समम् ॥ ६३॥

आशीविषाभैर्विंशद्भिः पञ्चभिश्चापि ताञ् शरान् ।
चिच्छेद युगपद्द्रौणिः पञ्चविंशतिसायकान् ॥ ६४॥

सप्तभिश्चापि तं बाणैः पौरवं द्रौणिरर्दयत् ।
मालवं त्रिभिरेकेन पार्थं षड्भिर्वृकोदरम् ॥ ६५॥

ततस्ते विव्यधुस्सर्वे द्रौणिं राजन् महारथाः ।
युगपच्च पृथक्चैव रुक्मपुङ्खैश्शिलाशितैः ॥ ६६॥

युवराजं तु विंशत्या पुनर्विव्याध पत्रिभिः ।
पार्थश्च पुनरष्टाभिस् तथा सर्वांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ६७॥

ततोऽर्जुनं षड्भिरथाजघान
द्रौणायनिर्दशभिर्वासुदेवम् ।
भीमं दशार्धैर्युवराजं चतुर्भिर्
द्वाभ्यां छित्त्वा कार्मुकं च ध्वजं च ॥ ६८॥

पुनः पार्थं शरवर्षेण विद्ध्वा
द्रौणिर्घोरं सिंहनादं ननाद ॥ ६९

तस्यास्यतस्सुशितान् पीतधारान्
द्रौणेश्शरान् पृष्ठतश्चाग्रतश्च ।
सर्वा दिशः प्रदिशो वै वियच्च
च्छन्ना बाणैरभवन् घोररूपैः ॥ ७०

अथान्यतस्तस्य रथे स्थितस्य
सुदर्शनस्येन्द्रकेतुप्रकाशौ ।
भुजौ शिरश्चेन्द्रसमानकल्पं
त्रिभिश्शरैर्युगपत् सञ्चकर्त ॥ ७१

स पौरवं रथशक्त्या निहत्य
रथं तथा तिलशश्चूर्णयित्वा ।
छित्त्वाऽस्य बाहू वरचन्दनाक्तौ
भल्लेन कायाच्छिर उच्चकर्त ॥ ७२

युवानमिन्दीवरदामवर्णं
चेदिप्रियं युवराजं प्रसह्य ।
बाणैस्त्वरावाञ्ज्वलनाग्निकल्पैर्
विद्ध्वा प्रादान्मृत्यवे साश्वसूतम् ॥ ७३

तं निहत्य रणे वीरो द्रोणपुत्रो युधां पतिः ।
दध्मौ प्रमुदितश्शङ्खं बृहन्तमपराजितः ॥ ७४

ततस्सर्वे च पाञ्चाला भीमसेनश्च पाण्डवः ।
धृष्टद्युम्नरथं त्यक्त्वा भीतास्सम्प्राद्रवन् दिशः ॥ ७५

तान् प्रभग्नांस्ततो द्रौणिः पृष्ठतो विकिरञ् शरान् ।
अभ्यवर्तत वेगेन कालवत् पाण्डुवाहिनीम् ॥ ७६

ते वध्यमानास्समरे द्रोणपुत्रेण क्षत्रियाः ।
द्रोणपुत्रभयाद्राजन् दिक्षु सर्वासु भेजिरे ॥ ७७

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥
॥ ७२ ॥ नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥
[ अस्मिन्नध्याये ७७ श्लोकाः ]

---

## ॥ अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

नारायणास्त्रे विफलीकृते पुनरश्वत्थाम्नाऽऽग्नेयास्त्रप्रयोगः ॥ १ ॥
तस्यापि पार्थेन व्यर्थीकरणे द्रौणिना चिन्तनम् ॥ २ ॥

---

सञ्जयः—

तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
न्यवारयदमेयात्मा द्रोणपुत्रवधेप्सया ॥ १

ततस्ते सैनिका राजन् सर्वे तत्रावतस्थिरे ।
संस्थाप्यमाना यत्नेन गोविन्देनार्जुनेन च ॥ २

एक एव हि बीभत्सुस् सोमकावयवैस्सह ।
मत्स्यैरन्यैश्च सन्धाय कौरवान् संन्यवर्तत ॥ ३

ततो द्रुतमतिक्रम्य सिंहलाङ्गूलकेतनम् ।
सव्यसाची महेष्वासम् अश्वत्थामानमब्रवीत् ॥ ४

अर्जुनः—

या शक्तिर्यच्च ते ज्ञानं यद्वीर्यं यच्च पौरुषम् ।
धार्तराष्ट्रेषु या प्रीतिर् प्रद्वेषोऽस्मासु यश्च ते ॥ ५

यच्च भूयोऽस्ति तेजस्ते तत् सर्वं मयि दर्शय ।
एष द्रोणस्य हन्ता ते दर्पं छेत्स्यति पार्षतः ॥ ६

कालानलसमप्रख्यं द्विषतामन्तकं युधि ।
समासादय पाञ्चाल्यं मां चापि सहकेशवम् ॥ ७

धृतराष्ट्रः—

आचार्यपुत्रो मानार्हो बलवांश्चापि सञ्जय ।
प्रीतिर्धनञ्जये चास्य प्रियश्चास्य महात्मनः ॥ ८

अभूतपूर्वं बीभत्सोर् वाक्यं परुषमीदृशम् ।
अथ कस्मात् स कौन्तेयस् सखायं क्रूरमुक्तवान् ॥ ९

सञ्जयः—

युवराजे हते राजन् वृद्धक्षत्रे च पौरवे ।
इष्वस्त्रबलसम्पन्ने मालवे च सुदर्शने ॥ १०

धृष्टद्युम्ने सात्यकौ च भीमे चापि पराजिते ।
[1]युधिष्ठिरस्य तैर्वाक्यैर् मर्मण्यपि च घट्टिते ॥ ११

अन्तर्भेदे च सञ्जाते दुःखं संस्मृत्य च प्रभो ।
अभूतपूर्वं बीभत्सोर् अति मन्युरजायत ॥ १२

तस्मादनर्हमशिवम् अप्रियं द्रौणिमुक्तवान् ।
मान्यमाचार्यतनयं क्रूरं कापुरुषं यथा ॥ १३

एवमुक्तश्श्वसन् क्रोधान्महेष्वासोऽसमो नृषु ।
पार्थेन परुषं वाक्यं सर्वमर्मघ्नया गिरा ॥ १४

द्रौणिश्चुकोप पार्थाय कृष्णाय च विशां पते ।
संयत्तो द्वैरथे स्थित्वा वार्युपस्पृश्य वीर्यवान् ॥ १५

देवैरपि सुदुर्धर्षम् अस्त्रमाग्नेयमाददे ।
दृश्यादृश्यानरिगणान् उद्दिश्याचार्यनन्दनः ॥ १६

सोऽभिमन्त्र्य शरं दीप्तं विधूममिव पावकम् ।
सर्वतः क्रोधमाविश्य चिक्षेप परवीरहा ॥ १७

[2]ततस्तुमुलमाकाशे विनेदुरभिसङ्गताः ।

---

1 ख—इदमर्धं नास्ति    2. घ—अर्धद्वयं नास्ति

ववुश्च परुषा वाता सूर्यो नापि तताप च ॥   १८

क्रव्यादाश्चापि चाक्रन्दन् दिक्षु सर्वासु भारत ।
ववर्ष रुधिरं चेन्द्रो विनेदुस्तोयदाऽम्बरे ॥   १९

पक्षिणः पशवो गावो मुनयश्चापि सुव्रताः ।
परमव्यथितात्मानो न शान्तिमुपलेभिरे ॥   २०

भ्रान्तसर्वमहाभूतम् आवर्तितदिवाकरम् ।
त्रैलोक्यमभितस्तप्तं ज्वराविष्टमिवातुरम् ॥   २१

अस्त्रतेजोभिसन्तप्ता नागा भूमिशयास्तथा ।
निश्श्वसन्तस्समुत्पेतुस् तेजोराशि मुमुक्षवः ॥   २२

जलजानि च सत्त्वानि दह्यमानानि भारत ।
न शान्तिमुपजग्मुश्च तप्यमाने जलाशये ॥   २३

दिग्भ्यः प्रदिग्भ्यः खाद्भूमेर् दिवश्च शरवृष्टयः ।
उच्चावचाश्च सम्पेतुर् गरुडानिलरंहसः ॥   २४

तैश्शरैर्द्रोणपुत्रस्य वज्रवेगैस्समाहताः ।
प्रदग्धाश्शात्रवाः पेतुर् अग्निदग्धा इव द्रुमाः ॥   २५

दह्यमाना महानागाः पेतुरुर्व्यां समन्ततः ।
रवन्तो भैरवं नादं जलदोपमनिस्वनाः ॥   २६

अपरे प्रद्रुतास्तत्र दह्यमाना महागजाः ।
भ्रेमुस्तत्र यथाऽरण्ये नागा दावाग्निसंवृताः ॥   २७

द्रुमाणां शिखराणीव दावदग्धानि मारिष ।
अश्ववृन्दान्यदृश्यन्त रथवृन्दानि चाभि भो ॥ २८

आपतन्ति नरौघाश्च तत्र तत्र सहस्रशः ॥ २८॥

तत् सैन्यं भृशसंविग्नं ददाह युधि भारत ।
युगान्ते सर्वभूतानि संवर्तक इवानलः ॥ २९॥

दृष्ट्वा तु पाण्डवीं सेनां दह्यमानां महाहवे ।
प्रहृष्टास्तावका राजन् सिंहनादान् विनेदिरे ॥ ३०॥

ततस्तूर्यनिनादोऽभून्नानावादित्रमिश्रितः ।
तूर्णमाजघ्निरे हृष्टास् तावका जितकाशिनः ॥ ३१॥

कृत्स्ना ह्यक्षौहिणी राजन् सव्यसाची च पाण्डवः ।
तमसा संवृते लोके नादृश्यन्त महाहवे ॥ ३२॥

नैव नस्तादृशं राजन् दृष्टपूर्वं न च श्रुतम् ।
यादृशं द्रोणपुत्रेण सृष्टमस्त्रममर्षिणा ॥ ३३॥

अर्जुनस्तु महाराज ब्राह्ममस्त्रमुदैरयत् ।
सर्वास्त्रप्रतिघातार्थं विहितं पद्मयोनिना ॥ ३४॥

ततो मुहूर्तादिव तत् तमो व्युपशशाम ह ।
प्रववौ चानिलश्शीतो दिशश्च विमला भवन् ॥ ३५॥

तत्राद्भुतमपश्याम कृत्स्नामक्षौहिणीं मृधे ।
अनभिज्ञेयरूपां च प्रदग्धामस्त्रतेजसा ॥ ३६॥

ततो वीरौ महेष्वासौ विमुक्तौ केशवार्जुनौ ।
सहितौ सम्प्रदृश्येतां नभसीव तमोनुदौ ॥ ३७॥

सपताकध्वजवरस् सानुकर्षवरायुधः ।
प्रबभौ सरथो मुक्तस् तावकानां भयङ्करः ॥ ३८॥

ततः किलकिलाशब्दश् शङ्खभेरीविमिश्रितः ।
पाण्डवानां प्रहृष्टानां क्षणेन समजायत ॥ ३९॥

हताविति च तत्रासीत् सेनयोरुभयोर्मतिः ॥ ४०

तेजसाऽभ्यधिकौ दृष्ट्वा सहितौ केशवार्जुनौ ।
तावक्षतौ प्रमुदितौ दध्मतुर्वारिजोत्तमौ ॥ ४१

दृष्ट्वा च मुदितान् पार्थांस् त्वदीया व्यथिता भवन् ।
विमुक्तौ च महात्मानौ दृष्ट्वा द्रौणिस्सुदुःखितः ॥ ४२

मुहूर्तं चिन्तयामास किन्वेतदिति मारिष ॥ ४२॥

चिन्तयित्वा तु राजेन्द्र ध्यानशोकपरायणः ।
निश्श्वसन् दीर्घमुष्णं च विमनाश्चाभवत् तदा ॥ ४३॥

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥
॥ ७२ ॥ नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥
[अस्मिन्नध्याये ४३॥ श्लोकाः]

---

## ॥ एकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

शस्त्रन्यासपूर्वकं रणाङ्गणात् निर्गच्छता च तेनाश्वत्थाम्ना यदृच्छासमागतं व्यासं प्रति निजास्त्रवैफल्यकारणप्रश्नः ॥ १ ॥ व्यासेन कृष्णार्जुनयोर्नरनारायणात्मकत्वे कथिते प्रतिनिवृत्तेन द्रौणिना सेनापहारः ॥२॥

सञ्जयः—

ततो द्रौणिर्धनुस्त्यक्त्वा रथात् प्रस्कन्द्य वेगितः ।
धिग्धिक् सर्वमिदं मिथ्येत्युक्त्वा सम्प्राद्रवद्रणात् ॥ १

ततस्स्निग्धाम्बुदाभासं वेदव्यासमकल्मषम् ।
आवासं च सरस्वत्यास् स वै व्यासं ददर्श ह ॥ २

तं द्रौणिरग्रतो दृष्ट्वा स्थितं कुरुकुलोद्वह ।
बाष्पकण्ठोऽब्रवीद्वाक्यम् अभिवाद्य सुदीनवत् ॥ ३

अश्वत्थामा—

किन्नु माया यदृच्छेयं दैवं वा किमिदं भवेत् ।
एतदस्त्रं कथं मिथ्या मम कश्च व्यतिक्रमः ॥ ४

अधरोत्तरं प्रवृत्तं हि लोकानां वा पराभवः ।
यदिमौ जीवतः कृष्णौ कालो हि दुरतिक्रमः ॥ ५

नासुरामरगन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः ।
न नागयक्षपतगा न मनुष्याः कथञ्चन ॥ ६

उत्सहन्तेऽन्यथा कर्तुम् एतदस्त्रं मयेरितम् ॥ ६॥

तदिमां केवलं हत्वा एकामक्षौहिणीं ज्वलत् ।
कथं मानुषधर्माणौ नाधाक्षीत् केशवार्जुनौ ॥ ७॥

एतच्च ब्रूहि भगवन् मया पृष्टो यथातथम् ॥ ८

व्यासः—

महान्तमेतदर्थं मां यं त्वं पृच्छसि संशयात् ।
तत् तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि सावधानमनाश्शृणु ॥ ९

योऽसौ नारायणो नाम पूर्वेषामपि पूर्वजः ।
आदिदेवो जगन्नाथो लोककर्ता स्वयं प्रभुः ॥ १०

आद्यस्सर्वस्य लोकस्य अनादिनिधनोऽच्युतः ।
व्याकुर्वते यस्य तत्त्वं श्रुतयो मुनयश्च ह ॥ ११

अतोऽजय्यस्सर्वभूतैर् मनसाऽपि जगत्पतिः ।
तस्मादिमं जेतुकाम अज्ञानतमसा वृतः ॥ १२

मा शुचः पुरुषव्याघ्र विद्धि तद्वदिहार्जुनम् ।
तस्य शक्तिरसौ पार्थस् तस्माच्छोकमिमं त्यज ॥ १३

विश्वेश्वरोऽथ लोकादिः परमात्मा ह्यधोक्षजः ।
सहस्रसम्मितादंशाद् एकांशोऽयमजायत ॥ १४

देवानां हितकामार्थं लोकानां चैव सत्तम ।
अजायत स कार्यार्थं पुत्रो धर्मस्य विश्वधृक् ॥ १५

समास्थाय तपस्तीव्रं मैनाकं गिरिमाश्रितः ।
ऊर्ध्वबाहुर्महातेजा ज्वलनादित्यसन्निभः ॥ १६

षष्टिं वर्षसहस्राणि तावन्त्येव शतानि च ।
व्यशोषयत् तदाऽऽत्मानं वायुभक्षोऽम्बुजेक्षणः ॥ १७

अथापरं तपस्तप्त्वा द्विस्ततोऽन्यत् पुनर्महत् ।
द्यावापृथिव्योर्विवरं तेजसा समपूरयत् ॥ १८

स तेन तपसा तात ब्रह्मभूतो यदाऽभवत् ॥ १८॥

ततो विश्वेश्वरं योनिं विश्वस्य जगतः प्रभुम् ।
ददर्श भृशदुर्दर्शं सर्वदेवैरपीश्वरम् ॥ १९॥

अणीयसामणीयांसं बृहद्भ्यश्च बृहत्तमम् ।
रुद्रमीशानमृषभं चेकितानमजं परम् ॥ २०॥

गच्छतस्तिष्ठतो वाऽपि सर्वभूतहृदि स्थितम् ।
दुर्वारणं सुदुर्धर्षं दुर्निरीक्ष्यं दुरासदम् ॥ २१॥

अतिमन्युं महात्मानं सर्वभूतप्रचेतसम् ॥ २२

तं देवदेवं परमाणुमीड्यं
संख्ये दिव्याविषुधी आददानम् ।
हिरण्यवर्माणमनन्तवीर्यं
पिनाकिनं वज्रिणं दीप्तशूलम् ॥ २३

---

* इतश्चत्वारिंशच्छ्लोका अस्मदुपार्जितेषु सर्वेषु कोशेषूपलभ्यन्ते क्वचिन्नोपलभ्यन्त इत्यपि श्रूयते

परश्वथि गदिनं व्यायतासिं
बभ्रुं जटामण्डलचन्द्रमौलिम् ।
व्याघ्राजिनं परिधिणं दण्डपाणि
शुभाङ्गदं नागयज्ञोपवीतम् ॥ २४

विश्वेशानं भूषितं भूतसङ्घैर्
एकीभूतं तपसां सन्निधानम् ।
वचोधिकैस्सुष्टुतमिष्टवाग्भिर्
[1]विश्वैर्गणैश्शोभितं प्रेतसङ्घैः ॥ २५

जलं दिवं खं क्षितिं चन्द्रसूर्यौ
तथा वाय्वग्नी प्रमिमाणं जगच्च ॥ २५॥

हुताशवायुप्रतिमं सुरेशं
नालं द्रष्टुं भिन्नवृत्ता नरा वै ।
ये चानृता नास्तिकाः पापशीला
ब्रह्मद्विषो वाऽप्यमृतस्य योनिम् ॥ २६॥

पश्यन्त्येनं ब्राह्मणास्साधुवृत्ताः
क्षीणे पापे मनसा वीतशोकाः ।
तन्निष्ठात्मा तपसा देवमीड्यं
तद्भक्त्या वै विश्वरूपं ददर्श ॥ २७॥

---

1 घ—पादत्रयं नास्ति

दृष्ट्वा चैनं वाङ्मनोबुद्धिदेहैस्
संहृष्टात्मा मुमुदे वासुदेवः ॥ २८

दिव्यमालापरिक्षिप्तं तेजसां परमं निधिम् ।
रुद्रं नारायणो दृष्ट्वा ववन्दे विश्वमीश्वरम् ॥ २९

वरदं सह पार्वत्या प्रियया दयितं प्रियम् ।
[1]क्रीडमानं महात्मानं भूतसङ्घगणैर्वृतम् ॥ ३०

अजमीशानमव्यक्तं कारणात्मानमव्ययम् ।
स्वजानुभ्यां महीं गत्वा कृत्वा शिरसिचाञ्जलिम् ॥ ३१

पद्माक्षस्तं विरूपाक्षम् अभितुष्टाव भक्तिमान् ॥ ३१॥

नारायणः—

त्वत्सम्भूता भूतकृतो वरेण्य
गोप्तारो ये भुवनस्यास्य गोपाः ।
आविश्येमां धरणीं ये ह्यरक्षन्
पुरा पुराणीं तव देव सृष्टिम् ॥ ३२॥

सुरासुरा यक्षरक्षःपिशाचा
नागास्सुपर्णास्सहगन्धर्वसिद्धैः ।
पृथग्विधा भूतसङ्घाश्च विश्वे
त्वत्सम्भूता ये मनो मोहयन्ते ॥ ३३॥

1. क-ख-ङ—अर्धमिदं नास्ति

ऐन्द्रं याम्यं वारुणं वैश्रवण्यं
मैत्रं त्वाष्ट्रं कर्म सौम्यं च रौद्रम् ।
रूपं ज्योतिश्शब्द आकाशवायू
दिव्यस्पर्श सलिलं गन्ध उर्वी ॥ ३४॥

कामो धर्मो ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च
त्वत्सम्भूतास्स्थास्नु चरिष्णु चेदम् ॥ ३५

अद्भिर्लोका यान्ति यथा पृथक्त्वं
ताभिश्चैक्यं सङ्क्षये यान्ति भूयः ।
एवं विद्वान् प्रभवं चाप्ययं च
त्वत्सम्भूतं तव सायुज्यमेति ॥ ३६

दिव्यामृतौ मानसौ द्वौ सुपर्णा-
ववाक्शाखः पिप्पलस्सप्त गोपाः ।
वाचश्चार्था देवता लोकपाला
लोकानन्ये ये पुरा धारयन्ति ॥ ३७

गता हि तेभ्यः परमं तत्परं च
त्वत्सम्भूतास्ते च तेभ्यः परस्त्वम् ।
भूतं भव्यं भावि यच्चाप्रधृष्यं
त्वत्सम्भूतास्सप्त चेमे हि लोकाः ॥ ३८

भक्तं च मां भजमानं भजस्व
प्रीत्या मां वै लोकपितामहेश ॥ ३८॥

त्वामात्मनाऽऽत्मानमनन्यभावं
विद्वानेवं गच्छति ब्रह्म शुक्रम् ।
अस्तौषं त्वां तव सम्मानमिच्छन्
विचिन्वन् वै सवृषं देवमीड्यम् ॥ ३९॥

सुदुर्लभान् देहि वरान् ममेष्टान्
अभिष्टुतो यानकार्षीरिह त्वम् ॥ ४०

व्यासः—

तस्मै वरानचिन्त्यात्मा देवदेवः पिनाकधृत् ।
विष्णवे देवमुख्याय प्रायच्छदृषिसंस्तुतः ॥ ४१

श्रीरुद्र·—

मत्प्रसादान्मनुष्येषु देवगन्धर्वयोनिषु ।
अप्रमेयबलात्मा च नारायण भविष्यसि ॥ ४२

न च त्वा प्रसहिष्यन्ति देवासुरमहोरगाः ।
न पिशाचा न गन्धर्वा न नरा न च राक्षसाः ॥ ४३

न सुपर्णास्तथा नागा न विश्वे विश्वयोनयः ।
न कश्चित् त्वां च देवोऽपि समरेषु विजेष्यति ॥ ४४

[1]न शस्त्रेण न वज्रेण नाग्निना न च वारिणा ।

---

1 ख—इदमर्धं नास्ति

नार्द्रेण न च शुष्केण चरेण स्थावरेण च ॥ ४५

न हस्तेन न पादेन न काष्ठेन न लोष्टुना ।
कश्चित् तव रुजं कर्ता मत्प्रसादात् कथञ्चन ॥ ४६

अपि चेत् समरं प्राप्तो भविष्यसि ममाधिकः ॥ ४६॥

व्यासः—

एवमादिवरॉल्लब्ध्वा प्रसादादथ शूलिनः ।
स एष देवश्चरति मायया मोहयञ्जगत् ॥ ४७॥

तस्यैव तपसा जातो नरो नाम महामुनिः ।
तुल्यस्तेनैव देवेन तं जानीह्यर्जुनं सदा ॥ ४८॥

तावेतौ पूर्वदेवानां परमार्वर्चितावृषी ।
लोकयात्राविधानार्थं दानवानां वधाय च ॥ ४९॥

धर्मसंस्थापनार्थाय सञ्जायेते युगे युगे ॥ ५०

तथैव कर्मणस्तात तपसो महतोऽपि च ।
तेजोवाग्भिश्च विद्वंस्त्वं जातो रुद्रान्महामते ॥ ५१

स भवान् ज्ञानवान् प्राज्ञो ज्ञात्वा भवमयं जगत् ।
कुरु कर्म त्वमात्मानं नियमैस्तत्प्रियेप्सया ॥ ५२

शुभ्रमौर्वं नवं कृत्वा महापुरुषविग्रहम् ।
ईजिवांस्त्वं जपैर्होमैर् उपहारैश्च मानद ॥ ५३

स तथा पूज्यमानस्ते पूर्वदेवोऽत्यतूतुषत् ।
पुष्कलांश्च वरान् प्रादान् तव विद्वन् हृदि स्थितान् ॥ ५४

जन्मकर्मतपोयोगास् तयोस्तव च पुष्कलाः ।
आभ्यां लिङ्गेऽर्चितो देवस् त्वयाऽर्चायां युगे युगे ॥ ५५

देवदेवस्त्वचिन्त्यात्मा अजेयो विश्वसम्भवः ॥ ५५॥

सर्वरूपं भवं ज्ञात्वा लिङ्गेऽर्चयति तं प्रभुम् ।
आत्मयोगात् तमीशानं शास्त्रयोगाच्च शाश्वतम् ॥ ५६॥

[1]एवं देवा यजन्तो हि सिद्धाश्च परमर्षयः ।
प्रार्थयन्ते परं लोके स्थानमेव च शाश्वतम् ॥ ५७॥

कृष्ण एव हि यष्टव्यो यज्ञैश्चैव सनातनः ॥ ५८

[2]सर्वभूतभवं ज्ञात्वा लिङ्गेऽर्चयति यः प्रभुम् ।
तस्मिन्नभ्यधिकां प्रीतिं करोति वृषभध्वजः ॥ ५९

सञ्जय:—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा द्रोणपुत्रो महारथः ।
नमश्चकार कृष्णाय बहुमेने च केशवम् ॥ ६०

हृष्टरोमा च वश्यात्मा नमस्कृत्य महर्षये ।
वरूथिनीमथाविश्य सोऽपहारमकारयत् ॥ ६१

ततः प्रत्यपहारोऽभूत् पाण्डवानां विशां पते ।

---

1 ख—इदमर्धद्वय नास्ति 2 ङ—इदमर्धं नास्ति

कौरवाणां च दीनानां द्रोणे युधि निपातिते ॥ ६२

युद्धं कृत्वा दिनान् पञ्च द्रोणो हत्वा वरूथिनीम् ।
ब्रह्मलोकं गतो राजन् ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ ६३

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि एकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥
॥ ७२ ॥ नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥
[अस्मिन्नध्याये ६३ श्लोकाः]

## ॥ सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

इतरालक्षितं पुरतः स्वानुकूलं युध्यमानं शूलपाणिं कञ्चन पुरुषप्रवरमवलोकयता पार्थेन स क इति यदृच्छासमागतं व्यासं प्रति प्रश्नः ॥ १ ॥ तेन तं प्रति तस्य पशुपतित्वोक्त्या शतरुद्रीयपठनेन सविस्तरं तद्गुणगणवर्णनम् ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रः—

[1]तस्मिन्नतिरथे द्रोणे निहते तत्र सञ्जय ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वन्नतः परम् ॥ १

सञ्जयः—

तस्मिन्नतिरथे द्रोणे निहते पार्षतेन वै ।
कौरवेषु च भग्नेषु कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ २

दृष्ट्वा सुमहदाश्चर्यम् आत्मनो विजयावहम् ।

1. ब—अर्धद्वयं नास्ति

मुनिं स्निग्धाम्बुदाभासं वेदव्यासमकल्मषम् ॥ ३

यदृच्छयाऽऽगतं व्यासं पप्रच्छ भरतर्षभ ॥ ३॥

अर्जुनः—

सङ्ग्रामे शात्रवान् निघ्नञ् शरौघैर्विमलैरहम् ।
अग्रतो लक्षये यान्तं पुरुषं पावकप्रभम् ॥ ४॥

ज्वलन्तं शूलमुद्यम्य यां दिशं प्रतिपद्यते ।
तस्यां दिशि विदीर्यन्ते शत्रवो मे महामते ॥ ५॥

पद्भ्यां न स्पृशते भूमिं न च शूलं विमुञ्चति ।
शूलाच्छूलसहस्राणि निष्पतन्त्यस्य तेजसा ॥ ६॥

तेन भग्नानरीन् सर्वान् मद्भग्नान् मन्यते जनः ।
तेन दग्धानि सैन्यानि पृष्ठतोऽनुदहाम्यहम् ॥ ७॥

भगवंस्त्वं ममाचक्ष्व को वै स पुरुषोत्तमः ॥ ८

व्यासः—

शूलपाणिर्महान् कृष्ण तेजसा सूर्यसन्निभः ॥ ८॥

प्रजापतीनां प्रथमं तेजसां प्रवरं प्रभुम् ।
भुवनं भूर्भुवं देवं सर्वलोकेश्वरं प्रभुम् ॥ ९॥

ईशानं वरदं पार्थ दृष्टवानसि शङ्करम् ॥ १०

तं गच्छ शरणं वीर वरदं भुवनेश्वरम् ।
महादेवं महात्मानम् ईशानं जटिलं विभुम् ॥ ११

त्र्यक्षं महाभुजं रौद्रं शिखिनं चीरवाससम् ।
[1]दातारं चैव भक्तानां प्रसादविहितान् वरान् ॥　१२

तस्य पारिषदा दिव्या रूपैर्नानाविधैर्विभोः ।
वामना जटिला मुण्डा ह्रस्वग्रीवा महोदराः ॥　१३

महाकाया महानासा महाकर्णास्तथाऽपरे ॥　१३॥

आननैर्विकृतैश्चान्यैः पार्थ वेषैश्च वैकृतैः ।
ईदृशैस्स महादेवः पूज्यमानो महेश्वरः ॥　१४॥

स शिवस्तात तेजस्वी प्रसन्नो याति तेऽग्रतः ।
तस्मिन् घोरे महारौद्रे सङ्ग्रामे रोमहर्षणे ॥　१५॥

[2]द्रोणकर्णकृपैर्गुप्तां महेष्वासैः प्रहारिभिः ।
कस्तां सेनां नरः पार्थ मनसाऽपि प्रधर्षयेत् ॥　१६॥

ऋते देवान्महेष्वासाद् बहुरूपान्महेश्वरात् ।
स्थातुमुत्सहते कश्चिन्न तस्मिन्नग्रतस्थिते ॥　१७॥

न हि भूतं समं तेन त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥　१८

गन्धेनापि हि सङ्ग्रामे तस्य क्रुद्धस्य शत्रवः ।
विसंज्ञा हतभूयिष्ठा वेपन्ति च पतन्ति च ॥　१९

तस्मै नमस्तु कुर्वाणा देवास्तिष्ठन्ति वै दिवि ।
ये चान्ये मानवा लोके ये च स्वर्गजितो नराः ॥　२०

---

1 ख—इदमर्धं नास्ति　　2. क—अर्धद्वयं नास्ति

ये भक्ता वरदं देवं शिवं रुद्रमुमापतिम् ।
[1]सङ्ग्रामेषु जयं प्राप्य पालयन्ति महीमिमाम् ॥ २१

इह लोके सुखं प्राप्य ते यान्ति परमां गतिम् ॥ २१॥

नमस्कुरुष्व कौन्तेय तस्मै शान्ताय वै सदा ।
रुद्राय शितिकण्ठाय कनिष्ठाय सुवर्चसे ॥ २२॥

[2]कपर्दिने करालाय हर्यक्ष्णे वरदाय च ।
याम्यायाव्यक्तकेशाय सद्वृत्ताय कपर्दिने ॥ २३॥

काम्याय हरिनेत्राय स्थाणवे पुरुषाय च ।
हरिकेशाय मुण्डाय कृशायोत्तारणाय च ॥ २४॥

भास्कराय सुतीर्थाय देवदेवाय रंहसे ।
बहुरूपाय शर्वाय विश्वरूपाय वेधसे ॥ २५॥

उष्णीषिणे सुवक्राय सहस्राक्षाय मीढुषे ।
[3]नमो वृक्षाय सेनान्ये मध्यमाय नमो नमः ॥ २६॥

गिरिशाय प्रशान्ताय पतये चीरवाससे ।
[4]हिरण्यबाहवे चैव उग्राय पतये दिशाम् ॥ २७॥

पर्जन्यपतये चैव भूतानां पतये तथा ।
वृक्षैरावृतकायाय सेनान्ये मध्यमाय च ॥ २८॥

---

1 ख—अर्धमिदं नास्ति
2. ख—षड्विंशत्यर्धानि न सन्ति
3. क-घ-ङ—अर्धमिदं नास्ति
4. अ—अर्धपञ्चकं नास्ति

स्रुवहस्ताय देवाय धन्विने भार्गवाय च ।
बहुरूपाय पतये पार्वत्याश्चीरवाससे ॥　　२९॥

सहस्रशिरसे राजन् सहस्रचरणाय च ।
सहस्रबाह्वे नित्यं सहस्रवदनाय च ॥　　३०॥

शरणं प्राप्य कौन्तेय वरदं भुवनेश्वरम् ।
उमापतिं विरूपाक्षं दक्षयज्ञनिबर्हणम् ॥　　३१॥

प्रजानां पतिमव्यग्रं भूतानां पतिमव्ययम् ।
कपर्दिनं वृषावर्तं वृषनाभं वृषध्वजम् ॥　　३२॥

वृषदर्पं वृषपतिं वृषशृङ्गं वृषर्षभम् ।
वृषाङ्कं वृषभोदारं वृषभं वृषभेक्षणम् ॥　　३३॥

वृषायुधं वृषशरं वृषभूतं महेश्वरम् ।
महोदरं महाकायं द्वीपिचर्मनिवासिनम् ॥　　३४॥

लोकेशं वरदं पुण्यं ब्रह्मण्यं ब्राह्मणप्रियम् ।
त्रिशूलपाणिं वरदं खड्गचर्मधरं प्रभुम् ॥　　३५॥

पिनाकखड्गपरशुं लोकानां पतिमीश्वरम् ।
प्रपद्ये शरणं देवं शरण्यं चीरवाससम् ॥　　३६॥

नमस्तस्मै सुरेशाय [1]गणानां पतये नमः ।
सुवाससे नमो नित्यं सुव्रताय सुधन्विने ॥　　३७॥

---

1. क-घ—यस्य वैश्रवणस्सखा　　[पाठान्तरम्]

[1-2]उग्रायुधाय देवाय नमस्सुरवराय च ।
[3-4]नमोऽस्तु बहुरूपाय [5]भगघ्नाय च वै नमः ॥ ३८॥

[6]वनस्पतीनां पतये नराणां पतये नमः ।
गवां च पतये नित्यं यज्ञानां पतये नमः ॥ ३९॥

पूष्णो दन्तविनाशाय त्र्यक्षाय वरदाय च ।
नीलकण्ठाय [7]पिङ्गाय स्वर्णकेशाय वै नमः ॥ ४०॥

कर्माणि चैव घोराणि महादेवस्य [8]धन्विनः ।
तानि ते कीर्तयिष्यामि यथाप्रज्ञं यथाश्रुतम् ॥ ४१॥

नासुरा नामरा लोके न गन्धर्वा न राक्षसाः ।
सुखमेधन्ति कुपिते तस्मिन्नपि गुहागताः ॥ ४२॥

दक्षस्य यजमानस्य विधिवत् सम्भृतं पुरा ।

---

1 क-ङ—उग्रायुधाय देवाय सुव्रताय भवाय च । [अधिकः पाठः]
क—धन्वक्षाय च धन्विने

2 क—धन्वन्तराय धनुषे धन्वाचार्याय ते नमः । [अधिकः पाठः]

3. घ—नमोऽस्तु बहुरूपाय नमोऽस्तु बहुधन्विने । [अधिकः पाठः]

4. क-ङ—धनुर्धराय देवाय प्रियधन्वाय धन्विने । [अधिकः पाठः]

5. क-घ-ङ—नमश्च बहुधन्विने
नमोऽस्तु स्थाणवे नित्यं नमस्तस्मै सुधन्विने ।
नमोस्तु त्रिपुरघ्नाय भगघ्नाय च वै नमः । [अधिकः पाठः]

6. ख—अर्धत्रयं नास्ति

7. क-घ—देवाय

8 क-घ—धीमतः

विव्याध कुपितो यज्ञं निर्भयस्तु भवस्तदा ॥ ४३॥

धनुषा बाणमुत्सृज्य सघोषं विननाद च ।
तेन शर्म कुतश्शान्ति लेभिरे च सुरास्तदा ॥ ४४॥

विद्रुते सहसा यज्ञे कुपिते च महेश्वरे ।
तेन ज्यातलघोषेण सर्वलोकास्समाकुलाः ॥ ४५॥

बभूवुर्विवशाः पार्थ निपेतुश्च सुरासुराः ॥ ४६

आपश्चुक्षुभिरे सर्वाश् चकम्पे च वसुन्धरा ।
[1]पर्वताश्च व्यशीर्यन्त दिशो नागाश्च मोहिताः ॥ ४७

अन्धेन तमसा लोका न व्यकाशन्त संवृताः ।
जघ्निवान् सह सूर्येण सर्वेषां ज्योतिषां प्रभाः ॥ ४८

चुक्षुभुर्भवभीताश्च चक्रुश्शान्ति तथैव च ।
ऋषयस्सर्वभूतानाम् आत्मनश्च सुखैषिणः ॥ ४९

पूषाणमभ्यद्रवत शङ्करः प्रहसन्निव ।
पुरोडाशं भक्षयतो दशनांश्च व्यशातयत् ॥ ५०

ततो निश्चक्रमुर्देवा वेपमाना भयार्दिताः ॥ ५०॥

पुनश्च सन्दधे दीप्तं देवानां निशितं शरम् ।
रुद्रस्य यज्ञभागं च विशिष्टं ते त्वकल्पयन् ॥ ५१॥

भयेन त्रिदशा राजन् शरणं प्रतिपेदिरे ॥ ५२

---

1 ख—इदमर्धं नास्ति

[1]तेन चैव हि कोपेन स यज्ञस्तम्भितस्तदा ।
यत्ताश्चापि सुरा आसन् यत्ताश्चान्येऽपि तं प्रति ॥ ५३

असुराणां पुराण्यासंस् त्रीणि वीर्यवतां दिवि ।
आयसं राजतं चैव सौवर्णं परमं महत् ॥ ५४

[2]आयसं तारकाक्षस्य कमलाक्षस्य राजतम् ।
सौवर्णमपरं चापि विद्युन्मालिन एव च ॥ ५५

न शक्तस्तानि मघवान् भेत्तुं सर्वायुधैरपि ॥ ५५॥

अथ सर्वेऽमरा रुद्रं जग्मुश्शरणमर्दिताः ।
ते तमूचुर्महात्मानं सर्वे देवास्समागताः ॥ ५६॥

देवाः—

रुद्र रौद्रा भविष्यन्ति पशवस्सर्वकर्मसु ।
निपातयिष्यसे चैनान् असुरान् भुवनेश्वर ॥ ५७॥

व्यासः—

स तथोक्तस्तथेत्युक्त्वा विष्णुं कृत्वा शरोत्तमम् ।
शल्यमग्निं च वै कृत्वा मुखे सोममपां पतिम् ॥ ५८॥

स कृत्वा धनुरोङ्कारं सावित्रीं ज्यां महेश्वरः ।
हयांश्च चतुरो वेदांश् चतुर्वेदमयं रथम् ॥ ५९॥

प्रजापतिं रथश्रेष्ठे विनियुज्य च सारथिम् ।

---

1. ख—अर्धद्वयं नास्ति 2. ब—अर्धद्वयं नास्ति

अतिष्ठत् स्थाणुभूतस्स सहस्रं परिवत्सरान् ॥ ६०॥

यदा त्रीणि समेतानि अन्तरिक्षे पुराणि वै ।
त्रिपर्वणा त्रिशल्येन तदा तानि बिभेद सः ॥ ६१॥

पुराणि न च तं शेकुर् दानवाः प्रतिवीक्षितुम् ।
शरं कालाग्निसंयुक्तं विष्णुसोमसमायुतम् ॥ ६२॥

देव्यास्स्वयंवरे वृत्तं शृणुष्वान्यद्धनञ्जय ॥ ६३

बालमङ्कगतं दृष्ट्वा स्वयं पञ्चशिखं पुनः ।
उमा जिज्ञासमाना वै कोऽयमित्यब्रवीत् सुरान् ॥ ६४

बाहुं सवज्रं शक्रस्य क्रुद्धस्यास्तम्भयत् प्रभुः ।
[1]स एष भगवान् देवस् सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ॥ ६५

न सम्बुबुधिरे चैनं देवास्तं भुवनेश्वरम् ।
सप्रजापतयस्सर्वे बालार्कसदृशप्रभम् ॥ ६६

अथाभ्येत्य ततो ब्रह्मा दृष्ट्वा तु स महेश्वरम् ।
अयं श्रेष्ठ इति ज्ञात्वा ववन्दे तं पितामहः ॥ ६७

ततः प्रसादयामासुर् उमां रुद्रं च ते सुराः ।
अभवच्च पुनर्बाहुर् यथाप्रकृति वज्रिणः ॥ ६८

तेषां प्रसन्नो भगवान् सपत्नीको महेश्वरः ।
देवानां त्रिदशश्रेष्ठो दक्षयज्ञविनाशनः ॥ ६९

---

1 ख—इदमर्धं नास्ति

स वै रुद्रस्स च शिवस् सोऽग्निस्सर्वस्स सर्वकृत् ।
स चेन्द्रश्चैव वायुश्च सोऽश्विनौ च स विद्युतः ॥ ७०

स भवस्स च पर्जन्यो महादेवस्स चानघः ।
स चन्द्रमास्स चेशानस् स सूर्यो वरुणश्च सः ॥ ७१

स कालस्सोऽन्तको मृत्युस् स यमो रात्र्यहानि सः ।
मासार्धमासा ऋतवस् स च संवत्सरश्च सः ॥ ७२

स च धाता विधाता च विश्वात्मा विश्वकर्मकृत् ।
विश्वेषां देवतानां च धारयत्यवपुर्वपुः ॥ ७३

[1]सर्वदेवैस्स्तुतो देवस् सैकधा बहुधा च सः ।
शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रधा ॥ ७४

ईदृशस्स शिवो देवो भूयश्च भगवानजः ।
न हि सर्वे मया शक्या वक्तुं भगवतो गुणाः ॥ ७५

सर्वैर्ग्रहैर्गृहीतान् वै सर्वपापसमन्वितान् ।
स मोचयति सुप्रीतश् शरण्यश्शरणागतान् ॥ ७६

आयुरारोग्यमैश्वर्यं वित्तं कामांश्च पुष्कलान् ।
स ददाति मनुष्येभ्यस् स चैवाक्षीयते पुनः ॥ ७७

सेन्द्रादिषु हि देवेषु तस्य चैश्वर्यमुच्यते ।
स चैव वेत्ति लोकेषु मनुष्याणां शुभाशुभे । ७८

1. ख—अर्धद्वयं नास्ति

ऐश्वर्यं चैव कामानाम् ईश्वरः पुनरुच्यते ।
[1]महेश्वरश्च भूतानां महतामीश्वरश्च सः ॥ ७९

बहुभिर्बहुधा रूपैर् विश्वं व्याप्नोति वै जगत् ॥ ७९॥

अस्य देवस्य यद्वक्त्रं समुद्रे तदधिष्ठितम् ।
एकाक्षो जाज्वलन्नास्ते सर्वतोऽक्ष इवेक्षते ॥ ८०॥

सकामानां प्रभुर्देवो ये दिव्या ये च मानुषाः ।
धूम्रं रूपं च यत् तस्य धूर्जटिः पुनरुच्यते ॥ ८१॥

विश्वे देवाश्च यत् तस्मिन् विश्वरूपस्ततस्स्मृतः ॥ ८२

तिस्रो देव्यो यदा चैनं भजन्ते भुवनेश्वरम् ।
द्यौरापः पृथिवी चैव त्र्यम्बकश्च ततस्स्मृतः ॥ ८३

एष चैव श्मशानेषु देवो वसति निर्दहन् ।
यजन्ते तं जनास्तत्र वीरस्थाननिवासिनम् ॥ ८४

अस्य दीप्तानि रूपाणि घोराणि च बहूनि च ॥ ८४॥

लोके यान्यस्य कुर्वन्ति मनुष्याः प्रवदन्ति च ।
नामधेयानि लोकेषु बहून्यस्य यथार्थवत् ॥ ८५॥

निरुच्यन्ते महत्त्वाच्च विभुत्वात् कर्मभिस्तथा ॥ ८६

वेदे चास्य समाम्नातं शतरुद्रियमुत्तमम् ।

---

1. ख—कोशे महेश्वरश्च (श्लो—79) इदमादि यन्निर्दहति (103) श्लोकपर्यन्तं नास्ति

नाम्ना चानन्तरुद्रेति ह्युपस्थानं महात्मनः ॥ ८७

क्रोधाद्यमाविशँल्लोकास् तेन शर्व इति स्मृतः ।
स विभुस्स प्रभुर्देवो विश्वं व्याप्नुवते महत् ॥ ८८

ज्येष्ठं भूतं वदन्त्येनं ब्राह्मणा मुनयस्तथा ।
प्रथमो ह्येष देवानां मुखादस्यानलोऽभवत् ॥ ८९

सर्वान् यच्च पशून् पाति तैश्च यद्रमते पुनः ।
तेषामधिपतिर्यच्च तस्मात् पशुपतिस्स्मृतः ॥ ९०

सत्येन ब्रह्मचर्येण लिङ्गमस्य यथा स्थितम् ।
तमर्चयन्ति लोकाश्च महेश्वर इति स्मृतः ॥ ९१

ऋषयश्चैव देवाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तथा ।
लिङ्गमस्यार्चयन्ति स्म तच्चाप्यूर्ध्वं समास्थितम् ॥ ९२

ऊर्ध्वलिङ्गस्ततश्चोक्तो भगवान् ब्राह्मणैस्सदा ॥ ९२॥

पूज्यमाने च तस्मिंश्च पूज्यते च महेश्वरः ॥ ९३

सुखं प्रीतिश्च भवति प्रभवश्चैव शङ्करः ॥ ९३॥

यदस्य बहुधा रूपं भूतं भव्यं भवत्तथा ।
स्थावरं जङ्गमं चैव बहुरूपस्ततस्स्मृतः ॥ ९४॥

एकाक्षो विज्वलन्नास्ते सर्वतश्शोभनं विशेत् ।
विश्वे देवाश्श्रयन्त्यस्माद् विश्वरूप इति स्मृतः ॥ ९५॥

शिवमिच्छन् मनुष्याणां तस्मादेष शिवस्स्मृतः ॥ ९६

सहस्राक्षोऽयुताक्षो वा सर्वतोक्ष इवेक्षते ॥ ९६॥

यच्च विश्वं महत् पाति महादेवस्ततस्स्मृतः ॥ ९७

[1]दहत्यूर्ध्वं स्थितो यच्च प्राणवत्तत् स्थितं च यत् ।
[2]स्थिरलिङ्गश्च यन्नित्यं तस्मात् स्थाणुरिति स्मृतः ॥ ९८

[3-4]पूजयेद्विग्रहं यस्तु लिङ्गं चापि महात्मनः ।
लिङ्गं पूजयिता नित्यं महतीं श्रियमश्नुते ॥ ९९

[5]ऊरुभ्यामर्धमाग्नेयं सोमोऽर्धं च शिवा तनुः ।
आत्मनोऽर्धं च तस्याग्निस् सोमोऽर्धं पुनरुच्यते ॥ १००

तैजसी महती दीप्ता दैवी याऽस्य शिवा तनुः ।
भास्वती मानुषेष्वस्य तनुर्घोराऽग्निरुच्यते ॥ १०१

ब्रह्मचर्यं चरत्येषा शिवा याऽस्य तनुस्तथा ।
[6]याऽस्य घोरतरा मूर्तिस् सर्वानत्ति तयेश्वरः ॥ १०२

---

1. क-ग—व्यूत्यूर्ध्वंस्थितो यच्च प्राणोत्पत्तिस्थितिश्च यत् ।
घ—गव्यूत्यूर्ध्वंस्थितो यच्च प्राणपालश्शरीरिषु । [पाठान्तरम्]
2. घ—इदमर्धं नास्ति
3. घ—कोश एकस्मिन्नेवार्धद्वयमिदं वर्तते
4. ङ—विषमस्थश्शरीरेषु समस्थः प्राणिनामिह ।
ख—समायुर्विषमस्थेषु प्राणायाम शरीरिषु ।
स वायुर्विषमस्थेषु प्राणोऽपानः शरीरिषु । [अधिकः पाठः]
5 अ-ख—नास्तीदमर्धम्
6. अ-ख—अघोरस्य च घोरायास्सर्वाननुचरेत् सदा । [पाठान्तरम्]

यन्निर्दहति यत्तीक्ष्णो यदुग्रो यत् प्रतापवान् ।
मांसशोणितमज्जादो यत्ततो रुद्र उच्यते ॥ १०३

एष देवो महादेवो योऽसौ पार्थ तवाग्रतः ।
सङ्ग्रामे शात्रवान् निघ्नंस् त्वया दृष्टः पिनाकधृत् ॥ १०४

स एष भगवान् देवस् [1]सङ्ग्रामे याति तेऽग्रतः ।
येन दत्तानि तेऽस्त्राणि यैस्त्वया दानवा हताः ॥ १०५

धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम् ।
देवदेवस्य ते पार्थ व्याख्यातं शतरुद्रियम् ॥ १०६

सर्वार्थसाधकं पुण्यं सर्वशत्रुविनाशनम् ।
सर्वपापप्रशमनं सर्वदुःखभयापहम् ॥ १०७

चतुर्विधमिदं स्तोत्रं यश्शृणोति नरस्सदा ।
विजित्य शात्रवान् सर्वान् रुद्रलोके महीयते ॥ १०८

चरितं महात्मनो नित्यं सांग्रामिकमिदं शुभम् ।
पठन् वै शतरुद्रीयं शृण्वंश्च सततोत्थितः ॥ १०९

भक्तो विश्वेश्वरं देवं मानुषेषु तु यस्सदा ।
वरान् स कामॉल्लभते प्रसन्ने त्र्यम्बके नरः ॥ ११०

गच्छ युध्यस्व कौन्तेय न तवास्ति पराजयः ।
यस्य मन्त्री च गोप्ता च पार्श्वतस्ते जनार्दनः ॥ १११

---

1. क-ख-घ—सर्वलोकेश्वरः प्रभुः

सञ्जय.—

एवमुक्त्वाऽर्जुनं सङ्ख्ये पराशरसुतः प्रभुः ।
जगाम भरतश्रेष्ठ यथागतमरिन्दम ॥ ११२

वैशम्पायनः—

[1]एतदाख्याय वै सूतो राज्ञस्सर्वं तु सञ्जयः ।
प्रयातश्शिबिरायैव द्रष्टुं कर्णस्य वैशसम् ॥ ११३

इति श्रीमहाभारते शतसहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥
॥ ७२ ॥ नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥
[ अस्मिन्नध्याये ११३ श्लोकाः ]

[ नारायणास्त्रमोक्षपर्व समाप्तम् ]  [ द्रोणपर्व समाप्तम् ]

---

1 घ—अर्धद्वयं नास्ति

---

॥ अस्मिन् द्रोणपर्वणि ९५५५ श्लोकाः ॥

अस्यानन्तरं कर्णपर्व भविष्यति तस्यायमाद्यः श्लोकः ॥

वैशम्पायनः—

शिबिराद्धास्तिनपुरं प्राप्य भारत सञ्जयः ।
प्रविवेश महाबाहुर् धृतराष्ट्रनिवेशनम् ॥ १

---

Printed by V Venkateswara Sastrulu of
V Ramaswamy Sastrulu & Sons, at the 'Vavilla' Press, Madras

॥ श्रीरस्तु ॥

## महाभारतस्य द्रोणपर्वस्थानां विषयाणाम्

# अक्षरमातृकाक्रमेण विषयसूचनम्

अध्यायः-पुटम्

॥ श्रीः ॥

# महाभारतद्रोणपर्वस्थानामशुद्धानां शोधनम्

| पुटम् | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शोधनम् |
|---|---|---|---|
| ६०७ | १५ | लवु | लघु |
| ६०८ | १३ | भाखरम् | भास्वरम् |
| ६१२ | २ | युंद्धं | युद्धं |
| ६१८ | ८ | ऽयन्महद्धनुः | ऽन्यन्महद्धनुः |
| ,, | ९ | वारयानस्स | वारयाणस्स |
| ६३५ | १५ | विक्रान्तो ऋषभाक्षो | विक्रान्त ऋषभाक्षो |
| ६४४ | ११ | जाताम् | जातास् |
| ६५६ | २ | अवपत्य | अवप्लुत्य |
| ,, | १७ | मुत्सेहिरि | मुत्सेहिरे |
| ६५९ | २० | गृध्रपत्रञ्शितान् | गृध्रपत्राञ्शितान |
| ६६८ | ५ | द्विजमत्तमः | द्विजसत्तमः |
| ७०७ | ४ | मिच्छत् सु | मिच्छन्सु |
| ७८८ | १७ | पुनो विरथस्य | पुनर्विरथस्य |
| ८०३ | ११ | कल्यं | काल्यं |
| ८२८ | ३ | हे | वै |
| ८३६ | ११ | रवलेढितौ | रवलेहितौ |
| ८३७ | १६ | प्रेक्षमाणो | प्रेक्ष्यमाणो |
| ,, | २० | विद्याम | विद्याम् |
| ९४१ | १८ | घौतान | धौतान |

| पुटम् | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शोधनम् |
|---|---|---|---|
| ९२२ | ८ | वादिकाः | वादकाः |
| ,, | ९ | पूरन्यन्तौ | पूरयन्तौ |
| ९२५ | ८ | लुठमानैः | लुण्ठमानैः |
| ९९३ | १७ | खसैन्यं | स्वसैन्यं |
| १०४७ | १९ | धीमान्शङ्खं | धीमाञ्शङ्खं |
| ११०८ | १२ | प्राणाश्शिरो | प्राणार्पितारो |
| १११६ | २ | नरकस्समुपैष्यति | नरः कस्तमुपैष्यति |
| ११२२ | ५ | महारथाः | महारथः |
| ११२८ | १८ | मनुत्तमम | मनुत्तमम् |
| ११३७ | ६ | पलितश्यामो | पलितश्श्यामो |
| ११७८ | १३ | विव्यवुः | विव्यधुः |
| ११८७ | १४ | युघि | युधि |
| ११९५ | ४ | परिधिणं | परिधि |
| ११९४ | २० | छ्लोका | श्लोका |
| ११९७ | १६ | परमं तत्परं च | परमं परं च (तदिति पदं मास्तु) |